आप अपने सबसे प्यारे कॉलेज को छोड़ने को तैयार हो रहे हैं, यही कोई छोटी-सी तालीम नहीं है। जो इसलाम के दुश्मनों की सेवा करें, खुशामद करें, उन ट्रस्टियों का कॉलेज मुसलिम कहला ही नहीं सकता।" मौ० मुहम्मदअली ने सवाल करनेवाले भाई से पूछा, "आप कॉलेज को ज्यादा चाहते हैं या मुसलमान धर्म को ज्यादा चाहते हैं? आपका अंग्रेजों से दुश्मनी का एलान हुआ है या नहीं? जझीरत-उल-अरब पर अंग्रेजों का कब्जा है या नहीं? इन सवालों का तुम 'हाँ' में जवाब दे सकते हो, तो तुम्हारे लिए अंग्रेज सरकार से मिलनेवाली मदद हराम है। तुम कहते हो कि कॉलेज तुम्हारे रुपये से बना, मकान तुम्हारे हैं, सब कुछ तुम्हारा है, तो मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुमने 'स्ट्रेची हाल' किसलिए बनाया? 'लिटन लाइब्रेरी' क्यों बनायी और स्ट्रेची और लिटन को क्यों अमर किया? अलीगढ़ की बुनियाद तो सर सैयद अहमद ने मौजूदा शिक्षा के विरुद्ध विद्रोह पर डाली थी। वह बुनियाद खिसक गयी है। उसे तुम फिर मजबूत करो।"

इसका विद्यार्थियों पर जबरदस्त असर हुआ। वे सारी रात जागे। प्रोफेसरों से मिले, कुछ ट्रस्टियों से भी मिले। दूसरे दिन कुछ ट्रस्टियों ने दूसरे ट्रस्टियों को ग्रांट छोड़ने की नोटिस दी, उसीके साथ विद्यार्थियों ने ग्रांट न छोड़ी जायगी, तो पंद्रह दिन में कॉलेज छोड़ने की नोटिस दी। इस नोटिस की मियाद २९ तारीख को पूरी होती है। सारी मुसलिम दुनिया इसका इंतजार कर रही है कि २९ तारीख को क्या होता है। विद्यार्थी पूरे जोश में हैं। बहुत-से विद्यार्थियों ने अपना खर्च कम करने और ग्रांट के रुपये पेटे प्रत्येक विद्यार्थी पर पाँच रुपये चुकाने का व्रत लिया है। कॉलेज में विद्यार्थी अधिकांश कक्षाओं में नहीं बैठते। एक प्रोफेसर ने तो कक्षा में कह दिया कि "जब बड़े-बड़े प्रस्ताव हो रहे हैं, तब मैं तुम्हें वनस्पति-शास्त्र पर फालतू बातें क्या सुनाऊँ?" हम भी आशा रखेंगे कि २९ तारीख को शुभ होगा।

महादेवभाई की डायरी

द्वितीय खण्ड

[९-१-'२० से १७-१२-'२० तक]

सम्पादक

नरहरि द्वा० परीख

अनुवादक

रामनारायण चौधरी

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी

प्रकाशक :
पूर्णचन्द्र जैन,
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,
राजघाट, वाराणसी

●

पहली बार : ३,०००
अगस्त, १९६२
मूल्य : पाँच रुपया

●

मुद्रक :
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस,
गायघाट, वाराणसी

प्र का श की य

यह बड़े हर्ष का विषय है कि सर्व-सेवा-संघ की ओर से महादेवभाई की डायरियाँ हिन्दी में प्रकाशित होने जा रही हैं। महादेवभाई और गांधीजी का सम्बन्ध भारत में कौन नहीं जानता ? दोनों नाम राष्ट्रीय इतिहास में अभिन्न रहेंगे ! सन् १९१७ में जब महादेवभाई गांधीजी के पास आये, तब से उन्होंने नियमित रूप से अपनी डायरी लिखी और सन् १९४२ में आगा खाँ महल में वे जब गांधीजी की गोद में सिर रख-कर गये, तब तक उनका डायरी लिखने का सिलसिला बराबर जारी रहा।

महादेवभाई और गांधीजी का सम्बन्ध दो अभिन्न हृदयों का सम्बन्ध था। महादेवभाई की डायरी का मतलब है, गांधीजी की डायरी। महादेवभाई की इन डायरियों में आपको गांधीजी की राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय नेताओं से मुलाकात मिलेगी। गांधीजी ने बीमारी में, सन्निपात में कुछ कहा होगा, तो उसका उल्लेख भी इसमें मिलेगा। गांधीजी के ऐतिहासिक और जगत्प्रसिद्ध व्याख्यान इन डायरियों में हैं। अगर राह चलते गांधीजी ने किसी बच्चे के साथ थोड़ा विनोद किया है, तो वह भी इस डायरी में प्रतिबिम्बित हुआ है। इतिहास में इस प्रकार के डायरी-लेखन का नमूना सिर्फ एक ही मिलता है और वह है, अंग्रेज विद्वान् बोजवेल का, जिन्होंने डॉ० जॉनसन के जीवन के बारे में लिखा है। लेकिन डॉ० जॉनसन के लेख और महादेवभाई की डायरियों में उतना ही अन्तर है, जितना डॉ० जॉन-सन के जीवन और गांधीजी के जीवन में। अपने अनेक कामों के बीच जब कभी थोड़ी-सी फुरसत मिली है, महादेवभाई ने गांधीजी के वचनों के उपरान्त अन्य सामग्री से अपनी डायरियों को समृद्ध किया है। महादेवभाई के समान विशाल अध्ययन करनेवाले लोग हमारे देश में कम ही मिलेंगे। समय-समय पर उन्होंने डायरियों में अपने व्यापक

पठन की कुछ आलोचना भी लिखी है। कभी किसी नये स्थान पर गये, तो उस स्थान का वर्णन भी किया है। कभी किसी नये व्यक्ति से मिले, तो उसका थोड़ा चरित्र-चित्रण भी किया है और इन छोटे-छोटे परिच्छेदों में महादेवभाई की उच्च कोटि की साहित्यिक प्रतिभा प्रकट हुई है।

सन् १९१७ से १९४२ तक की डायरी याने भारत के अहिंसक राष्ट्रीय आन्दोलन का एक जीता-जागता दिलचस्प इतिहास। गांधीजी के विचारों के अन्तस्तल में प्रवेश कराते हुए उनसे मिलनेवाले, पत्र-व्यवहार करनेवाले हजारों लोगों का सहज स्फूर्त वर्णन कर महादेवभाई ने उस समय के राष्ट्र-मानस का जो चित्र खींचा, वह अपने में विशेषता है।

कुल मिलाकर महादेवभाई की डायरी के प्रकाशन से न सिर्फ भारत के, किन्तु जगत् के साहित्य को लाभ होगा। यह दुर्भाग्य का विषय रहा कि स्व० महादेवभाई अपनी डायरियों को स्वयं सम्पादित न कर सके। एक कर्मयोगी की तरह वे काम करते हुए हमारे बीच से उठ गये। अपने मित्र के अधूरे काम को पूरा करने की जिम्मेवारी स्व० नरहरिभाई परीख ने मित्र-धर्म के पालन की दृष्टि से उठायी। अपनी प्राणघातक बीमारी से जूझते हुए भी उन्होंने औसत ५०० पृष्ठों की ६ डायरियों का सम्पादन पूरा किया। यह काम अपने में ही बहुत बड़ा काम था। लेकिन अभी तो वैसे ही लगभग १५ और खण्डों का सम्पादन बाकी है।

महादेवभाई के सुपुत्र श्री नारायणभाई देसाई ने डायरियों का हिन्दी संस्करण प्रकाशित करने का अधिकार सर्व-सेवा-संघ को निःशुल्क दिया, यह उनका सौजन्य है। संघ उनकी इस कृपा के लिए आभारी है। भविष्य में ये सारे खण्ड प्रकाशित करने का काम संघ ने अपने हाथ में ले लिया है। संपादन व प्रकाशन के इस भगीरथ काम में समय लगेगा। किन्तु आशा है कि उदार पाठक इस विलम्ब के लिए क्षमा करेंगे।

आशा है, इस ऐतिहासिक डायरी का देशव्यापी स्वागत होगा।

वीर-जयन्ती
३०-३-'६१

—राधाकृष्ण बजाज

यह द्वितीय खण्ड

डायरी का प्रकाशित प्रथम खण्ड सन् १९१७ से १९१९ तक तीन वर्षों का है। यह द्वितीय खण्ड ९ जनवरी १९२० से १७ दिसम्बर १९२० तक यानी लगभग एक वर्ष का है। डायरी का आरंभ सन् १९१७ से ही होता है। नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद से गुजराती में पाँच खण्ड और हिन्दी में तीन खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। नवजीवन द्वारा प्रकाशित हिन्दी के तीनों खण्ड सन् १९३२ और १९३३ के हैं। ये खण्ड भी क्रमानुसार प्रकाशित होंगे। नवजीवन प्रकाशन ने गुजराती के चौथे और पाँचवें खण्डों का हिन्दी अनुवाद हमें भेज दिया और इस कारण सर्व-सेवा-संघ अत्यधिक विलम्ब से बच सका, इसके लिए संघ नवजीवन ट्रस्ट का आभारी है।

स्वतन्त्रता-दिवस
१५-८-'६२

—प्रकाशक

प्रस्तावना

यह डायरी असहयोग-काल की है। उसके पन्ने-पन्ने पर नींद में सोये देश को जगाने के गांधीजी के उत्कट प्रयत्नों के हमें दर्शन होते हैं। हमारे देश की स्वातंत्र्य-प्राप्ति की लड़ाई के इतिहास में यह काल अद्भुत जाग्रति और उत्साह का था। उसकी नवीनता के कारण उसमें लोगों को अनोखा चैतन्य दिखायी देता था। आजादी मिलने के पहले हमने तीन बड़ी लड़ाइयाँ लड़ी हैं: १९२०-२१ की असहयोग की लड़ाई, १९३० से १९३४ की सविनय कानून-भंग की लड़ाई और १९४२ की 'भारत छोड़ो' की लड़ाई। तीनों लड़ाइयों का महत्त्व बहुत अधिक है। परन्तु १९२०-२१ की लड़ाई का केवल हमारे ही देश के इतिहास के लिए नहीं, बल्कि दुनिया के इतिहास के लिए भी, लड़ने की एक बिलकुल नयी पद्धति का प्रयोग शुरू होने के कारण विशेष महत्त्व है। गांधीजी शान्तता और सौम्यता की मूर्ति थे। किन्तु लड़ाई के मौके पर वे ऐसी उग्रता धारण कर लेते और ऐसे जुझार बन जाते कि उन्हें देखने और सुननेवाले सभीको उनकी उत्कटता की छूत लगती थी। जिस साम्राज्य के लिए यह कहा जाता था कि उस पर कभी सूर्य नहीं छिपता और यह माना जाता था कि उसकी जड़ें हमारे देश में बहुत गहरी जम गयी हैं, यहाँ तक कि हमारे देश में यह माननेवाला एक बहुत बड़ा सुशिक्षित वर्ग था कि इस साम्राज्य की छत्रछाया में देश की ऐसी प्रगति हो रही है, जैसी पहले कभी नहीं हुई, और उस वर्ग में एक समय खुद गांधीजी भी थे; उस ब्रिटिश हुकूमत की प्रतिष्ठा एक ही विशेषण 'शैतानी' लगाकर गांधीजी ने धूल में मिला डाली। फिर सरकारी अफसरों और पुलिसवालों का रुआब या डर तो लोगों में रहता ही क्या? इन बेचारों की तो समाज में कौड़ीभर भी कीमत नहीं रह गयी। सारी आम जनता, स्त्रियाँ और

बच्चे तक, खुल्लमखुल्ला कहने लगे कि 'हमें यह सरकार नहीं चाहिए।' इतने विशाल देश में इतनी बड़ी क्रान्ति गांधीजी ने कर डाली, इसका वर्णन महादेवभाई की मोहक शैली में हमें इस डायरी में मिलता है।

ब्रिटिश-साम्राज्य की सेवा जितनी गांधीजी ने की है, उतनी शायद ही और किसी भारतीय ने की होगी। दक्षिण अफ्रीका में फौज में बीमारों की सेवा करने के लिए उन्होंने दो बार अपने नेतृत्व में भारतीयों की टोलियाँ खड़ी की थीं। यद्यपि नियमानुसार जहाँ दोनों तरफ से गोलियाँ चल रही हों, वहाँ ऐसी टोलियों के आदमियों को काम करने नहीं जाना चाहिए। फिर भी खूँखार लड़ाई हो रही हो, वहाँ से घायलों को उठाकर लाने के लिए अपनी टोलियाँ ले जाकर गांधीजी ने कई बार अपनी और अपने आदमियों की जान जोखिम में डाली थी।

जब १९१४ से १९१८ का प्रथम महायुद्ध छिड़ गया, तब वे इंग्लैण्ड में थे। वहाँ उन्होंने भारतीयों का एक सेवा-दल खड़ा किया। उसकी तैयारी के सख्त काम के कारण इंग्लैण्ड की ठंड में उन्हें प्लुरिसी (फेफड़ों में पानी भर जाने की बीमारी) हो गयी। उसी युद्ध के लिए उन्होंने १९१७ में खेड़ा जिले में फौजी भरती का काम हाथ में लिया। उसके सिलसिले में जो भारी रगड़पट्टी करनी पड़ी, उसके कारण उन्हें सख्त पेचिश हो गयी और थोड़े समय तक तो यह डर पैदा हो गया कि वे बचेंगे या नहीं। इस सेवा की जड़ में उनका यह विश्वास था कि ब्रिटिश-साम्राज्य के हाथों हमारे देश का भला होगा।

जब वे साम्राज्य के प्रति बड़ी वफादारी रखते थे, तब भी साम्राज्य के अन्याय के विरुद्ध तो उन्होंने जबर्दस्त लड़ाइयाँ लड़ी ही हैं। दक्षिण अफ्रीका की जगत्-प्रसिद्ध लड़ाई के सिवा गिरमिट-प्रथा बंद कराने के लिए उनके द्वारा देश में शुरू की गयी हलचल, चम्पारन और खेड़ा की लड़ाइयाँ और रौलट-कानून के विरुद्ध छेड़ा गया सत्याग्रह—ये लड़ाइयाँ उनके वफादारी के समय में की गयी थीं।

बाद में पंजाब के अत्याचारों और खिलाफत के मामले में मुसलमान कौम के साथ हुआ अन्याय, ये दो प्रसंग साम्राज्य के प्रति वफादारी को डगमगा देनेवाले हुए। फिर भी पंजाब के अत्याचारों के लिए सरकार ने जाँच-कमेटी नियुक्त कर दी और खिलाफत के अन्याय के बारे में जब तक ब्रिटिश-मंत्रिमंडल का अन्तिम उत्तर न मिला, तब तक उन्होंने मौन रखा, यहाँ तक कि दिसंबर १९१९ की अमृतसर-कांग्रेस में मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के बारे में प्रस्ताव पर बोलते हुए उन्होंने यह कहकर उसका समर्थन किया कि 'ये सुधार हमें बिना शर्त स्वीकार कर लेने चाहिए और उन पर अमल करने में हमें सरकार को पूरा सहयोग देना चाहिए।' तिलक महाराज प्रतियोगी सहयोग (रेस्पॉन्सिव कोऑपरेशन) के पक्षपाती थे। गांधीजी ने कांग्रेस के मंच पर टोपी उतारकर और पैर पड़कर उनसे मूल प्रस्ताव मंजूर करने की प्रार्थना की। सौभाग्य से उस वक्त तिलक महाराज के साथ समझौता हो गया और खुले अधिवेशन में प्रस्ताव पर मत लेने का अवसर टल गया। परन्तु उसी समय से कांग्रेस गांधीजी के पूर्ण प्रभाव में हो गयी।

गांधीजी की ब्रिटिश-साम्राज्य के प्रति पूर्ण श्रद्धा होते हुए भी वह बेढंगी नहीं थी। जब १९१५ के आरंभ में वे हिन्दुस्तान में आये, उसके बाद गोखलेजी के आग्रह से किसी भी सार्वजनिक प्रश्न पर एक वर्ष तक भाषण न देने का उन्होंने निश्चय किया था। इस निश्चय की मीयाद जनवरी १९१६ के अन्त में पूरी हो गयी।

उसके बाद पहला भाषण उन्होंने ४ फरवरी को हिन्दू विश्वविद्यालय के शिलान्यास के मौके पर बनारस में दिया। उस समय वाइसराय महोदय वहाँ आये थे, इसलिए मंच पर राजा-महाराजा अपने जवाहरात पहनकर दरबारी पोशाक में बैठे हुए थे। श्रीमती बेसेण्ट और दूसरे नेता भी वहाँ थे। हिन्दुस्तान में आने के बाद दिये हुए इस पहले ही भाषण में गांधीजी इस प्रकार दिल खोलकर बोलने लगे, मानो वे अपना कार्यक्रम प्रकट कर रहे हों। काशी विश्वनाथ के मंदिर के आसपास की गंदगी

का वर्णन करते हुए उन्होंने हमारी गंदी आदतों और सारे देश में पायी जानेवाली असह्य गंदगी को हमारा राष्ट्रीय दोष बताया। राजा-महाराजाओं के पहने हुए जवाहरात की आलोचना करते हुए उन्होंने इनके और दूसरे अमीर लोगों के बड़े-बड़े महलों की देश के असंख्य गरीबों की झोपड़ियों से तुलना की और यह बताया कि यह आर्थिक असमानता हमारे देश के लिए भयंकर है। यह भी बताया कि वाइसराय लार्ड हार्डिंज की सुरक्षा के लिए यहाँ जो सख्त पहरा, चौकी और कड़ा बंदोबस्त रखा गया है, वह लोगों के प्रति अविश्वास प्रकट करता है। यह भी सूचना दी कि हमारे देश के नेता जहाँ जाते हैं, वहाँ खुफिया पुलिस उन पर निगरानी रखती है और हम कैदी जैसी हालत में चल-फिर सकते हैं। सिविल सर्विसवाले अफसरों के घमंड और फौलादी पंजे की बात कही। यह भी बताया कि अंग्रेजी भाषा द्वारा शिक्षा मिलने के कारण हमारे पढ़े-लिखे लोग आम जनता से और अपने कुटुम्बियों से भी कैसे अलग हो जाते हैं। यह भी कहा कि ब्रिटिश राज्य का जुल्म और अन्याय किस तरह आतंकवादियों (टेररिस्टों) को पैदा करता है। यह बताकर कि मैं खुद भी एक अर्थ में अराजकतावादी हूँ, परन्तु उन आतंकवादियों से मेरी पद्धति भिन्न है, कहा कि अगर हम ईश्वर पर विश्वास रखते हों और उसका डर रखकर चलते हों, तो हमें और किसीका भी—यहाँ बैठे हुए राजा-महाराजा, वाइसराय, खुफिया पुलिस और सम्राट् जार्ज का भी—डर रखने की जरूरत नहीं है। फिर घोषणा की कि अगर मुझे जरूरी मालूम होगा कि हिन्दुस्तान के उद्धारार्थ यहाँ से अंग्रेजों के चले जाने की जरूरत है—या उन्हें निकाल देने की आवश्यकता है, तो छत पर चढ़कर यह कहने में मैं जरा भी संकोच नहीं रखूँगा। अपना यह विश्वास घोषित करने के लिए मौत का सामना करना पड़े, तो उसके लिए मेरी पूरी तैयारी है। इस प्रकार का भाषण मंच पर बैठे हुए कितने ही नेताओं और सभा के समझदार माने जानेवाले वर्ग को अच्छा न लगना स्वाभाविक था। श्रीमती बेसेण्ट ने गांधीजी को भाषण बन्द करने का सुझाव

भी दिया, विद्यार्थी चिल्लाने लगे, 'जारी रखिये', राजा-महाराजा मंच से उठ-उठकर जाने लगे और सभा में बड़ी खलबली मच गयी, इसलिए गांधीजी का भाषण अधूरा रह गया।

परन्तु गांधीजी ने जिस स्थिति की भविष्यवाणी की थी, वह चार ही वर्ष बाद आ उपस्थित हुई। खिलाफत के मामले में जो निर्णय हुआ था, उसके बारे में आखिरी जवाब यह मिल गया था कि उसमें ब्रिटिश सरकार कोई तब्दीली नहीं करा सकती। इसलिए मार्च १९२० में खिलाफत-परिषद् में जमा हुए मुसलमानों को गांधीजी ने सलाह दी कि इसका उपाय सरकार के साथ पूर्ण असहयोग करना ही है। साथ ही उन्होंने हिन्दुओं से भी कहा कि हमारे देशबन्धुओं के धर्म में जब हाथ डाला गया है, तो उनके साथ कंधे-से-कंधा मिलाकार खड़ा रहना हमारा धर्म है।

पंजाब के अत्याचारों के बारे में जो जाँच-समिति नियुक्त हुई थी, उसकी रिपोर्ट ता० २६-५-'२० को प्रकाशित हुई। उसकी सिफारिशें जरा भी सन्तोषजनक नहीं थीं। उस रिपोर्ट से भी ज्यादा खतरनाक वह प्रस्ताव था, जो भारत-सरकार ने प्रकाशित किया था। पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर माइकेल ओडायर के लिए, जिसका पंजाब के अमानुषिक अत्याचारों में मुख्य हाथ था, प्रस्ताव में कहा गया था कि उन्होंने बड़ी समझदारी और साहस के साथ बड़ी कठिनाई के समय अपना कर्तव्य पालन किया, इसके लिए सरकार उनकी कद्र करती है। जलियाँवाला-बाग में सैकड़ों निर्दोष लोगों की हत्या करनेवाले जनरल डायर के बारे में कहा गया कि उन्होंने जरूरत से ज्यादा सैनिक बल का प्रयोग करने में केवल इनी-गिनी भूल की थी। उससे अपने पद से इस्तीफा दिलवा दिया, परन्तु उसे और कोई सजा नहीं दी गयी। उसे उलहना तक नहीं दिया गया। कुछ अंग्रेजों ने उसे 'साम्राज्य को बचानेवाला' कहकर उसकी बड़ी इज्जत की और उसे मदद देने के लिए कोष जमा किया। इसके सिवा रिपोर्ट प्रकाशित होने से पहले ही भारत-सरकार ने यह

फतवा जारी कर दिया था कि जिन-जिन अफसरों पर अत्याचार करने के आरोप लगाये गये थे, उन पर उन आरोपों के लिए कोई मुकदमा नहीं चल सकेगा। इसलिए असहयोग के लिए खिलाफत के सिवा पंजाब के अन्याय का कारण भी मिल गया।

ता० २०-६-'२० को वाइसराय को पत्र लिखकर (पृष्ठ १०३–१०६ देखिये) गांधीजी ने उन्हें अपनी असहयोग की योजना सूचित कर दी। १ अगस्त को, जिस दिन तिलक महाराज का देहान्त हुआ उसी दिन, पहले से हुए निश्चयानुसार देश के सामने असहयोग का कार्यक्रम घोषित किया गया। अगस्त मास के अन्त में अहमदाबाद में गुजरात राजनैतिक-परिषद् करके उसमें असहयोग का प्रस्ताव पास कर दिया गया। सितम्बर के पहले सप्ताह में कलकत्ते में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में असहयोग का प्रस्ताव पास करके कांग्रेस ने असहयोग कार्यक्रम को बाजाब्ता अपना लिया। गांधीजी ने कांग्रेस में घोषणा की कि धारा-सभाओं, अदालतों, सरकारी पदवियों, स्कूल-कॉलेजों और विदेशी कपड़े का बहिष्कार हम अच्छी तरह कर लेंगे, तो एक वर्ष के भीतर स्वराज्य ले लेंगे। परन्तु लोग 'यदि' और 'तो' पर कम जोर देते हैं। उन्होंने 'एक साल में स्वराज्य' का नारा पकड़ लिया।

सरकारी अदालतों के बजाय पंचायती अदालतें कायम करनी थीं, सरकारी स्कूल-कॉलेजों के बजाय राष्ट्रीय पाठशालाएँ और महाविद्यालय स्थापित करने थे और विदेशी वस्त्र-बहिष्कार चरखा चलाकर और खादी उत्पन्न करके करना था। यह कार्यक्रम अमल में लाने के लिए रुपया चाहिए, इसके लिए जुलाई १९२१ के अन्त से पहले एक करोड़ रुपया तिलक स्वराज्य-कोष में चन्दा इकट्ठा करने का निश्चय हुआ। इस अवधि के समाप्त होने से पहले एक करोड़ के बजाय सवा करोड़ रुपया इकट्ठा हो गया। विदेशी कपड़े के बहिष्कार के लिए शहरों और गाँव-गाँव में विदेशी वस्त्रों की होलियाँ जलायी गयीं। इसके सिवा कांग्रेस के एक करोड़ सदस्य बनाने थे और देश में बीस लाख चरखे चालू करने

थे। इस कार्यक्रम की विध्वंसात्मक और रचनात्मक दोनों प्रकार की प्रवृत्तियाँ थीं। विदेशी कपड़ों की होली जलाना, सरकारी अदालतों और स्कूल-कॉलेजों का बहिष्कार करना आदि ध्वंसात्मक प्रवृत्तियाँ देश में जमे हुए पुराने जालों की सफाई के लिए थीं; जब कि राष्ट्रीय पाठशालाएँ खोलना, पंचायती अदालतें स्थापित करना, खादी की उत्पत्ति बढ़ाना, अस्पृश्यता को निर्मूल करना, हिन्दू-मुसलिम एकता करना वगैरह रचनात्मक प्रवृत्तियाँ देश में नवचेतना लाने, लोगों की शक्ति बढ़ाने और देश को स्वावलम्बी बनाने के लिए थीं। गांधीजी का विशेष जोर रचनात्मक कार्यक्रम पर ही था।

इस लड़ाई में गांधीजी जनता का नैतिक पारा जितना ऊँचा चढ़ा सके, उतना ऊँचा चढ़ाने का बाद की लड़ाइयों के समय गांधीजी को अवकाश नहीं मिला, क्योंकि लड़ाई छिड़ते ही उन्हें पकड़ लिया जाता। इस बार तो सरकार को इस बारे में परेशानी-सी हो गयी थी कि क्या करें। बम्बई के गवर्नर ने तो यहाँ तक कह डाला था कि चौरीचौरा के हत्याकाण्ड के कारण गांधीजी ने लड़ाई स्थगित कर दी, अन्यथा स्वराज्य तो उनकी हथेली में आ गया था।

असहयोग अर्थात् आत्मशुद्धि, स्वावलंबन, बलिदान और निर्भयता, केवल कहकर ही नहीं, बल्कि लोगों द्वारा उसका आचरण कराकर गांधीजी ने लम्बे काल से सोयी हुई जनता को जगाकर खड़ा कर दिया। आत्मशुद्धि और उत्साह की लहर देशभर में ऐसी दौड़ गयी कि लोगों से किसीने ऐसी अपेक्षा भी नहीं रखी थी और जिन कुर्बानियों के बारे में स्वयं उन्होंने भी नहीं माना होगा, ऐसी कुर्बानियाँ करने और कष्ट उठाने के लिए लोग तैयार हो गये। जिन कोमल शहरी लोगों ने कभी ठण्ड और धूप न देखी हो, वे भी भरी दोपहरी में या आधी रात को गाँव-गाँव असहयोग का संदेश पहुँचाने के लिए पैदल घूमने लगे। इस अद्भुत जाग्रति और आत्मोत्सर्ग की बाढ़ में ही हमारे आज के मुख्य कार्यकर्ता और नेता बनकर तैयार हुए हैं। देशबन्धु दास, पंडित मोतीलालजी वगैरह

तो उम्र में गांधीजी से बड़े थे। उनकी बात छोड़ दें, तो भी जवाहरलालजी, सरदार वल्लभभाई, राजाजी, मौलाना अबुल कलाम आजाद, राजेन्द्रबाबू वगैरह इस लड़ाई में ही गांधीजी के नेतृत्व में बने। कहा जाता है कि नेता को लोगों को अच्छी तरह साथ लेना हो, तो सिद्धान्तों के बारे में समझौता करके लोगों के स्तर पर आने के लिए नीचे उतरना पड़ता है। ऐसा न करे, तो वह अकेला रह जाता है। परन्तु गांधीजी ने सिद्धान्त के मामले में कभी समझौता नहीं किया। फिर भी जनता के सब वर्गों का और आम जनता का जितना साथ उन्हें मिला, उतना दुनिया के किसी दूसरे नेता को नहीं मिला होगा। गांधीजी में भी समझौते की वृत्ति नहीं थी, सो बात नहीं; परन्तु वह दूसरे प्रकार की थी। वे इस बात का बहुत सूक्ष्म फर्क फौरन कर लेते थे कि कौन-सी चीज सिद्धान्त की होने के कारण विशेष महत्त्व की है और कौन-सी सिद्धान्त की न होने के कारण कम महत्त्व की है। इसीलिए सिद्धान्त के बारे में पहाड़ की तरह अटल रहते हुए भी वे लोगों के साथ उनके बनकर मिल जाने की और अपने आत्मबल से उन्हें ऊपर उठाने की शक्ति रखते थे। यह चीज उनके तैयार किये हुए नेताओं और कार्यकर्ताओं में अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार थोड़ी-बहुत मात्रा में आ गयी है। इसीलिए आज शस्त्र-बल में अन्य देशों से बहुत पिछड़े हुए होने पर भी दुनिया में हमें विशेष स्थान प्राप्त है। १९२०-'२१ में गांधीजी ने सारे देश में अहिंसा और आत्मशुद्धि का जो मंत्र फूँका था, यह उसीका प्रताप है।

इस लड़ाई की खास विशेषता यह है कि उस समय हिन्दू-मुसलमानों की एकता के जैसे दृश्य देखने में आये, वैसे बाद में नहीं आये। भविष्य में कब देखने में आयेंगे, यह आज कह सकना कठिन हो गया है। आज तो ऐसा दीखता है, जैसे गांधीजी के साथी कार्यकर्ताओं में से भी गांधीजी के सिद्धान्तों और उनके कार्यक्रम के प्रति श्रद्धा और उत्साह गायब हो गया है। फिर भी गांधीजी ने जो बीज बोये हैं, वे आगे-पीछे पनपे बिना नहीं रहेंगे।

उस समय की अद्‌भुत जाग्रति और चेतना का वर्णन इस डायरी में हमें देखने को मिलता है। अफसोस इतना ही रह जाता है कि इस काल में महादेवभाई पूरे समय गांधीजी के साथ नहीं रह सके थे। अप्रैल १९१९ में हुए पंजाब के अत्याचारों के बाद गांधीजी को ठेठ अक्तूबर मास में वहाँ जाने की इजाजत मिली। मगर उस वक्त महादेवभाई मोतीझिरे की बीमारी से ग्रस्त थे, इसलिए साथ नहीं जा सके। वे कोई चार महीने बिस्तर पर पड़े रहे। इसलिए अमृतसर की कांग्रेस में तिलक महाराज के साथ के उस भव्य दृश्य का महादेवभाई की लेखनी का वर्णन हमें नहीं मिल सका। इसके सिवा गांधीजी के कहने से वे कुछ समय दासबाबू के साथ और अधिकांश समय पंडित मोतीलालजी के साथ रहे थे, इसलिए उस समय की डायरी हमें नहीं मिलती।

महादेवभाई की डायरी का यह द्वितीय खण्ड हण्टर-कमेटी के सामने गांधीजी की दी हुई शहादत से शुरू होता है और असहयोग-आंदोलन के निमित्त उनकी अखिल भारत-यात्रा के सिलसिले में नागपुर-कांग्रेस के पहले तक का विवरण संकलित है। पहले खण्ड की तरह इस खण्ड में भी परिशिष्ट में गांधीजी की दो खुली चिट्ठियाँ दी गयी हैं, जिनमें बताया गया है कि किस प्रेरणा से प्रेरित होकर उन्हें ब्रिटिश-साम्राज्य की वफादारी त्यागनी पड़ी और असहकार के मैदान में कूदना पड़ा। अन्त में हम आरंभ के शब्दों को कि "इस डायरी के पन्ने-पन्ने पर नींद में सोये देश को जगाने के गांधीजी के उत्कट प्रयत्नों के हमें दर्शन होते हैं", पुनः दुहराते हुए पाठकों को उन्हें पढ़ने के लिए मुक्त कर इस प्रस्तावना से विराम ले रहे हैं।

—नरहरि परीख

डायरी : द्वितीय खण्ड

[९-१-'२० से १७-१२-'२० तक]

जागे तभी सबेरा

"Only that day dawns to which we are awake".

—Thoreau.

"जिस देश पर वैधव्य छा गया है, जिस देश का शौर्य नष्ट हो गया है, नूर जाता रहा, जिसकी आब चूस ली गयी है, जो देश हताश हो चुका है, वहाँ अनेक लोगों को फकीरी लेनी ही पड़ेगी।"

९-१-'२०

[पंजाब और गुजरात में हुए दंगों के बारे में जांच करने के लिए नियुक्त हंटर-कमेटी के सामने अहमदाबाद (हठीसिंह की वाड़ी) में गांधीजी की दी हुई शहादत :]

लिखित इकरार

सत्याग्रह की व्याख्या

¶ पिछले तीस वर्षों से मैं सत्याग्रह का उपदेश और पालन करता आ रहा हूँ। सत्याग्रह के सिद्धांतों के जिस स्वरूप को मैं आज जानता हूँ, उसका धीरे-धीरे विकास हुआ है।

उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव के बीच जितना अन्तर है, उतना ही सत्याग्रह और 'पैसिव रेजिस्टेंस' के बीच है। 'पैसिव रेजिस्टेंस' कमजोर लोगों का हथियार है। अपना उद्देश्य पूरा करने के लिए शारीरिक बल काम में लेने या दंगे करने की उसमें रुकावट नहीं। परन्तु सत्याग्रह तो अत्यंत सबल व्यक्तियों का शस्त्र है और उसमें किसी भी प्रकार का दंगा मचाने की कल्पना तक नहीं हो सकती।

दक्षिण अफ्रीका में पूरे आठ वर्ष तक हिन्दुस्तानियों ने जिस बल का प्रयोग किया था, उस बल का नाम मैंने उस समय 'सत्याग्रह' रखा था। उसी अरसे में ब्रिटिश टापुओं तथा दक्षिण अफ्रीका में 'पैसिव रेजिस्टेंस' का आन्दोलन चल रहा था, इसलिए उससे भेद दिखाने के लिए मैंने यह शब्द निकाला था।

इस शब्द का मूल अर्थ 'सत्य का आग्रह' है। अर्थात् सत्य बल है। मैंने उसे 'प्रेमबल' अथवा 'आत्मबल' भी कहा है। ठेठ शुरू में ही सत्याग्रह पर अमल करके मैंने देख लिया था कि सत्य के पालन में सामनेवाले इन्सान पर हमला करने का इरादा हो ही नहीं सकता, परन्तु उसमें धीरज

और सहानुभूति से उस आदमी को भूल करने से रोकना ही उद्देश्य हो सकता है। कारण, एक को जो सत्य लगता हो, वह दूसरे को भूलभरा लग सकता है। धीरज का अर्थ है स्वयं दुःख सहना। इसलिए इस सिद्धांत का अर्थ यह होता है कि विरोधी को नहीं, बल्कि अपने को दुःख देकर सत्य का पालन किया जाय।

किन्तु राजनीति में लोगों की लड़ाई ज्यादातर अन्यायपूर्ण कानूनरूपी भूलों का विरोध करने की ही होती है। जब अर्जियों से या इसी तरह के अन्य उपायों से आप कानून को अमल में लानेवाले की भूल का भान उसे कराने में असफल हो जायँ, तब यदि आप उस भूल के आगे झुकना न चाहते हों, तो आपके लिए इतना ही उपाय रह जाता है कि या तो आप उस कानून को अमल में लानेवाले पर शरीर-बल आजमाकर उसे झुकने पर मजबूर करें अथवा उस कानून का भंग करके और उसके लिए सजा भुगतकर स्वयं दुःख सहन करें। इसलिए लोग यह समझते हैं कि सत्याग्रह का अर्थ कानूनों का सविनय भंग है। किन्तु इसमें नीतिमय कानूनों का नहीं, नीति से निरपेक्ष कानूनों का ही भंग किया जाता है।

आम तौर पर कानूनों का भंग करनेवाला आदमी छिपकर कानून तोड़ता है और उसकी सजा से भागने की कोशिश करता है। किन्तु सत्याग्रही ऐसा नहीं करता, वह कानून भंग से जो सजा मिलेगी, उसके डर से नहीं; बल्कि समाज के कल्याण के लिए कानून को जरूरी समझता है। इसलिए सत्याग्रही सदैव कानून का आदर करता है। परन्तु ऐसे कुछ अवसर आते हैं—यद्यपि आम तौर पर वे थोड़े ही होते हैं—जब कुछ कानून उसके अन्तःकरण को इतने अन्यायपूर्ण लगते हैं कि उनके अधीन होना दूषण होगा। ऐसे समय वह खुले तौर पर और विनयपूर्वक उनका भंग करता है और उसकी सजा शान्तिपूर्वक सहन करता है। साथ ही वह कानून बनानेवाले के वर्ताव के विरुद्ध अपनी आपत्ति दर्ज कराने के लिए जिन कानूनों के भंग में अनीति न होती हो, उन्हें भी तोड़-कर उस हद तक राज्य को मदद देना भी बन्द कर देता है।

मेरे मतानुसार सत्याग्रह इतना सुन्दर और अर्थसाधक है और उसका सिद्धान्त इतना सरल है कि उसका उपदेश बालकों को भी दिया जा सकता है। मैंने दक्षिण अफ्रीका में गिरमिटिया मजदूरों के नाम से प्रसिद्ध हजारों स्त्री-पुरुषों और बच्चों को सत्याग्रह का उपदेश दिया था और उसके बहुत अच्छे परिणाम हुए थे।

रौलट कानून

जब रौलट कानून प्रकाशित किये गये, तब मुझे ऐसा महसूस हुआ कि वे व्यक्ति-स्वातंत्र्य के लिए इतने बंधनकारक हैं कि उनका विरोध करने के लिए भरसक शक्ति काम में लेनी ही चाहिए। मैंने यह भी देखा कि उन कानूनों के प्रति भारतवासियों में आम विरोध था। कितने ही स्वेच्छाचारी राज्य को भी समस्त प्रजाजनों के लिए अरुचिकर कानून बनाने का हक नहीं, तो फिर भारत सरकार जैसी वैधानिक रीति-रिवाजों का पालन करनेवाली सरकार तो ऐसा कर ही नहीं सकती। मुझे यह भी महसूस हुआ कि इस कानून के विरुद्ध आन्दोलन को ठप न होने देने या दंगा-फसाद का रूप ग्रहण न करने देने के लिए उसे निश्चित दिशा में मोड़ने की जरूरत है।

छह अप्रैल

इसलिए मैंने कानून-भंग के सिद्धान्त पर जोर देकर देश को सत्याग्रह करने का उपदेश देने का साहस किया। यह आन्दोलन केवल आन्तरिक और पवित्र है। इसलिए ६ अप्रैल को एक दिन के लिए उपवास और प्रार्थना करने और सारा काम-काज बन्द रखने की मैंने सूचना दी। इसका हिन्दुस्तान में एक सिरे से दूसरे सिरे तक छोटे-छोटे गाँवों तक में अच्छा जवाब मिला, यद्यपि इसके लिए कुछ भी व्यवस्था या बड़ी पूर्व-तैयारी नहीं की गयी थी। मुझे जैसा विचार सूझा, वैसा ही मैंने लोगों के सामने रख दिया था। ६ अप्रैल के दिन लोगों ने कोई भी उत्पात नहीं

किया। इसी तरह पुलिस के साथ भी कोई टक्कर नहीं हुई। हड़ताल केवल स्वेच्छापूर्वक और अपने-आप हुई थी। जिस पत्र द्वारा यह विचार घोषित किया गया था, वह मैं इसके साथ पेश करता हूँ।*

मेरी गिरफ्तारी

६ अप्रैल का दिन मनाने के बाद तुरन्त ही कानून तोड़ना शुरू करना था। इस उद्देश्य से सत्याग्रह सभा की कमेटी ने कुछ राजनैतिक कानून चुने थे। इसलिए स्वराज्य-सम्बन्धी मेरी पुस्तिका, 'सर्वोदय' नामक रस्किन की एक पुस्तक का अनुवाद और सुकरात की सफाई और उसके मृत्युसम्बन्धी लेखादि जिस सर्वथा निर्दोष साहित्य को सरकार ने वर्जित करार दे दिया था, उसे बेचना हमने शुरू कर दिया।

छह अप्रैल को हिन्दुस्तान जितना जाग्रत हुआ, उतना पहले कभी नहीं देखा गया था—इस बारे में तो कुछ भी शक नहीं। जो लोग भयभीत रहा करते थे, उन्हें सरकार का डर नहीं रहा। साथ ही अब तक जनता का बहुत बड़ा समुदाय तो नींद में ही था। नेताओं ने उन पर कुछ भी ठोस असर नहीं डाला था, उन्हें कोई तालीम नहीं मिली थी। उन्हें एक नयी शक्ति का भान हुआ, परन्तु वह क्या है और उसका किस ढंग से उपयोग किया जाय, इसकी उन्हें समझ नहीं थी।

दिल्ली में जो बड़ा जन-समुदाय पहले अचेत रहा था, उसे काबू में रखने का काम नेताओं को कठिन प्रतीत हुआ। डॉक्टर सत्यपाल चाहते थे कि मैं अमृतसर जाऊँ और लोगों को सत्याग्रह का शान्त स्वरूप समझाऊँ। दिल्ली से स्वामी श्रद्धानन्दजी ने और अमृतसर से डॉ० सत्यपाल ने मुझे लिखा कि लोगों को शान्त करने और सत्याग्रह का स्वरूप समझाने के लिए इन दोनों स्थानों पर जाना चाहिए। मैं पहले कभी अमृतसर और

---

*वह पत्र मिल नहीं सका।

पंजाब भी गया न था। इन दोनों सज्जनों के संदेश अधिकारियों ने देख लिये थे और वे जानते थे कि मैं दोनों जगह शान्ति के प्रचारार्थ जा रहा हूँ।

मैं ८ अप्रैल को दिल्ली और पंजाब के लिए बम्बई से चला। डॉ० सत्यपाल को, जिनसे मैं पहले कभी मिला नहीं था, दिल्ली में मुझसे मिलने के लिए तार दिया। किन्तु मथुरा छोड़ने के बाद दिल्ली प्रान्त में घुसने से रोकने के लिए मुझ पर एक हुक्म तामील किया गया। मुझे महसूस हुआ कि इस हुक्म को तोड़ना मेरा फर्ज है और इसलिए मैं सफर में आगे बढ़ा। बाद में पलवल में मुझे पंजाब जाने से रोकने और बम्बई प्रान्त में ही रोक रखने का हुक्म मिला। पुलिस के एक दल ने मुझे पकड़ लिया और गाड़ी से उतार लिया। जिस पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट ने मुझे गिरफ्तार किया, वह मेरे साथ बड़ी सभ्यता से पेश आया। मुझे पहली ही गाड़ी से मथुरा ले जाया गया। वहाँ से वे सुबह मुझे एक मालगाड़ी से सवाई माधोपुर ले गये। वहाँ मैं पेशावर से आनेवाली बम्बई की डाक में बैठा और सुपरिण्टेण्डेण्ट बावरिंग ने मुझे अपने कब्जे में ले लिया। मुझे ११ तारीख को बम्बई में छोड़ दिया गया।

गुजरात में दंगे

इस बीच अहमदाबाद, वीरमगाँव और आम तौर पर गुजरात के लोगों को मेरी गिरफ्तारी के समाचार मिले। वे पागल हो उठे। उन्होंने दूकानें बन्द कर दीं, बड़ी-बड़ी भीड़ जमा हो गयी, उन्होंने हत्याएँ और लूटमार की, आग लगा दी; तार काट डाले और गाड़ी की पटरियाँ उखाड़ डालने का यत्न किया।

मैंने थोड़े ही समय पहले खेड़ा के किसानों के बीच रहकर काम किया था और हजारों स्त्री-पुरुषों के साथ घुल-मिल चुका था। मैंने अनसूया बहन के कहने से और उनके साथ रहकर अहमदाबाद के मिल-मजदूरों का काम किया था। मिल-मजदूर उनकी कद्र करते और उन्हें पूजते थे। वे भी पकड़ी गयी हैं, यह झूठी अफवाह उड़ने से अहमदाबाद के मजदूरों का

गुस्सा खूब बढ़ गया। वीरमगाँव के मजदूर जब मुसीबत में थे, तब हम दोनों उनसे मिले थे और उनकी तरफ से बीच में पड़े थे। मुझे तो विश्वास है कि मेरी गिरफ्तारी की खबर और अनसूया बहन के पकड़े जाने की गप सुनकर लोग क्षुब्ध हो उठे और इसीलिए उन्होंने अत्याचार किये।

मैं लगभग सारे भारत में जन-समुदाय के साथ मिला-जुला हूँ और उनसे मैंने दिल खोलकर बातें की हैं। इससे मैं यह नहीं मानता कि इन अत्याचारों की तह में कुछ भी अराजक आन्दोलन हो। इसे 'हुल्लड़' का भारी-भरकम नाम भी शायद ही दिया जा सके।

सरकारी कदम

मेरी राय में सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने का अपराधियों पर आरोप लगाकर सरकार ने भूल की है। इस जल्दबाजी के कदम से बहुतों को अनुचित और फालतू दुःख उठाना पड़ा है। अहमदाबाद के मजदूरों पर किया गया जुर्माना भारी था और उसे वसूल करने का ढंग जरूरत से ज्यादा कड़ा और उत्तेजक था। मजदूरों पर १७६०००) रु० जैसा बड़ा जुर्माना करने के न्याय के बारे में मुझे शंका है। नड़ियाद और बारेजड़ी पर अतिरिक्त पुलिस लगाने और उसका खर्च बारेजड़ी के खातेदारों से और नड़ियाद के बनियों और पाटीदारों से वसूल करने के निश्चय की कार्रवाई भी बिलकुल अकारण और द्वेषपूर्ण ही मानी जायगी। मेरा खयाल है कि अहमदाबाद में फौजी शासन बिना कारण घोषित किया गया था और उसके विचार-हीन अमल से कितने ही निर्दोष लोगों के प्राण गये।

वैसे, बम्बई प्रान्त में जिस समय परस्पर संदेह का वातावरण छाया हुआ था और शान्ति कायम रखने के लिए लायी जानेवाली सेना की गाड़ी को उलट देने के प्रयत्न किये जाने से अधिकारी स्वाभाविक तौर पर क्रुद्ध हुए होंगे, उस समय उपर्युक्त मुद्दों को छोड़कर वे बहुत ही संयम से रहे, इस बारे में मुझे जरा भी शक नहीं।

लॉर्ड हंटर के सवाल

लॉर्ड हंटर—मि० गांधी, सत्याग्रह के आन्दोलन के पिता आप ही हैं ?

गांधीजी—जी हाँ ।

प्र०—जरा इस आन्दोलन का स्वरूप संक्षेप में समझाइयेगा ?

उ०—यह आन्दोलन शरीर-बल के बजाय आत्मबल से और शुद्ध सत्य के जोर पर लड़ने की हिमायत करनेवाला है । मेरी दृष्टि से यह पारिवारिक क्षेत्र में लागू किया जानेवाला न्याय राजनैतिक क्षेत्र में भी लागू करने का प्रयत्न है और अनुभव से मेरी यह राय बनी है कि अपने दुःखों को दूर कराने में जनता इसी एक रास्ते से रक्तपात के भय से बच सकती है ।

प्र०—आपने रौलट कानून का विरोध करने के लिए यह आन्दोलन छेड़ा, आपने लोगों से सत्याग्रह-प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर करने को भी कहा था न ?

उ०—जी हाँ ।

प्र०—आपका इरादा इस आन्दोलन में अधिक-से-अधिक आदमियों को शरीक करने का भी था ?

उ०—जी हाँ; सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त में किसी तरह बाधा न पड़े, इस ढंग से और इस शर्त पर लाखों आदमी मुझे मिलें, तो भी उनमें से एक-एक को मैं बिना आनाकानी के सत्याग्रह के आन्दोलन में भरती करूँगा ।

प्र०—क्या यह नहीं कहा जा सकता कि आपका आन्दोलन सरकार के विरुद्ध है ?

उ०—हरगिज नहीं । ऐसी किसी भावना से इस आन्दोलन की उत्पत्ति हुई ही नहीं ।

प्र०—मि० गांधी, आप जरा सत्याग्रह-प्रतिज्ञा की तरफ सरकार की दृष्टि से देखियेगा ? मान लीजिये, आप ही गवर्नर हों, तो अपनी सरकार के विरुद्ध छेड़े गये ऐसे आन्दोलन के बारे में आप क्या कहेंगे ?

उ०—अगर देश का कारबार मेरे हाथ में हो और शुद्ध सत्य की तलाश में ही कुछ लोग निश्चित कानूनों को मानने से इनकार करें, तो मैं उनके कृत्य को जायज ही समझूँगा और उन्हें मैं अपना बना लूँगा। सच्चा सत्याग्रही जो हक स्वयं चाहता है, वही अपने विरोधियों को भी देता है।

प्र०—इस किस्म का आन्दोलन लंबे समय तक जारी रहे, तो क्या दरअसल राज्य कायम रह सकता है?

उ०—जरूर। दक्षिण अफ्रीका की लड़ाई आठ-आठ बरस तक चलती रही, तो भी वहाँ का शासन ठप नहीं पड़ा और लड़ाई के बाद जनरल स्मट्स ने राय दी थी कि सभी लोग दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों की तरह लड़ाई करें, तो उनके लिए आपत्ति की बात ही नहीं उठ सकती।

प्र०—आपकी सत्याग्रह-प्रतिज्ञा में तो एक कमेटी जो कानून तय कर दे, उन्हींको तोड़ने की बात है न?

उ०—जी हाँ; और यह बात मैं आपकी कमेटी के सामने स्पष्ट करना चाहता हूँ कि प्रतिज्ञा का यही भाग व्यक्ति की स्वच्छन्दता पर अंकुश लगानेवाला है। चूँकि सत्याग्रह के आन्दोलन को सार्वजनिक बनाने का इरादा था, इसलिए ऐसा अंकुश लगाना मुझे उचित प्रतीत हुआ।

प्र०—मि० गांधी, क्या 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना' वाली कहावत सत्याग्रहियों पर भी लागू नहीं होती?

उ०—जी हाँ, होती है; और यह कटु अनुभव मुझे हो चुका है।

प्र०—ऐसी प्रतिज्ञा से क्या आप मनुष्य के अन्तःकरण को बाँध नहीं लेते?

उ०—मैं जिस ढंग से उसका अर्थ करता हूँ, उस दृष्टि से तो हरगिज नहीं। मेरा अर्थ गलत साबित हो, तो दुबारा यह आन्दोलन शुरू करने का अवसर आने पर मुझे अपनी भूल सुधार लेनी होगी।

लॉर्ड हंटर—नहीं, नहीं, मि० गांधी, मैं आपको कोई शिक्षा देने का दावा नहीं करता।

गांधीजी—मैं समझा; फिर भी इस खयाल से मैं इस कमेटी को भी बचा लेना चाहता हूँ।

प्र०—परन्तु क्या कानून के सविनय-भंग का सिद्धांत आपको खतरनाक नहीं लगता?

उ०—मेरा खयाल इससे उलटा है। इसकी जड़ में देश को केवल रक्तपात के विचार करने से छुड़ा लेने का शुद्ध हेतु ही छिपा हुआ है।

[इसके बाद लॉर्ड हंटर ने संक्षेप में रौलट-कानून पास होने से पहले के हालात और भारतीय जनता की तरफ से चारों दिशाओं से उसके प्रति हुए विरोध वगैरह का वर्णन कर बताया और गांधीजी से उस कानून के विरुद्ध उनकी आपत्ति का रहस्य समझाने को कहा।]

गांधीजी—रौलट-कमेटी की रिपोर्ट पढ़ने पर मुझे ऐसा लगा कि रौलट-कमेटी ने अपनी रिपोर्ट के अन्त में जैसी सिफारिशें कीं, उनके करने के लिए काफी सबूत या हकीकतें कमेटी के पास नहीं थीं। उन सिफारिशों के आधार पर तैयार किये गये बिलों का देश में सार्वत्रिक विरोध हुआ। धारासभा के प्रत्येक भारतीय सदस्य ने उनका विरोध किया; परंतु सरकार ने उस विरोध को तुच्छ समझा। इस स्थिति में मैंने देखा कि व्यक्ति की हैसियत से और एक बड़े साम्राज्य के सदस्य के नाते अन्त तक उसका विरोध करने के सिवा मेरे लिए कोई और रास्ता ही नहीं है।

प्र०—यह तो आप स्वीकार करेंगे न कि यह कानून रक्तपात के अपराधों का सामना करने के हेतु बनाया गया है?

उ०—जी हाँ। उसके उद्देश्य तो प्रशंसनीय ही माने जायँगे।

प्र०—तब उन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए तैयार की गयी योजना के आप विरोधी हैं; यानी जो अधिकार अधिकारियों को उसमें प्रदान किये गये हैं, उनके विरुद्ध आपको आपत्ति है, यही न?

उ०—जी हाँ।

प्र०—भारत-रक्षा क़ानून बनाया गया, तब उस क़ानून की रू से दिये गये अधिकार उतने ही विशाल नहीं थे?

उ०—थे ही। परन्तु वह क़ानून तो आपत्ति-काल के लिए बनाया गया था और उतने समय के लिए ही था। साथ ही उसे भी जनता ने दुःखी मन से स्वीकार किया। रौलट-क़ानून उससे बिलकुल अलग ढंग का है और उपर्युक्त क़ानून के अमल का अनुभव कर लेने के बाद रौलट-क़ानून के विरुद्ध मेरा उज्र ज्यादा मजबूत हो गया है।

प्र०—मि० गांधी, आपको अवश्य पता होगा कि रौलट-क़ानून में ऐसी व्यवस्था है कि स्थानीय सरकार का मत और सलाह लिये बिना भारत सरकार कोई कदम नहीं उठा सकती।

उ०—यह सच है; फिर भी राज्य की बागडोर जिस सरकार के हाथों में है, उसे पागल बन जाते मैंने आँखों देखा है। ऐसे लोगों के हाथों में मैं तो असाधारण अधिकार हरगिज नहीं सौंपूँगा।

प्र०—परन्तु रौलट-क़ानून और किसी तरह रद नहीं कराया जा सकता था?

उ०—जी, मैंने तो पैरों पड़-पड़कर लॉर्ड चेम्सफर्ड से विनती की। उनसे और जिन-जिनसे मैं मिल सकता था, उन सभी अधिकारियों से मैंने जी-तोड़ बहस की। परन्तु यह सब व्यर्थ हुआ। हमारे हाथ में जो भी उपाय थे, उनमें से एक भी आजमाने में हमने कसर बाकी नहीं रखी।

प्र०—मि० गांधी, विरोधियों को इतना जल्दी आप कैसे समझा सकते हैं?

उ०—सत्याग्रह में जल्दबाजी के लिए गुंजाइश ही नहीं होती। मेरी नजर में तो जो उपाय मैंने किया, वही एकमात्र उत्तम और उचित था। मेरे पिता भी ऐसा हुक्म दें, जो मेरी आत्मा को दुखानेवाला हो, तो मेरे

लिए सर्वोत्तम मार्ग यही है कि मैं विनयपूर्वक उनकी आज्ञा का उल्लंघन करूँ। और यदि मैं मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर रहा हूँ, तो मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि मैं अपने परिवार में इसी न्याय का अनुसरण करता रहा हूँ। यदि अपने पिता से यह कहना कि 'आपका यह हुक्म मेरे अन्तःकरण को अपवित्र और दूषित प्रतीत होता है, इसलिए उसका उल्लंघन करने के सिवा मेरे लिए कोई चारा नहीं है', अनुचित नहीं है, तो इसी न्याय से अपने मित्र से या किसी सरकार से भी ऐसा ही कहना अनुचित नहीं।

[बाद में लॉर्ड हंटर ने सार्वत्रिक हड़ताल-सम्बन्धी सवाल पूछने शुरू किये।]

प्र०—हड़ताल का अर्थ यही है न कि देश के सब लोग एक साथ अपना-अपना काम बन्द कर दें ?

उ०—जी हाँ।

प्र०—ऐसा करने से जबरदस्त कठिन परिस्थिति पैदा नहीं हो सकती ?

उ०—बहुत लम्बे समय तक हड़ताल जारी रहे, तो जरूर हो सकती है।

[बाद में गांधीजी ने समझाया कि किस तरह लोगों ने गलत हिसाब लगाने से नहीं, बल्कि रौलट-कानून को वाइसराय महोदय की स्वीकृति मिलने की खबर देश के अलग-अलग भागों में जल्दी और देर से मिलने के कारण देश के कुछ भागों में ३० मार्च को और सारे देश में सभी जगह ६ अप्रैल को हड़ताल की।]

प्र०—आपको यह तो मंजूर है न कि हड़ताल में शरीक होने की बात सबकी पूरी तरह अपनी मर्जी पर ही रहनी चाहिए ?

उ०—जी हाँ, पूरी तरह। परन्तु वह इस अर्थ में कि हड़ताल के दिन किसीसे हड़ताल में शामिल होने का आग्रह न किया जाय। वैसे

और दिनों पत्रिकाओं, परचों और आन्दोलन के दूसरे साधनों द्वारा सम्मिलित होने की सिफारिश करना मैं पूरी तरह जायज मानता हूँ।

प्र०—हड़ताल के दिन लोग ताँगेवालों को तंग करें, इसके विरुद्ध तो आप हैं न?

उ०—पूरी तरह।

प्र०—ऐसा अनुचित व्यवहार करनेवाले लोगों के मामले में पुलिस दखल दे, तो इसमें भी आपको आपत्ति नहीं न?

उ०—यदि पुलिस उचित मर्यादा में रहकर सहनशीलतापूर्वक काम करे, तो मैं आपत्ति नहीं करूँगा।

प्र०—किन्तु यह तो आप मानते हैं न कि हड़ताल के दिन ताँगेवालों को रोकना और दूसरे लोगों के साथ खींचातानी करना बहुत ही अनुचित है?

उ०—अवश्य, क्योंकि सत्याग्रही की दृष्टि से तो किसी भी हालत बलप्रयोग करना साफ तौर पर अपराध ही होगा।

प्र०—दिल्ली के आपके मुख्य दूत स्वामी श्रद्धानंद—

उ०—मैंने श्रद्धानंदजी को अपना दूत माना ही नहीं। वे तो मेरे सम्माननीय सहायक थे।

लॉर्ड हंटर—तो आपके इन सम्माननीय सहायक ने क्या आपको इस मामले में पत्र लिखकर दिल्ली तथा पंजाब के अनुभवों के बाद बगैर शारीरिक बल और खून-खराबी के सार्वत्रिक हड़ताल कराने की सफलता की असंभावना के बारे में पत्र लिखा था?

उ०—उस पत्र की सब बातें मुझे इस समय याद नहीं हैं। मुझे खयाल है कि वे तो इससे भी आगे बढ़ गये थे। उन्होंने कहा था कि कानून का सविनय भंग करने का आन्दोलन लोगों में निर्भय होकर चलाना अशक्य होगा। मैंने कानून का सविनय भंग करने की बात स्थगित कर दी, तब श्रद्धानंदजी के और मेरे बीच इस बारे में मतभेद

हो गया था। मेरे ध्यान में यह बात आ जाने से कि मैंने लोगों पर पूरा काबू नहीं पा लिया है, मैंने कानून का भंग स्थगित कर दिया। उनकी दलील यह थी कि यदि खून-खराबी के डर से सत्याग्रह बन्द करने की नौबत आ सकती हो, तो सार्वजनिक सत्याग्रह हो ही नहीं सकता, क्योंकि ऐसी विस्तृत लड़ाइयों में खून-खराबी तो होगी ही। मैं उनसे सहमत नहीं हो सका। कानून का भंग करना जितने अंश में सत्याग्रह है, उतने ही अंश में कानून-भंग को स्थगित करना भी सत्याग्रह है। यह प्रसंग इस अवसर पर मेरे सामने खड़ा हुआ और मैंने कानून के सविनय भंगरूपी सत्याग्रह स्थगित कर दिया। पुनः इस मामले का विचार करते समय हड़ताल और सत्याग्रह के बीच का फर्क भी समझ लेना जरूरी है। हड़ताल में सत्याग्रह होता भी है और नहीं भी। हड़ताल की योजना जनता और सरकार दोनों के मन पर वस्तुस्थिति की गंभीरता का ठोस असर डालने की गरज से ही की गयी थी। कानून का सविनय भंग करके रौलट-कानून का विरोध करनेवालों को आवश्यक तालीम दिलाने के लिए भी यह हड़ताल थी। ऐसी किसी परीक्षा के बिना देश का हृदय परखने का मेरे पास दूसरा साधन नहीं था। मेरे द्वारा किस हद तक कानून का सविनय भंग हो सकता है, यह समझने के लिए हड़ताल एक समुचित साधन था।

प्र०—किन्तु सत्याग्रह के उपदेश के साथ-साथ लोगों से हड़ताल करने को भी कहा जाय, तो क्या इससे मारकाट का जोश नहीं बढ़ेगा?

उ०—मेरा अनुभव तो इससे बिलकुल भिन्न है। मैंने तो हजारों, बल्कि लाखों स्त्री-पुरुषों और छोटे-छोटे बालकों को भी असाधारण मौन से जुलूसों में चलते देखा और मैं दंग रह गया। मुझे विश्वास है कि शुद्ध स्वरूप में सत्याग्रह का उपदेश न दिया जाता, तो यह परिणाम कभी देखने को न मिलता। परन्तु जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ, हड़ताल एक बात है और कानून-भंग की क्रिया दूसरी। हड़ताल के समय ही कानून भंग करना मेरे हिसाब में नहीं था।

[इसके बाद लार्ड हंटर ने गांधीजी से उनकी पलवल स्टेशन पर गिर-

फ्तारी के बारे में यह पूछना शुरू किया कि उन्हें सचमुच ही गिरफ्तार किया गया था या नहीं ?]

लॉर्ड हंटर—पलवल पर आपको सचमुच गिरफ्तार किया गया था ?

गांधीजी—जी हाँ। मेरी गिरफ्तारी नाममात्र की ही नहीं थी, उसमें गिरफ्तारी के सारे रूप थे। साथ ही मुझे बम्बई लौट जाने को नहीं कहा गया था, परन्तु पुलिस हिरासत में रखकर मुझे वापस बम्बई पहुँचा गयी थी। दिल्ली में प्रवेश न करने के आदेश को न मानने का मेरा निश्चय था। यह बात मैंने पुलिस-अफसर को बतायी। इसके बाद जब गाड़ी पलवल स्टेशन पर पहुँची, तब पुलिस अधिकारी फिर से मेरे डिब्बे में आया और मेरे कंधे पर हाथ रखकर मुझसे बोला : "मि० गांधी, मैं आपको गिरफ्तार करता हूँ।" यह कहकर मुझे अपने सामान सहित गाड़ी से उतार लिया।

एक बार प्लैटफार्म के किनारे पर जब मैं थूकने जा रहा था, तब पहरेदारों ने मुझे रोका भी था। मेरे कहने का यह मतलब नहीं कि ऐसा करने में उनकी भूल थी। परन्तु मैं इतना ही बताना चाहता हूँ कि यह गिरफ्तारी ही थी। पुलिस तो केवल अपना फर्ज अदा कर रही थी।

प्र०—सरकार की तो इतनी ही माँग थी न कि आप दिल्ली या पंजाब न जायँ ?

उ०—यह सवाल तो अब रहा ही नहीं था। प्रवेश न करने का आदेश मुझे पलवल पहुँचने से पहले ही मिल गया था और उसे मैं मान न सका, इसीलिए मैं आगे बढ़ा। इस अपराध के लिए मुझे पकड़ने की क्रिया ही शेष रही, वह पलवल में पूरी हुई और इसीलिए मुझे पहरे में बम्बई ले जाया गया।

प्र०—मतलब यह कि एक सरकारी हुक्म की रू से आपको बताया गया कि आपको दिल्ली या पंजाब में नहीं जाने दिया जायगा और बम्बई प्रान्त में रहें, तो पूरी आजादी के साथ रहने दिया जायगा।

उ०—जी हाँ।

प्र०—यह आपको पकड़कर जेल में डाल देने से तो अलग ही बात हुई या नहीं ?

उ० —मुझे जेल में डाल देने का आरोप तो सरकार पर किसीने लगाया ही नहीं। शिकायत इतनी ही थी कि मैं शान्ति करने जा रहा था और इतने में सरकार ने मुझे रोका और पकड़ लिया।

प्र०—अगर सरकार को ईमानदारी से ऐसा लगा हो कि आपके सिद्धान्तों के उपदेश से जिस-जिस जगह लोग उत्तेजित हो गये हैं, वहाँ आपको अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए नहीं जाने देना चाहिए, तो क्या इस पर भी आप आपत्ति करेंगे ?

उ०—इस दृष्टि से तो मेरे कहने की कोई बात ही नहीं रहती।

प्र०—आपके पकड़े जाने के बाद दिल्ली, पंजाब और अहमदाबाद में गंभीर घटनाएँ हुई ही हैं ?

उ०—जी हाँ।

प्र०—अब हमें अहमदाबाद सम्बन्धी मामलों का विचार करना है। कहते हैं कि आप अहमदाबाद के मिल-मजदूरों में खूब लोकप्रिय हैं ?

उ०— जी।

प्र०—और आपकी गिरफ्तारी से उनमें भारी रोष फैलने के कारण अहमदाबाद तथा वीरमगाँव में ता० १०, ११ और १२ अप्रैल को लोगों की भीड़ के हाथों दुःखद कार्य भी हुए ?

उ०—जी हाँ।

प्र०—क्या यह ठीक है कि इन घटनाओं के बारे में आपको कोई व्यक्तिगत जानकारी नहीं है ?

उ०—जी नहीं।

प्र०—इन घटनाओं के बारे में आप कुछ ऐसी बात कह सकते हैं, जिससे हम कोई राय बना सकें ?

उ०—मैं इतना कहने की इजाजत चाहूँगा कि क्या अहमदाबाद में और क्या वीरमगाँव में लोगों की भीड़ द्वारा किये गये कृत्यों को तो मैंने

सर्वथा अक्षम्य ही माना है। मुझे खेद है कि लोग इस हद तक अपना होश खो बैठे। फिर भी इसीके साथ-साथ मैं यह भी बता देना चाहता हूँ कि उचित या अनुचित रूप में भी जिन लोगों में मैं प्रिय था, उनके धैर्य की सरकार ने मुझे पकड़कर कड़ी परीक्षा ली। सरकार को समझदारी दिखानी चाहिए थी। मैं यह नहीं कहना चाहता कि सरकार ने ही भूल की और लोगों ने नहीं की। मैं तो कह चुका हूँ कि लोगों की भूल तो माफ हो ही नहीं सकती।

[इसके बाद गांधीजी ने वर्णन करके बताया कि अहमदाबाद लौटने के बाद उन्होंने जो भूलें हुई थीं, उन्हें सुधारने के लिए क्या क्या किया।]

शान्ति फैलाने के लिए मुझसे जो भी सेवा हो सकती थी, उसे करने की मैंने सरकार और जनता दोनों को सूचना दी। मि० प्रैट और दूसरे अफसरों के साथ मेरी लंबी चर्चा हुई। १३ तारीख को मैंने लोगों की सभा बुलाने का निश्चय किया था, परन्तु वैसा करना बहुत मुश्किल मालूम हुआ, इसलिए १४ तारीख को सभा हुई।

[इसी सभा में लोगों के व्यवहार की निन्दा करके जिन लोगों का दंगों में हाथ था, उन्हें यह समझाते हुए कि उन्होंने अपने को 'पढ़े-लिखे' कैसे कहा और उनके काम को 'सुनियोजित' कैसे माना, गांधीजी ने बताया :]

इन दोनों शब्दों का मेरे विरुद्ध और लोगों के विरुद्ध भी समय-समय पर उपयोग किया गया है! परन्तु जो गुजराती भाषा समझते हैं, वे अच्छी तरह जानते हैं—और सर चिमनलाल भी साक्षी देंगे—कि 'भणेला' 'पढ़े-लिखे' शब्द का अर्थ लिखना-पढ़ना जाननेवाला ही है; उच्च शिक्षा पाये हुए के लिए 'शिक्षित' विशेषण का प्रयोग किया जाता है। इसलिए मेरे द्वारा प्रयुक्त शब्द में डिग्रीधारियों का समावेश नहीं हो सकता। इसी प्रकार 'योजित कार्य' (सुनियोजित कार्य) का अर्थ भी जिस प्रकार किया गया है, वह अनुचित है। मेरे कहने का यह आशय नहीं था कि योजना अर्थात् हिन्दुस्तान में रची गयी किसी भी साजिश या घटना की अहमदाबाद की यह योजना अंग थी। मेरा सारा भाषण पढ़नेवाला यह बात साफ-साफ

समझ सकता है। उस समय मुझे पंजाब की तो क्या, वीरमगाँव की घटनाओं की भी खबर नहीं थी। मैंने अपने विचार केवल अहमदाबाद में हुई घटनाओं के बारे में ही प्रकट किये थे।

मि० गाइडर की जाँच के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं था। मैं जानता हूँ कि मेरे खिलाफ वे शिकायत इसलिए करते हैं कि मैंने उन्हें किसी भी अपराधी का नाम नहीं बताया। परन्तु वे मेरी कार्य-पद्धति नहीं जानते, इसलिए उन्हें गलतफहमी हुई है। मेरा काम अपराधियों से पश्चात्ताप कराना, उन्हें दुबारा अपराध करने से रोकना और अपराध स्वीकार कराना है। जो आदमी यह काम करे, उससे पुलिस को खबर देने का काम हो ही नहीं सकता; क्योंकि ये दोनों विरोधी धंधे हैं। मैं जानता हूँ कि मि० गाइडर इससे उलटा मानते हैं, फिर भी वे मुझे नहीं मना सके। अनसूयाबहन के बारे में भ्रमपूर्ण अफवाह फैली, इसलिए लोग ज्यादा उत्तेजित हुए। कुछ अधकचरे जवान सिनेमाओं, फालतू कथा-कहानियों और खून-खराबी के समर्थक नेताओं से गलत विचार ग्रहण करते हैं। ऐसे लोगों को मैं जानता हूँ। ऐसे बहुतों को सीधे रास्ते लगाने का मैंने प्रयत्न किया है और बहुतों का खून-खराबी पर से विश्वास उठ गया है।

ऐसे अर्धविदग्ध युवकों से प्रेरित होकर अज्ञानी मनुष्यों ने अहमदाबाद में न करने जैसे काम किये। ऐसे लोग अधिक नहीं थे, यह भी मैं जानता हूँ। 'खून-खराबी वगैरह योजनापूर्वक हुई है', इसका अर्थ इससे अधिक न मैंने बताया और न किया ही। मैंने यह नहीं कहा कि यह योजना विश्वविद्यालय के शिक्षित मनुष्यों की है। मुझे यह मालूम भी नहीं कि इस कार्य में उनका हाथ था।

प्र०—क्या आप यह कहते हैं कि यह सारी भीड़ एक ही इरादे से काम कर रही थी?

उ०—मैं यह नहीं कहता। यह कहना अतिशयोक्ति होगा। परन्तु मैं मानता हूँ कि दो-तीन व्यक्तियों ने लोगों को उकसाया और लोग बुराई में फँस गये।

प्र०—इन कार्यों को आप सरकार के विरुद्ध मानते हैं या यूरोपियनों के ?

उ०—सरकार के विरुद्ध थे, इसमें तो शक है ही नहीं; परन्तु अभी तक मैं यह निश्चय नहीं कर पाया कि वे यूरोपियनों के विरुद्ध थे या नहीं। मैंने कुछ शुभ चिह्न तो इस बात के देखे हैं कि यूरोपियनों के विरुद्ध नहीं थे, फिर भी अधिक विचार करने से मैं निश्चित निर्णय पर नहीं पहुँच सका।

प्र०—सत्याग्रह के सूत्र के अनुसार अपराधियों को सजा मिलनी चाहिए या नहीं ?

उ०—मैं यह कहने को तैयार नहीं कि अपराधियों को सजा देना बुरा है। परन्तु हमारे पास इससे बेहतर रास्ता है। सजा देने में यह भाव रहता है कि बाहर से दबाव डालकर हम मनुष्य को सुधार सकते हैं। यह बात मुझे ठीक नहीं लगती। परन्तु इस समय तो इतना ही कहना बस है कि अपराधी को सजा हो जाय, तो सत्याग्रही उसके खिलाफ शिकायत नहीं कर सकता। इसलिए यह कहा जा सकता है कि सजाओं के बारे में सत्याग्रही का सूत्र सरकारी अमल का विरोधी नहीं है।

प्र०—परन्तु आप कहते जान पड़ते हैं कि सत्याग्रह के नियमानुसार सत्याग्रही ऐसी जानकारी नहीं दे सकता, जिससे अपराध ढूँढ़ निकाला जा सके।

उ०—जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ, सत्याग्रही दो घोड़ों पर सवार नहीं हो सकता। सुधार और पुलिस का पहरा—ये दो परस्परविरोधी वस्तुएँ हैं। दोनों हुकूमत को मदद देनेवाली हैं, परन्तु दोनों अलग-अलग ढंग से मदद देती हैं। सत्याग्रही लोगों को नम्र और स्वेच्छापूर्वक कानून का आदर करनेवाला बनाता है। पुलिस-विभाग अपराधियों की खोज करके उन्हें सजा दिलवाकर अपराध कम करने की आशा रखकर राज्य-सत्ता को सहायता देने का दावा करता है। दोनों पक्षों का इरादा शुभ है।

प्र०—मान लीजिये, सत्याग्रही ने अपनी आँखों से अपराध होते देखा। उस अपराध की पुलिस को खबर देना उसका कर्तव्य है या नहीं? इस प्रश्न का उत्तर आपको ठीक लगे, तो दीजिये।

उ०—मैं इसका जवाब मि० गाइडर को तो दे चुका हूँ, फिर भी मैं समझता हूँ कि आपको भी देना उचित होगा। मैं अपने किसी भी वचन से इस देश के युवक वर्ग को उलटे रास्ते ले जाना नहीं चाहता; आपके सवाल से गलतफहमी पैदा होने का डर है; फिर भी एक सूत्र के रूप में मुझे कहना चाहिए कि किसी भी मनुष्य का अपने भाई के विरुद्ध गवाही देना फर्ज नहीं हो सकता। यहाँ भाई का अर्थ मैं संकुचित रूप में नहीं करता। असल में जाति, धर्म या देश के भेद के बिना हरएक आदमी एक-दूसरे का भाई है। सत्याग्रही 'भाई' का संकुचित अर्थ कर ही नहीं सकता। अगर मैं अपने भाई को अपराध से छुड़ाना चाहता हूँ, तो मैं पुलिस को उसकी खबर देकर नहीं छुड़ा सकता। मैं अपने भाई पर कुछ भी असर डाल सकूँ, इससे पहले मुझे वह जो कुछ कहे, उसके बारे में उसे निर्भय कर देना चाहिए। मैं ऐसा न करूँ, तो वह खुलकर अपने अपराध की बात नहीं सुनायेगा। परन्तु स्वयं आँखों देखे अपराध की भी गवाही न देने का अधिकार केवल सम्पूर्ण सत्याग्रही को ही प्राप्त होता है। मैं इतना और कहना चाहता हूँ कि मैं दक्षिण अफ्रीका में और यहाँ भी खूनी अपराधियों के सम्पर्क में आया हूँ और उनमें से बहुतों ने अपने पापों का पश्चात्ताप किया है; उनमें से बहुतों ने करना छोड़ भी दिया है। इतने पर भी गवाही न देने के अधिकार का दावा मैं खुद नहीं करता। मैं अपने को सम्पूर्ण सत्याग्रही नहीं मानता। इसलिए अपनी नजर के सामने अपराध होता हुआ देखकर भी उसके बारे में गवाह नहीं दूँगा, ऐसा नहीं कह सकता।

प्र०—इसके सिवा आप और भी कुछ कहना चाहते हैं?

उ०—जी हाँ। मुझे लगता है कि जो खास अदालतें यहाँ मुकर्रर की

गयी थीं, उनका काम काफी न्यायपूर्ण हुआ था। इसलिए मुझे आलोचना करते संकोच होता है। फिर भी इतना तो कहूँगा कि सरकार को लोगों पर लड़ाई करने का आरोप नहीं लगाना चाहिए था। ऐसा होने से कुछ लोगों को हद से ज्यादा सजा हो गयी है। यह जल्दबाजी का कदम था।

प्र०—परन्तु यह तो आपने सरकारी वकील का दोष बताया।

उ०—मैं ऐसा नहीं मानता। ऐसे बड़े कामों में सरकारी वकील अपने अफसर से पूछे बिना जिम्मेदारी नहीं लेता। इसलिए मैं कमेटी से कहना चाहता हूँ कि अदालतों द्वारा उचित और कभी-कभी जरूरत से ज्यादा सजा होने पर भी अहमदाबाद पर जो जुर्माना किया गया है, वह तो जरूरत से ज्यादा माना ही जायगा। साथ ही मजदूरों पर बराबर के हिसाब से कर लगाया गया है, यह तो दोहरी सजा देने जैसा हुआ। इसके अलावा कर वसूल करने का तरीका मैं बेजा और मजदूरों को परेशान करनेवाला मानता हूँ। नड़ियाद और बारेजड़ी पर जो अतिरिक्त पुलिस बैठायी गयी है, उसे बिलकुल अनुचित समझता हूँ। नड़ियाद के कलक्टर ने पाटीदार और वणिक्-वर्ग पर भार डालने के बारे में जो दलीलें दी हैं, वे निराधार ही नहीं; बल्कि उनमें मुझे वैरभाव भी दिखाई देता है। मुझे तो विश्वास हो गया है कि जो लोग रेल की पटरियाँ उखाड़ने गये थे, उन्हें नड़ियादियों ने जरा भी मदद नहीं दी। इतना ही नहीं, उन्होंने सरकार को सहायता दी है और उनकी दी हुई सहायता को कलक्टर ने सुन्दर शब्दों में स्वीकार भी किया है। मेरी राय में बारेजड़ी और नड़ियाद पर जो जुर्माना हुआ है, वह रद होना चाहिए और बारेजड़ी-नड़ियाद से अतिरिक्त पुलिस हटा ली जानी चाहिए।

न्यायमूर्ति रैन्किन की जाँच

न्यायमूर्ति रैन्किन—मैं आपसे लम्बे सवाल नहीं पूछना चाहता। सत्याग्रह की गहरी चर्चा में भी नहीं ले जाऊँगा। परन्तु आपको आपत्ति न हो, तो आपके द्वारा कुछ जानकारी लेना चाहता हूँ। आप कहते हैं

कि आपने लोगों को पुलिस की आज्ञाएँ पूरी तरह मानने की हिदायत दी थी ।

गांधीजी—आप ठीक कह रहे हैं ।

प्र०—मजिस्ट्रेट जो हुक्म दे, उसे भी मानने के लिए आपने कहा था ?

उ०—जी हाँ । इस मामले की चर्चा हममें कानून का सविनय-भंग शुरू होने से पहले ही हो चुकी थी और मैंने यह स्पष्ट राय दी थी कि जुलूस वगैरह निकालने सम्बन्धी सभी कानूनों को पूरी तरह मानना चाहिए ।

प्र०—इस बारे में आपने भाषण दिये और पर्चे निकाले थे ?

उ०—मुझे याद है कि पर्चे भी निकाले थे और भाषण भी दिये थे ।

प्र०—आपके पास इस सम्बन्ध के भाषण, पर्चे वगैरह जो भी हों, वे मुझे तारीखवार भेज देंगे ?

उ०—अवश्य भेज दूँगा । इसकी मुझे इस समय कल्पना नहीं है कि मेरे पास कितनी सामग्री निकल सकेगी ।

प्र०—आपको स्वामी श्रद्धानन्दजी ने दिल्ली जाने के लिए जो तार दिया था, वह सत्याग्रह फैलाने के लिए था ?

उ०—जी नहीं । दिल्ली में अशान्ति फैली हुई थी, इसलिए लोगों का मन शान्त करने के लिए स्वामीजी का यह विश्वास था कि मैं लोगों को शान्त कर सकूँगा ।

प्र०—ये तार भी आपके पास हों, तो मुझे भेज देंगे ?

उ०—मुझे शक है कि मेरे पास होंगे । जिन कागजों के जवाब दे देता हूँ, उनमें से अधिकांश को उसी समय फाड़ फेंकने की मेरी आदत है । ऐसे ही कागजात रखता हूँ, जो भविष्य में उपयोगी हों । फिर भी मैं तलाश करूँगा ।

प्र०—पलवल से वापस लौटने पर आपने भाषण दिये, उनमें आपने बताया है कि आपकी इच्छा तुरन्त दिल्ली लौट जाने की थी । अगर

आपका इरादा शान्ति ही फैलाने का था, तो आपने दिल्ली लौट जाने का इरादा क्यों किया ?

उ०—क्योंकि जब मुझे पलवल से वापस लौटा दिया गया, तब सत्याग्रही के नाते उस आज्ञा का उल्लंघन करना मेरा कर्तव्य हो गया।

प्र०—परन्तु क्या आपके वापस दिल्ली जाने से अशान्ति न होती ? और आप सरकार को अपने कार्य से कष्ट में न डालते ?

उ०—सरकार अनुचित व्यवहार करे, उस अनुचित व्यवहार के कारण मैं कोई उचित कदम उठाऊँ और इससे सरकार परेशानी में पड़े, तो इसके लिए मैं जिम्मेदार नहीं हो सकता। परन्तु आज्ञा का उल्लंघन करके मेरे दिल्ली जाने से अशान्ति होती, तो मैं उसका उल्लंघन करने से जरूर रुक जाता, क्योंकि सत्याग्रह के दूसरे सिद्धान्तों को ऐसे उल्लंघन से आँच आती है। जब मुझे सर्वत्र खून-खराबी की जानकारी हुई, तो मैंने तुरन्त खेदपूर्वक दिल्ली जाना स्थगित कर दिया।

प्र०—तब दुबारा दिल्ली जाने में आपका हेतु क्या था ?

उ०—सत्याग्रही अन्यायपूर्ण अथवा अत्याचारी आज्ञा का विरोध केवल स्वयं कष्ट भोगकर ही कर सकता है। इस समय रौलट-कानून के बारे में सत्याग्रह हो रहा था। इसीलिए जब मुझे दिल्ली जाने से रोका गया, तब प्रथम दृष्टि से उस हुक्म का सादर अनादर करना मेरा फर्ज हो गया। परन्तु पंजाब में हुई घटनाओं का जब मुझे पता चला, तब मुझ पर उस अनादर को स्थगित करने का विशेष कर्तव्य आ पड़ा।

प्र०—आपने कानून का सविनय भंग दो बार स्थगित रखा। दूसरी बार क्यों स्थगित करना पड़ा ?

उ०—वाइसराय महोदय और बम्बई के गवर्नर साहब ने मुझे बहुत सारी चेतावनियाँ दीं। उन्होंने अपनी विशेष जानकारी का उपयोग करके मुझे सूचना दी कि मेरा यह खयाल सही नहीं है कि खून-खराबी होने का खतरा मिट गया है। मैंने सोचा कि ऐसी चेतावनी का आदर करना धर्म है।

प्र०—क्या आप यह स्वीकार नहीं करते कि सत्याग्रह के प्रचार से लोगों में कानून की इज्जत घटी है ?

उ०—आम तौर पर मैं यह स्वीकार नहीं कर सकता। मैं यह नहीं मानता कि अब लोग कानून का कम आदर करने लगे हैं। परन्तु मुझे इतना अवश्य स्वीकार करना चाहिए कि किसी-किसी जगह मेरे प्रचार का तात्कालिक परिणाम कानून के प्रति आदर घटने के रूप में भी हुआ है।

प्र०—कौन-से कानून तोड़े जायँ, इस बारे में कमेटी नियुक्त करने का हेतु क्या आप अधिक स्पष्ट करेंगे ?

उ०—कमेटी मुकर्रर करके सत्याग्रहियों पर अंकुश लगाया गया। हरएक आदमी एकाएक नहीं सोच सकता कि कौन-से कानून का सविनय भंग हो सकता है और अविनयी भंग होने की नौबत आ सकती है। इसे रोकना उस कमेटी का उद्देश्य था।

प्र०—जो कमेटियाँ अलग-अलग स्थानों पर बनायी गयी थीं, वे सब स्वतंत्र थीं ?

उ०—नियमानुसार स्वतंत्र थीं, परन्तु वास्तव में सब पर मेरा नियंत्रण रहता था, क्योंकि प्रत्येक कमेटी ने इस नियंत्रण की माँग की थी। लगभग हरएक कमेटी ने मुझको ही अध्यक्ष बनाकर मेरा अंकुश स्वीकार कर लिया था। सत्याग्रह जैसी नयी वस्तु के प्रचार के समय यह व्यवस्था मुझे उचित प्रतीत हुई।

प्र०—'पैसिव रेजिस्टेंस' और 'सिविल डिसओबीडियन्स' के बीच का फर्क बताइयेगा ?

उ०—दोनों भिन्न वस्तुएँ हैं। 'पैसिव रेजिस्टेंस' में मंदता होती है। उसमें कानून का जान-बूझकर भंग नहीं होता। जो कानून अपमानजनक है, वह पैसिव रेजिस्टर पर आ पड़े, तो वह उसे नहीं मानता। परन्तु 'सिविल डिसओबीडियन्स' (सविनय भंग) एक तीव्र प्रवृत्ति है। राजनैतिक क्षेत्र में अनेक प्रकार के दुःख निवारण करने के लिए जिन कानूनों के भंग में अनीति न होती हो, उन अनेक कानूनों का इरादापूर्वक सवि-

नय भंग करके स्वेच्छा से दुःख आमंत्रित कर लेने का धर्म प्राप्त करनेवालों का यह जबरदस्त हथियार है। 'पैसिव रेजिस्टेंस' में अक्सर विरोधी पक्ष के मनुष्य को कष्ट पहुँचाने का भी ज्ञानपूर्वक समावेश मैंने देखा है। सविनय भंग में किसीको जान-बूझकर कष्ट देने का कभी समावेश नहीं होता।

सर चिमनलाल की जाँच

सर चिमनलाल—सत्याग्रह को मैंने जैसा समझा है, उसके अनुसार आपको सत्य का आचरण करना है और वैसा करते हुए जो दुःख आ पड़ें, उन्हें सह लिया जाय, परन्तु किसीको दुःख दिया न जाय।

गांधीजी—जी हाँ।

प्र०—अब हम देखते हैं कि कैसा भी ईमानदार आदमी हो, तो भी दूसरे ईमानदार आदमियों और उसके बीच सत्य के बारे में भी मतभेद हो सकते हैं। तब सत्य का निर्णय कौन कर सकता है?

उ०—हरएक को अपने-अपने लिए करना होगा।

प्र०—परन्तु जितने दिमाग उतनी रायें होती हैं, इसलिए गड़बड़ होने की संभावना नहीं रहती?

उ०—मुझे ऐसा नहीं लगता।

प्र०—परन्तु एक ही सत्य को खोजते हुए हरएक मनुष्य भिन्न-भिन्न मत बनाता ही रहा है।

उ०—इसीलिए अहिंसा सत्याग्रह का आवश्यक अंग है। मैं स्वीकार करता हूँ कि इसके बिना गड़बड़ होती है। इतना ही नहीं, इससे भी अधिक दुःखद परिणामों की संभावना रहती है।

प्र०—तब आप इतना स्वीकार करेंगे कि सत्य का आग्रह रखनेवाला मनुष्य चरित्र और बुद्धि में बहुत कुशल होना चाहिए।

उ०—जी नहीं। सत्याग्रह के लायक सत्य और अहिंसा के पालन की

आशा मैं सबसे रखता हूँ। मान लीजिये, 'क' ने कोई सत्य ढूँढ़ निकाला और 'ख' और 'ग' ने उसे स्वीकार कर लिया। फिर 'ख' और 'ग' में 'क' के जितना ही ऊँचा चरित्र और बुद्धि की जरूरत सत्याचरण के लिए आवश्यक है, ऐसा मैं नहीं मानता।

प्र०—तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक मनुष्य निर्णय करे और उससे कम चरित्र और बुद्धिवाले अंधे होकर उसका अनुकरण करें।

उ०—मेरे पिछले जवाब से अंधे होकर अनुकरण करने की बात आप नहीं निकाल सकते। मैं जो कहना चाहता हूँ, सो यह है। मनुष्य यदि स्वयं स्वतन्त्र रूप में खोज करके सत्य को ढूँढ़ना न चाहे, तो जिसने किसी खास विषय में खोज की हो, उसे स्वीकार कर सकता है और फिर किसीको हानि पहुँचाये बिना उस सत्य के अनुसार चल सकता है। इसमें हर-एक को यह जानने योग्य बुद्धि का प्रयोग करना पड़ता है कि अमुक मनुष्य की खोज ठीक है या नहीं और सही है या गलत। इसलिए सत्याग्रह में अंधश्रद्धा की कोई गुंजाइश नहीं है।

प्र०—तब तो आपके अनुसार बात यों हुई कि चरित्र-कुशल और बुद्धि-कुशल मनुष्य जो निर्णय करे, उसीके अनुसार दूसरों को अंधे बनकर चलना चाहिए; क्योंकि वे मन्दबुद्धि के कारण स्वतन्त्र निर्णय नहीं कर सकते।

उ०—आपने विचार ठीक-ठीक नहीं रखा। मैंने कहा है कि मैं अन्धानुकरण को मानता ही नहीं। साधारण मनुष्य में काम करने की जितनी शक्ति है, उससे अधिक शक्ति की जरूरत मैंने सत्याग्रह में नहीं मानी।

प्र०—मैं मानता हूँ कि किसी आन्दोलन की जीत का आधार उसके अनुयायियों की संख्या पर रहता है।

उ०—मैं स्वीकार नहीं करता कि सत्याग्रह के बारे में ऐसी कोई खास बात है। सत्याग्रह में एक ही शुद्ध सत्याग्रही विजय प्राप्त कर सकता है।

प्र०—आप अपनी शहादत में कह चुके हैं कि आप अभी तक सम्पूर्ण सत्याग्रही नहीं कहे जा सकते; तब दूसरे तो आपसे अधिक घटिया दर्जे के होने चाहिए?

उ०—ऐसा कहने के लिए कोई खास कारण नहीं। मैं मानता ही नहीं कि मुझमें कोई खास विशेषता है। मेरी अपेक्षा सत्य का अधिक शुद्ध निर्णय करनेवाले हो सकते हैं। दक्षिण अफ्रीका में ४० हजार अपढ़ हिन्दुस्तानी सत्य को देख सके और सत्याग्रह कर सके। यदि मैं आपको वहाँ के कुछ संस्मरण सुना सकूँ, तो आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि दक्षिण अफ्रीका के हमारे प्रवासी भाइयों ने अपने मन पर कितना काबू पा लिया था।

प्र०—वहाँ तो आप सब एक ही मत के थे।

उ०—वहाँ की अपेक्षा मैंने यहाँ अधिक एकमत अनुभव किया है। वहाँ कोई कम मतभेद नहीं थे।

प्र०—परन्तु वहाँ तो आपके पास एक निश्चित मुद्दा था। यहाँ ऐसा नहीं है।

उ०—यहाँ भी मुद्दा सरल और एक ही है। और वह है रौलट-कानून को रद कराना।

प्र०—खैर, सत्याग्रह करके मनुष्य जेल जाता है। उसके विचार के अनुसार इसमें उसके साथ अन्याय होता है। क्या इससे रोष में आकर उसमें शासकों के प्रति द्वेष नहीं होता?

उ०—मेरा लम्बे समय का अनुभव इससे विपरीत है। दक्षिण अफ्रीका में मैंने देख लिया कि आठ वर्ष की बहुत सख्त लड़ाई के अंत में वहाँ के शासकों और भारतीयों के बीच न केवल द्वेष-भाव नहीं बढ़ा, बल्कि दोनों पक्ष एक-दूसरे का आदर करने लगे।

प्र०—परन्तु दुःख ही भोगते रहनेवालों में क्या भारी सहन-शक्ति की जरूरत नहीं?

उ०—मैं नहीं मानता कि ऐसी कोई भारी सहन-शक्ति चाहिए।

जोसहन-शक्ति प्रत्येक माता में होती है, उससे अधिक की जरूरत सत्याग्रही को उसके जेल के या अन्य दुःखों में नहीं होती। मैं नम्रतापूर्वक कहता हूँ कि हमारे भाइयों ने बहुत ही सहन-शक्ति दिखाई है।

प्र०—अहमदाबाद के उदाहरण लीजिये। वे क्या बताते हैं?

उ०—मैं कहूँगा कि जब अहमदाबाद वगैरह के लोग होश भूल गये थे, तब भारत के और सब भागों में उस कठिन समय में लोगों ने अपूर्व खामोशी रखी थी। अहमदाबाद में और अन्यत्र जो हुआ, वह बताता है कि लोगों ने अभी तक अपने पर पूरा काबू नहीं पाया है। खेड़ा में लोगों का रोष बढ़ने के कम कारण नहीं थे। फिर भी उन्होंने पिछले साल खूब काबू रखा था।

प्र०—तब जो खून-खराबी हुई, उसे आप आकस्मिक समझते हैं?

उ०—आकस्मिक तो नहीं मानता, परन्तु वह अपवाद थी। ज्यों-ज्यों सत्याग्रह की पहचान होती जायगी, त्यों-त्यों लोग अधिक काबू पाते जायँगे। मैं मानता हूँ कि लोग सत्याग्रह का रहस्य यहाँ तक समझ सके हैं कि जरूरत होने पर मैं दुबारा सविनय कानून-भंग शुरू करने की हिम्मत रखता हूँ। मेरा विश्वास है कि सत्याग्रहरूपी अग्नि से निकलने के कारण देश अधिक पवित्र और अधिक उज्ज्वल बना है।

प्र०—आपके मतानुसार आम तौर पर सरकार के साथ सहयोग आर उसके प्रति अद्वेष होना चाहिए। दुःख सहन करते-करते ऐसा हो सकता है?

उ०—मेरे तीस वर्ष के अनुभव से सिद्ध है कि जान-बूझकर, धर्म समझकर जो मनुष्य दुःख सहन करता है, वह दुःख पहुँचानेवाले से द्वेष नहीं करता। मैं इस सिद्धान्त को दक्षिण अफ्रीका में जान सका। जिस जनरल स्मट्स ने हजारों भारतीयों को जेल में डाला था, उसी जनरल स्मट्स की अधीनता में वहाँ के भारतीय पूर्व अफ्रीका में महायुद्ध के समय लड़े और जब जनरल स्मट्स विलायत से लौटे, तब उन्होंने उन्हें स्वेच्छा से मानपत्र दिया।

प्र०—सत्याग्रह की प्रतिज्ञा लिये बिना लोग इस आन्दोलन में भाग ले सकते हैं ?

उ०—प्रतिज्ञा न लेनेवाले को मैं कानून के सविनय भंग करने में शामिल नहीं होने दूँगा, परन्तु उसकी और सब मदद जरूर चाहूँगा और लूँगा। रौलट एक्ट की लड़ाई में जिन्होंने प्रतिज्ञा नहीं ली थी, वे सविनय भंग में शरीक नहीं हुए थे। इन दूसरों के लिए दूसरी प्रतिज्ञा तैयार की गयी थी। उसके द्वारा वे सत्य और अहिंसा की रक्षा के लिए बँधे थे। लड़ाई के एक अंश को एक समय और दूसरे अंश को दूसरे समय सामने लाने का नेताओं को अधिकार है, इस प्रणाली के अनुसार मैंने उस समय सविनय भंग के अंश को गौण बनाया और सत्य तथा अहिंसा के तत्त्व को प्रधानता दी।

प्र०—क्या श्रीमती बेसेंट ने सत्याग्रह की प्रतिज्ञा ली थी ?

उ०—इस बारे में मतभेद है। बम्बई में मैंने जो कुछ समझा था, उसके अनुसार उन्होंने कमेटीवाले शब्दों को छोड़कर प्रतिज्ञा ली थी। श्रीमती बेसेंट ने स्वयं यह बताया कि उन्होंने प्रतिज्ञा ली ही नहीं थी।

प्र०—क्या श्रीमती बेसेन्ट ने यह नहीं बताया था कि रौलट एक्ट का सविनय भंग करने के लिए मनुष्य को 'अनार्किस्ट' होना चाहिए ?

उ०—उन्होंने ऐसा जरूर कहा है, परन्तु मैं ऐसा नहीं मानता। और रौलट एक्ट का सविनय भंग करने का समय तो किसी प्रसंग पर ही आ सकता है।

प्र०—सत्याग्रह में सरकार को तंग करने की कल्पना नहीं रही ?

उ०—कभी नहीं। सत्याग्रही सरकार को तंग करके न्याय-प्राप्ति की इच्छा कर ही नहीं सकता। सत्याग्रह हमेशा विरोधी पक्ष की बुद्धि को अपने सत्य के बल से जाग्रत करता है और दुःख सहन करके उसके हृदय पर असर डालता है।

प्र०—किन्तु क्या आपके ढंग पर चलने से शासन करना असंभव नहीं हो जायगा ?

उ०—यदि केवल निर्दोष मनुष्य ही सत्याग्रह चलायें, तो व्यवस्था-भंग हो जाने की बहुत कम संभावना दीखती है। परन्तु कोई शासक न्याय का केवल तिरस्कार ही करने लग जाय, तो ऐसी अन्यायपूर्ण व्यवस्था को असंभव बना देने का प्रयत्न करने में मैं अवश्य पीछे नहीं हटूँगा।

प्र०—अपने सन्देश में आपने लोगों को खून-खराबी न करने की सलाह दी है; फिर भी उन्होंने हत्याएँ कीं और मकान जला दिये। आपको ऐसा नहीं लगता कि साधारण मनुष्य आपका अहिंसा का तत्त्व कायम नहीं रख सकता ?

उ०—मैं स्वीकार करूँगा कि बहुत वर्षों तक खून-खराबी में विश्वास रखने के कारण मनुष्य ऐसा करने के लाभ एकाएक नहीं समझ सकता अथवा समझने पर भी अपने आवेश को रोक नहीं सकता।

प्र०—अब मैं थोड़े-से सवाल आपने जो कुछ 'योजना' के बारे में कहा है, उस बारे में पूछूँगा। 'योजना' कब बनी ?

उ०—मेरी जानकारी और याददाश्त के अनुसार १० तारीख को रात को और ११ तारीख को दिन में।

प्र०—योजना किस प्रकार बनी ?

उ०—कुछ युवकों ने उनसे मिलनेवाली भीड़ को मकानात जलाने को समझाया। मेरी समझ के मुताबिक जान को नुकसान पहुँचाने का सुझाव नहीं दिया गया दीखता। मेरे कहने का यह मतलब नहीं कि इस योजना में बहुत लोगों ने भाग लिया।

प्र०—इस बारे में आप सारा हाल बता सकते हैं ?

उ०—मुझे खबर देनेवालों के नाम-पते मैं नहीं दे सकता। परन्तु जिस प्रकार योजना तैयार की गयी, वह मैं कह रहा हूँ।

प्र०—क्या आप कह सकते हैं कि आपके पास जो सबूत आया, वह विश्वस्त था ?

उ०—जिन्होंने खून-खराबी देखी, जिन्हें मकान जलाने को समझाया गया और जिन्होंने वह सुना, उन तीनों वर्गों ने मुझसे बात कही।

प्र०—परन्तु आप यह कैसे समझ सकते हैं कि आपको उन लोगों ने झूठी खबर नहीं दी ?

उ०—मैं मानता हूँ कि मुझमें सत्यासत्य परखने की ठीक-ठीक शक्ति है। मेरे पास कोई देहाती आदमी आयें, मैं उन्हें उलहना दूँ और वे इनकार करने के बजाय अपने किये हुए कृत्य स्वीकार कर लें और वर्णन करके बता दें, तब मुझे उनके कहने पर विश्वास हो जाता है। खेड़ा में रेल की पटरियाँ उखाड़ी गयी थीं। यह काम गिनती के आदमियों ने किया था। वे शराबी थे। नड़ियादवालों का उसमें हाथ नहीं था। यदि उन्हें पता होता, तो मैं मानता हूँ कि वे इस काम को रोकते। इस बारे में खबर देनेवालों के प्रति मुझे इतना आदर है कि उनके विवरण पर अवश्य विश्वास करूँ।

प्र०—जिन लोगों ने अपराध किये, क्या उन्हें सजा हुई है ?

उ०—मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता। किस-किसको सजा हुई, इस ओर मैंने ध्यान नहीं दिया।

प्र०—अपने एक कागज में आपने कानून का सविनय भंग बन्द करने के कारण दिये हैं और फिर शुरू करने की शर्तें बतायी हैं। आपने यह कहा है कि जब तक लोगों द्वारा खून-खराबी करने की आशंका रहती है, तब तक आप कानून-भंग शुरू नहीं करेंगे। आपने यह भी बताया है कि लोग जुलाई मास तक इतने तैयार हो जायँगे कि आप कानून का भंग कर सकें। अप्रैल मास के अनुभव के बाद आप ऐसा कैसे सोच सके ?

उ०—लोगों का अनुभव लेने के बाद, उनका पश्चात्ताप सुनने के बाद मुझे भरोसा हो गया कि लोग समझ गये होंगे।

प्र०—तो आपको इतने थोड़े समय में विश्वास हो गया कि लोग सत्याग्रह का गहरा रहस्य समझ गये ?

उ०—ऐसा मैंने कुछ नहीं सोचा। मैं यह स्वीकार कर सकता हूँ कि लोग सत्याग्रह का गहरा रहस्य न समझे हों। परन्तु लोग इतना समझ गये हैं कि यदि वे कानून का सविनय भंग करने में भाग न लें, तो भी वे खून-खराबी से दूर रहकर अहिंसा के तत्त्व का पालन करके उन सत्याग्रहियों की सहायता करेंगे। लड़ाई फिर शुरू करने के लिए इतना काफी है।

प्र०—और यदि लोग इतना भी न समझे हों, तो आपने सरकार द्वारा की गयी सैनिक व्यवस्था पर शांति-रक्षा का आधार रखा?

उ०—जी, हाँ।

प्र०—इसका अर्थ यह हुआ कि आप चाहते हैं कि कानून-भंग करने का मजा लेने के लिए हिन्दुस्तान में सर्वत्र सैनिक व्यवस्था हो जाय।

उ०—मेरे पत्र का ऐसा अर्थ नहीं। मैं ऐसा चाहने का अपराध नहीं कर सकता। मेरा निवेदन है कि आप मेरा किया हुआ अर्थ मान लें।

प्र०—आप ऐसा न चाहें, तो आपने सैनिक व्यवस्था के बारे में जो लिखा है, उसका क्या अर्थ है?

उ०—उसका अर्थ सीधा है। यदि सरकार मेरे चाहे बिना या सुझाये बिना अपने-आप ऐसा इन्तजाम कर दे, जिससे खून-खराबी होने की संभावना ही न रहे, तो मेरे जैसे सत्याग्रही को कानून का सविनय भंग करने में कोई बाधा न हो। परन्तु कानून का सविनय भंग करने के लिए सत्याग्रही फौजी शासन की माँग या चाह नहीं कर सकता। इसीलिए मैं कहता हूँ कि आपकी कल्पना यथार्थ नहीं है। जब वाइसराय और गवर्नर महोदय ने मुझसे कहा कि यदि आप यह न चाहते हों कि हिन्दुस्तान एक फौजी छावनी बन जाय, तो आपको सत्याग्रह स्थगित कर देना चाहिए, तब मैंने कानून का सविनय भंग स्थगित करके यह सिद्ध कर दिया कि मेरी ऐसी इच्छा किसी भी समय नहीं हो सकती।

प्र०—मजदूरों के मामले में आप क्या कहना चाहते हैं?

उ०—मैं मानता हूँ कि मजदूरों पर बहुत भारी बोझ डाल दिया गया है। उनसे यह जुर्माना वसूल करने के लिए समय भी बहुत खराब चुना गया था। परन्तु मि० चेटफील्ड ने अपने कार्यकाल में सदा इतनी शराफत दिखाई है और अप्रैल मास में इतनी ज्यादा सब्र दिखाई है कि उनके किसी भी काम के बारे में शिकायत करने में मुझे संकोच होता है।

पं० जगत्नारायण की जाँच

पं० जगत्नारायण—महात्माजी, आप ऐसे उपाय करने के तो विरुद्ध नहीं हैं न, जिनसे 'अराजकता' बन्द हो।

गांधीजी—जी नहीं।

प्र०—तब आप रौलट एक्ट के विरुद्ध क्यों हुए?

उ०—रौलट एक्ट के खिलाफ मेरी सबसे बड़ी दलील यह है कि यह कानून सारी जनता पर एक आरोप के तौर पर बनाया गया है।

प्र०—इस कानून में जनता की रक्षा की कुछ धाराएँ हैं, उनके बारे में आपका क्या कहना है?

उ०—मुझे तो ये धाराएँ भयंकर जाल के समान लगती हैं, क्योंकि इन धाराओं से अधिकारी और लोग यह मान लेंगे कि लोगों का किसी हद तक तो बचाव हो जाता है। इससे अधिकारी अधिक गैरजिम्मेदार बनेंगे और जनता ज्यादा गफलत में पड़ जायगी। बहुत विचार करने पर जब मैंने इस कानून की सफाई किसी भी तरह नहीं देखी, तभी मैं विरुद्ध हुआ। फिर 'अराजकता' की सजा देने के लिए मेरी मान्यता यह है कि साधारण कानून भी काफी हैं।

प्र०—सत्याग्रह की लड़ाई में सरकार को तंग करने का सवाल उठाया गया है। क्या आप सरकार को तंग करने से डरेंगे?

उ०—सत्याग्रही सरकार को या किसीको परेशान करने के लिए कोई आन्दोलन कर ही नहीं सकता। परन्तु सत्याग्रही के किसी भी कार्य से सरकार या और किसीको इच्छा न होते हुए भी परेशानी हो, तो इससे कोई

सत्याग्रही नहीं डरेगा। सत्याग्रह की लड़ाई और दूसरी लड़ाई में इतना भेद है कि साधारण लड़ाई अक्सर तंग करने के लिए शुरू की जाती है। सत्याग्रह की लड़ाई में ऐसा नहीं होता।

प्र०—आप इतना स्वीकार करेंगे कि सभी लड़ाइयों में जीत का आधार संख्या होती है ?

उ०—दूसरी लड़ाइयों के बारे में यह बात सच है; परन्तु सत्याग्रह में, यद्यपि संख्या हो तो अच्छा, फिर भी सत्याग्रह संख्या पर बिलकुल आधार नहीं रखता।

प्र०—परन्तु आप जैसे-तैसे अधिक मनुष्यों को सत्याग्रह में शरीक करने का प्रयत्न तो अवश्य करेंगे ?

उ०—यह भी सर्वांश में ठीक नहीं, क्योंकि सत्याग्रह का आधार तो केवल सत्य पर और सत्याग्रही की तपश्चर्या पर रहता है।

प्र०—परन्तु राजनैतिक मामलों में एक आदमी की आवाज कितना काम कर सकती है ?

उ०—मेरी कोशिश यह दिखाने की है कि वह बहुत काम दे सकती है।

प्र०—आप मानते हैं कि अंग्रेज अधिकारी एक आदमी की कुछ सुनेंगे ?

उ०—मैंने ऐसा हुआ देखा है। लॉर्ड बेन्टिक केशवचंद्र सेन के लिए मि० बेन्टिक बन गये थे।

प्र०—परन्तु यह तो आपने एक जबरदस्त आदमी का दृष्टान्त दिया।

उ०—साधारण मनुष्य भी नीति का विकास कर सकता है। यद्यपि मैं अक्षर-ज्ञान की जरूरत मानता हूँ और अधिकांश जनता निरक्षर है, फिर भी मेरा व्यापक अनुभव है कि सत्याग्रह का मंत्र केवल निरक्षर मनुष्यों को भी देने में बिलकुल दिक्कत नहीं होती।

प्र०—दक्षिण अफ्रीका की आपकी विजय का कारण क्या है ?

उ०—आम तौर पर यह कहा जा सकता है कि वहाँ बहुत-से स्त्री-पुरुष जेल जाने को तैयार हुए और जरा भी मर्यादा नहीं छोड़ी और शान्ति रख सके, जीत के मैं यही कारण मानता हूँ।

प्र०—तो क्या आप यह स्वीकार नहीं करेंगे कि सत्याग्रह की लड़ाई में भी आपको बहुत आदमियों की जरूरत है ?

उ०—जी नहीं। मैं यह तो मानता हूँ कि अधिक मनुष्य हों, तो जीत जल्दी होती है, परन्तु यह नहीं मानता कि उसके बिना जीत हो ही नहीं सकती। यह तो अवश्य स्वीकार करना चाहिए कि दक्षिण अफ्रीका में संख्या के कारण बल मिला, फिर भी मेरा पक्का खयाल है कि लड़ाई का असली रहस्य और असली बल तो उसकी शुद्धता और शुद्ध साधनों में था। साधनों की शुद्धता के कारण मैं दक्षिण अफ्रीका में प्रतिकूल संयोगों के बावजूद वहाँ के अगुओं की सहानुभूति प्राप्त कर सका था। जो खून-खराबी में विश्वास रखते हैं, उनके उत्साह को पोषण दे सकनेवाला धार्मिक साधन तो सत्याग्रह ही है।

प्र०—सत्याग्रह के बारे में जो डर सर चिमनलाल को है, वह मुझे नहीं है। मैं नहीं मानता कि व्यक्ति कानून का सविनय भंग शुरू करें, तो बुरा ही परिणाम होगा। जहाँ-जहाँ लोग अपनी इज्जत के लिए जेल जाने को तैयार होते हैं, वहीं मैं मानता हूँ कि लोग ऊँचे उठे हुए होने चाहिए। परन्तु मैंने तो कुछ सवाल यह जानने के लिए पूछे हैं कि सत्याग्रह की विशेषता क्या है।

उ०—सत्याग्रह में नीति प्रधान है, इसलिए लोगों में नीति की शिक्षा और नीतिसंबंधी भाव फैलाने चाहिए। बहुत-से लोग सत्याग्रही बन जायँ, तो इसमें किसी भी सरकार के लिए घबराने का कारण हरगिज नहीं होता। कानून की इज्जत करना हमारा कर्तव्य है। इसलिए कानून बनानेवालों का यह फर्ज है कि ऐसे ही कानून पास करें, जिनसे लोकसंग्रह हो। सत्याग्रह-मंडल को कानून का भंग करनेवाला मंडल कहना तो अनुचित है। चूँकि सत्याग्रही कानून की अंधी इज्जत नहीं करता और उसमें कानून

का पालन करने की साधारण वृत्ति होती है, इसलिए वह अपने प्रयत्न से कानून को हमेशा ऊँचे पद पर रखवाता है।

प्र०—आपने सत्याग्रह शुरू किया। उसका हेतु तो यह रहा होगा कि विदेशी गैरजिम्मेदार अधिकारियों के विरुद्ध सत्याग्रह के सिवा और कोई हथियार आपके पास नहीं हो सकता।

उ०—बिलकुल ऐसा तो नहीं कहा जा सकता। मैं तो जरूरत मालूम होने पर जनता को जिम्मेदार हुकूमत मिल जाने के बाद भी सत्याग्रह की आवश्यकता की कल्पना कर सकता हूँ। लोगों की खासियतों के अज्ञान की जो सफाई अंग्रेज दे सकते हैं, वे हमारे कारोबारी नहीं दे सकते।

प्र०—परन्तु जब हमें पूरी सत्ता मिलेगी, तब हम अपने कारोबारियों को अलग कर सकेंगे।

उ०—यह भरोसा भी मैं सदा के लिए नहीं रख सकता। इंग्लैण्ड में बहुत-से कारोबारी जनता का आदर और विश्वास खोकर भी अधिकार से चिपटे हुए हैं। ऐसा हमारे यहाँ नहीं हो सकता, यह मानने के लिए मेरे पास कोई कारण नहीं। इसलिए मैं कल्पना कर सकता हूँ कि हमें संपूर्ण सत्ता मिल जाय, तभी सत्याग्रह करना पड़े।

प्र०—क्या आप यह स्वीकार करेंगे कि हमारे अधिकारी हिन्दुस्तानी ही हों, तो लोग कानून का अधिक आदर करेंगे और कानून भंग करने की नौबत कम आयेगी?

उ०—मैं ऐसा नहीं मानता। अंग्रेज अधिकारी की कुछ भूल तो उसके अज्ञान के कारण होती है और इसलिए वह माफ हो सकती है। किन्तु हिन्दुस्तानी अधिकारी की भूल के लिए ऐसी कोई सफाई नहीं हो सकती। जहाँ शासन जनता के प्रति जिम्मेदार है, वहाँ भी मैंने मंत्रियों को गंभीर भूलें करते देखा है और यह अनुभव किया है कि मंत्री गैरजिम्मेदार ढंग से काम करते हैं। अतः सत्याग्रही के लिए तो सब बराबर हैं। उसे जहाँ अन्याय दिखाई देगा, वह अवश्य विरोध करेगा। अधिकारी-वर्ग से नीति-युक्त लोकमत के लिए सम्पूर्ण आदर प्राप्त करना सत्याग्रही का काम है और

उचित प्रयत्न करके वह सफलता प्राप्त करता है। यदि मैं लोगों को सत्याग्रह भलीभाँति समझा सकूँ और उनसे सत्याग्रह के नियम पालन करवा सकूँ, तो वाइसराय के रौलट एक्ट रद न करने पर मैं उनसे त्यागपत्र दिलवा सकता हूँ।

प्र०—क्या आप हड़ताल को सत्याग्रह का अंग मानते हैं?

उ०—जी नहीं। हड़ताल जैसे सत्याग्रही की हो सकती है, वैसे दुराग्रही की भी। मेरा विश्वास है कि जब तक सचमुच जरूरत न हो, तब तक हड़ताल न करनी चाहिए। छह अप्रैल के बाद मि० हार्निमन के बारे में और इसी तरह खिलाफत के बारे में हड़ताल कराने में मैंने भाग लिया था। परन्तु उनसे मुझे कोई बुरा नतीजा निकला नहीं दिखाई दिया।

प्र०—यह तो आप अवश्य चाहेंगे कि सत्याग्रह के सिलसिले में जरा भी अशान्ति न हो?

उ०—मैं यह नहीं चाहूँगा। इतना ही नहीं, ऐसा न हो, तो मैं निराश होऊँ। अगर अनसूयाबहन और मैं पकड़े जायँ और मजदूरों में कुछ भी अशान्ति न हो, तो हम जरूर निराश होंगे। परन्तु सत्याग्रही की अशान्ति खून-खराबी का रूप कभी ग्रहण नहीं करेगी। सत्याग्रही दूसरों के दुःख से दुःखी होगा और एक जेल जायगा, तो दूसरे जेल में पहुँचने का उचित प्रबंध करेंगे। मैं सत्याग्रह के सिलसिले में ऐसी अशान्ति चाहता हूँ।

प्र०—आप ११ अप्रैल को बम्बई लौटे, तब पायधूनी गये थे। उस सम्बन्ध में ऐसा कहा जाता है कि लोगों ने आपकी नहीं मानी।

उ०—यह सही नहीं। जिन्होंने मेरी बात सुनी, उन्होंने अच्छी तरह मानी।

प्र०—मेरे पास एक रिपोर्ट है, जिसमें यह लिखा है कि आपकी गति चंचल है, फिर भी आप बीमारी का बहाना करते हैं!

उ०—मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि यह केवल झूठ है।

प्र०—और उस दिन आप इतने डर गये कि भागकर एक घर में छिप गये !

उ०—यह भी बिलकुल झूठ है, क्योंकि मैं अन्त तक भीड़ में था और जब घुड़सवारों ने हमला किया, तब मैंने उसे खुद देखा था और अन्त में उसी बारे में बात करने पुलिस कमिश्नर मि० ग्रिफिथ्स के पास गया था।

मि० कॅम्प से प्रश्नोत्तर

प्र०—आप कहते हैं कि अहमदाबाद में मार्शल लॉ की जरूरत नहीं थी।

उ०—यह मेरी राय है।

प्र०—परन्तु यदि सैनिक अधिकारी यह कहें कि जरूरत थी, तो आप क्या कहेंगे ?

उ०—तो मैं कहूँगा कि जो हकीकत मेरे पास है, वह मार्शल लॉ घोषित करने के लिए काफी नहीं।

प्र०—आप कहते हैं कि कुछ निर्दोष आदमी मारे गये।

उ०—यह मेरा खास अभिप्राय है।

प्र०—क्या आपके पास इसका पक्का सबूत है ?

उ०—मेरे विश्वास के लिए पर्याप्त है।

प्र०—इस बारे में आपने मि० चेटफील्ड को लिखा था ?

उ०—जी हाँ।

प्र०—उन्होंने फरियाद करनेवाले को उनके पास भेजने को कहा था ?

उ०—जी हाँ।

प्र०—फिर आपने कौन-सा कदम उठाया ?

उ०—कोई नहीं, क्योंकि मार्शल लॉ तो मैंने लिखा, उसी दिन रात को हटा लिया गया। मि० चेटफील्ड को मैं बहुत शरीफ अफसर मानता

हूँ। उनके जितनी प्रामाणिकता और निर्मलता मैंने थोड़े ही अफसरों में देखी है। उन्हें व्यर्थ कष्ट देना या उनके शासन की आलोचना भी करनी पड़े, तो मुझे इससे दुःख होगा। उनकी भूलों में भी मुझे तो शराफत दीखती है। मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि आप इस बात को ज्यादा न कुरेदें। मैं स्वीकार कर चुका हूँ कि बम्बई-सरकार ने अप्रैल मास में इतनी अधिक समझदारी दिखाई कि उसके विरुद्ध शिकायत की बात ही नहीं। परन्तु जब मुझे सारे मामले का पृथक्करण करना पड़ा हो, तब जो दोष मैंने देखे होंगे, उन्हें भी भरसक सभ्यता रखकर बता देना मेरा धर्म हो गया और मैंने वैसा ही किया है। परन्तु निर्दोष मारे जानेवालों की बात पर बहुत जोर देकर उसकी बड़ी शिकायत करना नहीं चाहता।

मि० कॅम्प—मैं स्वीकार करता हूँ कि आपने अपना बयान केवल न्यायपूर्वक दिया है। अब मुझे कुछ नहीं पूछना है।

डॅ० जीवनलाल के साथ प्रश्नोत्तर

डॅ० जीवनलाल—आप हिन्दुस्तान में आये, तभी से अहमदाबाद में बस गये हैं?

गांधीजी—जी हाँ।

प्र०—आपने अहमदाबाद के सार्वजनिक जीवन में भाग लिया है?

उ०—जी हाँ।

प्र०—आपने अनसूयाबाई को उनके मजदूरों के काम में मदद दी थी, तब मजदूरों में पूरी शान्ति रखवायी थी?

उ०—जी हाँ।

प्र०—१३ अप्रैल को जब आप अहमदाबाद आये, तब क्या उसी दिन सार्वजनिक सभा करने का विचार किया था?

उ०—जी हाँ।

प्र०—परन्तु उस दिन जब आपने देखा कि मार्शल लॉ के कारण बहुत लोग उपस्थित न हो सकेंगे, तब आपने १४ तारीख को सभा की?

उ०—जी हाँ। उस दिन यह खयाल हुआ कि सबको समय पर सूचना नहीं पहुँच सकेगी।

प्र०—१४ तारीख की सभा में क्या काफी आदमी आये थे ?

उ०—जी हाँ।

प्र०—उसमें बिलकुल शान्ति रही ?

उ०—जी हाँ। इतना ही नहीं, उसमें पादरी रे० गिलेस्पी उपस्थित हुए थे, जिनके प्रति आये हुए हजारों मनुष्यों ने विवेकपूर्ण व्यवहार किया था।

प्र०—मि० गाइडर कहते हैं कि आपने अपने अनुयायी बढ़ाने के लिए खून-खराबी की निन्दा की और उसी कारण अपराधियों के नाम बताने से इनकार किया ?

उ०—इसका जवाब मैं इतना ही दूँगा कि मि० गाइडर ने मेरे प्रति हिंसा का अपराध किया है।

साहिबजादा आफताब अहमद से प्रश्नोत्तर

साहिबजादा—मि० गांधी, मैं आपसे थोड़े से सवाल पूछूँगा। जरा रौलट एक्ट बनने से पहले की स्थिति को याद कीजिये। लड़ाई से पहले क्या हिन्दुस्तान में चारों ओर बहुत-से रक्तपात के अपराध नहीं हो रहे थे ?

गांधीजी—मैं इससे सहमत नहीं हूँ।

प्र०—कम-से-कम बंगाल में तो सरकार से न डरनेवाले लोगों के हाथों धावे होते थे, हत्याएँ होती थीं, दिल्ली में वाइसराय पर बम फेंका गया था—

उ०—जी।

प्र०—बंगाल में ऐसे कारनामों के बहुत-से मुकदमे चले थे।

उ०—जी।

प्र०—और इन घटनाओं के कारण ही सरकार ने कानून और व्यवस्था

बनाये रखने के लिए न्यायमूर्ति रौलट की अध्यक्षता में तीन प्रमुख न्यायाधीशों का कमीशन मुकर्रर किया।

उ०—जी।

प्र०—उसने इस पूरे प्रश्न की सूक्ष्म जाँच की और सरकार को रिपोर्ट दी। उसमें मेरे खयाल से निश्चित प्रकार के कानून बनाने के लिए सिफारिश की गयी। आप यह कह चुके हैं कि रिपोर्ट में दिये गये निर्णयों से आप सहमत नहीं रहे, ठीक है न ?

उ०—जी हाँ। मैं सहमत नहीं रहा।

प्र०—उन सिफारिशों से सहमत न होने के अपने कारण बताइयेगा ?

उ०—कारण, मुझे रौलट कमेटी की रिपोर्ट में पेश की गयी हकीकतें ऐसे कोई कानून बनाने की जरा भी आवश्यकता सिद्ध करनेवाली प्रतीत नहीं हुई। उलटे, उन्हीं हकीकतों के आधार पर मैं तो इनसे बिलकुल भिन्न प्रकार की सिफारिशें करूँ। मेरी यह राय उस रिपोर्ट को पढ़ने के बाद बनी थी।

प्र०—परन्तु सरकार को जैसी जानकारी मिली, उसके अनुसार देश में सचमुच गंभीर अपराध हो रहे थे, इस बात से तो आप इनकार नहीं करते ?

उ०—दूसरे देशों में जैसे होते हैं, उनसे अधिक गंभीर हरगिज नहीं। सच पूछें, तो सारे भारत में तो गंभीर अपराध फैले ही नहीं। केवल बंगाल में ही खून-खराबी होती रही। बाकी तो कहीं-कहीं क्वचित् चिनगारियाँ उड़ी होंगी। और बंगाल का अर्थ सारा हिन्दुस्तान नहीं है।

प्र०—क्या बंगाल में खून-खराबी और अपराध खूब हुए थे, नहीं ?

उ०—मैं इसका महत्त्व घटाना नहीं चाहता। मैं यह भी मान लूँगा कि बंगाल में इतने गंभीर अपराध हो रहे थे कि सरकार को कड़े उपाय करने पड़ें। फिर भी मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि रौलट कमेटी ने जिन हकीकतों की बिना पर अपनी रिपोर्ट तैयार की, वे ऐसी हरगिज नहीं थीं, जिनसे ऐसे फैसले पर पहुँचना पड़े। संभव है, इसमें मैं बिलकुल

भूल कर रहा हूँ। परन्तु रौलट कमेटी की रिपोर्ट में एक सबसे बड़ा दोष यह है कि उसमें की लगभग सभी हकीकतें गुप्त रूप में ली गयीं और सरकारी कर्मचारियों द्वारा इकट्ठी की गयी हैं।

प्र०—दलील के लिए मान लिया जाय कि वे हकीकतें ऐसी रिपोर्ट देने के लिए काफी नहीं थीं, जैसी रिपोर्ट रौलट कमेटी ने दी। फिर भी आप यह स्वीकार करते हैं कि इस रिपोर्ट से स्वतंत्र भी कड़े उपाय करने की आवश्यकता बंगाल के लिए तो थी ही ?

उ०—यह मैं मानता हूँ।

प्र०—तो फिर इस स्थिति का सामना करने के लिए सरकार को आपकी राय में क्या उपाय करने चाहिए थे ?

उ०—परन्तु सरकार तो ऐसे उपाय तैयार कर चुकी है, जिन्हें मैं बिलकुल नापसन्द करता हूँ। मेरे कहने का मतलब इतना ही है कि इस प्रकार के अपराधों का उन्मूलन करने के लिए सरकार को मजबूत उपाय करने का हक हो सकता है; या किसी समय ऐसा करना उसका फर्ज भी हो सकता है। सरकार को कैसे उपाय तैयार करने चाहिए, इसका जवाब तो मैं इतना ही दे सकता हूँ कि रौलट एक्ट तो हरगिज नहीं। हाँ, यह बताना मेरा काम नहीं कि सरकार क्या उपाय तैयार करे। परन्तु यह मेरा काम हो, तो भी मैं जो कुछ उपाय सुझाऊँ, उनका स्वरूप अपराधियों के सुधार का होगा, दमन का नहीं, जब कि सरकारी उपाय तो सबके सब दमनात्मक ही हैं।

प्र०—मानव-जाति के मौजूदा स्वभाव को ध्यान में रखते हुए कानून और व्यवस्था रखने की जिम्मेदारीवाली सरकार को अक्सर अपनी इच्छा के विरुद्ध भी सख्ती के कानून बनाने पड़ते हैं, क्या इतना भी आप स्वीकार नहीं करेंगे?

उ०—यह स्वीकार करूँगा। अतएव मैं इतना ही कहता हूँ कि अपनी वर्तमान स्थिति में मैं सरकार जो उपाय करे, उसकी केवल जाँच कर

सकता हूँ और उस पर आलोचना कर सकता हूँ। परन्तु यदि यह सुझाने लगूँ कि सरकार को कैसे कदम उठाने चाहिए, तब तो उसी क्षण मेरा मन अपराधी को सजा देने के बजाय सुधारने की बात कहने लगेगा। इस प्रकार मुझे कानून तैयार करना हो, तो वह इसी तरह का बनेगा। फिर भी मैं कह चुका हूँ कि दमनकारी कानून बनाने के सरकार के हक से भी मैं इनकार नहीं करता।

प्र०—आप जब इतना स्वीकार करते हैं, तब तो मैं आपसे यह जरूर पूछ सकता हूँ कि आप जिस (रौलट) कानून के विरुद्ध आलोचना करते हैं, उसके स्थान पर आप सरकार को किस प्रकार का कानून बनाने का सुझाव देंगे ?

उ०—मैं बता ही चुका हूँ कि इसका उत्तर तो मैं नकारात्मक ही दे सकता हूँ। मेरा जवाब वही है कि 'रौलट एक्ट तो हरगिज नहीं'। मैं इसके कारण भी बता सकता हूँ। रौलट एक्ट से कानून की पुस्तक को कलंकित किये बिना ही इस समय वाइसराय के हाथ में काफी अधिकार हैं। हिन्दुस्तान में जो आदमी कभी न रहा हो और वह कभी कानून की किताब खोलकर पढ़े, तो उसके मस्तिष्क पर यह कानून एक ही अमिट असर डालेगा कि हिन्दुस्तान केवल खून-खराबी के अपराधों से भर गया है। मैं निश्चित रूप में मानता हूँ कि वाइसराय के हाथ में जो अधिकार हैं, वे खून-खराबी की जड़ उखाड़ने के लिए काफी हैं और यदि वाइसराय उनका उपयोग न करें और अधिक सत्ता माँगें, तो यह उनकी भूल है। संकटकालीन कानून बनाने की उनके पास सत्ता है और जरूरत हो, तो उन्हें उसका उपयोग करना चाहिए।

प्र०—आप आर्डिनेंसों की बात कर रहे हैं न ?

उ०—जी, हाँ। ऐसा करना उनके लिए वाजिब समझा जायगा। इसके कारण भी बता सकता हूँ, क्योंकि इस बारे में मैंने पूरी चर्चा की है। मैंने अनेक रातें यह सोचने में बितायी हैं कि लॉर्ड चेम्सफर्ड जैसे शान्त मस्तिष्कवाले सज्जन कैसे जाल में फँस गये ! उनके पास इस प्रकार के

संकटकालीन कानून बनाने के अधिकार हैं। वे उनका उपयोग कर सकते हैं। ऐसा करने से उन्हें कोई रोक नहीं सकता। धारासभा को पूछने के लिए भी वे बँधे हुए नहीं हैं। वे एक निश्चित जिम्मेदारी का कदम उठायें और उसका औचित्य बाद में धारासभा के सामने या लोगों के सामने या जैसा आज हो रहा है, लोकमत के सामने साबित करके बता दें, तो काफी है। इसके विपरीत यहाँ तो वे निश्चित घटनाओं की संभावना पहले से मान लेते हैं और देश की साधारण कानून की किताब में एक नया कानून जोड़ देते हैं। मेरी निश्चित मान्यता है कि सचमुच इस मामले में कार्यकारिणी सरकार जरूरत से ज्यादा हद के बाहर चली गयी है।

प्र०—रौलट कानून पढ़ने का मुझे अवसर नहीं मिला। परन्तु मेरा खयाल है कि वह केवल जरूरत पड़ने पर कुछ अधिकार देनेवाला कानून है। इसलिए ऐसी कोई बात नहीं कि वह पास होने से ही अमल में आ गया।

उ०—इतना बाद कर दें तो ?

प्र०—और गवर्नर जनरल को यह मंजूरी देनी चाहिए कि देश के अमुक भाग में यह कानून लागू हो। क्या इसमें लोगों की काफी रक्षा नहीं है ?

उ०—रत्तीभर नहीं। जिस ढंग से ये मंजूरियाँ दी जाती हैं, उसका मुझे काफी अनुभव है। सच पूछा जाय, तो इस मंजूरी की बुनियाद ही दूषित होती है। मूल में अक्सर एकआध पुलिस अफसर—अथवा अफसर ही नहीं—कोई पुलिस का आदमी ही बात खड़ी कर देता है। वह जाकर अपने अफसर के कान भर देता है कि "साहब, फलाँ जगह तो यों हो रहा है, त्यों हो रहा है।" बस, वह ऊपरवाला अफसर सही बात की जाँच करने के लिए गहरा जाय या न भी जाय, वह तो उस खबर देनेवाले की नजर से ही उस बात को देखेगा। इस प्रकार उस बात का मूल दोष आगे बढ़ते-बढ़ते अन्त में ठेठ वाइसराय तक भी जा पहुँचता है। यह सारा तरीका ही, उसकी इतनी अधिक शास्त्रशुद्ध विधियाँ होने पर भी, इतना दोषयुक्त

है और इसीलिए मैं उसे बुरा कहता हूँ। इसीलिए एक साधारण चीज के तौर पर उसे घोषित करने का अधिकार वाइसराय को नहीं लेना चाहिए था। उन्हें अपनी जिम्मेदारी पर काम करना हो, तो वे भले ही खुद यह कानून बनायें; परन्तु धारासभा तो यह कानून हरगिज नहीं बना सकती।

प्र०—तब आप यह कहना चाहते हैं कि ऐसे महत्त्व के मामलों में कोई बात पुलिस के आदमी के खड़ी कर देने से ही ठेठ वाइसराय तक सारे उच्चाधिकारी अपने अनुभव या अपनी जानकारी के आधार पर स्वयं जाँच किये बिना ही ऐसी हरएक बात मान लेंगे ?

उ०—इसमें दूसरी बात नहीं हो सकती, यह मैं नहीं कहता; परन्तु जैसा हमारा संविधान है, उससे तो यही नतीजा निकलेगा। यह बात जानते हुए भी हिन्दुस्तान जैसे देश की, जो कि खून-खराबी का आदी नहीं है, इतनी भयंकर सत्ता मैं तो कार्यकारिणी सरकार के हाथों में हरगिज नहीं सौंपूँगा। रक्तपात हिन्दुस्तान के एक सिरे से दूसरे सिरे तक लोगों की नस-नस में भिद गया होता, तो शायद मैं रौलट कानून के खिलाफ कुछ न कहता। ऐसा होता, तो मैं इस कानून के अधिक ब्योरे में जाकर जाँच करने की जरूरत महसूस करता। अभी तो मैं इस कानून की जाँच करने या उसके बारे में बहस में पड़ने को भी तैयार नहीं, क्योंकि इसका बुनियादी सिद्धान्त ही अनुचित है। किसी इक्के-दुक्के उदाहरण में तो ऐसी सख्ती के औचित्य को शायद मैं समझ भी सकता हूँ। परन्तु जैसे कि अधिकारी स्वयं ही कहना चाहते हैं, यह तो सारी जनता के साथ काम में लेने की बात है। उसकी इस व्यापकता से ही उसकी गंभीरता भयंकर बन जाती है, क्योंकि उसमें तो सरकार कैसे भी मनुष्य को पकड़ सकती है और उससे जमानत माँग सकती है।

प्र०—आप जानते हैं कि लड़ाई के दिनों में भारत-रक्षा कानून की रू से सुरक्षा के लिए जरूरी मालूम होने पर बहुत-से लोगों को नजरबन्द किया गया था। वे लोग सुलह की शर्तों पर हस्ताक्षर होने के बाद छह महीने बीतने पर छूटते। इसलिए यह सवाल बेशक पैदा होता है कि भयं-

कर लोगों के बारे में सरकार क्या करे? उनसे निपटने के लिए सरकार अपने हाथ में कुछ-न-कुछ हथियार रखे, इसमें आपको क्या आपत्ति है?

उ०—मैं आदरपूर्वक बताना चाहता हूँ कि सरकार के पास ऐसा हथियार मौजूद है। संकटकालीन कानून जारी करने की जो सत्ता वाइसराय के पास है, वही यह हथियार है। मेरी नम्र राय के अनुसार तो शांति-काल में रौलट एक्ट जैसा कानून तैयार कर लेने के लिए एक भूमिका के रूप में भारत-रक्षा कानून का उपयोग हरगिज नहीं किया जा सकता। वह कानून तो मुख्यतः लड़ाई के सिलसिले में ही पास हुआ था। लड़ाई के समय जो चीज बर्दाश्त होती है, वह शांति के समय कभी बर्दाश्त नहीं हो सकती।

प्र०—परन्तु यह कानून तो केवल कुछ सत्ता दे देनेवाला है और फिर तीन ही वर्ष के लिए है।

उ०—यह सही है। परन्तु तीन साल के लिए भी सारी जनता को सजा देने की बात मेरा मन तो हरगिज बर्दाश्त नहीं कर सकता।

प्र०—अब मैं आपसे इस बारे में कुछ पूछना चाहता हूँ कि सत्याग्रह-आंदोलन किस उद्देश्य से छेड़ा गया था? क्या अधिक अच्छी राज-नैतिक स्थिति प्राप्त करने के लिए यह आन्दोलन छेड़ा गया था या वह केवल जनता को नापसन्द अनीतिमय कानून का विरोध करने के हथियार के रूप में था? उसकी जरूरत क्यों खड़ी हुई?

उ०—इसकी जरूरत रौलट कानून रद कराने के लिए लोगों की प्रबल इच्छा से ही पैदा हुई थी। जब आप अर्जियाँ वगैरह साधारण साधनों से अपने दुःखों को निवारण कराने में असफल हो जायँ, तब आपको जाँच करके देख लेना होगा कि आपके पास न्याय-प्राप्ति का कोई ऐसा हथियार है या नहीं, जो असाधारण होने पर भी गैर-कानूनी न हो। मैंने देखा कि रौलट कानून के अन्याय और उसकी जड़ में रहनेवाले भय का सामना करने का एकमात्र उपाय सत्याग्रह है।

प्र०—क्या कानूनी उपायों से आप यह नहीं कर सकते थे ?

उ०—इससे नरम और कोई कारगर कानूनी उपाय मुझे नहीं दीखता। एक बहुत बड़े मित्र ने सुझाया था कि मैं जनता की ओर से काफी दस्तखतें कराकर लोकसभा के नाम एक प्रार्थना-पत्र भिजवाता और उसके निर्णय की प्रतीक्षा करता। मैं उनके मत से सहमत नहीं हुआ, फिर भी मेरी निश्चित मान्यता है कि यद्यपि वैध मार्ग से रौलट बिल के विरुद्ध आन्दोलन किया जा सकता था, फिर भी वह प्रयत्न बिलकुल व्यर्थ सिद्ध हुआ होता। इस ढंग से रौलट कानून कदापि रद नहीं कराया जा सकता था।

प्र०—क्यों ?

उ०—क्योंकि मेरा इतने वर्ष का राजनैतिक अनुभव यही है। इस देश में एक भी बाजाब्ता दी गयी अर्जी सफल हुई, यह मैंने तो नहीं देखा।

प्र०—इस पर से क्या आप इस नतीजे पर आये कि सत्याग्रह के सिवा और कोई मार्ग नहीं है ?

उ०—बेशक। और कोई शराफत का रास्ता मेरे लिए खुला नहीं था।

प्र०—आपने मौखिक बयान में कहा है कि अधकचरी शिक्षा को आप निरक्षरता से ज्यादा खतरनाक मानते हैं, क्या यह सही है ?

उ०—बिलकुल ठीक !

प्र०—ऐसा मानने के अपने कारण मुझे बताइयेगा ?

उ०—कारण ये हैं कि सारे भारत में यात्रा करते हुए मैंने देखा कि देश की अज्ञान जनता की अपेक्षा अधकचरे शिक्षाप्राप्त नवयुवक ही बहुत अधिक गैरजिम्मेदार और विचारहीन हैं। इन अर्द्धदग्ध युवकों के मुकाबले में अज्ञान जनता तो बहुत हद तक ठण्डे दिलवाली है। मुझे विश्वास है कि इस अर्धशिक्षित युवक-वर्ग को बुरे रास्ते से वापस लौटाया जा सके, तो देश के सामने उपस्थित प्रश्न एकदम सरल हो जाय।

प्र०—आप अर्द्धशिक्षित किसे कहते हैं ?

उ०—उदाहरणार्थ, हाईस्कूल कक्षा तक पहुँचा हुआ और थोड़ी-सी अंग्रेजी जाननेवाला और उससे भी कम अंग्रेजी इतिहास का ज्ञान रखनेवाला कोई लड़का। वह अखबार पढ़ता है और उन्हें अधकचरा समझकर अपने मन में पहले से बने हुए निश्चित विचारों को बदलने के बजाय अपने में घर करके बैठे हुए उन्हीं विचारों का अखबारों की बातों से केवल पोषण करता है। हिन्दुस्तान की सुख-शान्ति के लिए ऐसा मनुष्य बिलकुल अज्ञानी मनुष्य की अपेक्षा कई गुना अधिक भयंकर है।

प्र०—तब आप इसका क्या उपाय करेंगे?

उ०—मैं अपने ढंग के उपाय कर रहा हूँ और कुछ ऐसा भी मान रहा हूँ कि मुझे इसमें आशा से अधिक सफलता मिली है।

प्र०—वह किस प्रकार?

उ०—इस तरह कि ऐसे मनुष्य भी, जब आप उनसे बिनती करते हैं तो, यद्यपि वे अपढ़ मनुष्यों की अपेक्षा आपसे अधिक माथापच्ची कराते हैं, फिर भी यदि आप धीरज न खो बैठें, तो अंत में वे आपकी दलील की वास्तविकता स्वीकार कर लेते हैं और आपकी नसीहत सुनते भी हैं।

प्र०—तो आप यह कहते हैं कि ये हाईस्कूल की शिक्षा तक पहुँचे हुए लोग अधिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए तैयार होते हैं। सिर्फ जब आप उन्हें अच्छे मार्ग पर चलाना चाहें, तब वे सहज ही आपका कहना न मानकर खूब मगजपच्ची कराते हैं। यही न?

उ०—मेरे मतानुसार तो आज की अपनी सारी शिक्षा-पद्धति ही ऐसी खराब है कि वह मनुष्य को पूरी शिक्षा समाप्त करने के बाद भी स्थिर मन और स्थिर विचारवाला नहीं बनाती। असल में आज इतने अधिक उच्च शिक्षा प्राप्त भारतीय हमारे बीच हैं कि उनके उदाहरणों से हम बिना आनाकानी किये आम राय बना सकते हैं। मैं निर्भय होकर अपनी निश्चित राय प्रकट कर सकता हूँ, क्योंकि मेरे पास काफी जानकारी है और साथ ही बहुत से आदमी इस दिशा में काम करनेवाले और प्रयोग कर देखनेवाले हैं। इसलिए मैं इस निश्चित निर्णय पर पहुँचा हूँ कि हमारी

सारी शिक्षा-पद्धति ही जड़-मूल से सड़ी हुई है और उसे बिलकुल नये सिरे से निर्माण करने की जरूरत है।

प्र०—इस शिक्षा-पद्धति के खास दोष बताइयेगा ?

उ०—एक तो यही कि पाठशालाओं में कोई सच्ची नैतिक या धार्मिक शिक्षा तो दी ही नहीं जाती। दूसरा दोष यह है कि शिक्षा अंग्रेजी भाषा द्वारा दी जाने के कारण लड़कों के दिमाग पर बेहद जोर पड़ता है। परिणामस्वरूप पाठशालाओं में दिये जानेवाले ऊँचे-से-ऊँचे विचार छात्र ग्रहण नहीं कर पाते।

प्र०—आप इसके बजाय कौन सा तरीका अमल में लायेंगे ? [यहाँ लॉर्ड हंटर ने विषयांतर होते देखकर बीच में ही साहबजादा का ध्यान आकृष्ट करके बताया कि कमेटी का काम थोड़ी देर के लिए सैडलर कमीशन का आभास कराता है !] आपके मतानुसार शिक्षा देशी भाषा द्वारा दी जानी चाहिए और शिक्षा-क्रम में धार्मिक शिक्षा को स्थान मिलना चाहिए। यही न ?

उ०—ये दो दोष तो निकल ही जाने चाहिए। इसके सिवा आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में व्यक्तिगत तत्त्व नहीं है। शिक्षकों को विद्यार्थियों के साथ जो निजी सम्बन्ध पैदा करना चाहिए, वह आजकल बिलकुल नहीं पाया जाता। शिक्षक अभी की अपेक्षा अधिक अच्छे और ज्यादा संस्कारी वर्ग के होने चाहिए। ये तीनों दोष मिट जायँ, तो शिक्षा-पद्धति आज सुधर जाय।

प्र०—सत्याग्रह-आन्दोलन की दृष्टि संख्या बढ़ाने की परवाह न करके मुख्यतः लोगों का सत्य और चरित्र-बल बढ़ाने की तरफ है, क्या यह ठीक है ?

उ०—अवश्य; यह बिलकुल सच है।

प्र०—इसका रहस्य इस चीज के अपने में ही है; संख्या-बल से इसका कोई वास्ता नहीं, यही न ?

उ०—अनुसरण करनेवाले की संख्या एक है या दो, यह बात इसमें महत्त्वहीन है।

प्र०—यह आन्दोलन क्या पंजाब में भी फैला है?

उ०—मेरे खयाल से आम तौर पर पंजाब में भी अन्य प्रान्तों की तरह ही अवश्य फैला है। शायद मैं उन लोगों को उँगली के इशारे से न बता सकूँ, जिन्होंने सत्याग्रह की प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर किये हों। परन्तु इतना तो मैंने देख लिया कि पंजाब इस सत्याग्रह के सिद्धान्त को ग्रहण करने और साथ ही सत्याग्रह छेड़ देने के लिए हिन्दुस्तान के किसी भी अन्य भाग के बराबर ही और शायद उनसे ज्यादा शक्तिमान् है। कदाचित् मेरे इस अनुमान में भूल भी हो, फिर भी पंजाब सत्याग्रह के पाठ ग्रहण करने के बारे में हिन्दुस्तान के दूसरे किसी भी हिस्से की कतार में तो है ही, इतना मैं जरूर कहूँगा।

२०-१-'२०

कुमारी फेरिंग को दिल्ली से पत्र :

¶ "प्यारी बिटिया,

"मुझे अफसोस है कि जब तुम आश्रम में आयी, तभी मुझे आश्रम छोड़ना पड़ा। मुझे तुमसे खूब बातें करनी थीं और तुम्हें कोई चिन्ता हो, तो आश्वासन देना था। देवदास ने जब मुझसे कहा कि तुम्हें अकेली आना पड़ा, तब मुझे और भी दुःख हुआ। मैं आशा रखता हूँ कि तुम्हें जो कुछ चाहिए, वह तुम माँग लेती होगी अथवा कोई तुम्हारी जरूरतों का विचार कर लेता होगा।

"भोजनालय में हुए परिवर्तन तुमने जान लिये होंगे। भुवरजी अब भोजनालय में काम नहीं करते। मैं चाहता हूँ कि तुम भोजनालय में बा को मदद दो। परन्तु यह तुम्हें जँचता न हो, तो तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए।

"...हम सच्चे उदार तब कहलाते हैं, जब उदार बनने में हमें

आनन्द आता है। मैंने ऐसे मित्र देखे हैं, जो दुःख पाकर उदार बनते हैं। उनकी उदारता में एक प्रकार से शहीद बनने की बात आ जाती है। कष्ट सहन करते हुए आनंद होना, अपना अपमान करनेवाले पर दया करना और उसकी दुर्बलता के लिए उस पर अधिक प्रेम करना ही सच्ची उदारता अथवा अहिंसा है। परन्तु इस दशा तक हम न पहुँच सकें, तो उसके प्रयोग न करें।···किसी भी कारण तुम अपनी आन्तरिक शान्ति और आनंद खो बैठो, यह मुझे बर्दाश्त नहीं होगा। मैं चाहता हूँ कि तुम अपना जीवन इस तरह व्यवस्थित कर लो कि आश्रम में तुम्हें अधिक आनंद आये, अधिक सुख मिले और सत्य का अधिक अच्छा दर्शन हो। मैं चाहता हूँ कि आश्रम में रहने से तुम अधिक अच्छी ईसाई बनो। कल दिनभर और रातभर मुझे तुम्हारे विचार आये। मैं प्रार्थना करता हूँ कि शरीर, मन और आत्मा से तुम अधिक स्वस्थ बनो, जिससे प्रभु की सेवा के लिए अधिक अच्छा साधन बन सको।

"और मैं चाहता हूँ कि तुम दीपक से मित्रता करो। परन्तु वह एक बड़ा प्रयोग है। वह कौन है, यह महादेव बतायेगा। अधिक लिखने का मेरे पास समय नहीं है।

"तुम्हारी इच्छा हो, तो महादेव को यह पत्र पढ़ा देना। इस पत्र की उत्पत्ति प्रार्थना के उत्तर में है। आज प्रातः दो उत्साह के शब्द तुम्हें लिखने की इच्छा हो गयी। बेचारे महादेव के लिए मुझे ऐसी ही भावना होती है। उसे बूते से ज्यादा बोझा उठाना पड़ता है। ईश्वर की कृपा है कि उसका अन्तःकरण बहुत ही संवेदनशील है। वह अपने प्रति बहुत अक्षमावान् रहता है, परन्तु उसका स्वभाव बड़ा नम्र है। उसे अपने भीतर के दिव्य तत्त्व का पूरा अनुभव नहीं हुआ, इसलिए वह चिन्ता करता रहता है। उसे मदद देना और उससे मदद लेना।

"मद्रास-यात्रा के अपने अनुभव लिखना। मुझे यह भी बताना कि वहाँ तुम्हें कैसा लगा।

"खूब प्यार।"

२४-१-'२०

कुमारी फेरिंग को लाहौर से पत्र :

¶ "प्यारी बिटिया,

"कल लाहौर पहुँचने पर तुम्हारा पत्र मिला। इससे बहुत आनन्द हुआ।

"तुमने अपना हृदय खोलकर रख दिया, इससे मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। मैत्री और प्रेम का यह सबसे सच्चा प्रमाण है। तुम खुले दिल से बात करो, तभी मैं तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ। मुझे खयाल नहीं था कि···की लघुता तुम्हें दिखाई दे गयी होगी। उसके साथ अधिक संसर्ग में आने को मैंने कहा था, इसलिए तुम्हें यों ही चेता दिया था। कैसे भी हो, परन्तु मेरी चेतावनी तुम्हें समय पर मिल गयी। ठीक समय पर ठीक बात करने की समझदारी और हिम्मत ईश्वर तुम्हें दे देगा। एक बात अच्छी तरह याद रखना! अपना त्याग इस हद तक न पहुँचने देना, जिससे तुम्हारा दिल खट्टा हो जाय और तुम्हें अपने और आसपासवालों के प्रति अरुचि हो जाय। यह सबसे बड़ा लालच है और कार्यकर्ता अक्सर इसके शिकार बन जाते हैं। वे त्याग किये ही चले जाते हैं और अन्त में उसका जवाब न मिलने पर आसपास की प्रत्येक वस्तु और व्यक्ति से उन्हें अरुचि हो जाती है। हमारा सच्चा त्याग तभी कहा जायगा, जब हम सामने से जवाब की कोई अपेक्षा ही न रखें। इस ('सैक्रीफाइस') शब्द का धात्वर्थ अच्छी तरह जान लेना चाहिए। तुम जानती होगी कि उसका अर्थ (टु मेक सेक्रेड) पावन करना अथवा पावन होना होता है। जब हम चिढ़ते या क्रोध में आते हैं, तब अपने को या दूसरे को पावन नहीं कर सकते। अक्सर कथित ठोस सेवा से एक दिव्य स्मित में अधिक सेवा या यज्ञ (सैक्रीफाइस) अर्थात् पावन होने और करने की बात होती है। जब ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ, तब मेरी और मॉडलीन का* उदाहरण मुझे याद

* मेरे खयाल से मेरी और मार्था चाहिए। बाइबिल में मेरी और मॉडलीन का उल्लेख आता है, परन्तु बापू की दलील के साथ मेल खानेवाली कोई बात उनकी

आता है। दोनों अच्छी थीं, किन्तु एक, जो कुछ भी ऊधम मचाये बगैर प्रभु में तन्मय हो गयी, दूसरी की अपेक्षा अधिक त्याग करनेवाली थी। तुम्हारा भी शायद यही हाल होता होगा। ··· का या किसीका भी दिल जीत लेने के लिए अपने मन पर जरूरत से ज्यादा बोझा न डालना। तुम्हें लगे कि अमुक के साथ निभ ही नहीं सकती, तो अलग हो जाना अच्छा है। ऐसा करके भी उसकी सेवा हो सकती है। हाँ, उसके साथ निकट का सम्बन्ध नहीं बनाया जा सकता। वहाँ ऐसा कुछ न करना, जिससे तुम्हारा शरीर अथवा मन थक जाय।

"खाने के मामले में या और किसी भी मामले में तुम्हें जो सुविधा चाहिए, उसे निःसंकोच माँग लेना। मगनलाल से, इमाम साहब से या जो भी तुम्हारे साथ निकट सम्बन्ध में आया हो, उससे कह देना।

"हाँ, दीपक का तुम जैसा वर्णन कर रही हो, वह ठीक वैसा ही है। मैं चाहता हूँ कि तुम धीरे से कहकर उसे अपनी जिम्मेदारी का भान कराओ और उसे पढ़ाई में एकाग्र करो। उसके पत्र-लेखन पर ध्यान

मालूम नहीं होती। 'नये करार' में सेण्ट लुक की सुवार्ता अध्याय १० में मार्था और मेरी की बात इस प्रकार है :

"अब ऐसा हुआ कि चलते-चलते वे एक गाँव जा पहुँचे। वहाँ मार्था नाम की एक स्त्री ने ईसा का अपने घर में स्वागत किया।

उसके मेरी नाम की एक बहन थी। वह ईसा के चरणों में बैठी और उनका उपदेश सुनने लगी।

परन्तु मार्था स्वागत की भारी धूमधाम में फँस गयी। वह ईसा के पास जाकर कहने लगी : 'भगवन्, मेरी बहन स्वागत का सारा भार अकेली मुझ पर डालकर यहाँ बैठी रहे, यह आपको ठीक लगता है? उससे कहिये कि मुझे मदद देने लगे।'

ईसा ने जवाब में कहा :

'मार्था, मार्था, तुम बहुत सी चीजों की धूम कर रही हो और तकलीफ उठाती हो। परन्तु असली जरूरत जिस एक चीज की है, उसके लिए काम करना मेरी ने चुना है। वह काम उससे नहीं छुड़वाया जा सकता'।"

देना। यह देखना कि वह प्रतिदिन अपनी माताजी को पूरी जानकारी के साथ स्पष्ट अक्षरों में पत्र लिखता रहे।

"तुम्हारे दुःख से मेरा हृदय द्रवित होता है। तुम्हारी अपने भाई के पास डेन्मार्क पहुँच जाने की इच्छा मैं समझ सकता हूँ। परन्तु तुमने दूसरा मार्ग चुना है। इस मार्ग में औरों को छोड़कर एक की ही सेवा करने की बात नहीं हो सकती। ईश्वर तुम्हें कर्तव्य-पालन का बल दे।

"महादेव के बारे में तुम जो लिखती हो, उससे मैं सहमत हूँ। वह अपने स्वास्थ्य की व्यर्थ चिन्ता करता रहता है। उसके शरीर के कारण नहीं, परन्तु उसकी आत्मा के कारण सब उसे चाहते हैं। उसकी बीमारी में उसकी सेवा करना मित्रों के लिए सौभाग्य है।

"प्यार।"

कुमारी फेरिंग को दूसरा पत्र : २५-१-'२०

¶ "प्यारी बिटिया,

"नरहरि मुझसे कहते हैं कि तुमने अब इमाम साहब के यहाँ खाना तय किया है। मैं खुश हुआ। अन्य किसीकी अपेक्षा तुम्हें वहाँ अधिक घर जैसा लगेगा। और कुछ नहीं तो इसीलिए कि वहाँ तुम्हारे साथ अंग्रेजी में बात करनेवाला कोई न कोई सदा मिल जायगा। फातिमा पर अपने विवेकयुक्त प्रेम की वर्षा करना, तुम्हें तत्काल उत्तर मिलेगा।

"तुमने अपना स्वास्थ्य बिगाड़ लिया या मन की शान्ति गँवा दी, तो मुझे बड़ा दुःख होगा। 'बुराई का प्रतीकार न करो' का अर्थ जितना ऊपर से दिखाई देता है, उससे कहीं अधिक गहरा है। उदाहरणार्थ,··· की बुराई का प्रतीकार न करना चाहिए। अर्थात् उस पर तुम्हें या मुझे चिढ़ना नहीं चाहिए और अधीर नहीं होना चाहिए। हमें मन में ऐसा विचार नहीं लाना चाहिए कि इतना-सा सत्य उसकी समझ में क्यों नहीं

आता ? मैं उसके प्रति जो प्रेम रखता हूँ, उसका जवाब क्यों नहीं मिलता ? तेंदुआ जैसे अपने शरीर पर के निशान नहीं बदल सकता, वैसे ही वह भी अपने स्वभाव के विरुद्ध नहीं चल सकता। तुम और मैं प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हैं, तो अपने स्वभाव का अनुसरण करते हैं। वह अपना प्रत्युत्तर नहीं देता, तो अपने स्वभाव का अनुसरण करता है। इसके लिए हम दुःखी हों, तो वह हमारा बुराई का प्रतीकार कहा जायगा। तुम इससे सहमत हो ? मेरे खयाल से उस शिक्षा-सूत्र का गहरा अर्थ यह है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम सबके साथ अपने व्यवहार में समता रखो।

"दूसरी बात मुझे यह कहनी है कि तुम्हें अपने शरीर के स्वास्थ्य के लिए जो कुछ चाहिए, उसके बिना काम न चलाना। वहाँ किसीसे माँगने में संकोच होता हो, तो मुझे लिखना। तुमसे मैं यह चाहता हूँ कि जब तक मुझे तुम्हारी चिन्ता रहती है, तब तक तुम मुझे रोज लिखती रहो।

"प्यार और प्रार्थना के साथ।"

१-२-'२०

लो० मा० तिलक महाराज ने 'यंग इंडिया' के सम्पादक के नाते बापूजी को एक पत्र लिखा था। वह पत्र उस पर छोटी-सी टिप्पणी के साथ छापा :

"पिछले अंक में 'सुधारों का प्रस्ताव' शीर्षक अपने लेख में आपने मुझे यह माननेवाला बताया है कि 'राजनीति में सभी चलता है' : 'Everything fair in politics'। यह देखकर मुझे अफसोस हुआ। इस पत्र द्वारा मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि आपके उस लेख में मेरा विचार सही रूप में पेश नहीं किया गया। राजनीति साधुओं की नहीं, परन्तु संसारियों की बाजी है और बुद्ध के 'अक्कोधेन जिने क्कोधं' इस उपदेश के बजाय 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' यह श्रीकृष्ण का सूत्र मानना मैं अधिक पसन्द करता हूँ। इस बारे में मेरा सारा

मतभेद और सरकार जहाँ तक हमारे साथ मिलकर काम करे, वहाँ तक उसके साथ मिलकर सुधारों का अमल करने के बारे में मेरे 'Responsive Co-operation' का अर्थ भी इस सूत्र से समझ में आ जाता है। दोनों मार्ग समान रूप में न्यायपूर्ण और पवित्र हैं। परन्तु पहले मार्ग से दूसरा इस दुनिया के अधिक अनुकूल है। इस भेद के बारे में अधिक जानकारी मेरे 'गीता-रहस्य' से मिल सकेगी।

पूना शहर आपका

१८-१-'२० बा० गं० तिलक"

[धर्म-ग्रंथों के अर्थ के विषय में लोकमान्य के साथ विवाद में पड़ने से मैं स्वाभाविक रूप में हिचकता हूँ। परन्तु कुछ मामले ऐसे होते हैं, जिनमें अन्तःकरण की आवाज किसी ग्रन्थ के अर्थ से बढ़कर होती है। लोकमान्य के बताये हुए दोनों सूत्रों में मुझे तो कोई विरोध नहीं दीखता। बुद्ध का सूत्र एक सनातन सिद्धान्त उपस्थित करता है और भगवद्गीता का सूत्र यह बताता है कि तिरस्कार को प्रेम से और असत्य को सत्य से जीतने का सिद्धान्त किस तरह अमल में लाया जा सकता है। यदि यह सच हो कि दूसरों के साथ हम जैसा बर्ताव करें, वैसा ही प्रभु हमारे साथ रखता है, तो सख्त सजा से बचने के लिए हमें क्रोध का बदला क्रोध से नहीं, परन्तु क्रोध के प्रति भी मृदुता से ही देना चाहिए। यह नियम वैरागियों के लिए नहीं, बल्कि खास तौर पर संसारियों के लिए ही है। लोकमान्य के प्रति मुझे आदर है, फिर भी मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि यह कहने में कि संसार साधुओं के लिए नहीं है, मानसिक मन्दता प्रकट होती है। पुरुषार्थ करना सब धर्मों का सार है। और पुरुषार्थ-साधु—सचमुच सज्जन—बनने के उत्कट प्रयास के सिवा और कुछ भी नहीं है।

अन्त में, जब मैंने लोकमान्य के मतानुसार 'राजनीति में सब कुछ चलता है' वाक्य लिखा, तब उनका अनेक बार कहा हुआ 'शठं प्रति

शाठ्यम्' वाक्य मेरे दिमाग में घूम रहा था। मेरे खयाल से तो उसमें गलत नीति भरी हुई है। मैं यह आशा छोड़ नहीं सकता कि कुशाग्र-बुद्धि लोकमान्य खुद ही इस सूत्र का खंडन करने के लिए एकआध दार्शनिक ग्रंथ लिखकर किसी दिन भारत को चकित करेंगे। चाहे जो हो, परन्तु 'शठं प्रति शाठ्यम्' में समाये हुए वाद के विरुद्ध मैं अपना तीस वर्ष का अनुभव खड़ा करता हूँ। सही नीति तो 'शठं प्रत्यपि सत्यम्' ही है।]

३०-४-'२०

सिंहगढ़ पर। दक्षिण अफ्रीका के एक मि० लेजेरस गेब्रियल को पत्र में लिखते हैं :

¶ "मैंने अपने दो लड़के दक्षिण अफ्रीका को दिये हैं। वे जब तक उन्हें ठीक लगे, वहाँ रहें। इससे अधिक देने की मेरी शक्ति नहीं है। जितने आदमी मिल सकें, उतनों की यहाँ जरूरत है। इसी प्रकार रुपये की।"

अहमदाबाद के मि० गिलेस्पी को लिखते हैं :

¶ "ईसाई-धर्म में प्रार्थना को बड़ा महत्त्व दिया गया है, यह मुझे मालूम है। किन्तु मुझ पर यह असर है कि सभी प्रार्थनाओं की तरह ईसाई-प्रार्थना भी अधिकांश में केवल यांत्रिक बन गयी है और अक्सर स्वार्थी भी होती है। हिन्दू-प्रार्थना-विधि में से इस यांत्रिक और स्वार्थी अंश के साथ अपनी सारी शक्ति से लड़ रहा हूँ।"

निर्मलाबहन* को लिखते हैं :

"तुम्हारे साथ बात होने के बाद मुझे तुम्हारे बारे में बहुत विचार आये हैं। मैं देखता हूँ कि तुम चाहो तो बहुत कुछ कर सकती हो। लेकिन तुम्हारा मन स्थिर होने की जरूरत है। तुम जितना सुनो और पढ़ो, उस पर विचार करना चाहिए और अमल करना चाहिए। तुम्हारी नोटबुक पर से मैंने देख लिया है कि तुम्हारी विचार-शक्ति मन्द है। अब मेरी सलाह यह है। तुम जितना पढ़ो, उसका अर्थ समझो और विचार

---

* बापूजी के भानजे की बहू।

करो और जो अच्छा लगे, उस पर अमल करो। 'नवजीवन' ध्यानपूर्वक पढ़ो। गीताजी के प्रत्येक श्लोक के अर्थ का विचार करो। तभी तुम आगे बढ़ोगी। आश्रम में ही मरना है, यह निश्चय कर आश्रम का हरएक काम देख लो। यह देख लो कि तुम उनमें से किसमें अधिक-से-अधिक उपयोगी हो सकोगी और तदनुसार चलो। चि० मगनलाल से मिलती रहना और उनसे सब कुछ जान लेना। उनसे काम माँगना। यह सोच-कर कि तुम बालक हो, दूसरों के साथ कैसे बोला जाय, कमरे में बन्द न रहना; बल्कि यह मानकर कि जब तक तुम्हारा हृदय साफ है, तब तक तुम सबसे मिल-जुल सकती हो। यह समझकर कि सब भाई हैं, सभीसे सीखो। सबकी सेवा करो। उचित समय पर मैं तुम्हें बम्बई ले जाऊँगा। अपनी लिखावट साफ बनाना। अक्षर छापे जैसे बनाना। मुझे नियम-पूर्वक साफ अक्षरों में लिखना।"

छोटी-छोटी खबरों से भरे हुए कैसे पत्र लिखते हैं, इसकी सुन्दर कल्पना देवी वेस्ट को लिखे गये निम्नलिखित पत्र से हो जाती है :

¶ "प्रिय बहन देवी,

"आज जहाँ पहुँचा हूँ, वह एक छोटा-सा, एकान्त, ऐतिहासिक किला है। आसपास का दृश्य भव्य है और हवा बड़ी ताजगी लानेवाली होने पर भी कठोर नहीं है। मेरा शरीर बहुत दुर्बल हो गया है। उसे आराम देने यहाँ आया हूँ। मेरे साथ डॉ० जीवराज मेहता, महादेव देसाई, स्वामी आनंद, प्रभुदास, बालकृष्ण और दीपक हैं। इनमें से अकेले प्रभुदास को ही तुम जानती हो। इस पत्र में दूसरों का परिचय नहीं कराऊँगा, क्योंकि पत्र मुझे जल्दी से पूरा करना है। इस समय सिर खूब फट रहा है। परन्तु तुम्हारा पत्र हाथ में ले लिया है, तो जवाब खत्म ही कर दूँ।

"बा का स्वास्थ्य अच्छा है। वे हरिलाल के बच्चों की देखरेख रखती हैं। पिछली २० तारीख को फातिमा की शादी एक सुन्दर युवक के साथ हो गयी। विवाह बहुत सादा, बिना किसी धूमधाम के हुआ।

विवाह आश्रम-भूमि पर ही हुआ। उसके पति अहमदाबाद में ही रहते हैं, इसलिए फातिमा से बार-बार भेट होती ही रहेगी।

"इंग्लैण्ड से निकाल दिये जाने के बाद मि० कैलनबॅक की तरफ से कोई समाचार नहीं। मैंने तलाश करायी, पर कोई पता नहीं चला।

"मिसेस वेस्ट के स्वास्थ्य-समाचार सुनकर अफसोस हुआ। आशा है, अब वे अच्छी हो गयी होंगी। मेरी तरफ से हिल्डा को प्यार। क्या वह मुझे कभी याद करती या मेरा विचार भी करती है?

"आश्रम में मकान बनाने का काम अभी तक चलता ही रहता है। आशा रखता हूँ कि किसी दिन तुम उसे देखोगी और उसकी रचना में अपना हिस्सा भी दोगी।

"मेरा जीवन तो सदा की भाँति खूब प्रवृत्तिमय रहता है। जिसे मैं अपना कह सकूँ, ऐसा एक क्षण भी नहीं होता।

"देवदास बनारस में है। हिन्दी की पढ़ाई पक्की करने वहाँ गया है। हरिलाल व्यापार में आगे नहीं बढ़ रहा है। पता नहीं, अन्त में क्या करेगा।

"भाई कोतवाल को बहुत समय से देखा नहीं। उनकी ओर से कोई समाचार भी नहीं। परागजीभाई बा के भाई के साथ हो गये हैं। मेढ़ कुछ नहीं कर रहे हैं। छगनलाल हिसाब रखते हैं। मगनलाल मुख्य व्यवस्थापक है। उसके बच्चे बड़े हो गये हैं। कहते हैं, प्रभुदास को क्षय है। काशीबहन की शरीरयष्टि बहुत कमजोर तो है ही। कृष्णदास की तन्दुरुस्ती भी बहुत अच्छी नहीं मानी जा सकती। इमाम साहब खरीद का काम सँभालते हैं। उनकी पत्नी आश्रम का सिलाई का काम बहुत करती हैं। तुम जिन्हें जानती हो, उनके काम-काज का मैंने काफी वर्णन कर दिया।

"प्यार।"

मौलाना अब्दुल बारी को लिखा :

¶ "प्रिय मौलाना साहब,

"मैं फैजाबाद नहीं आया, इसके लिए आपसे माफी चाहता हूँ। अपने स्वास्थ्य को गंभीर हानि पहुँचाये बिना मैं आ नहीं सकता था, और कुछ नहीं तो आगामी लड़ाई के लिए मैं तन्दुरुस्ती बनाये रखना चाहता हूँ। मेरा बायाँ पैर मोच खा गया दीखता है। यहाँ उसे ठीक कर लेने की आशा रखता हूँ, यदि थोड़े दिन यहाँ रह सका तो। हमारे मित्रों के सामने मेरी तरफ से वकालत कीजिये।

"इंग्लैण्ड जाने के बारे में तो आपने सब कुछ सुन लिया होगा। सब लोगों की खास इच्छा के बिना मेरी जाने की इच्छा न थी। ऐसा कुछ मालूम नहीं पड़ा, इसलिए मैंने मि० मांटेग्यू को तार दे दिया है। उसके उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

"मुझे बहुत जरूरी मालूम होता है कि स्थायी सलाह-मशविरे के लिए मौलाना अबुल कलाम आजाद और मौ० शौकत अली को बम्बई में रहना चाहिए। संगठन फौरन शुरू हो जाना चाहिए। यह दुर्भाग्य है कि मौ० अबुल कलाम अभी तक बीमार हैं। मैंने उन्हें यथासंभव जल्दी बम्बई आ जाने को कह दिया है।"

श्रीमती जिन्ना को एक पत्र में लिखा :

¶ "मि० जिन्ना साहब से कहिये कि मैं आपको याद करता हूँ। आपको उन्हें हिंदुस्तानी और गुजराती सीख लेने को समझा-बुझाकर तैयार करना चाहिए। आपकी जगह मैं होऊँ, तो उनके साथ हिंदुस्तानी या गुजराती में ही बोलना शुरू कर दूँ। ऐसा करने में आप अपनी अंग्रेजी भूल जायँ या एक-दूसरे की बात आप न समझ सकें, ऐसा कोई डर नहीं। या फिर है ?

"हाँ, तो शुरू करेंगी ? मेरे प्रति प्रेम रखती हैं, इसके लिए भी मैं आपसे शुरू करने को कहता हूँ।"

सरलादेवी चौधरानी को कल लिखा :

¶ "यह लिख रहा हूँ और दीपक को बालकृष्ण के मधुर सितार के

साथ गाते हुए सुन रहा हूँ। बालकृष्ण मुझे भगवान् से मिली हुई महान् भेट है। वह फूल की तरह निर्दोष है। मेरी सँभाल माता जैसी रखता है।

"खिलाफत के बारे में ए० पी० को मैंने जो सन्देश दिया है, वह आपने पढ़ा? यह सोचकर कि 'यंग इण्डिया' की प्रति आपके पास नहीं होगी, एक प्रति भेज रहा हूँ। उसमें खादी पर मेरा लेख है। जरूर पढ़ना।

"कल गाया हुआ भजन भेजता हूँ :

मोरी लागी लगन गुरु-चरनन की।
चरन बिना मुझे कछु नहीं भावे।
झूठ माया सब सपनन की॥ मोरी०
भवसागर सब सूख गया है।
फिकर नहीं मुझे तरनन की॥ मोरी०
मीरां कहे प्रभु गिरिधर नागर।
उलट भई मोरे नयनन की॥ मोरी०"

सरलादेवी को आज दूसरा पत्र लिखा :

"कल पूना से सिंहगढ़ रवाना होने से पहले आपको पेंसिल से एक पत्र लिखा है। डॉक्टर ने मुझसे कहा कि मेरा स्वास्थ्य बहुत गिर गया है [illegible]र पैदल चलकर ऊपर चढ़ने का साहस मुझे नहीं करना चाहिए। [illegible]तु अपनी मूर्च्छा में मुझे लगा कि मैं चढ़ सकूँगा। इसलिए महादेव, दी[illegible] और मैं चढ़ने लगे। परन्तु आपको जानकर दुःख होगा कि हम आधे फर्लांग भी नहीं गये होंगे कि मेरी बायीं जाँघ में असह्य वेदना होने लगी और मुझे प्रयास छोड़ देना पड़ा। मैं बड़ा शर्मिन्दा हो गया और मेरी ताकत इतनी ज्यादा घट गयी है, यह जानकर बहुत दुःखी हुआ। परन्तु इस बुरी हालत में भी मुझे प्रसन्न रहना चाहिए। मैं प्रयत्न करूँगा।

"दो सपनों से अभी उठा हूँ। एक सपना आपके बारे में था और

दूसरा खिलाफत का था। आप दो ही दिन में लौट आयीं, इससे मुझे खूब आनन्द हुआ। मैंने पूछा कि इतनी जल्दी कहाँ से ? आपने कहा कि 'यह तो मुझे अपने पास बुला लेने की पंडितजी* की युक्ति थी। जगदीश के विवाह में तो अभी बहुत देर है। इसलिए वापस आ गयी।' बाद में जब मुझे पता चला कि वह तो स्वप्न था, तो मेरा आनन्द जाता रहा। फिर सो गया। अब मुसलमानों की एक बड़ी मजलिस में जा पहुँचा। साधारण भाषा के तौर पर हिन्दुस्तानी के उपयोग के बारे में बोलते हुए एक वक्ता ने बताया कि बगदादी लोग जो बोली बोलते हैं, उसे भी हिन्दुस्तानी की ही शाखा समझना चाहिए और उसका अध्ययन करना चाहिए। सभा में से औरों ने इस तरह हिन्दुस्तान से बाहर जाने का विरोध किया। अब्दुल बारी साहब मेरे पास ही बैठे थे। उन्होंने उस वक्ता का पक्ष लिया। परन्तु सभाजन इतने गुस्से में आकर विरोध करने लगे कि वे कुछ बोल न सके। उस वक्ता के प्रति इस प्रकार का व्यवहार बारी साहब को पसन्द नहीं आया। मैं इसके गुण-दोष समझाने लगा। फिर इस मुद्दे पर बहस चली कि यह कैसे हो सकता है। मैंने किसी भी कीमत पर सत्य पर डटे रहने की आवश्यकता पर जोर दिया। इतने में सभा में गड़बड़ मच गयी और मैं जाग गया। जागकर तुरन्त यह पत्र लिखने बैठ गया।

"दीपक महादेव के साथ कुरसी के बिना चढ़ गया। इससे उसे कुछ भी नहीं हुआ। निकलते वक्त उसने दूध पी लिया था और आकर केक खायी। अब नींद में खर्राटे ले रहा है। प्रभुदास बहुत अच्छा दीख रहा है और अधिक स्फूर्ति में है। बालकृष्ण हमारे सामने आधे रास्ते तक आये थे। रेवाशंकरभाई कल आनेवाले हैं। डॉक्टर अभी-अभी मेरे लिए दो बकरियाँ ले आये। मुझे खबर लगी कि तिलक महाराज भी आज शाम को आनेवाले हैं। उनके आदमी तो उनके बंगले में आ भी गये हैं।

"बकरियाँ अब अपने रुचिर संगीत के साथ प्रवेश कर रही हैं। ब्याह निपट गया हो या मुल्तवी हो गया हो, तो मैं आशा रखता हूँ कि

---

* सरलादेवी के पति पं० रामभज दत्त चौधरी। दीपक उनका पुत्र।

आप भी मंडली में शामिल हो जायँगी और अपने संगीत तथा हास्य से आनन्द में वृद्धि करेंगी।

"यूँ तो मैं लिखता ही रह सकता हूँ, परन्तु मुझे रुक जाना चाहिए। यह डर नहीं है कि आप उकता जायँगी, परन्तु दूसरे कामों से निपट लेना चाहिए।

"आपने (जलियाँवाला) बाग फण्ड में अपनी चूड़ियाँ देने की घोषणा की थी, सो उनकी माँग करनेवाले लाला गिरधारीलाल के पत्र की मुझे अभी-अभी याद दिलायी गयी है। मेरे खयाल से कल आपको याद-दिहानी भेज दी गयी है। कुछ भी हो, मैं तो उस बात की याद आपको दिला देता हूँ। मैंने समझा था कि आपने वहीं की वहीं चूड़ियाँ दे दी होंगी।

"मेरे पैर की आप चिन्ता कीजिये ही नहीं। इस स्थान की गजब की आबहवा से मैं तरोताजा होकर जाऊँगा। दीपक का भी कोई फिक्र न करना। हम सब उसकी सँभाल रखेंगे। शंकरलाल उसे मोटर में कोलाबा सैर कराने ले गये थे। उन्होंने मुझसे पूछा, इसे सिनेमा ले जाऊँ? मैंने कहा, 'यह जिम्मेदारी मैं नहीं लूँगा।' आपकी इजाजत हो, तो फिर कभी भेज दूँगा। मैंने तो इसके बजाय उसे कोलाबा या विक्टोरिया गार्डन में सैर के लिए ले जाने को कहा। घूमने जाने का यह इतिहास है। महादेव तथा दीपक ने शंकरलाल के साथ खाना खाया था। दीपक के मामले में मैंने जो किया, सो ठीक था न?

"प्यार।"

१-५-'२०

सरलादेवी को कल शाम को लिखा गया पत्र :

¶ "इस समय शाम के लगभग पाँच बजे हैं। बिस्तर से अभी-अभी उठा हूँ। कल रात को सख्त सिर-दर्द हुआ था और ग्यारह बजे तक अर्ध-जाग्रत-सी स्थिति में था। उसके बाद अच्छी तरह सोया। अब

सिर जरा भी नहीं दुख रहा है। परन्तु एक फर्लांग भी चला नहीं जाता। फिर भी मेरी बिलकुल चिन्ता न करना। आप मेरी स्थिति जान लें और पखवाड़े का जो वादा किया था, उसे पूरा करें, इसीके लिए यह लिख रहा हूँ। तब तक जगदीश की शादी निपट जायगी या स्थगित हो जायगी। पंडितजी को भी साथ ला सकें, तो इससे सुन्दर और क्या बात होगी ? उन्हें आश्रम-जीवन देखना चाहिए और बिताना चाहिए।

"तिलक महाराज आज सुबह मिल गये। साथ में उनके पुत्र और दामाद आये थे। केवल औपचारिक वार्तालाप हुआ।

"दीपक का ठीक चल रहा है। लगता है, यह जगह उसे पसन्द आ गयी। उसकी रुचियाँ शुद्ध हैं। परन्तु वह आसानी से बातों में आ जाता है।

"रेवाशंकरभाई सवेरे आये। सुन्दर कैरियाँ (कच्चे आम) लाये हैं। उनमें हिस्सा बँटाने के लिए आप हाजिर नहीं हैं, यह मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगता।

"आज प्रातः ठीक समय पर उठा था। परन्तु फिर सो गया। सूर्योदय नहीं देखा। तुम यहाँ होती, तो मैं जानता हूँ कि तुम मुझे राज-राजेश्वर की सवारी देखने को खींच ले गयी होतीं।

"बादशाह 'ईस्ट एण्ड वेस्ट' में लिखते हैं। आप जब साथ थीं, तभी कतरन आयी थी। उस पर से मैंने एक लेख लिखवाया है। अच्छा है। आप प्रमाण-पत्र देंगी।

"अब मेरी माँग। मैं जानता हूँ कि आपने बहुत दिया है। परन्तु जैसे-जैसे मिलता जाता है, वैसे-वैसे मेरी भूख बढ़ रही है। आपने कहा था कि आश्रम में काम करने में आपको शर्म आती है। वहाँ घर का काम करना शुरू करके आप उस शर्म को निकाल नहीं डाल सकतीं ? मेरी खातिर ऐसा करने लगें, तो भी मुझे हर्ज नहीं। इसमें अपने विचार बदलने का प्रश्न नहीं। यह तो केवल अपनी अरुचि निकाल देने का सवाल है। आप महान् और भली हैं, फिर भी जब तक आप घर का काम करने की

शक्ति प्राप्त न कर लें, तब तक मैं आपको पूर्ण स्त्री नहीं कहूँगा। आप वैसा करने का दूसरों को उपदेश जरूर देती हैं। आपका वह उपदेश अधिक प्रभावशाली तभी बनेगा, जब लोग देखेंगे कि इस उम्र में और ऐसी स्थिति में पहुँच जाने पर भी आप काम करने में हलकापन नहीं मानतीं। प्यार।

आपका

स्मृतिकार (लॉ-गिवर)"

आज अष्टावक्र गीता' में से नीचे के तीन श्लोक उतारकर सरलादेवी को भेजे और लिखा :

* मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्त्यज।
क्षमार्जवदयातोषसत्यं पीयूषवद् भज॥ २॥
यदि देहं पृथक्कृत्य चिति विश्रम्य तिष्ठसि।
अधुनैव सुखी शान्तो बन्धमुक्तो भविष्यसि॥ ४॥
मुक्ताभिमानी मुक्तो हि बद्धो बद्धाभिमान्यपि।
किंवदन्तीह सत्येयं या मतिः सा गतिर्भवेत्॥ ११॥

"कल मैं अष्टावक्र गीता पढ़ रहा था। उसमें मुझे जो श्लोक सबसे ज्यादा प्रभावशाली लगे, वे उतारकर भेज रहा हूँ। आपने एक बार कहा था कि दूसरे कवियों की दूसरी चीजें आप पर जितना असर करती हैं, उतना भगवद्गीता नहीं करती। इसलिए हो सकता है कि ये श्लोक भी आप

---

* अष्टावक्र मुनि जनक से कहते हैं :

२. हे तात, यदि तू मुक्ति चाहता है, तो विषयों का विष की तरह त्याग कर (और) क्षमा, ऋजुता, दया, संतोष और सत्य का अमृत की भाँति सेवन कर।

४. यदि तू देह को अलग करके चिद् (रूप) में स्थिर होकर रहेगा, तो तत्काल सुखी, शांत और बंधनमुक्त हो जायगा।

११. जो अपने को मुक्त मानता है वह मुक्त है, जो अपने को बद्ध मानता है वह बँधा हुआ है। यह कहावत सही है कि जैसी मति, वैसी गति हो जाती है।

पर असर न करें। परन्तु जो वस्तु इस समय मुझे पावनकारी लगी है, उसमें आपको शरीक किये बिना नहीं रह सकता। और मुझे जबरन आलसी रहना पड़ता है, क्योंकि मैं अभी तक बिस्तर छोड़ नहीं सकता। ऐसे समय ये श्लोक मुझे सान्त्वना देनेवाले बन गये हैं।"

२-५-'२०

किसी मि० रहमान को लिखा :

¶ "ब्रिटिश माल का बहिष्कार करना (उनके लिए) सजा है। मैं ब्रिटिश माल खरीदूँ, इससे ब्रिटिश राज्य जो अन्याय करता हो, उसमें शरीक नहीं हो जाता। परन्तु जब सरकार अन्याय कर रही हो, तब उसके साथ सहयोग करूँ, तो सरकार के अन्याय में हिस्सेदार बनता हूँ। इसलिए अन्यायी सरकार के साथ असहयोग कर्तव्य या धर्म हो जाता है। यदि प्रभावशाली मुसलमानों की भीरुता के कारण और हिन्दुओं के अलगपन के कारण मुसलमान जनता असहयोग को न अपना सके, तो उसका अनिवार्य परिणाम रक्तपातमय विप्लव के रूप में होगा, यदि खिलाफत के प्रश्न का फैसला मुसलमानों के विरुद्ध हो तो। परन्तु उपर्युक्त दोनों वर्ग मुसलमान जनता में फैली भावना की आंतरिकता समझ लेंगे, तो वे असहयोग को पूर्णतः विजयी बनायेंगे और अभीष्ट परिणाम पैदा कर सकेंगे।"

सरलादेवी को पत्र :

¶ "कल अष्टावक्र गीता के पहले अध्याय में से पसन्द आये हुए तीन श्लोक भेजे थे। उसमें जनक सीखते हैं कि अपना मोक्ष अपने ही हाथ में है। उसका उपाय इन्द्रियों के मोहजाल से छूटना है। दूसरे अध्याय में यह ज्ञान मिल जाने पर होनेवाले आनन्द को व्यक्त करते हैं। नीचे के श्लोक देखिये :

*अहो निरञ्जनः शान्तो बोधोऽहं प्रकृतेः परः।
एतावन्तमहं कालं मोहेनैव विडम्बितः॥ १ ॥

* जनक कहते हैं :

तन्तुमात्रो भवेदेव पटो यद्वद् विचारितः।
आत्मतन्मात्रमेवेदं तद्वद्विश्वं विचारितम् ॥ ५ ।
आत्माज्ञानात् जगद् भाति आत्मज्ञानान्न भासते।
रज्ज्वज्ञानादहिर्भाति तज्ज्ञानाद् भासते न हि ॥ ७ ॥
मत्तो विनिर्गतं विश्वं मय्येव लयमेष्यति।
मृदि कुम्भो जले वीचिः कनके कटकं यथा ॥ १० ॥
अहो जनसमूहेऽपि न द्वैतं पश्यतो मम।
अरण्यमिव संवृत्तं क्व रतिं करवाण्यहम् ॥ २१ ॥

"दूसरे अध्याय के पचीस श्लोकों में से मैंने पाँच ही चुने हैं। आपको एक काम सौंपूँ ? इन श्लोकों की नकल करके देवदास को भेज देंगी ? इस सुन्दर कलाकृति की एक संक्षिप्त आवृत्ति आपके लिए तैयार करने की जी में आ जाती है।

"आज भी मेरी तबीयत अच्छी नहीं है। अभी मुझे कुछ दिन और भी बिस्तर पर रहना पड़ेगा। नींद में भी अभी तक आपका खयाल आता रहता है। पंडितजी आपको भारत की महाशक्ति कहते हैं, सो गलत नहीं। आपने उन पर जादू कर रखा होगा। अब यह कला मुझ पर

---

१. मैं निरंजन, शांत, ज्ञानरूप और प्रकृति से पर हूँ। अब तक मोह से गुमराह था।

५. जैसे विचार करने से मालूम होता है कि वस्त्र तन्तुरूप ही है, वैसे ही विचार करने से विदित होता है कि (यह) विश्व आत्मारूप ही है।

७. आत्मा के अज्ञान के कारण जगत् का आभास होता है, आत्मा का ज्ञान होने पर वह (जगत) भासित नहीं होता। रस्सी के अज्ञान से ही (उसमें) सर्प का आभास होता है। उसका ज्ञान होते ही वह (सर्प) भासित नहीं होता।

१०. जैसे घड़ा मिट्टी में, तरंग पानी में और कड़ा सोने में लय हो जाता है, वैसे मुझसे बाहर निकला हुआ विश्व मुझीमें लय होता है।

२१. अहो, जनसमूह में भी द्वैत न देखनेवाले मुझे (सब) अरण्य जैसा हो गया है। (तो) मैं किसमें रति रखूँ ?

आजमा रही हैं। परन्तु दो पंछियों के गाने मात्र से वसन्त नहीं आ जाता। यदि आप सचमुच महाशक्ति हैं, तो आप मनसा, वाचा और कर्मणा भारत की दासी बनकर भारत को मंत्रमुग्ध करेंगी।

"आप और पंडितजी, दोनों को मैं दीपक से पत्र नहीं लिखवा सकता। इसलिए पंडितजी के नाम के एक पत्र से आपको सन्तोष कर लेना होगा। वह कहता है कि माताजी मुझे रोज न लिखें, तो फिर मुझे उन्हें रोज पत्र क्यों लिखना चाहिए? इस पर मैंने उसे अपकार के बदले उपकार करने की शिक्षा दी। मैंने उससे कहा कि आपने कदाचित् पत्र तो लिखा होगा, परन्तु अभी तक डाक में आया नहीं होगा। कल आपके पत्र का मुझे भरोसा था, परन्तु आया नहीं। आज का दिन भी खाली जा रहा है। मुझे आश्चर्य होता है। फिर भी मैं जानता हूँ कि आपने तो अवश्य लिखा होगा। दुष्ट डाक की ही यह गड़बड़ है।

" 'टाइम्स ऑफ इंडिया' की भारतीय संगीत सम्बन्धी दो कतरनें भेज रहा हूँ। शायद इसमें आपकी दिलचस्पी होगी। आप अपना आलस्य छोड़ दें, तो भारत को अपना संगीत दे सकती हैं। इसके लिए आपका गाना ही काफी नहीं। गाने के साथ-साथ भारत से भी गवाना है। परन्तु इसके लिए अभ्यास और लगन चाहिए, अपनी संगीत-शक्ति भारत को अर्पित करने का संकल्प चाहिए।

"देवदास के लिए इन श्लोकों की नकल करने की आप तकलीफ करें, तो मेरे खयाल से उसके लिए भजन की भी नकल कर देंगी।

"कल भी तिलक महाराज यहाँ आये थे। उन्होंने साफ दिल से कहा था कि आपकी खामोशी और क्षमा मुझमें नहीं है। मैं तो 'जैसे के साथ तैसा' की नीति मानता हूँ। श्रीमती बेसेण्ट की उन्होंने मर्मभेदी आलोचना की थी, जिसका मैंने नम्र विरोध किया। उसीके जवाब में उन्होंने यह कहा। श्रीमती बेसेण्ट की आलोचना शायद आपने न पढ़ी हो। मैंने भी यहीं पढ़ी है। श्री खापर्डे उन्हें पूतना मौसी कहते हैं, इसका भी बचाव

कर रहे थे। सामनेवाले को बहुत पसन्द आये, इतने साफ दिल से उन्होंने बातें कीं।

"कुमारी फेरिंग अभी तक नहीं आयी। जहाज का टिकट लेने के लिए बम्बई रहने की जरूरत न हो, तो मैंने उसे सिंहगढ़ आने का न्यौता दिया है। आपके आज के पत्र की अंतिम आशा अब जाती रही, क्योंकि डाकिया थोड़े से अखबार ही लेकर आ गया। देवदास मुझे लिखता है कि पंडितजी—माफ करना, मालवीयजी—फिर भी कहते हैं कि मुझे इंग्लैण्ड जाना चाहिए। मेरे खयाल से अब उनके कहने में बहुत देर हो गयी है। मेरा खयाल तो यह है कि यहीं पर संगठन पक्का हुए बिना हमारा वहाँ जाना व्यर्थ है।"

'यंग इंडिया' के २८ अप्रैल के अंक की विस्तृत आलोचना करते हुए नीचे लिखे पत्र में पत्रकार की साधन-सम्पत्ति पर गहराई से चर्चा करते हैं :

¶ "प्रिय भाई लालचंद,

"ता० २८ अप्रैल के 'यंग इंडिया' में तुम्हारी सब टिप्पणियाँ पढ़ गया। पहली ठीक है, दूसरी खराब नहीं, यद्यपि कमजोर है, जोरदार नहीं। तीसरी का मसाला अच्छा है, परन्तु विवेचन का ढंग अच्छा नहीं है। चौथी की सामग्री और ढंग दोनों खराब हैं। सामग्री खराब इसलिए कि तुम जानते हो कि कांग्रेस का प्रतिनिधि मण्डल विलायत नहीं जा रहा है। तुम यह नहीं जानते थे, तो तुम्हें इतमीनान कर लेना चाहिए था। ढंग इसलिए खराब है कि वह टिप्पणी 'यंग इंडिया' की शैली में नहीं लिखी गयी। पाँचवीं टिप्पणी सामग्री की दृष्टि से बहुत अच्छी है, परन्तु एक सन्नारी के साथ दुर्व्यवहार होने जैसे महत्त्व के मामले के साथ तुमने शायद ही पूरा न्याय किया है। मेरी आलोचना तुम्हें डरा देने के लिए नहीं, परन्तु इस बात की चेतावनी देने के लिए है कि भविष्य में तुम विषयों के चुनाव और उनके विवेचन के ढंग में अधिक सावधानी रखो। 'यंग इंडिया' में विषयों की विविधता न आये, तो इससे वह घटिया दिखाई नहीं देगा।

परन्तु विषयों के चुनाव में मौलिकता न हो, तथ्यों की निश्चितता न हो और विवेचन में बल न हो, तो जरूर वह क्षुद्र समझा जायगा। निश्चित, मौलिक और समर्थ बनने के लिए तुम्हें गंभीर अध्ययन करना चाहिए। तभी तुम्हें अपने बारे में ज्ञानपूर्वक विश्वास होगा। विषयों की संख्या पर ध्यान न देकर विषय की गहराई में जाओ। विषय के आसपास घूम जाओ, विषय के भीतर प्रवेश करो, विषय का पार पाओ (walk round your subject, walk into it, walk through it) और 'यंग इंडिया' के पन्नों को तुम सजीव बना दोगे।

"प्रस्तुत अंक में मेरे अपने लेखों को दुबारा पढ़ने पर मुझे उन लेखों के कुछ भागों में अपना सदा का बल दिखाई नहीं देता। खादी-सम्बन्धी लेख उत्तम है, परन्तु उसके आखिरी पैरे की अंग्रेजी देखने से मालूम होता है कि उसे लिखते वक्त मैं आधी नींद में हूँगा या लापरवाह हूँगा। 'किसीके उसे इस्तेमाल करने के लिए अनिच्छुक होने पर भी' (even if one is disinclined to use it) वाक्य के बाद तुरन्त यह वाक्य आता है: 'कोई उसे इस्तेमाल करने के लिए इच्छुक न हो, तो भी' (even if one is not inclined to use it)। 'इस्तेमाल' शब्द चार पंक्तियों में चार बार आता है। अच्छे लेख में ऐसा दसवीं पंक्ति का वाक्य भी मैं नहीं चलने दे सकता। परन्तु तुमने चलने दिया। इसका मुझे दुःख नहीं, क्योंकि तुम्हारी शैली के बारे में मुझे विश्वास न हो जाय, तब तक मुझे अपनी बीमारी, अर्ध-निद्रा या लापरवाही की सजा भुगतनी ही होगी।

"अब असहयोग पर मेरा लेख लें। इसमें सामग्री सब ठोस है, परन्तु वह ठीक ढंग से रखी नहीं गयी। मैं जानता हूँ कि मैंने उसे कितनी कठिन परिस्थिति में लिखा है। परन्तु इस कारण पाठकों से मैं यह आशा कैसे रख सकता हूँ कि वे लापरवाही से लिखे हुए लेखों पर दरगुजर करेंगे? मेरा पहला लेख काफी पढ़ने लायक है। परन्तु वही लेख मैं सिंहगढ़ पर लिखता, तो वह दूसरे ही ढंग से लिखा जाता। घोषणा-पत्र मेरी पसन्द की चीज है। उसकी शैली सुन्दर है, वक्तव्य स्पष्ट और आकर्षक है और तमाम

मुद्दे संक्षेप में और बढ़िया ढंग से आ जाते हैं। मैं इससे भी अच्छे ढंग से लिख सकता था, परन्तु जैसा है, वैसा भी वह लेख अच्छा है।

"अब विचार के लिए मैंने तुम्हें काफी सामग्री दे दी है। मुझमें जो उत्तम हो, उसे लेने के लिए तुम मेरे पास आये हो। तुममें जो उत्तम हो, वह देश को दो और प्रति सप्ताह तुम अपने उत्तम से उत्तमतम करो (do better than your best)। ऐसा करने के लिए तुम्हें 'स्वदेशी' का अध्ययन करना होगा। रमेश दत्त, राधाकमल मुकर्जी, बॅरो और हिन्दुस्तान के उद्योगों पर लिखनेवाले अन्य लेखकों को पढ़ डालो। तुम्हें सरकारी रिपोर्टें और आँकड़ों के सार (Statistical abstracts) पढ़ने चाहिए और हर सप्ताह आँकड़ों और तथ्यों से पाठकों को स्नान करा देना चाहिए। मुझे यह नहीं कहना कि तुम्हारे पास पुस्तकालय नहीं है। अहमदाबाद जाकर सारे पुस्तकालय छान डालो और आवश्यक चीज ढूँढ़ निकालो। इसी प्रकार हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं के प्रश्न का अध्ययन करना है। इंग्लैण्ड में नार्मन राजाओं के जमाने में लोगों को फ्रेंच भाषा की जो लत पड़ गयी थी, उससे कुछ अंग्रेजी-प्रेमियों ने अंग्रेजी भाषा को कैसे बचा लिया, इसका अध्ययन करो। किस प्रकार रूस में एक ही अध्यापक ने अपने पुरुषार्थ से रूस की सारी शिक्षा में क्रान्ति कर दी और तब से रूस की राष्ट्रीय जाग्रति का आरम्भ हुआ, इसका अध्ययन करो। भाषावार प्रादेशिक विभाजन का प्रश्न लो। मेरे कागजात में इस विषय की संग्रह की हुई सामग्री मिल जायगी। परन्तु तुम स्वयं भी सामग्री एकत्र कर सकते हो। हिन्दू-मुसलिम-एकता के प्रश्न में तो तुम्हें निष्णात बन जाना चाहिए। खिलाफत के सवाल पर तुम्हें श्री बैंकर से अंग्रेजी साप्ताहिक 'दि न्यू एज', 'दि नेशन' वगैरह प्राप्त कर लेने चाहिए। तुर्की के इतिहास का अध्ययन करो। उसकी जो बदनामी हो रही है, उसका अभ्यासी के रूप में जवाब दो। इन सबमें तुम्हारा अर्थशास्त्र-सम्बन्धी ज्ञान मिल जायगा, तो हर हफ्ते तुम्हें परोसने की काफी सामग्री मिल जायगी।

"मेरा सुझाव यह है कि यह पत्र तुम फाड़ न डालना, परन्तु कई

वार सावधानीपूर्वक पढ़ना और मैं तुमसे क्या अपेक्षा रखता हूँ, इसकी याददाश्त के तौर पर इसे रख छोड़ना। पटवर्धन को तो यह पढ़ा ही देना। परन्तु मैं चाहता हूँ कि उन्हें जिम्मेदारी में शरीक न करो। कारण इतना ही है कि 'यंग इंडिया' का सम्पादन करने का दायित्व-भार अभी तक मैंने उन पर नहीं रखा है। उन्होंने वह ले लिया है और बहादुरी से लिया है, परन्तु मैंने उन्हें अभी तक उसके लिए जिम्मेदार नहीं माना है। तब तक 'यंग इंडिया' का उनका काम भेटस्वरूप है। उसके लिए मैं आभारी हूँ। परन्तु जैसे तुम्हारी कलम से निकली हुई हर चीज की आलोचना करता हूँ, वैसे उनके काम की आलोचना नहीं करूँगा।

"यहाँ दो अलग-अलग विचारों का घोटाला न करना। तुम वेतन लेते हो, इसलिए तुम्हारे और पटवर्धन के काम में फर्क नहीं पड़ता। तुम मेरे पास खास तौर पर 'यंग इंडिया' के लिए ही आये हो। पटवर्धन इसलिए आये हैं कि उन्हें कोई भी काम सौंप दूँ। मगनलाल वेतन नहीं लेते, परन्तु जो काम उनके विभाग का हो, उसकी मैं निर्दय होकर आलोचना करता हूँ। पटवर्धन को भी किसी विभाग की जिम्मेदारी सौंप दूँगा, तब उनके प्रति भी इसी प्रकार व्यवहार करूँगा।"

प्रोफेसर* के पिता को लिखे गये नीचे के पत्र में आश्रम की राष्ट्रीय पाठशाला के उद्देश्यों की कुछ कल्पना दे दी है। गिरधारी के सम्बन्ध में उन्होंने पत्र लिखा था, उसके उत्तर में :

¶ "मैं निश्चित मानता हूँ कि और कहीं भी जो प्राप्त किया जा सकता है, आपका पौत्र आश्रम में उससे कहीं अधिक प्राप्त कर रहा है। किसी भी लड़के के लिए मुझे ऐसा न लगता हो, तो अवश्य ही मैं उसे आश्रम में नहीं रखूँगा। मेरी राय में आश्रम की शिक्षा सर्वतोमुखी है। उसमें से निकले हुए युवक को कमाना हो, तो भी इतने वर्ष तक और कहीं भी पढ़ाई करने के बाद वह जितना कमा सकता हो, उससे अधिक कमा

---

* आचार्य कृपालानीजी। गिरधारी इनके भतीजे हैं।

सकता है। कारण, वह अधिक आत्मविश्वास प्राप्त कर लेता है। मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि आश्रम में बालकों को सतत यह विश्वास रखना सिखाया जाता है कि शिक्षा चरित्र-गठन के लिए है, रुपये के लिए नहीं। आश्रम में बच्चों को सतत धन की तृष्णा से दूर रहने की शिक्षा दी जाती है। मैं आपको आग्रहपूर्वक सलाह देता हूँ कि गिरधारी को जबरन किसी भी संस्था में न भेजें, परन्तु जिस संस्था में उसे रहना हो, उसमें रहने दें। उसमें अपने लिए चुनाव करने की काफी शक्ति है।"

मगनलालभाई को पत्र :

"मैंने कल महादेव से अनायास पूछा कि तुम्हें मगनलाल के संताप का कारण कुछ मालूम है ? इस पर मोटर के मामले में हुई बात के सिलसिले में तुम्हारे निकाले हुए गुबार उसने मुझे बताये। फिर भी मैं इस समय उनमें से एक का भी जवाब नहीं दूँगा। तुम्हारे पत्र की राह देखूँगा। आज तो तुम्हारा पत्र आना ही चाहिए था। अन्यथा मुझे तो जवाब ही क्या देना है ? परन्तु तुम्हें शान्ति मिले, ऐसे वचन तो लिखूँ ही। वह तुम्हारा पत्र आने पर ही।

"... की बात तो लिख ही डालूँ। मुझे ...का विवाह नहीं करना है। परन्तु मैंने तुम्हारी चिन्ता जिस प्रकार समझी, उसी प्रकार मैंने सोचा और कहा। यदि तुम अब उस लड़की के बारे में दृढ़ हो गये हो और... को अपने साथ ले जा सको, तब तो...का अखंड ब्रह्मचर्य ही आश्रम का सबसे बड़ा परिणाम मानूँगा।... के बारे में और विवाह के बारे में मेरे उद्‌गार और विचार जो थे, वही हैं।...का पृथक्करण यह है। मेरे विचार तो ज्यों के त्यों ही हैं, परन्तु औरों के प्रति मेरी उदारता बढ़ी है, अथवा उसे शिथिलता भी कह सकते हो। मुझे जो यह अधीरता रहती थी कि दूसरे लोग मेरे जैसे विचार रखें, वह अधीरता विचार और अनुभव से जाती रही।"

३-५-'२०

मगनलालभाई को दूसरा पत्र लिखा :

"आज तुम्हारी डाक मिली। तुम्हें मुझे लिखने को समय नहीं मिला, इसलिए भाई महादेव से सुना हुआ लिखकर जितनी शान्ति तुम्हें दी जा सके, उतनी देना चाहता हूँ।

"१. मोटर के बारे में मैंने पुछवाया ही क्यों ? यही मेरी शिथिलता बताता है।

"२. गुरुदेव तथा फातिमा के बारे में जो किया, उसमें समय और रुपये का बहुत व्यय हुआ। फल कुछ भी नहीं अथवा थोड़ा ही निकला।

"३. प्रवृत्तियाँ मेरे पास आती हैं, मैं उन्हें ढूँढ़ने नहीं जाता, यह वाक्य ठीक नहीं।

"४. सरलादेवीने गद्दी पर बैठकर खाया। मैं भी वहीं बैठकर खाता हूँ। ऐसी क्या जल्दी ? क्या मैं और वे जगह पर बैठकर खायें, तो अधिक समय लगने की संभावना है ? और जाय, तो ऐसी क्या उतावली ?

"५. मुझमें जो कट्टरता पहले थी, वह अब जाती रही।

"६. मेरी बाह्य प्रवृत्तियों से आश्रम और हिन्दुस्तान की हानि हुई है।

"७. सच पूछा जाय, तो मुझे सब कुछ छोड़कर आश्रम में ही बैठकर उसके काम-काज, पाठशाला इत्यादि में रम जाना चाहिए। अब कोई मुझ पर थक जाने का आरोप नहीं लगायेगा।

"८. मुझमें जो तेज पहले था, जिसके कारण मेरी सबको सुननी पड़ती थी, वह तेज अब जाता रहा।

"ये अथवा ऐसे प्रश्न तुम्हारे मन में आयें, इसे मैं स्वाभाविक मानता हूँ। इस पर भी जब मैं दूर होऊँ, आश्रम में रहते हुए भी दूर जैसा रहूँ, तब मेरी अनेक प्रवृत्तियों के कारण बहुत सी समस्याएँ पैदा होंगी। मोटर के बारे में मैंने पुछवाया, क्योंकि हमने अनेक उपाधियाँ

लगा ली है। मोटर का मैंने व्यापार की दृष्टि से उपयोग देखा। मोटर का उपयोग तो होता ही रहता है। इसलिए मोटर की भेट ली जा सकती है या नहीं, इसका सीधा जवाब देना मुझे बिलकुल ठीक नहीं लगा। दो दिन तक तो मैंने इस विचार का खूब मुकाबला किया। मुझे लायल* की याद आने पर मैं ढीला पड़ा, और ऐसा लगा कि तुम्हारी भी इच्छा हो जाय, तो मैं मोटर की भेट ले लूँ। परन्तु मुझे मोटर का मोह तो इतना कम है कि अक्सर मैंने यह चाहा है कि अनसूयाबहन की मोटर टूट जाय। फिर भी इतना सही है कि जितना बड़ा विरोध पहले था, उतना अब नहीं है। इसमें तुम मेरी शिथिलता मानो, तो मैं ठीक ही समझूँगा।

"गुरुदेव के बारे में मैं साक्षी ही रहा। तुम सबकी इच्छा के अनुसार चला हूँ। मैं खुद तो मेहराबों वगैरह में न पड़ता। उनकी पूजा करने का कुछ-न-कुछ अल्प प्रयास ढूँढ़ निकालता। जो कुछ हुआ, उसके बारे में मैं बिलकुल तटस्थ हूँ। मैं मानता हूँ कि उनका सुन्दर ढंग से स्वागत करना हमारा कर्तव्य था। मुझे ऐसा नहीं लगा कि उसमें लगाने से विद्यार्थियों की कोई हानि हुई है। यह बात ध्यान में रखने लायक है कि इसमें उन्होंने अपने सेवा-धर्म का आचरण किया। और गुरुदेव तो बहुत असाधारण व्यक्ति माने जाते हैं। उनमें कवित्व, साधुता और देश-प्रेम है। यह मेल अलौकिक है। वे पूजा के योग्य हैं। कैसी उनकी सरलता!

"फातिमा के लिए जो हुआ, सो तो मुझे केवल यथार्थ लगता है। इमाम साहब मुसलमान हैं, इतना याद रखें, तो हमें महसूस हो जायगा कि हमने कुछ भी अधिक नहीं किया। हरएक कदम विचारपूर्वक उठाया गया है। हम यह स्वीकार कर लें कि हम उसका विवाहोत्सव मनाने को बँधे हुए थे, तो सब कुछ ठीक ही हुआ है। फिर भी इमाम साहब अधिक सादगी रख सकते थे। जेवर कुछ भी न बनवाते, तो अधिक

---

* ईसाई मिशनरी, जो आश्रम में अंग्रेजी पढ़ाने आते थे।

अच्छा कहलाता। परन्तु इतनी ज्यादा आशा कैसे रखी जाय? इस मामले में तुम्हें अधिक संतोष देना चाहता हूँ।

"यह निश्चित मानो कि प्रवृत्तियाँ मैं हरगिज नहीं ढूँढ़ता। तुम्हें ऐसी कौनसी प्रवृत्ति दिखाई दी, जिसे मैंने ढूँढ़ा हो। खिलाफत में मैं न पड़ूँ, तो समझूँगा कि सर्वस्व खो दिया। उसमें तो मेरा सारा विशेष धर्म आ गया। उसके द्वारा मैं अहिंसा का स्वरूप दिखा रहा हूँ, हिन्दू-मुसलमानों को एक कर रहा हूँ, सबके सम्पर्क में आ रहा हूँ। और यदि असहयोग अच्छी तरह चले, तो महापशुबल को एक सादी-सी लगनेवाली चीज के सामने झुकना पड़ेगा। खिलाफत भारतीय समुद्र का मन्थन करनेवाली भारी मथनी है। उसमें से क्या निकलेगा, इसके साथ हमारा क्या सम्बन्ध? हमें केवल इतना ही देखना है कि यह प्रवृत्ति शुद्ध और उचित है या नहीं। जिन-जिन विषयों में मैंने शक्ति का विकास किया है, उन्हें मैं हरगिज नहीं छोड़ सकता। मेरा मोक्ष भी उन्हींमें रहने से संभव है। यदि मैं ऐसा न करूँ, तो आश्रम द्वारा भी मैं कुछ नहीं दे सकता। ऐसे ही कारण से डोक ने मुझे मार्गदर्शक सोचा था। अपनी पुस्तक का नाम उसने 'पाथ फाइंडर' अथवा 'जंगल ब्रेकर' रखना चाहा था, परन्तु पोलक का सुझाव मानकर उसने वह नाम रखा, जो अब है।*

"आश्रम स्थापित करके भी मैंने मार्ग दिखाया है। उस रास्ते जाना और मुकाम पर पहुँचना तुम्हारा और जो शरीक हुए हैं, उनका काम है। ऐसा करते हुए यदि मुझे अधिक जीकर शान्ति लेना होगा, तो मेरे परिपक्व अनुभव से आश्रम की रेखाएँ मैं अधिक अच्छी खींच सकूँ, यह अलग प्रश्न है। परन्तु इस बारे में तुम मुझसे खूब बहस कर सकते हो।

"सरलादेवी तो उस दिन अकेली ही भोजन करनेवाली थीं। इसलिए उन्होंने वहीं भोजन किया। हमेशा तो रसोई में ही खाती थीं। बीमार पड़ने के बाद जब मैं अनाज नहीं खाता, तब जहाँ बैठा होता हूँ,

---

* जोसेफ जे० डोक लिखित 'एम० के० गांधी' पुस्तक। प्रकाशक: अ० भा० सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, काशी; मूल्य २.००, हिन्दी १.००।

वहीं खाता हूँ। इसमें मैंने अपनी सुविधा देखी है। इसमें मेरी शिथिलता भी कही जा सकती है। तुम्हारी शिकायत तो ठीक ही है।

"मुझमें जो कट्टरता पहले थी, वह दूर नहीं हुई है। मेरे विचार अधिक दृढ़ हुए हैं, उनमें अधिक सूक्ष्मता आयी है। जो मुझे धुँधला दिखाई देता था, वह अब साफ दीखता है। मेरी सहनशीलता बढ़ी है। इससे दूसरों के बारे में मेरा आग्रह कम हुआ है।

"मेरी बाह्य प्रवृत्तियों से हिन्दुस्तान और आश्रम ने कमाई की है या खोया है, इसका उत्तर देना मैं अशक्य-सा समझता हूँ।

"यदि मुझे रास्ता सूझे, तो जरूर आश्रम में ही बैठ जाऊँ। परन्तु यह बात केवल मेरे ही हाथ में नहीं है। मैं चाहता हूँ कि मुझसे बात करके मुझे बाँध सको, तो बाँध लो।

"यह बात बिलकुल सच है कि मेरा असली तेज जाता रहा। बीमार पड़ जाने से मैं अपंग बन गया। तुम सबके साथ खड़े रहकर काम करने की मेरी शक्ति जाती रही। तब से मेरा तेज चला गया, यह मैंने स्वयं देख लिया। मेरे शरीर में जो वज्रता थी, उसके बजाय नजाकत आ जाने से मैं बहुत-सी चीजें सहन कर रहा हूँ। मुझे किसीने हवा-खोरी के लिए जाते देखा भी था? वह आदमी आज हवा खानेवाला बन गया। मुझ पर जो खर्च हुआ है, उसका विचार करता हूँ, तब तो और भी ज्यादा घबराता हूँ। दूसरे दर्जे में बैठते शर्माता हूँ। ऐसे अव-सरों से मेरी आत्मा क्लेश पाती है और अवश्य निस्तेज होती है। इसका उपाय ही नहीं। मेरा सुन्दरतम काल चला गया। अब तो मेरे विचारों से जो कुछ लिया जा सकता है, वही लेने को रह गया। मैं जो आदर्श आचरणवाला था, सो खत्म हो गया। मेरी ऐसी दयाजनक स्थिति है। इसमें अतिशयोक्ति नहीं है। प्रसंगोपात्त उपर्युक्त उद्गार कई बार प्रकट किये हैं।

"परन्तु इन सब बातों में तुम्हें या मुझे निराश नहीं होना है। हम अपनी खामियाँ देख लें और जहाँ संभव हो, वहाँ उन्हें दूर करें। मेरे

पचास वर्षों में तुम्हें सीखने को बहुत मिला है, उसे संग्रह करो। उस पर इमारत बनाओ, स्वयं सुशोभित बनो और मुझे सुशोभित करो। जहाँ तुम्हें दिक्कत हो, वहाँ मुझे बताओ। अपने-आप दूर कर सको, उन्हें दूर कर लो। घबराओ मत। इस पत्र में कहीं भी अनर्थ हुआ हो, तो उसे मन में मत रखना, परन्तु तुरन्त उसकी सफाई करा लेना।

"तुम्हें परम शान्त और प्रफुल्लित देखना चाहता हूँ।···ने मुझे रुपये के लिए तार दिया है। उसे मैं इनकार लिख रहा हूँ। उसे रुपया हरगिज नहीं दिया जा सकता।"

स्वामी श्रद्धानन्द के पत्र का उत्तर:

"*भाई साहब,

आपका पत्र मिला। सरकारी नौकरों को, नौकरी छोड़ने का तभी कहा जायगा, जब उनके लिए खाने-पीने की योजना ठीक बनायी जायगी। इस बारे में मुसल्मान भाइयों के साथ मैं मसलत कर रहा हूँ। देश-त्याग करने की सलाह मैंने तो किसीको भी न दी है, न मैं दे सकता हूँ। कितनेक मुसल्मान भाइयों का हिजरत करने का अवश्य अभिप्राय है। उनको हम नहीं रोक सकते हैं। उनसे भी हिजरत का नतीजा नहीं आ सकता है ऐसा बता रहा हूँ। यदि सत्याग्रह दृष्टि से हम हिन्दुस्तान का त्याग करें तब उसमें सरकार पर कुछ भी दबाव पड़ने का खयाल नहीं आ सकता। मेरी राय में हिन्दुओं का हिन्दुस्तान छोड़ने का मौका तो तब आ सकता है, जब कोई हिन्दू राजा होगा और प्रजा उसके साथ मिलकर हिन्दू-धर्म का पालन ही आवश्यक कर देगी। यदि सरकार का असहकार करने में इस समय हम असमर्थ होंगे तो इसका अर्थ मैं ऐसा ही निकालूँगा कि मुसलमानों की धर्म-वृत्ति क्षीण हो गयी है। हर कोई भी देख सकता है कि इस खिलाफत के प्रश्न में इसलाम को बड़ा धोखा पहुँचाने की बात है। यदि ऐसे समय पर भी मुसलमान

---

* यह पत्र हिन्दी में ही लिखा था।

जान-माल की कुरबानी करने के लिए तैयार न होंगे, तब तो धार्मिकता का लोप हो गया ऐसा ही कह सकते हैं। यदि ऐसा बुरा परिणाम आ जायगा तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। क्योंकि मैं संसार में भ्रमण करता हुआ कलिकाल की महिमा को देख रहा हूँ। धर्म की भावना हरेक जगह बहुत ही मंद हो गयी है और अनेक कार्य जो धर्म के नाम से होते हैं उसमें भी तो अधर्म देख रहा हूँ। यदि मैंने जो लिखा है वह स्पष्ट नहीं होगा तो आप मुझे फिर भी पूछेंगे।

"गुरुकुल का कार्य अब अच्छी तरह से चलता होगा। अब चार दिन से इस एकान्त स्थान में आया हूँ।"

सरलादेवी को :

¶ "मैं निष्कल ब्रह्म हूँ, यह ज्ञान प्राप्त होने पर जनक को आनन्द ही आनन्द हो जाता है, यह देखकर अष्टावक्र ने तीसरे अध्याय में नीचे के श्लोकों द्वारा उसे चेतावनी दी :

*अविनाशिनमात्मानमेकं विज्ञाय तत्त्वतः।
तवाऽऽत्मज्ञस्य धीरस्य कथमर्थार्जने रतिः ॥ १ ॥
आत्मज्ञानादहो प्रीतिः विषयभ्रमगोचरे।
शुक्तेरज्ञानतो लोभो यथा रजतविभ्रमे ॥ २ ॥
विश्वं स्फुरति यत्रेदं तरङ्गा इव सागरे।
सोऽहमस्मीति विज्ञाय किं दीन इव धावसि ॥ ३ ॥

---

* अष्टावक्र बोले :

१. आत्मा को तत्त्वतः एक और अविनाशी जान लेने के बाद तुझ जैसे आत्मज्ञ और धीर को अर्थोपार्जन में प्रीति कैसे होती है ?

२. जैसे सीप के अज्ञान से चाँदी का विभ्रम होने पर उसमें लोभ उत्पन्न होता है, वैसे, अरे, आत्मा के अज्ञान से विषयोंरूपी भ्रमात्मक वस्तुओं में प्रीति होती है।

३. जहाँ यह विश्व सागर में तरंग की तरह स्फुरित होता है, वह मैं ही हूँ, यह जानकर (भी) तू दीन की तरह क्यों भागता है ?

श्रुत्वाऽपि शुद्धचैतन्यमात्मानमतिसुन्दरम् ।
उपस्थेऽत्यन्तसंसक्तो मालिन्यमधिगच्छति ॥ ४ ॥
सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
मुनेर्जानत आश्चर्यं ममत्वमनुवर्तते ॥ ५ ॥
आस्थितः परमाद्वैतं मोक्षार्थेऽपि व्यवस्थितः ।
आश्चर्यं कामवशगो विकलः केलिशिक्षया ॥ ६ ॥
अद्‌भुतं ज्ञानदुर्मित्रमवधार्यातिदुर्बलः ।
आश्चर्यं काममाकाङ्क्षेत् कालमन्तमनुश्रितः ॥ ७ ॥
इहामुत्र विरक्तस्य नित्यानित्यविवेकिनः ।
आश्चर्यं मोक्षकामस्य मोक्षादेव विभीषिका ॥ ८ ॥
धीरस्तु भोज्यमानोऽपि पीड्यमानोऽपि सर्वदा ।
आत्मानं केवलं पश्यन् न तुष्यति न कुप्यति ॥ ९ ॥
चेष्टमानं शरीरं स्वं पश्यत्यन्यशरीरवत् ।
संस्तवे चापि निन्दायां कथं क्षुभ्येन्महाशयः ॥ १० ॥

---

४. आत्मा शुद्ध, चैतन्य रूप और अति सुन्दर है। यह सुन लेने पर भी जो विषयेन्द्रिय के प्रति अत्यंत आसक्त रहता है, वह मलिनता को प्राप्त होता है।

५. आत्मा को सर्वभूतों में और सर्वभूतों को आत्मा में जाननेवाला मुनि भी ममत्व के पीछे पड़ता है, यह आश्चर्य है।

६. परम अद्वैत में स्थित हुआ और मोक्ष के लिए भी प्रयत्न करनेवाला (मनुष्य) भोग के अभ्यास के कारण काम के वश होकर व्याकुल हो जाता है, यह आश्चर्य है।

७. ज्ञानशत्रु को उत्पन्न हुआ जानकर भी अति दुर्बल और अन्तकाल के निकट पहुँचा हुआ (मनुष्य) विषय-भोग की आकांक्षा रखता है, यह आश्चर्य है।

८. यह लोक-परलोक के प्रति विरक्त, नित्य-अनित्य का विवेक करनेवाला और मोक्ष की इच्छावाला (मनुष्य) मोक्ष से ही डरता है, यह आश्चर्य है।

९. भोग भोगते और पीड़ित होते हुए भी धीर मनुष्य सदा केवल आत्मा को ही देखता होने के कारण न प्रसन्न होता है, न कोप करता है।

१०. जो अपने प्रवृत्तिमय शरीर को दूसरे के शरीर की तरह देखता है, वह महाशय स्तुति अथवा निन्दा से कैसे क्षुब्ध होगा ?

मायामात्रमिदं विश्वं पश्यन् विगतकौतुकः ।
अपि सन्निहिते मृत्यौ कथं त्रस्यति धीरधीः ॥ ११ ॥
निःस्पृहं मानसं यस्य नैराश्येऽपि महात्मनः ।
तस्यात्मज्ञानतृप्तस्य तुलना केन जायते ॥ १२ ॥
स्वभावादेव जानाति दृश्यमेतन्न किञ्चन ।
इदं ग्राह्यमिदं त्याज्यं स किं पश्यति धीरधीः ॥ १३ ॥
अन्तस्त्यक्तकषायस्य निर्द्वन्द्वस्य निराशिषः ।
यदृच्छयाऽऽगतो भोगो न दुःखाय न तुष्टये ॥ १४ ॥

"ऐसी चुनौती मिलने पर जनक अपनी वही आनन्दमयी वृत्ति कायम रखकर चौथे अध्याय में जवाब देते हैं :

* हन्ताऽऽत्मज्ञानस्य धीरस्य खेलतो भोगलीलया ।
न हि संसारवाहीकैर्मूढैः सह समानता ॥ १ ॥
यत्पदं प्रेप्सवो दीनाः शक्राद्याः सर्वदेवताः ।
अहो तत्र स्थितो योगी न हर्षमुपगच्छति ॥ २ ॥

---

११. जो इस विश्व को केवल मायारूप ही देखता है, जिसमें कुतूहल नहीं रहा, वह धीर बुद्धिवाला मनुष्य मृत्यु निकट होते हुए भी कैसे त्रस्त होगा ?

१२. जिस महात्मा का मन निराशा में भी निःस्पृह (रहता) है, उस आत्मज्ञानतृप्त की तुलना किसके साथ हो सकती है ?

१३. यह दृश्य (विश्व) मूल में ही कुछ नहीं, यह जाननेवाला धीर बुद्धिवाला (मनुष्य) क्या यह देखता है कि यह ग्राह्य है और यह त्याज्य है ?

१४. कषाय का जिसने अन्तर से त्याग कर दिया है, जो निर्द्वन्द्व है और जो आशा से रहित है, उसे सहज प्राप्त होनेवाला भोग न दुःखकर होता है और न सुखकर ही ।

*१. अरे, भोगलीला से क्रीड़ा करते हुए और आत्मज्ञानी धीर (मनुष्य) के साथ संसार का भार वहन करनेवाले मूढ़ की तुलना ही नहीं हो सकती ।

२. जिस पद की इच्छा करनेवाले इन्द्रादि सब देवता लाचार हो जाते हैं, उस पद में स्थिर हुआ योगी हर्ष को प्राप्त नहीं होता ।

तज्ज्ञस्य पुण्यपापाभ्यां स्पर्शो ह्यन्तर्न जायते ।
नह्याकाशस्य धूमेन दृश्यमानाऽपि सङ्गतिः ॥ ३ ॥
आत्मैवेदं जगत्सर्वं ज्ञातं येन महात्मना ।
यदृच्छया वर्तमानं तं निषेद्धुं क्षमेत कः ॥ ४ ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्ते भूतग्रामे चतुर्विधे ।
विज्ञस्यैव हि सामर्थ्यमिच्छानिच्छाविसर्जने ॥ ५ ॥
आत्मानमद्वयं कश्चिज्जानाति जगदीश्वरम् ।
यद्वेत्ति तत्स कुरुते न भयं तस्य कुत्रचित् ॥ ६ ॥

"आप देखेंगी कि चौथे अध्याय के श्लोक कुछ जोखिम भरे हैं। वह नाजुक मेदे को भारी पड़नेवाली खूराक है। सभी अध्याय समान विस्तार-वाले नहीं हैं। तीसरे अध्याय में चौदह श्लोक हैं, तो चौथे अध्याय में केवल छह ही हैं।"

१९-५-'२०

करांची के श्री जमशेद महेता ने पत्र लिखकर असहयोग के बारे में कुछ शंकाएँ उठायी थीं। उन्हें उत्तर :

"आपने पत्र लिखा अच्छा किया। ऐसा नहीं हो सकता कि मैं आपको या आपके भावों को न समझ सकूँ। इसी तरह यह भी नहीं कहा जा सकता कि जो असहयोग के विचार के विरुद्ध हो, वह मुसलमानों का मित्र नहीं। मित्रभाव में भी मतभेद हो सकता है।

---

३. यह जाननेवाले को अन्तर में पाप-पुण्य का वैसे ही स्पर्श नहीं होता, जैसे इस प्रकार दिखाई देने पर भी आकाश को धुएँ का संग नहीं होता।

४. जिसने यह जान लिया है कि यह सारा जगत् आत्मरूप ही है, उस महात्मा को सहज क्रियाएँ करने से कौन रोक सकता है ?

५. ब्रह्मा से लेकर तृण तक चार प्रकार की भूतसृष्टि में केवल ज्ञानी में ही इच्छा-अनिच्छा को रोकने की शक्ति है।

६. विरला ही आत्मा और जगदीश्वर को अद्वैतरूप जानता है। वह जैसा जानता है, वैसा ही आचरण करता है। उसे किसीका भी डर नहीं।

"अब आपके प्रश्नों का उत्तर :

"१. असहयोग का असर सरकार का विरोधी अवश्य होगा, परन्तु असहयोग की कल्पना सजा के रूप में नहीं की गयी, इसलिए सरकार के अपराध का सवाल नहीं उठ सकता। इतने पर भी सरकार को जितना करना चाहिए, उतना नहीं किया। यदि इंग्लैण्ड की सरकार न्याय प्राप्त न कर सके, तो भारत सरकार इस्तीफा दे सकती है। भारत सरकार ऐसे समय केवल नाराजी जाहिर करके संतुष्ट नहीं रह सकती। यह उसकी त्रुटि है और इसलिए उस सरकार से सहयोग बन्द करके लोग अपनी नापसंदगी प्रकट कर सकते हैं।

"२. हम किसीको ज्ञानपूर्वक दुःख नहीं दे सकते, परन्तु हमारे अनिवार्य कार्य से किसीको दुःख हो, तो उसके लिए हम जिम्मेदार नहीं। सरकार की नौकरी से त्यागपत्र देने का मुझे सदा ही हक है। वह त्याग-पत्र देने में सरकार को दुःख हो, तो इसमें मैं हिंसा नहीं करता। मैं अपने पिता के घर में रहता हूँ, उसकी कुछ सेवा भी करता हूँ, परन्तु पिता को अन्याय करते देखूँ और उस समय उनके घर का त्याग करके सहयोग करना बन्द कर दूँ, तो वे अवश्य दुःखी होंगे, फिर भी मेरे लिए उस घर का त्याग करना ही फर्ज हो सकता है। वह दुःख मेरा पिता अपने हाथों मोल लेता है। यदि इस प्रकार हम बर्ताव न करें, तो दुनिया में सभी जालिमों को जुल्म करने का परवाना मिल जाय।

"३. इसलिए आप देखेंगे कि रक्तपात किये बिना हम असहयोग चला सकते हों, तो उसे चलाने का हमें अवश्य अधिकार है। इतना ही नहीं, वैसा करना हमारा कर्तव्य है।

"४. शौकतअली के भाषण से मैं चौंक नहीं गया हूँ, क्योंकि मेरे खयाल से मैं उसका अर्थ समझ सकता हूँ। मैं स्वीकार करता हूँ कि जिस भाव से मैं असहयोग को देखता हूँ, उसी भाव से सब मुसलमान नहीं देखते। परन्तु उनके साथ स्पष्ट समझौता है कि असहयोग के साथ मारकाट हरगिज नहीं हो सकती। और यद्यपि मुसलमान भाई वैरभाव से असह-

योग करें, तो भी उससे हम शुभ परिणाम ला सकते हैं और रक्तपात से बच सकते हैं। सारे अच्छे काम किसी भी भाव से हों, तो भी थोड़ा-बहुत फल देते ही हैं। जो मनुष्य भय या लज्जा से सत्य या संयम का पालन करता है, वह भी उससे स्थूल लाभ उठा लेता है, यह सत्कार्य की महिमा है।"

२०-६-'२०

मि० एण्ड्रूज के खिलाफत के बारे में अनेक पत्र आये थे। उनका लम्बा उत्तर देते हुए बापू ने लिखा :

¶ "आप खिलाफत और अन्य प्रश्नों पर अपना हृदय उँडेलनेवाले पत्र मुझे लिख रहे हैं, जब कि मैं आपको उत्तर नहीं लिख सका। इसका कारण यह है कि आजकल मुझे काम का दबाव बहुत रहता है। फिर भी आप यह तो जानते ही हैं कि आपका स्मरण मुझे सदैव रहता है। मैं जानता हूँ, आपको आध्यात्मिक मन्थनों से क्या होता है। मैं आशा रखता हूँ कि आपका स्वास्थ्य अच्छा रहता होगा। आपने मुझे लिखा था कि कलकत्ते से आने के बाद तबीयत बहुत गिर गयी थी।

"मैं चाहता हूँ कि तुर्किस्तान के प्रश्न के बारे में मेरी जो स्थिति है, उसकी आप चिन्ता न करें। अर्थात् मुझ पर इतना विश्वास करें कि अंधा होकर मैं कुछ नहीं करूँगा। तुर्किस्तान के प्रश्न पर मैं ऐसा जरा भी बँध नहीं गया हूँ कि उसमें स्थिति अनीतिमय साबित हो जाने पर भी मैं लौट न सकूँ। मेरी स्थिति विषम इस प्रकार है कि लॉयड जार्ज पर मुझे जरा भी विश्वास नहीं रहा। किसी-न-किसी कारण जैसे मुझे अरबस्तान के बारे में अविश्वास है, वैसे ही मुझे आर्मीनिया के मामले में भी अविश्वास है। मौजूदा ब्रिटिश राजनीति के विरुद्ध मेरा यह मत बन गया है कि आर्मीनिया, अरबस्तान, मेसोपोटेमिया, पेलेस्टाइन और सीरिया के मामले में किसी कुटिल राजनीतिज्ञ का गंदा हाथ होने की बू आ रही है। इसलिए इस वक्त मेरी स्थिति यह है कि मेरा यह बना हुआ मत बदला जा सके, तो मैं अपनी बात छोड़ दूँ और उससे वापस लौटूँ। मैं यह कहता हूँ

कि आर्मीनिया, मेसोपोटेमिया, पेलेस्टाइन और सीरिया पर तुर्किस्तान का वर्चस्व कुछ संरक्षणों के साथ रहे। आप कहेंगे कि संरक्षणों का क्या मूल्य ? इसमें मैं आपसे सहमत नहीं हूँ। मित्रराज्यों के मन में मैल हो और वे ही एक-दूसरे से ईर्ष्या करते हों, तो उसकी कोई कीमत नहीं। परन्तु उनके दिल साफ़ हों, तो संरक्षण अवश्य कारगर बनाये जा सकते हैं। ब्रिटेन ट्रांसवाल पर वर्चस्व रखता है। परन्तु ट्रांसवाल के अपने आंतरिक व्यवहार में कोई खलल नहीं पड़ता। यदि आर्मीनिया को भी उसके यहाँ तुर्की का रेजीडेण्ट रहने के बावजूद आंतरिक स्वातंत्र्य मिलता हो, तो उसे क्यों शिकायत होनी चाहिए ? यदि ब्रिटेन तुर्किस्तान का भला चाहता हो, तो सारी व्यवस्था संतोषजनक ढंग से की जा सकती है। तुर्किस्तान यदि मित्रराज्यों के साथ मिला हुआ होता, तो क्या वह (ब्रिटेन) उससे आर्मीनिया, अरबस्तान और मेसोपोटेमिया छीन सकता था ? तब तो ब्रिटेन मित्रता के ढंग पर दबाव डालकर, न कि विजेता की धौंस से, तुर्किस्तान में सुधार कराता। ब्रिटिश मंत्रिमंडल का उद्धतता और दंभ और उतना ही उद्धतता और दंभ से भरा हुआ वाइ-सराय का बयान सचमुच असह्य है।

"आपको मुहम्मदअली की अर्जी उस संधि के बराबर ही अस्वच्छ लगती है। इसमें संधि की जो निन्दा की गयी है, उसके विरोध में मैं आपसे सहमत नहीं। मेरा खयाल है कि लगभग सारा भारत मुहम्मदअली के साथ है। आप यह कहें कि संधि की निन्दा करना बुद्धियुक्त नहीं और उसके पीछे ज्ञान नहीं, परन्तु वह ब्रिटेन के प्रति अत्यन्त अविश्वास के कारण है, तो इसमें मैं आपसे सहमत होऊँगा। फिर भी संधि की निन्दा की जाती है, यह तथ्य तो रहता ही है। आम तौर पर मैं अखबार नहीं पढ़ता, परन्तु 'लीडर' की कतरन भेजता हूँ। उसे देख लें। मुहम्मदअली जरूर मानते हैं कि संधि की निन्दा करने में सारा देश उनके साथ है। तुर्किस्तान के वर्चस्व का उनका दावा भी अस्वच्छ नहीं है, क्योंकि उन्हें अपनी माँग की सचाई में पूर्ण विश्वास है। उसने किसी भी प्रकार

का वचन-भंग नहीं किया, क्योंकि उसका दावा तो जो उसने अब किया है, उससे कहीं अधिक था। जब कि संधि तो निन्द्य है, ईश्वर और मनुष्य के प्रति द्रोह है। दूसरी बात यह याद रखनी है कि मित्रराज्य, अर्थात् साफ-साफ कहें तो इंग्लैण्ड, अपने पाशविक बल पर मुस्ताक रहकर बातें करते हैं। बेचारे मुहम्मदअली तो, जैसा वे स्वयं कहते हैं, एक दुर्बल राष्ट्र के प्रतिनिधि हैं और ऐसे राज्य की वकालत कर रहे हैं, जिसे अच्छी तरह गिराया और अपमानित किया गया है। उनकी लिखावट में कुछ अतिशयोक्ति हो, तो मैं उसे दरगुजर कर दूँगा। पर दूसरी तरफ से पशु-बल का जो निर्लज्ज प्रदर्शन किया जा रहा है, उसे बरदाश्त करने को मैं जरा भी तैयार नहीं हूँ। अमिश्रित कष्ट-सहन अथवा आत्मत्याग के साधनों पर मेरा जो विश्वास है, वह यदि मैं भारत में जाग्रत कर सकूँ, तो इस घमंड को एक क्षण में उतारकर धराशायी कर डालूँ और यूरोप के गोलाबारूद को निकम्मा बना दूँ।

"इस संधि की शर्तों से मैं काँप तो उठा ही था, पर इतने ही में हंटर कमेटी की रिपोर्ट और आ गयी, तो ब्रिटिश मंत्रिमण्डल और वाइसराय की कौंसिल के प्रति मेरा जो कुछ विश्वास था, वह सब जाता रहा है। इस कांड में मि० मांटेग्यू ने भी अच्छा खेल नहीं खेला। उन्होंने ईश्वर और शैतान दोनों को भजने का प्रयत्न किया और बाबाजी की दोनों दुनिया बिगाड़ी। इस आघात से ब्रिटिश संविधान बच निकले, तो वह उसके भीतर कोई जीवन-शक्ति होगी, उसके कारण बचेगा। वैसे जिनके हाथों में राज्य की बागडोर है, उन्होंने तो संविधान को मिट्टी में मिलाने में कोई कसर नहीं रखी। महादेव अभी मुझे याद दिला रहा है कि आपके जिस पत्र का मैं जवाब दे रहा हूँ, उसे तो आपने तार देकर रद कर दिया है। परन्तु उससे परिस्थिति में फर्क नहीं पड़ता। मैं चाहता हूँ कि आप मेरी तरह ब्रिटिश शासन के दोहरे अपराध की गंभीरता स्वीकार करें अथवा मेरी भूल हो, तो बताकर मुझसे सुधार करायें।

"जाति-व्यवस्था सम्बन्धी मेरे विचारों से आपको घबराने की जरूरत

नहीं। मेरे विचार नीति के आधार पर बने होने के कारण उनसे आपको चिन्ता नहीं होनी चाहिए। मेरे दृष्टिकोण के बारे में आपको गलतफहमी हो गयी है। किसी भी मनुष्य के प्रति अरुचि होने के कारण उसके साथ न खाना पाप है। परन्तु आत्मसंयम के कारण किसीके साथ न खाने में आत्मसंयम है। आपको पता है कि भारत में कितनी ही माताएँ परिवार के सामान्य भोजनालय से भोजन न लेने का संयम पालती हैं। मेरा खयाल है कि नरोत्तम सेठ की माँ परिवार के सामान्य भोजनालय में भोजन नहीं करतीं। मेरे खयाल से उनका आत्मसंयम अनावश्यक है। फिर भी संभव है कि उसमें कुछ गुण हो। उसमें पाप तो है ही नहीं। इसी प्रकार पत्नी की पसन्द का क्षेत्र मर्यादित करने में गुण है, वैसे ही जैसे अनेक के बजाय एक पत्नी की मर्यादा रखने में गुण है। भोग भोगने में मर्यादा बनाने की आवश्यकता और उसके गुण आप अवश्य स्वीकार करेंगे। पाप तब होता है, जब मैं अपनी सेवा-क्षेत्र की, त्याग के क्षेत्र की मर्यादा बना दूँ। मुझे कई बार विचार होता है कि हिन्दू-धर्म भले ही इस समय व्यवहार में अधमता को प्राप्त हो गया हो, फिर भी उसके असली रहस्यों की भव्यता अभी तक आपकी समझ में अच्छी तरह नहीं आयी।

"मेरी तबीयत ठीक कही जा सकती है। परन्तु अभी मुझे शान्ति, विश्राम तथा एकान्त की आवश्यकता है। मैंने अभी सुना है कि तुर्किस्तान के साथ सुलह की सारी शर्तों पर फिर से विचार होगा। ऐसा हो जाय, तो थोड़े दिन कहीं खिसक जाऊँ और शान्ति भोगने की आशा रखूँ।

"सर जार्ज बार्न्स ने मुझे ब्रिटिश गियाना जाने का आमंत्रण दिया है। मैंने उन्हें लिखा है कि जब तक खिलाफत आन्दोलन जारी है, तब तक मैं कहीं बाहर नहीं जा सकता। आप जायँगे ?

"इम्पीरियल सिटिजनशिप असोसिएशन के नाम आपका पूर्वी अफ्रीका सम्बन्धी पत्र पढ़ा। साफ दिखाई देता है कि आपने वह भारी काम के बीच लिखा है। उन्होंने उसके विरुद्ध आलोचना की है। मैं मौन

रहा, परन्तु उनकी आलोचना के प्रति मन में सहानुभूति दिखाये बिना नहीं रह सका । आपका पत्र घसीटा हुआ था। उसमें जानकारी बहुत ही थोड़ी थी। दक्षिण अफ्रीका के मामले में आपने अपनी रिपोर्ट अभी तक नहीं भेजी, इसकी भी वे शिकायत कर रहे थे। मेरा खयाल है कि आप उनके मनोनीत प्रतिनिधि बनकर वहाँ गये थे। इसलिए उन्हें पूरी रिपोर्ट देना आपका फर्ज था। सभ्यता के लिए आपको सबसे पहले उन्हें लिखना चाहिए था। मैं चाहता हूँ कि अब भी आप यह भूल भरसक सुधार लें।"

आज वाइसराय को इस प्रकार पत्र लिखा :

¶ "आपके कुछ विश्वास का पात्र बने हुए व्यक्ति के नाते और साथ ही ब्रिटिश साम्राज्य के एक अनन्य शुभचिन्तक के नाते आपके और आपके मारफत सम्राट् महोदय के मंत्रिमंडल के सम्मुख खिलाफत के सवाल के साथ मेरा सम्बन्ध और साथ ही उसके बारे में अपना व्यवहार स्पष्ट करना मैं अपना धर्म समझता हूँ।

"लड़ाई के ठेठ शुरू से जब मैं लंदन में इंडियन एम्बुलेंस दल खड़ा करने में लगा हुआ था, तब से ही मैं खिलाफत के सवाल में दिलचस्पी लेने लगा था। और जब तुर्की ने जर्मनी का पक्ष लेना तय किया, तब मैंने देखा था कि लंदन में छोटी-सी मुसलमान जाति कितनी बेचैन हो उठी थी। जनवरी १९१५ में हिन्दुस्तान आने के बाद भी जिन-जिन मुसलमानों से मेरा वास्ता पड़ा, उन्हें मैंने उसी चिन्ता और आतुरता से घिरा हुआ पाया। जब गुप्त संधियों की बातें फूटीं, तब उनकी यह चिन्ता बहुत ही बढ़ गयी। ब्रिटेन के इरादों के बारे में उनके अविश्वास का पार नहीं रहा और वे हताश हो गये। उस समय भी मैंने अपने मुसलमान भाइयों को निराश न होने और अपने डर और उम्मीदों को व्यवस्थित रूप में प्रकट करने की सलाह दी। और सभी स्वीकार करेंगे कि पिछले पाँच वर्ष तक समस्त भारतीय मुसलमानों ने प्रशंसनीय संयम से काम लिया है और उनके नेता जाति के फसादी वर्गों पर पूरा काबू रख सके हैं।

"सुलह की शर्तों से और आपके किये हुए उन शर्तों के बचाव से

भारतीय मुसलमानों के मन को जो धक्का लगा है, उससे सीधे खड़ा होना उनके लिए कठिन हो जायगा। ये शर्तें मंत्रियों के वचनों का साफ भंग करनेवाली और मुसलमानों की भावना को स्पष्टतः चोट पहुँचानेवाली हैं। मेरा खयाल है कि अपने मुसलमान देशबन्धुओं के साथ पूरी तरह भाईचारे के नाते से रहने की इच्छावाले हिन्दू के नाते मैं यदि संकट के समय उनका साथ न दूँ, तो मैं हिन्दू माता की कोख लजाऊँगा। मेरी नम्र समझ के अनुसार उनका पक्ष सही है। वे कहते हैं कि यदि उनकी भावनाओं का आदर करना हो, तो तुर्की को सजा देने की बात छोड़ देनी चाहिए। मुसलमान सिपाही कोई अपने ही खलीफा को सजा दिलवाने या उसका मुल्क छिनवा देने के लिए नहीं लड़े। मुसलमानों का यह रवैया पिछले पाँच वर्ष में एक-सा रहा है।

"जिस साम्राज्य का वफादार रहने को मैं बँधा हुआ हूँ, उसीके प्रति मेरा धर्म मुझे इस समय मुसलमान भावनाओं को लगे हुए निर्दय आघात का प्रतिकार करने को विवश कर रहा है। मेरे विचार से हिन्दू-मुसलमान दोनों के दिलों से ब्रिटिश न्याय और ब्रिटिश सम्मान के प्रति विश्वास उठ गया है। हंटर कमेटी के बहुमत की रिपोर्ट, उस पर आपका खरीता और मि० मांटेग्यू का उस पर दिया हुआ जवाब—इन सबने उस अविश्वास में वृद्धि ही की है।

"ऐसी स्थिति के बीच मेरे जैसे के लिए एक ही रास्ता खुला रहता है। वह यह कि या तो निराश होकर ब्रिटिश राज्य के साथ सम्बन्ध तोड़ डालूँ, अन्यथा यदि वर्तमान सभी शासन-विधानों से ब्रिटिश शासन-विधान की श्रेष्ठता के लिए मुझे अब भी श्रद्धा हो, तो ऐसा कोई मार्ग ग्रहण करूँ, जिससे हो चुके अन्याय का परिमार्जन हो जाय और उठा हुआ विश्वास लौट आवे। ब्रिटिश शासन-विधान की श्रेष्ठता सम्बन्धी अपना विश्वास मैंने अभी खो नहीं दिया है; और यदि लोग स्वयं कष्ट-सहन करने की पर्याप्त शक्ति दिखा सकेंगे, तो अब भी किसी-न-किसी तरह न्याय का पलड़ा झुकेगा, इस आशा को मैं छोड़ नहीं सकता। अलबत्ता, ब्रिटिश शासन-विधान के

बारे में मेरी यह कल्पना है कि वह सिर ऊँचा रखनेवाले की ही सहायता करता है। मैं यह नहीं मानता कि वह दुर्बलों की रक्षा कर सकता है। उसके आश्रय में केवल ताकतवर ही फलता-फूलता है; दुर्बल मारे-मारे फिरते हैं।

"इस प्रकार मुझे ब्रिटिश शासन-विधान के प्रति श्रद्धा है, इसी कारण सुलह की शर्तों में ब्रिटिश मंत्रियों के वचनों और मुसलिम भावना पर ध्यान देकर उचित फेर-बदल न हों, तो मैंने अपने मुसलमान भाइयों को आपकी सरकार के साथ सहयोग बन्द कर देने और हिन्दुओं को उसमें शरीक होने की सलाह दी है।

"जो महान् अन्याय मुख्यतः ब्रिटिश मन्त्रियों के हाथों हुआ या कम-से-कम जिसके करने में ब्रिटिश मन्त्री हिस्सेदार बने, उसके प्रति अपना जोरदार विरोध प्रकट करने के तीन मार्ग मुसलमानों के लिए खुले थे :

"१. रक्तपात मचाना।

"२. सारी जाति का एक ही बार में हिजरत अथवा देश-त्याग कर देना।

"३. सरकार के साथ सहयोग बन्द करके अन्याय की हिस्सेदारी से निकल जाना।

"आप जानते ही होंगे कि एक समय ऐसा भी था, जब मुसलमानों का सबसे साहसी—विचारहीन तो अवश्य ही—वर्ग मारकाट के पक्ष में था। इसी प्रकार हिजरत का शोर भी अभी तक बिलकुल बन्द नहीं हुआ है। मैं कहूँगा कि असाधारण धीरज के साथ बहस कर-करके रक्तपात की हिमायत करनेवाले वर्ग को उनके विचारों से हटा देने का मैं दावा करा सकता हूँ। मैं स्वीकार करता हूँ कि यह केवल व्यवहार की दृष्टि से ही करा सका हूँ। सिद्धान्त की दृष्टि से मैं उनसे रक्तपात को अग्राह्य स्वीकार नहीं करा सका, ऐसा करने का मैंने प्रयत्न भी नहीं किया। परिणामस्वरूप फिलहाल के लिए मारकाट के विचार छोड़ दिये गये हैं। हिजरत की हिमायत भी बिलकुल बन्द न हुई हो, तो भी नरम तो जरूर पड़ गयी है। मैं मानता हूँ कि जिसमें बड़ी मात्रा में कुर्बानी

की जरूरत पड़ती है और लोग बड़ी संख्या में अमल कर सकें, तो जिसके द्वारा कार्य-सिद्धि होने का लोगों को इतमीनान हो, ऐसा कोई भी स्वावलम्बी कार्यक्रम लोगों के सामने न रखा जाता, तो सरकार की ओर से कितना ही दबाव या सख्ती भी रक्तपात को फट पड़ने से नहीं रोक सकता। असहयोग ही एक ऐसा शरीफ, स्वावलंबी और वैध कार्यक्रम था, क्योंकि जो शासक अपना राज्य-धर्म छोड़कर कुशासन करे, उसे मदद देने से इनकार करना प्रजा का सनातन काल से स्वीकार किया हुआ हक है।

"इसीके साथ-साथ मैं यह भी स्वीकार कर लेना चाहता हूँ कि आज लोगों की बड़ी संख्या के हाथों असहयोग अमल में लाया जाय, तो इसमें गम्भीर जोखिम भी अवश्य है। परन्तु इस वक्त इस देश के मुसल्मानों के सामने जो गम्भीर प्रश्न खड़ा हो गया है, उसके जोखिम-रहित उपायों से सुधर सकने की आशा कम है। आज थोड़ी-बहुत जोखिम उठाने को तैयार न होना बहुत ही बड़ी जोखिम को निमन्त्रित करने या सुलह-शान्ति का सम्पूर्ण नाश मोल लेने जैसा है।

"परन्तु इस असहयोग से बचने का अब भी उपाय है। जैसा आपके पहले के नामांकित वाइसराय ने दक्षिण अफ्रीका के मामले में किया था, वैसे आपसे भी इस मामले में नेतृत्व करने की मुसलमान भाइयों की अर्जी में प्रार्थना की गयी है। परन्तु यदि ऐसा करने में आप अपने को असमर्थ मानें और हमें असहयोग करना ही पड़े, तो मुझे आशा है कि आप हमें यह मानने का श्रेय देंगे कि जिन्होंने मेरी सलाह मानी है, वे और मैं भी इस मामले में एकमात्र निश्चित कर्तव्य के विचार के सिवा और किसी भी प्रकार के हेतु से शामिल नहीं हुए हैं।"

१४-७-'२० से
२१-७-'२०

[असहयोग के सिलसिले में बापूजी ने सारे भारत का भ्रमण किया। उसमें महादेवभाई जहाँ-जहाँ बापूजी के साथ थे, वहाँ के भाषणों, मुला-

कातों तथा घटनाओं को उन्होंने अपनी डायरी में बहुत कच्चे तौर पर दर्ज किया है। वह न देकर उस पर से वे 'नवजीवन' में जो पत्र लिखते थे, उन्हें यहाँ देना ठीक समझा गया है।]

पंजाब का पत्र—१
भक्ति में भी मर्यादा हो

हम १४ तारीख को दोपहर को बम्बई से चले। मौलाना शौकतअली के इन्तजाम में कुछ भी कसर नहीं थी। कल्याण से खिलाफत में दिलचस्पी लेनेवाले लोग स्टेशनों पर आने लगे। अमृतसर तक हरएक महत्त्वपूर्ण स्टेशन पर लोगों की भीड़ हो जाती थी। स्टेशनों पर शौकतअली को जो थोड़े-से मिनट मिलते, उतने में वे लोगों को अपनी सुन्दर भाषा में खिलाफत का तत्त्व और पहली अगस्त के दिन का कर्तव्य समझाते। भुसावल तक यह हाल रहा। लोगों की संख्या इतनी अधिक नहीं थी कि शान्ति न रखी जा सके; इसलिए शौकतअली आसानी से अपना काम करते जा रहे थे। परन्तु आधी रात को शोर शुरू हुआ। होशंगाबाद स्टेशन पर तो शौकतअली के रोकने पर भी लोग न रुके; 'महात्मा गांधी की जय', 'अल्लाहो अकबर' से स्टेशन को गुँजा दिया था। गांधीजी भी जाग उठे। इसी प्रकार भोपाल, बीना, झाँसी, ग्वालियर, आगरा, मथुरा और दूसरी रात मेरठ पहुँचने तक होता रहा। बहुत-से स्थानों पर सैकड़ों नहीं, हजारों आदमी इकट्ठे होते और गांधीजी, शौकतअली तथा डॉ० किचलू को एक दिन के लिए ठहराने का बड़ा आग्रह करते। कई स्थानों पर उत्साह इतना अधिक फालतू था कि लोग यह नहीं सोचते थे कि गाड़ी के दूसरे मुसाफिरों को उनके शोरगुल और भीड़ से कितनी असुविधा होती होगी; उनकी भक्ति के पात्र शौकतअली, गांधीजी और डॉक्टर किचलू को कितनी परेशानी होती होगी, इसका खयाल भी नहीं रखते; और अत्यंत अनुनय-विनय के बावजूद फूलों के ढेर डाल-डालकर गाड़ी में कूड़ा-करकट बढ़ाने से न हिचकिचाते! फूलों से भी कचरा होता है, यह कथन

कठोर लगेगा, इसमें भक्ति की कद्र का अभाव प्रतीत होगा, परन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। भक्ति में भी मर्यादा होनी चाहिए। मर्यादा का उल्लंघन करके जिनके प्रति भक्ति दिखाई जाती हो, उन्हें स्पष्टतः तंग किया जाता हो, तो वह भक्ति ही नहीं रह जाती। लोग जिनसे मिलने आये होते हैं, उनसे दो घड़ी के समागम का लाभ नहीं उठाया जाता, उन्हें दो जरूरी शब्द कहने हों, तो उनके कहने का भी मौका नहीं मिलता और इस प्रकार सारा ही उत्साह व्यर्थ जाता है। हमें भरसक जल्दी ही अपनी भक्ति में मर्यादा और विवेक रखना सीखना पड़ेगा।

जलंधर

परन्तु अब तो यात्रा के अनुभवों की अपेक्षा अधिक जरूरी तथ्यों पर आयें। पन्द्रह तारीख को सुबह जलन्धर में रायजादा भगतराम के यहाँ ठहरे थे। दिनभर स्त्रियों की टोलियाँ सूत के गोले और डोरे लेकर आती ही रहीं। वे गांधीजी को एक बार सूत के गोले और डोरे से खुश करती थीं, इसलिए उनके लिए तो यह अनुभव नया नहीं था। परन्तु स्त्रियों ने देखा कि अब केवल सूत के गोलों से 'महात्माजी' को रिझाना सम्भव नहीं; क्योंकि प्रत्येक स्त्री को 'तुम कातती तो हो, परन्तु तुम्हारे काते हुए सूत के कपड़े तो मैं तुम्हारे शरीर पर देखता ही नहीं' इस प्रकार मीठी चुटकी लेकर परेशान करते और फिर तो खादी के बेशुमार गुणगान करने लगते। ये गुणगान जिन्होंने सुने हैं, वे उनके असर की कल्पना कर सकेंगे। मुझे तो शंका नहीं कि आइन्दा मुलाकात के समय स्त्रियाँ खादी के कपड़े पहनकर ही गांधीजी के दर्शन करने आयेंगी। उनकी विशुद्ध भक्ति से मैं चकित रह गया। चुटकी लेते हुए भी गांधीजी उन्हें सुन्दर प्रोत्साहन देने में नहीं चूकते थे: 'पुरुष बोलनेवाले हैं, उन्हें मैं कह-कहकर थक गया हूँ कि स्वदेशी को समझो। वे कह देंगे कि स्वदेशी परम धर्म है। परन्तु उसको परम धर्म वचन से नहीं, व्यवहार बतानेवाली तो तुम बहनें ही हो।'

शुरू में ही रायजादा साहब ने खबर दी कि 'यहाँ असहयोग के लिए लोगों में काफी उत्साह नहीं है।' इस वचन की सत्यता तो हम आगे चल-कर देखेंगे, परन्तु लोगों की अपेक्षा लोकनेताओं के बारे में यह वचन सत्य होने का कुछ आभास अवश्य हो गया। लाला लाजपतराय ने यहाँ धारा-सभाओं के बहिष्कार का प्रश्न उपस्थित किया है, इसलिए उसके सम्बन्ध में सभी गांधीजी को सुनने के लिए उत्सुक थे। इस बारे में कुछ दिलचस्प बहस हुई, परन्तु रायजादा साहब को बहिष्कार के महत्त्व के विषय में इतमी-नान न हो सका। शाम को ही अमृतसर जाने का निश्चय था, इसलिए दोपहर को दो बजे शामियाने के नीचे सभा रखी गयी थी। पंजाब की तेज धूप और हम लोगों की कच्ची व्यवस्था-शक्ति—इन दोनों कारणों से सभा का काम शुरू करना असम्भव हो गया। लगभग एक घण्टा लोगों को शान्त करने में बीत गया, परन्तु कुछ हुआ नहीं। अन्त में सभा विसर्जन करनी पड़ी। तीन घण्टे बाद शहर के एक हॉल में सभा हुई, जहाँ लोगों ने काफी शान्ति रखी। उस सभा का वर्णन मैं यहाँ नहीं करूँगा, क्योंकि एक और भारी जलसे का वर्णन तो मुझे करना ही है और उस जलसे में हुए भाषणों का संक्षिप्त सार दे दूँगा, तो मैं मानता हूँ कि जलन्धर के भाषणों का सार देने की जरूरत थोड़ी ही रहेगी।

अमृतसर

लोगों की अविवेकपूर्ण भक्ति का कड़ा अनुभव जलंधर स्टेशन पर भी हुआ। गाड़ी आने में थोड़ी देर थी, इसलिए गांधीजी, श्रीमती सरलादेवी, शौकतअली और दूसरे नेता 'वेटिंग रूम' में बैठे थे। लोगों ने 'वेटिंग रूम' पर हल्ला बोल दिया। सैकड़ों लोग 'दर्शनों' के लिए धक्कमधुक्का कर रहे थे। दूसरे मुसाफिरों के सामान का और जिनके दर्शनों के लिए वह शोर मचा हुआ था, उन नेताओं के सामान का बुरा हाल हो गया था। वह शोर जब तक गाड़ी आकर ज्यों-त्यों चल न पड़ी, तब तक बंद नहीं हुआ। इस जोश के कारण ही श्रीमती सरलादेवी की एक कीमती

चमड़े की पेटी स्टेशन पर रह गयी। नेताओं के 'दर्शनों' से संतोष मानने के बजाय उनके कार्यों में भाग लेना हम कब सीखेंगे ?

अमृतसर जलंधर से पचास मील है। शाम को अमृतसर आ पहुँचे। सभा रात को ही रखी गयी थी। इस सभा को सभा नहीं, एक जबरदस्त जलसा ही कहना चाहिए। व्यवस्था-शक्ति के बारे में अन्यत्र जो निराशा उत्पन्न हुई थी, वह यहाँ बहुत कुछ कम हो गयी। यह जलसा अंजुमन बाग के विशाल मैदान में था। घोषित समय से तीन घंटे पहले ही भीड़ की भीड़ आकर बैठी थी। जलसे में हिन्दू अधिक थे या मुसलमान, यह कहना असंभव था—लोग इतने घुल-मिलकर बैठे थे। उनकी संख्या कम-से-कम दस हजार तक होगी, फिर भी भारी शान्ति रखी जा रही थी। स्त्रियाँ भी रात को इतनी देर तक काफी संख्या में उपस्थित थीं। सभा के अध्यक्ष-पद पर एक धीर और गम्भीर मुसलमान मौलवी सनाउल्ला विराजमान थे।

शुरुआत भाई अख्तरअली की गजल से हुई। गजल लम्बी है, इसलिए यहाँ दे नहीं सकता। परन्तु उसका वादी सुर यह था कि 'यह बड़ी परीक्षा की है, कसौटी की है और परीक्षा तो भाग्यवान् की ही होती है; इस परीक्षा के अन्त में वीर साबित होंगे, इसीलिए परवरदिगार को बंदगी।'

खौफ नहीं, नाउम्मेदी नहीं

मौलाना शौकतअली ने कोई पंद्रह मिनट तक सारे जलसे का ध्यान खींचकर रखा। उनकी आवाज बोलते-बोलते बैठ गयी है, फिर भी लोगों की शान्ति के कारण सभी उसे सुन सकते थे।

मैं उसके मुख्तसर मुद्दे दूँगा। मौलाना ने शुरुआत की : "कितने ही महीने हो गये, खिलाफत के बारे में अनेक भली-बुरी खबरें सुनता ही रहता हूँ, परन्तु मुझ पर उनका कुछ भी असर नहीं होता। 'खौफ, खतरे या नाउम्मेदी' के बिना मैं तो अपने फर्ज का विचार करता हुआ काम किये

जा रहा हूँ । इसमें किसीके क्रुद्ध हो जाने का काम नहीं, डरने का काम नहीं और न उकताने का ही काम है । मैं तो चाहता हूँ, खुदाताला से प्रार्थना करता हूँ कि यूरोप इस सवाल पर अपना आखिरी फैसला दे दे, तो उसी वक्त यूरोप को हम भी अपना आखिरी फैसला बता दें । यह आखिरी फैसला सरकार के साथ तमाम ताल्लुकात बन्द कर देने का, सरकार को तलाक दे देने का, कुरान शरीफ के शब्दों में 'अदम तावुन' करने का है ।" हिजरत और जिहाद के दो उपाय मुसलमान भाइयों के लिए खुले होने पर भी उन्होंने यह उपाय क्यों चुना, यह समझाया : "जब तक हमें गांधीजी की मदद चाहिए, तब तक उनका बताया हुआ उपाय ही हमें मुबारक है ।" पंजाब के सवाल पर भी उन्होंने खूब जोर दिया और कहा : "हममें हिम्मत न आयी हो, खुदा और इन्सानियत के प्रति कर्तव्य का हमें भान न हुआ हो, आजादी क्या चीज है, इसका हमें खयाल न आया हो, तो हमारे लिए एक नहीं, दस जलियाँवाला बाग वाजिब हैं ।"

सात करोड़ एक लाख का काम नहीं कर सकते ?

इसके बाद डॉक्टर किचलू बोलने उठे । डॉक्टर किचलू शौकत-अली के सामने दीखने में बच्चे जैसे हैं, इसलिए उन्हें मंच पर खड़े होकर बोलना पड़ा । उन्होंने अपनी बुलंद आवाज में लोगों से कहा कि 'यह वक्त बातों का नहीं, काम का है ।' असहयोग का रहस्य लोगों को समझा-कर उन्होंने पूछा : "हमारी आँखों के सामने एक लाख गोरे सारे देश का शासन कर रहे हैं । क्या हम सात करोड़ मुसलमान एक लाख का काम नहीं कर सकते ? क्या हम इतने अधिक कमजोर और नालायक बन गये हैं ? हिजरत करने का मुसलमान धर्म का फरमान जरूर है, परन्तु मैं खुद तो यहीं रहकर अपने धर्म की स्वतंत्रता साधूँगा ।" बाद में पंजाब के अत्याचारों का हृदयवेधक वर्णन करके असहयोग का महत्त्व समझाया ।

बाद में गांधीजी उठे । उठे तो उठते ही बोले नहीं, परन्तु डॉक्टर किचलू की तरह मेज पर कुरसी रखकर उन्हें ऊँचे बिठाना पड़ा । उनका

भाषण अत्यंत महत्त्व का होने के कारण मैं उसे जरा विस्तार से दूँगा। उन्होंने कहा :

हमारी भूल सेरभर, सरकार की मनों

"मैं अपना दुःख आपको कैसे बताऊँ ? पंजाब का दर्द कहकर बताना असम्भव है। हिन्दू-मुसलमानों से मैं इतना ही चाहूँगा कि पिछले अप्रैल को कभी न भूलें। साथ ही मैं इतना कह दूँ कि जब तक हम अपनी भूल को नहीं पहचानते और उसे मिटाना नहीं जानते, तब तक हम दूसरे की भूल भी नहीं देख सकते। सरकार ने, सरकारी अधिकारियों ने जबरदस्त अपराध किये हैं। परन्तु हमने भी गुनाह किये हैं। हमने मकान क्यों जलाये ? किसलिए निर्दोष मनुष्यों के प्राण लिये ? पुलिस की निषेधाज्ञाओं को मानना हमारा कर्तव्य था। हमारे इन जुर्मों के लिए सरकार हमें थोड़ी-सी सजा देती, तो उसके बारे में हमारे लिए कहने को शायद ही कुछ रहता। परन्तु सरकार ने तो सजा नहीं दी, केवल अत्याचार किया है। हमारी सेरभर भूल हुई होगी, तो सरकार ने मनों भूल की है।"

अब क्या करें ?

यह समझाते हुए कि उपाय एक 'असहयोग' है और उसकी चार सीढ़ियाँ समझाते हुए गांधीजी ने कहा : "हमारे बुजुर्ग भाई कहते हैं कि यह तो दीवाने का काम है। गांधी तो पिछले अप्रैल को भूलकर काम लेने बैठा है; और शौकतअली ठहरा शमशेर खेंचनेवाला। मुझे उम्मीद है कि मैं उन्हें दिखा दूँगा कि इसमें न कोई पागलपन है और न मैं अप्रैल को भूल गया हूँ। हम बेगुनाह हो जायँ, हम विशुद्ध बन जायँ, तो फिर सरकार के कितने ही अत्याचार क्यों न हों, इसकी मुझे परवाह नहीं। परन्तु हमारा अपराध होगा, तो हमारी कुछ नहीं चलेगी। जब तक 'निर्दोष' बनना नहीं सीखेंगे, तब तक हमें एक नहीं, परन्तु सैकड़ों जलियाँवाला बाग बर्दाश्त करने पड़ेंगे। और उससे मुझे दुःख नहीं होगा। मगर हम

बेगुनाह' बन जायँगे और फिर भी सरकार हमें दुःख देगी, तो हम 'आजाद' होकर खड़े रहेंगे।

पंजाबी डर गये

"पंजाबियों के लिए मैंने सुना है कि वे बड़े उस्ताद और बहादुर हैं। परन्तु मुझे कहना चाहिए कि अप्रैल में तो वे डर गये थे। और ऐसा कहने के लिए मेरे पास ठीक-ठीक कारण हैं। मैं पूछता हूँ कि आप डर नहीं गये थे, तो किसलिए जमीन पर नाक रगड़ी थी? क्यों नहीं आप पेट के बल चलने से रुके? मैंने तो आपसे नहीं कहा था कि आप नाक से लकीर खींचना या साँप की तरह पेट के बल चलना! ऐसे हुक्म हुए, तब आप उनके सामने झुकने के बजाय मर क्यों नहीं गये? आप यह क्यों न कह सके कि 'मैं साँप नहीं, आदमी हूँ। मेरा काम पेट के बल चलना नहीं। बल्कि मैं सारी दुनिया के सामने छाती खोलकर खड़ा रहूँगा।' अवश्य ही पंजाबी डर गये। परन्तु इस समय मैं पंजाब पर दोष लगाने खड़ा नहीं हुआ हूँ। जिस मिट्टी से पंजाब बना है, उसीसे मैं बना हूँ। ऐसे हालत में मैं भी वही अपराध नहीं करूँगा, यह मैं कैसे कह सकता हूँ? मैं तो प्रार्थना करता हूँ कि मेरी गर्दन कट जाय, परन्तु मैं ऐसा कभी न करूँ। आपके लिए भी मैं यही प्रार्थना करता हूँ।"

सच्चे सिपाही बनकर मरो

इसके बाद गांधीजी ने पहली अगस्त का महत्त्व समझाया था: "गुस्से से इन दोनों मामलों का—पंजाब और खिलाफत का निपटारा नहीं होगा, शान्ति से ही होगा। ये दोनों मामले सर करना चाहते हो, तो शान्ति से ही काम करने की प्रतिज्ञा लीजिये। हमारी ओर से अत्याचार होगा, तो हमारा काम अपने-आप बन्द हो जायगा। मैंने तो सच्ची सिपाहीगिरी ही समझी है और उसीको आपके भेट करता हूँ। सच्चा सिपाहीपन मरने में है, मारने में नहीं। किसीकी इज्जत बचाने में है, लूटने में नहीं।"

जिलानी की लाज कैसे रखोगे ?

बहुत लोग कहते हैं कि खिलाफत के बारे में साधारण जनसमूह को ज्ञा
नहीं है। इस दलील का उत्तर गांधीजी ने इस प्रकार दिया :

"खिलाफत के सवाल के बारे में संभव है, सबको जानकारी न हे
परन्तु वह सबको देना खिलाफत का काम करनेवालों का फर्ज है और
अपना फर्ज अदा करेंगे ही। परन्तु जलियाँवाला बाग का ज्ञान किसे न
है ? भाई गुलाम जिलानी पर जो जुल्म गुजरा, उसका पता किसे नहीं
[गांधीजी के यह पूछने पर कि गुलाम जिलानी सभा में हैं या नहीं
उत्तर मिला कि जिलानी हिजरत कर गये हैं।] जिलानी तो हिजरत क
गये हैं, परन्तु वे अपनी इज्जत हमारे सुपुर्द कर गये हैं। वे आपसे कह ग
हैं कि उनकी जो इज्जत लुटी, उसका सरकार से जवाब लोगे या नहीं
बॉस्वर्थ स्मिथ, ओब्रायन, श्रीराम और मलिक खाँ के अत्याचार हम स
लेंगे ? वे लोग अब भी पंजाब में हुकूमत कर रहे हैं। इसे बर्दाश्त करके र
जायँगे ? और हम सह लेंगे, तो क्या मर्दानगी कहलायेगी ? हमें खिलाफ
का ज्ञान न हो, परन्तु जलियाँवाला बाग हमारे हृदयों में चुभ
रहा है।"

सरकार से मुहब्बत तोड़ो

आगे बोलते हुए उन्होंने कहा : ' हम जो जीते रह गये हैं, उनका फर्ज
है कि इस सरकार से मुहब्बत तोड़ दें। जिस सरकार की हुकूमत में हमारा
पौरुष मिट्टी में मिल गया और हमारे धर्म को कलंक लगा, उस सरकार
की हुकूमत में हम कैसे नौकरी कर सकते हैं ? हम उनकी पाठशालाओं
का उपयोग कैसे कर सकते हैं ? वकालत कैसे कर सकते हैं ? धारासभा
में कैसे जा सकते हैं ?

हमें रोटी देनेवाला खुदा है, सरकार नहीं

"यह कहना कि हम भूखों मर जायँगे, कायरता की निशानी है।

हमें रोटी देनेवाला खुदा है, सरकार नहीं। हाथ-पैर काम में लेंगे, तो हमें रोटी की चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। हमें स्वतंत्रता का कुछ भी भान हो, तो हमारे लिए सरकार की मुहब्बत तोड़ देना ही एकमात्र रास्ता है। हमारे पास यूरोप जितनी ताकत होती, तो क्या हम इस तरह बैठे रहते? हम जरूर तलवार उठाते—यद्यपि उस समय मुझे हिन्दुस्तान से हिजरत करनी पड़ती। परन्तु वह ताकत हममें नहीं। हम सबमें इतनी ताकत तो है कि सरकार से बिलकुल 'ताल्लुक' तोड़ दें। सरकार का काम हमारी मदद के बिना क्षणभर भी नहीं चलेगा। मैं हिन्दू-मुसलमान दोनों से कहता हूँ कि सरकार के काम में मदद देकर उसके अन्याय में कभी सहायता न करो, अपना धर्म न बिगाड़ो। पंजाबियों से मैं कहता हूँ कि अपने निर्दोष भाइयों के लिए यदि कुछ करना हो, तो वह यह है। पहली अगस्त अच्छी तरह सुन लो। यह काम पूरा हो जाय, तब तक खामोशी रखना। सरकार के सिपाही आपको बिगाड़ने आयें, तो न बिगड़ना। अपना सिर दे देना, परन्तु पागल न बनना।"

धारासभा में जायँ?

इस विषय की गांधीजी ने सभा में चर्चा करना ठीक नहीं समझा। गांधीजी को ऐसा लगा कि यह प्रश्न लोकनेताओं से चर्चा करने का है, लोकनेताओं से चर्चा करके जो निपटारा हो, उस पर विचार करने का काम ही लोगों को सौंपा जाय। उन्होंने बताया कि लोगों को सीधी सलाह देना लोगों को लोकनेताओं के खिलाफ खड़ा करने के बराबर है। "मैं तो मुसाफिर ठहरा। मैं आपके और आपके नेताओं के बीच झगड़ा पैदा करने नहीं आया। मैं उनसे बातें करूँगा और वह आप सुन लेना। इस बीच मैं बम्बई में बैठे-बैठे आपको अपनी सलाह बताता रहूँगा। भारत मेरी सुने, तो मैं किसीको धारासभा में न जाने दूँ।"

खादी में शराफत

परन्तु गांधीजी का कोई भी भाषण खादी सम्बन्धी वचनों के बिना

कैसे रहे ? खिलाफत के साथ स्वदेशी का सम्बन्ध इस प्रकार है कि "हम अपने वस्त्रों के लिए इंग्लैण्ड या और किसी भी देश पर आधार नहीं रखते, यह यदि हम इंग्लैण्ड को बता दें, तो इंग्लैंड को पता लग जाय कि ऐसे मर्द लोगों के साथ इन्साफ होना ही चाहिए और अंग्रेज लोग भी हमारे साथ खड़े रहें" ऐसा गांधीजी ने कहा।

कुर्बानी करो

उपसंहार करते हुए गांधीजी ने कहा : "मुसलमान कुछ करने को तैयार न हों, तो यह जबरदस्त जलसा बेकार ही हुआ समझिये। परन्तु हमारे सामने जो मामले खड़े हैं, उनका निपटारा ऐसे जलसों से नहीं होगा, परन्तु सच्ची कुर्बानी से ही होगा। इसलिए खुदा का नाम लेकर जान, माल और अपना सर्वस्व बलिदान करके ही लड़िये।"

इस प्रकार जलसा पूरा हुआ। आज तो पत्र लाहौर से लिख रहा हूँ। लाहौर के बारे में कुछ लिखने लगूँ, तो यह पत्र दुगुना हो जाय और लाहौर में कुछ ऐसी स्मरणीय घटनाएँ घटी हैं कि संभव हुआ, तो उनका वर्णन गांधीजी से ही कराऊँगा।

लाहौर, १६-७-'२०

पंजाब का पत्र—२

लाहौर

मैंने पिछले पत्र में लाहौर तक का तो वर्णन कर दिया। लाहौर में हुए काम का वृत्तान्त मैंने नहीं दिया। वहाँ शाम को पाँच बजे सभा रखी गयी थी। एक विशाल तम्बू के नीचे लोग इकट्ठे हुए थे। लाहौर की धूप तो हंटर कमेटी के सामने दी गयी गवाही में मशहूर हो गयी है। पसीना झरते हुए हजारों आदमी जैसे-तैसे करके पंखे हिलाते हों और पीछे से दूसरे लोगों का रेला आते ही विह्वल होकर खड़े हो जायँ! शोरगुल तो

इन हालत में होता ही है। इस शोरगुल को शान्त करने की बड़ी कोशिश सभा के अध्यक्ष पंडित रामभजदत्त चौधरी ने की, औरों ने भी की, परन्तु उनकी आवाज ही दूर तक नहीं पहुँच सकती थी या दूसरी आवाज में डूब जाती थी। इस प्रकार एक घण्टे तक प्रयत्न होता रहा, परन्तु अन्त में सभा बर्खास्त करके रात के लिए मुल्तवी करनी पड़ी। ऐसा लगता है कि पंजाब में विराट् सभाएँ करने का अनुकूल समय चाँदनी रातें ही हैं।

लोगों को दोपहर में निराश होकर चला जाना पड़ा, इसलिए किसीको आशा न थी कि रात की सभा जबरदस्त होगी; परन्तु ऐसा जान पड़ा कि लोगों को तकलीफ की परवाह नहीं थी। रात को जबरदस्त सभा हुई। लोगों ने पूरी तरह शान्ति रखी और रात के एक बजे तक स्थिर चित्त होकर भाषण सुने। इन भाषणों का सार मैं यहाँ नहीं दूँगा। डॉक्टर किचलू और शौकतअली के भाषण अमृतसर की भाँति जोशीले थे और उनका आशय वहाँ के भाषणों जैसा ही था। गांधीजी का भाषण अमृतसर से भी जोरदार था, परन्तु रावलपिंडी के जिस भाषण का सार मैं आगे दूँगा, उसमें वह आ जाता है।

महाजरीनों सम्बन्धी प्रस्ताव

सभा में हुई एक घटना का यहाँ उल्लेख किये बिना काम नहीं चलेगा। गोलीकांडवाले महाजरीनों के बारे में पेशावर से कुछ तफसील आयी थी। सभा ने यह प्रस्ताव करना तय किया था कि सरकार जल्दी ही भरसक पूर्ण और सन्तोषजनक विवरण प्रकाशित करे। यह प्रस्ताव पेश करने मौलवी जफरअली खाँ खड़े हुए थे। मौलवीजी की जबान बहुत ही जोरदार और कटार जैसी वेधक है। जिन महाजरीनों पर एक नहीं, दो नहीं परन्तु छह बार गोलियाँ चलीं, उनका वर्णन करते हुए वे उबल उठे। श्रोताओं के दिल भी कँपा देनेवाली ये बातें सुनकर उबल उठे। कुछ की आँखों से चार-चार आँसू गिर रहे थे। मौलवीजी इस करुण कांड के

विस्तार में गहरे जाकर उसे और भी करुण बना रहे थे। भाई शौकत-अली से अधिक सहन नहीं हो सका, इसलिए उठकर मौलवीजी को रोका और कहा : "भाई, अब तो इसे खतम करो, हमारे दिल न जलाओ।"

रावलपिंडी

दूसरे दिन रावलपिंडी गये। तीसरे दर्जे के यात्रियों के लिए नार्थ वेस्टर्न रेलवे का लाहौर से पेशावर का सफर जितना कष्टदायक है, उतना और किसी रेलवे पर शायद ही होगा। मुझे इस यात्रा का व्यक्तिगत अनुभव तो नहीं हुआ, परन्तु आठ आदमियों के बैठने के डब्बे में बीस-बाईस आदमी, गंदगी का पार नहीं, इतनी किसी भी प्रेक्षक को मालूम होनेवाली चीजों के बारे में ही यहाँ कह दूँ। रावलपिंडी दूसरे दिन प्रातः पहुँचे। स्टेशन पर लोग उमड़ रहे थे। बड़ी मुश्किल से स्टेशन के प्लैट-फार्म से बाहर निकले। सिर पर तेज धूप थी, तो भी लोग अपने महँगे मेहमानों को जुलूस से कैसे बचने दें? स्टेशन से डेरे तक जाने में लगभग एक-डेढ़ घंटा लगा।

दोपहर से शाम तक सैकड़ों स्त्रियाँ आ गयीं। उनको 'खादी की शराफत' का पाठ दिया गया और अनेक हिन्दू-मुसलमान आये, जिनके सामने हिन्दू-मुसलिम ऐक्य की वृद्धि की व्यावहारिक कार्रवाइयों की चर्चा हुई। शाम को सभा थी। सभा में आदमी दोपहर से आने लगे और सभा एक घंटे देर से होने के कारण कुछ तो चले गये थे। फिर भी हम सभा में पहुँचे, तब कम-से-कम बीस हजार आदमी तो होंगे ही। बड़ी मुश्किल से हम व्याख्यान-मंच पर पहुँचे। थोड़ी देर तक तो ऐसा ही लग रहा था कि सभा को बखेर देना पड़ेगा। परन्तु यहाँ तो बखेर देने से कोई छुटकारा होनेवाला नहीं था, क्योंकि रात तो लगभग हो चली थी और दूसरे दिन यहाँ से चल देना था। अत्यंत कठिनाई से गांधीजी लोगों को शान्ति रखने के लिए समझा सके, और जब उन्होंने बोलना शुरू

किया, तब तो इतनी जबरदस्त शान्ति थी कि जमीन पर सूई पड़े, तो सुनाई दे जाय।

भारत की आजादी, हिन्दू-धर्म की आजादी

गांधीजी ने यह कहकर कि मुसलमान भाइयों की लड़ाई इन्साफ के लिए है, संक्षेप में हिन्दुओं को यह समझाया कि उन्हें उनके साथ क्यों मिल जाना चाहिए :

"हिन्दू समझते हों कि सात करोड़ मुसलमान उनके स्वदेशवासी हैं और वे उनके साथ शत्रुता करके नहीं रह सकते, तो वे समझ लेंगे कि उनका बड़ा भारी कर्तव्य है कि मुसलमानों के साथ रहकर जीयें और उनके साथ मरने का निश्चय करें। मैं तालियों की आवाज नहीं चाहता, मैं जलसे देखना नहीं चाहता, मैं तो 'अमली काम' चाहता हूँ। हिन्दू अपना कर्तव्य भूलकर बलिदान में भाग न लें, तो मैं उनसे कहूँगा कि जैसे मुसलमान-धर्म खतरे में पड़ा, वैसे किसी दिन हिन्दू-धर्म भी खतरे में पड़ सकता है। यूरोप में मित्र-राज्यों के मंत्री समझते हैं कि जैसे यूरोप से मुसलमानों के पैर उखाड़े जा सकते हैं, वैसे वे किसी दिन यह भी चाह सकते हैं कि हिन्दुओं को गुलाम बनाया जा सके, तो अच्छा। हमारे लिए उचित है कि जब तक मुसलमान भाई अपने ईमान और दीन पर कायम रहकर कुर्बानी करने को तैयार हों, तब तक भारत की स्वतंत्रता के लिए मुसलमानों के साथ खड़े रहें।"

तलवार म्यान में रखकर कुर्बानी करो

आगे चलकर उन्होंने यह कहकर कि विजय-प्राप्ति का एकमात्र मार्ग बलिदान है, बलिदान का स्वरूप समझाया :

"मुसलमान भाइयों को मैं तीस साल से जानता हूँ। मैं मुग्ध हूँ कि मुसलमान भाई हिम्मत का काम कर सकते हैं, बहादुरी कर सकते हैं। मैंने यह भी देखा है कि उन्होंने अक्सर जो भारी काम किये हैं, वे केवल गुस्से

मिलेगा। परन्तु जब तक हमारा यह खयाल न हो जाय कि सारे हिन्दुस्तान पर हम असर नहीं डाल सके, तब तक सिपाहियों और किसानों से हम कुछ भी न कहेंगे।"

रंगरूट भरती न हों

पंजाब में इस समय रंगरूटों की जो भरती हो रही है, उसे ध्यान में रखकर गांधीजी ने कहा :

"ये लोग किसलिए भरती में जाते हैं ? रुपये के लिए। जो रुपया इन्सानियत ले लेता है, वह धूल के बराबर है। क्या आप बॉस्वर्थ स्मिथ, जॉनसन और श्रीराम वगैरह के काले कारनामे भूल गये हैं ? पेट घिसने पड़े थे, सो भूल गये ? मैं नम्रतापूर्वक कहता हूँ कि इस भरती के लालच में न फँसो। मजदूरी करके रोटी कमाओ और साफ दिल से कह दो कि हम रंगरूट नहीं दे सकते। और पंजाब यह कह दे, तो कितना भारी असर होगा, इसका विचार करो। पंजाब के बराबर सैनिक किसने दिये हैं ? और पंजाब सैनिक देने से इनकार कर दे, तो फिर किसकी ताकत है कि और कहीं से सिपाही ले सके ?"

पंजाब की नाक के लिए

"मैंने भी सरकार की सिपाहीगिरी की है, परन्तु अब तो सरकार से यह कहने का समय आ गया है कि तुम्हारी सल्तनत से खुदा की सल्तनत हमें हजारगुनी प्यारी है। उस सल्तनत में हम अपने धर्म को कायम रख सकते हैं। तुम्हारी सल्तनत अन्याय से टिकी हुई है, खुदा के विरुद्ध होकर टिकी हुई है। उसके प्रति हम वफादारी नहीं रख सकते।

"मार्शल लॉ में पंजाब की नाक कट गयी है, पंजाब की लाज जाती रही। उसका अच्छी तरह बदला मिल जाय, इसके लिए सरकार से कह दो कि तुम्हारी वफादार रैयत हम रहना चाहते हैं, परन्तु वह तभी, जब तुम

सीधे हो जाओगे, पंजाब के साथ न्याय करोगे। तब तक हमें तुमसे मुहब्बत नहीं, कुछ लेना-देना नहीं।"

तुम पागल न बनना

मांटेग्यू ने गांधीजी के बारे में लोकसदन में जो उद्‌गार प्रकट किये थे, उनकी तरफ इशारा करके वे बोले :

"मांटेग्यू ने कहा है कि गांधी ने देश की सेवा तो की है, परन्तु अब वे पागल हो गये हैं और जरूरत होगी, तो उन्हें गिरफ्तार करना पड़ेगा। मैं तुमसे कहता हूँ कि गांधी को गिरफ्तार करें, तो तुम पागल न बनना। तुम किचलू के लिए पागल हो गये थे, सत्यपाल के लिए भी पागल बन गये थे, मकान जला दिये थे, निर्दोषों को मार डाला था। तुम मुझे चाहते हो, तो हम दोनों को गिरफ्तार कर लें, हम दोनों को फाँसी के तख्ते पर लटका दें, तो भी तुम बरदाश्त कर लेना। मैं समझता हूँ और मेरा दिल कहता है कि मैं दीवाना हूँ और मेरे विरुद्ध कोई ऐसा मनुष्य हो जाय, जिसे मैं पागल गांधी मानता हूँ, तो अवश्य मैं उस गांधी को कालेपानी भेज दूँ। मांटेग्यू मुझे पागल समझें—ईमानदारी से पागल समझें और मुझे गिरफ्तार कर लें, तो इसमें क्रोध काहे का? तुम मुझे पागल न समझते हो, तो मेरा कहना मानो और मेरा कहा मानकर जेल जाओ। जहाँ जालिम राज कर रहा है, वहाँ जेल महल के समान है और महल जेल-स्वरूप है। तुमने जेल-महल की विद्या जान ली हो, तो जो मैं कहता हूँ, वह मानो। यदि तुम मानते हो कि खुदा मुझे जो आवाज सुना रहा है, वही मैं तुम्हें सुना रहा हूँ, तो मैं तुमसे कहूँगा कि तुम मुझे यह इतमीनान दिलाओ कि सरकार मुझे सजा दे दे, तो भी तुम अपने लहू को पी जाओगे, परन्तु उबलने न दोगे। बुलन्द आवाज में सरकार से कह दो कि हमें या तो फाँसी लगा दो या जेल में डाल दो, परन्तु हमारी मदद तुम्हें नहीं मिलेगी। हमारी मदद तुम्हें जेल में मिलेगी, फाँसी पर मिलेगी, परन्तु फौजी रिसाले में नहीं मिलेगी, धारासभाओं में नहीं मिलेगी, दूसरी नौकरियों में नहीं मिलेगी।"

हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे के गुलाम बनेंगे

उपसंहार करते हुए कहा :

"इस तालीम के लिए कोई ताकत नहीं चाहिए, कोई इल्म नहीं चाहिए, शौकतअली जैसा जिस्म नहीं चाहिए; केवल एक तत्त्व की समझ ही चाहिए, बरदाश्त चाहिए। मैं प्रार्थना करता हूँ कि खुदा तुम्हें हिदायत दे, ताकत दे कि भारत दूसरी चीज भूलकर यही काम ले ले। यह काम पूरा कर लेने से हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे के गुलाम बनकर रहेंगे और दुनिया को हुक्म दे सकेंगे कि बेईमानी और अन्याय बन्द करो।"

शौकतअली और डॉ० किचलू ने भी 'पागल न बनने' की ख्वाहिश अपनी तेजस्वी भाषा में पेश की थी।

गूजर खाँ और झेलम

यह सभा इस प्रकार पूरी हुई। सवेरे रावलपिंडी से चलकर मोटर में गूजर खाँ और झेलम के लिए रवाना हुए। रास्ते में एक भयंकर दुर्घटना से गांधीजी, श्री सरलादेवी और शौकतअली ईश्वर की कृपा से बच गये। इस बारे में मैं देखता हूँ कि समाचारपत्रों में तो खबर आ चुकी है। गूजर खाँ में एक छोटी-सी, परन्तु सुन्दर सभा हुई। मुख्यतः हिन्दू-मुस्लिम एकता पर ही बोलने का लोगों का अनुरोध था। पाँच-दस मिनट के ही भाषण में गांधीजी और शौकतअली ने एकता का महत्त्व समझा दिया। झेलम के लोगों का उत्साह उनकी कार्यशक्ति की सीमा का उल्लंघन करके प्रकट हुआ था। झेलम से लाहौर जानेवाली गाड़ी पकड़नी थी और गाड़ी में पंद्रह-बीस मिनट रह गये थे, फिर भी शान्ति से सभा की व्यवस्था करने के बजाय लोग जुलूस की झंझट में फँस गये। वक्त बहुत हो गया। आखिर लोगों के दिल दुखाकर गांधीजी को जुलूस बीच में ही छोड़कर स्टेशन चला जाना पड़ा। लोग स्टेशन पर आये। वहाँ गाड़ी आने तक का समय पहली अगस्त का कर्तव्य समझाने में बिताया।

एक कठिन प्रसंग

प्रसंग छोटा-सा था, परन्तु उसका महत्त्व सारे देश में समझाने की

जरूरत है, इसलिए मैं यहाँ उसका उल्लेख किये बिना नहीं रह सकता। मैं पिछले पत्र में स्टेशन पर होनेवाली भीड़ के बारे में कह चुका हूँ। यह भीड़ लाहौर लौटते हुए प्रत्येक स्टेशन पर होती थी; परन्तु यहाँ के लोगों में एक पागलपन और भी पाया गया। स्टेशन से कई लोग गांधीजी के डब्बे में चढ़ जाते और एक स्टेशन तक गांधीजी के साथ जाते, तब उन्हें शान्ति मिलती। इस प्रकार हर स्टेशन पर होता। इस तरह गुजराँवाला पर कोई आठ आदमी सवार हुए। गांधीजी ने उनसे प्रार्थना की कि उतर जाइये, परन्तु उन्होंने नहीं माना और हठ पकड़कर डिब्बे में खड़े रहे। बैठने की जगह तो थी ही नहीं। गांधीजी ने उनके विरुद्ध सत्याग्रह किया, वे भी दरवाजे के सामने खड़े रहे। दो घंटे तक गाड़ी कहीं ठहरनेवाली नहीं थी। लोगों को भी कोई आध घंटे में भान हुआ कि उन्होंने भूल की है। वे माफी माँगने लगे। उन्हें समझाते हुए गांधीजी ने कहा : "माफी किस बात की हो सकती है? ऐसे हठ के लिए माफी मिल हो नहीं सकती। तुम मेरी जरा-सी आज्ञा नहीं मानते, तो जब मैं हजारों कोस दूरी बैठा हुआ दूसरी बड़ी आज्ञाएँ दूँगा, तब किस तरह मानोगे? तुम मेर आज्ञा नहीं मानते, यह मेरे तप की कमी है, इसलिए खड़ा हुआ हूँ। माफी तो तुम्हें इस तरह दी जा सकती है कि तुम इस किस्से को जहाँ जाओ, वहीं सुनाओ और कहो कि जिसे तुमने सरदार बनाया है, उसकी अवज्ञा का क्या फल होता है।" सभी अत्यंत गद्गद हो गये और प्रतिज्ञा ली कि इस घटना की और उससे मिलनेवाले पाठ की जगह-जगह बातें करेंगे। गांधीजी दो घंटे खड़े रहे, परन्तु यह सत्याग्रह इतना आवश्यक और अकृत्रिम था कि उन्हें बैठने की प्रार्थना करने का मेरा साहस नहीं हुआ।

१-८-'२०

तिलक महाराज का अवसान। उन पर 'यंग इंडिया' के लिए भव्य लेख लिखा।

सूरत में किस प्रकार शोक प्रकट किया जाय, यह पूछनेवाला श्री दयालजी का प्रश्न। उन्हें उत्तर :

"भाईश्री दयालजी,

"आपका पत्र मिला। तीन दिन की हड़ताल का विचार मुझे तो जरा भी पसन्द नहीं। एक दिन की हड़ताल मैं समझ सकता हूँ। यदि हमें सचमुच अपनी श्रद्धा प्रकट करनी हो, तो मैं तो कोई न कोई अमली काम चाहूँगा। इसलिए उनके गुणों की खोजकर ऐसा प्रयत्न किया जाय कि वे हममें आ सकें। वे अत्यंत सादे थे, उनकी याद के लिए हम सादगी का व्रत लें। कोई भी वस्तु जो हमें प्रिय हो, उनके नाम पर सब उसका त्याग करें। उन्हें बहादुरी पसन्द थी, इसलिए हम अनेक प्रकार के भय छोड़कर बहादुर बनने का प्रयत्न करें। वे लोगों में शरीर-बल चाहते थे। हम सब उनका स्मरण करके सबल बनने की कोशिश करें। उन्हें देश प्राणों के समान प्यारा था, हम भी उनका स्मरण करके अपने-आपका प्रेम छोड़कर दिन-दिन देश के प्रति प्रेम बढ़ायें। उन्हें विद्वत्ता प्रिय थी, मातृभाषा और संस्कृत भाषा पर जबर्दस्त प्रभुत्व था। हम भी मातृभाषा को कम चाहते हों, उसका थोड़ा ज्ञान हो, तो हम उसे बढ़ायें। हम मातृ-भाषा और संस्कृत के ज्ञान का विकास करें। ऐसी और अनेक विभूतियों का हम उल्लेख कर सकते हैं। उनमें से जो-जो हमें पसन्द हों, उन्हें विक-सित करके अमर करके रखें। अन्त में जिससे और कुछ न हो सके, वह एक पैसे से लेकर कितना ही रुपया देश-हित में लगाये।"

१०-८-'२०

कॅलनबॅक का बहुत दिनों में, कई वर्षों में पता मिला। उन्हें पत्र :

"प्रिय लोअर हाउस,

"कितने लम्बे समय बाद तुम्हें लिखने का सौभाग्य मिल रहा है। बड़ी तलाश करने के बाद अब तुम्हारा पता मिला है। एक भी दिन

ऐसा नहीं गया, जब मैंने तुम्हारा चिंतन न किया हो। तुम्हारे पहले समाचार जोहानिस्बर्ग की एक बहन ने दिये। कुमारी विंटरबॉटम और पोलक तुम्हारा कोई पता न लगा सके। पी० के० नायडू कुछ नहीं कर सके। डॉ० महेता ने तुम्हारा पता देनेवाला तार मुझे दिया। बर्लिन में तुम्हारा कुछ पता लगे, तो बर्लिन जाकर तुमसे मिलने को मैंने जमनादास को लिखा था। उसका भी पत्र आया है। वह लिखता है कि वह स्वयं या डॉक्टर महेता तुमसे मिलने का प्रयत्न करेंगे। मुझे इतनी अधिक इच्छा हो रही है कि तुमसे मिलने दौड़ आऊँ और तुम्हारा आलिंगन करूँ। मेरे लिए तो तुम ऐसे हो, मानो यम के घर से लौट आये। मैंने तो मान लिया था कि तुम मर गये। यह मेरे मानने में ही नहीं आता था कि इतने दिन तुम मुझे लिखे बिना रह सकते हो। दूसरा विकल्प यह था कि तुमने पत्र तो लिखे ही होंगे, परन्तु वे मुझे दिये नहीं गये। तुम्हारी छावनी के नाम मैंने पत्र लिखा था, परन्तु कोई जवाब नहीं आया। अब भी मैं यही मानता हूँ कि तुमने पत्र लिखे होंगे, मगर वे मुझे दिये नहीं गये। मैं डॉ० महेता को तार दे रहा हूँ कि वे तुमसे मिलें। अपनी बात तुमसे क्या कहूँ ? अभी अपनी कुछ नहीं लिखूँगा। देवदास मेरे पास है। सभी प्रकार और सभी दिशाओं में बढ़ता जा रहा है। इस समय मैं दौरा कर रहा हूँ। साथ में देवदास है। एक और वफादार साथी है। तुम तो उस पर फिदा हो जाओ। एक बहन के साथ भी गाढ़ परिचय हुआ है। मैं चाहता हूँ तुम इनसे मिलो। लाहौर में कितने ही महीनों तक मैं इनके घर में रहा था। बा आश्रम में है। उसे बुढ़ापा काफी दिखाई देता है, परन्तु सदा की भाँति बहादुर है। तुमने उसके गुण-दोषों के साथ जैसी देखी थी, वैसी ही है। मणिलाल और रामदास फिनिक्स में हैं और 'इंडियन ओपिनियन' सँभालते हैं। हरिलाल कलकत्ते में व्यापार करता है। उसकी पत्नी का देहान्त हो गया। उसके बच्चों को बा सँभालती है। छगनलाल और मगनलाल मेरे साथ आश्रम में हैं। मेढ़ और परागजी हिन्दुस्तान में हैं। परागजी संसर्ग में रहते हैं। मेढ़ इतने नहीं आते।

मगनभाई मेरे साथ नहीं। हमारे कुटुम्ब के जितने आदमियों को तुम जानते हो, उन सबकी बात कह दी। अरे, इमाम साहब के बारे में तो लिखना मैं भूल ही गया! वे और उनकी पत्नी मेरे साथ हैं। उनकी वफादारी अद्‌भुत है। थोड़े ही दिन हुए मैंने फातिमा की शादी कर दी। इससे इमाम साहब निश्चिन्त हो गये हैं। एण्ड्रूज मुझसे अक्सर मिलते हैं। बंगाल में रहते हैं। आनंदलाल भी मेरे साथ हैं। मैं दो साप्ताहिकों का सम्पादन करता हूँ। दोनों अच्छे चल रहे हैं। सरकार के साथ भारी लड़ाई में लगा हुआ हूँ। क्या होगा, यह तो कौन कह सकता है?

"अब मुझे बस करना चाहिए। दो साल पहले मैं मौत के पंजे में आ गया था। आशा है, तुम अब मुक्त हो गये हो तो पत्र-व्यवहार शुरू कर दोगे। मेरा जीवन पहले से भी सादा है। आजकल मेरी खुराक फल और फली अथवा मग्ज नहीं रही। बकरी का दूध, रोटी और अंगूर लेता हूँ। दिनभर में मिलाकर पाँच से ज्यादा चीजें न खाने का व्रत लिया है। लंदन में लिये गये व्रत के कारण मैं गाय का दूध नहीं ले सकता। नमक का त्याग अब नहीं रखा, क्योंकि मैं देख रहा हूँ कि पानी और समुद्र की हवा हम लेते हैं, तो उसमें से निर्जीव नमक तो लेते ही हैं।

"प्यार। तुम्हारे अपने अक्षर शीघ्र देखने को लालायित।

तुम्हारा सदैव
'अपर हाउस'"

मद्रास प्रान्त का प्रवास। रोजनामचा :

१०-८-'२० से	१०	अगस्त को	बंबई छोड़ा
२३-८-'२०	१२-१३	,,	मद्रास
	१४	,,	अंबूर व वेलोर
	१५	,,	मद्रास

१६ अगस्त तंजोर और नागोर
१७ ,, त्रिचनापल्ली
१८ ,, कालिकट
१९ ,, मंगलोर
२० ,, सेलम
२१ ,, सेलम व बँगलोर
२२ ,, मद्रास
२३ ,, बेजवाड़ा

मद्रास में तीस-चालीस हजार आदमियों की विराट् सभा में अंग्रेजी में दिया हुआ भाषण :

असहयोग का महत्त्व

जिस असहयोग पर आजकल इतनी चर्चा हो रही है, वह क्या है और किसलिए हमें वह शस्त्र लेना है ? थोड़ी देर के लिए मैं इसके कारणों में जाऊँगा। इस समय देश के सामने दो प्रश्न उपस्थित हैं। पहला और सबसे बड़ा खिलाफत का है। इस मामले में मुसलमानों क दिल फट गये हैं। ब्रिटिश मंत्रियों के इंग्लैण्ड के नाम पर अत्यंत विचार पूर्वक दिये गये वचनों पर पानी फेर दिया गया है। भारतीय मुसलमानों को दिये गये जिन वचनों के जोर पर ब्रिटिश लोगों द्वारा स्वीकृत भारत की मदद ली गयी, उन वचनों का भंग किया गया है और महान् इस्लाम-धर्म खतरे में पड़ गया है। मुसलमानों का यह मानना ठीक है कि जब तक ब्रिटिश वचनों का पालन न हो, तब तक उनके लिए अंग्रेजों के प्रति वफादार रहना असंभव है। जब यह सवाल आ पड़ता है कि अंग्रेजों के प्रति वफादार रहें या इस्लाम और पैगम्बर के प्रति रहें, तब तो स्पष्ट है कि कोई भी मुसलमान अपना पक्ष जाहिर करने में एक क्षण की भी देर नहीं करेगा और मुसलमानों ने देर की भी नहीं। उन्होंने कुछ भी न छुपाकर दिनदहाड़े और शरीफाना ढंग से दुनिया को बता दिया है कि यदि ब्रिटिश

मंत्री और ब्रिटिश जनता दिये हुए वचनों का पालन नहीं करेगी, भारत के सात करोड़ मुसलमानों की भावना का आदर नहीं करेगी, तो वे वफादार नहीं रह सकेंगे।

सवाल बाकी के हिन्दुस्तानियों का ही रह गया कि वे इस मौके पर मुसलमान भाइयों से कंधा मिलाकर पड़ोसी धर्म निभायें या नहीं। यह तो स्पष्ट है कि इनके लिए यह जीवन का अवसर है। मुसलमानों के प्रति विश्वास, बंधुभाव और मित्रता दिखाने का और हिन्दू-मुसलमान भाई हैं, इतने दिन से हम जो ये बातें करते रहे हैं, उन्हें सच्ची करके दिखाने का मौका सौ वर्ष में भी फिर नहीं मिलेगा। यदि हिन्दू के खयाल से अंग्रेज की अपेक्षा मुसलमान अधिक निकट हो और यदि मुसलमानों की माँग न्याय और धर्म की बुनियाद पर खड़ी है, इस बारे में तुम्हारे मन में शंका न हो, तो मैं तुमसे कहता हूँ कि जब तक मुसलमानों की माँग का औचित्य बना हुआ है और उनके उपाय खुले, शरीफाना और भारत के लिए कोई हानि करनेवाले नहीं हैं, तब तक तुम्हें मुसलमान भाइयों की मदद पर खड़े रहना ही होगा। मुसलमानों ने यह निर्मल साधनोंवाली शर्त पूरी तरह मान ली है और सारी दुनिया के आगे वे निःसंकोच ऐसा कर सकेंगे, यह देख लेने के बाद ही वे इस शर्त पर हिन्दू भाइयों की मदद स्वीकार करने को तैयार हुए हैं।

ऐसी हालत में हिन्दू-मुसलमानों को मिलकर ही सारे यूरोप की ईसाई राजसत्ताओं का प्रतीकार करना चाहिए और उन्हें बता देना चाहिए कि भारत कमजोर होगा, मगर स्वाभिमान कायम रखने की उसमें अब भी शक्ति है। अपने धर्म की खातिर, अपने सम्मान की खातिर मरना उसे अब भी आता है। खिलाफत का एक शब्द में यही अर्थ है।

परन्तु इसके अतिरिक्त पंजाब का प्रश्न भी सामने है। पंजाब की घटना ने भारत के हृदय को जैसा भारी जख्म लगाया है, वैसा पिछली सदी में और किसी भी घटना ने नहीं लगाया। मैं सन् '५७ का बलवा भूल नहीं रहा हूँ। परन्तु उस विद्रोह के दौरान भारत को कुछ भी

बरदाश्त करना पड़ा हो, तो भी रौलट कानून द्वारा भारत का जो अपमान करने का प्रयत्न किया गया, और वह कानून पास होने के बाद भारत का जो प्रत्यक्ष अपमान किया गया, उसकी तुलना भारत के सारे इतिहास में कहीं भी नहीं हो सकती। इन अंग्रेज लोगों से न्याय प्राप्त करने के लिए भी तुम्हें कोई न कोई रास्ता ढूँढ़ना ही पड़ेगा। लोकसदन, लार्ड सभा, मि० मांटेग्यू, वाइसराय महोदय, सभी को पूरी तरह पता है कि खिलाफत और पंजाब दोनों के बारे में लोक-भावना क्या है। पार्लमेण्ट के दोनों सदनों की चर्चाओं ने और मि० मांटेग्यू तथा वाइसराय महोदय द्वारा की गयी कार्रवाइयों ने पूरी तरह बता दिया है कि वे भारत के साथ उचित न्याय करने को तैयार नहीं हैं। हमारे नेताओं को इस कठिनाई में से रास्ता निकालना ही चाहिए। जब तक हम यह साबित न कर दें कि हम ब्रिटिश शासकों की बराबरी के हैं और उनके हाथों अपना स्वाभिमान कायम रख सकते हैं, तब तक हमारे और उनके बीच किसी प्रकार का सम्बन्ध या भाई-चारा संभव नहीं है। इसीलिए मैं असहयोग का सुन्दर और ठोस मार्ग बता रहा हूँ।

क्या असहयोग अवैध है ?

कुछ लोग कहते हैं कि असहयोग अवैध है। मैं ऐसा नहीं मानता। मैं तो कहता हूँ कि असहयोग न्याय और धर्मसम्मत मार्ग है। प्रत्येक मनुष्य उसे ग्रहण कर सकता है और वह पूर्णतः वैध है। ब्रिटिश साम्राज्य के एक बड़े चाहनेवाले ने तो कहा है कि ब्रिटिश संविधान की दृष्टि से तो साफ विद्रोह तक सफल हो जाय, तो वह भी बिलकुल वैध है। और अपने कथन के समर्थन में ऐसे ऐतिहासिक आधार बताये हैं, जिन्हें मैं अस्वीकार नहीं कर सकता। मैं तो सफल या असफल किसी भी विद्रोह को वैध बताने का दावा बिलकुल नहीं करता, क्योंकि विद्रोह में रक्तपात को मान्यता देनी पड़ती है। मैं तो हिन्दुस्तान को पहले से ही कहता आया हूँ कि रक्तपात

यूरोप में कुछ भी उद्देश्य पूरे करता हो, परन्तु इस देश में वह हमारा काम नहीं बना सकेगा। मेरे भाई के समान भाईबन्धु शौकतअली रक्तपात में विश्वास रखते हैं। उनके लिए संभव होता, तब तो उन्होंने कभी से ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध तलवार उठा ली होती। उनमें शूर-वीर की मर्दानगी और ब्रिटिश साम्राज्य का सामना करने की जरूरत पहचानने की समझदारी दोनों हैं। परन्तु सच्चे सिपाही की दृष्टि से आज भारत में तलवार से काम लेने की असंभवता को वे देख सकते हैं, इसलिए मेरा पक्ष स्वीकार करके वे मेरी अल्प सहायता स्वीकार करने को तैयार हुए हैं। उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि जब तक मैं उनके साथ हूँ, तब तक वे अंग्रेजों के विरुद्ध तो क्या, परन्तु इस संसार के किसी भी मनुष्य के विरुद्ध मारकाट का विचार नहीं करेंगे। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ वे अपना वचन धर्मनिष्ठ को शोभा देनेवाले ढंग पर पालन कर रहे हैं, सच्ची ईमानदारी से असहयोग के मार्ग पर चल रहे हैं, और उसी रक्तपातहीन असहयोग का मार्ग अपनाने के लिए मैं हिन्दुस्तान से अनुरोध कर रहा हूँ।

मैं तुमसे कहता हूँ कि भारत में हमारे बीच आज भाई शौकतअली से अधिक सच्चा सिपाही कोई नहीं है। यदि तलवार निकालने का कोई समय इस देश में कभी आ ही गया, तो तुम देखोगे कि वे कैसी तलवार निकालते हैं। उस दिन मुझे भी हिमालय के जंगलों की तरफ चल पड़ा देखोगे। भारत जिस दिन तलवार का न्याय स्वीकार करेगा, उस दिन भारतीय के नाते मेरा जीवन समाप्त हो जायगा। चूँकि मैं यह मानता हूँ कि भगवान् के घर से भारत के लिए इस दुनिया में विशेष आदेश है, इसीलिए और चूँकि मैं मानता हूँ कि भारत के प्राचीन ऋषियों ने सैकड़ों वर्ष के अनुभव के बाद इस महान् सत्य को खोज निकाला है कि पशुबल के आधारवाला न्याय नहीं, परन्तु त्याग, यज्ञ, बलिदान के आधारवाला न्याय ही इस संसार में किसी भी मनुष्य के लिए असली चीज है, इसीलिए मैं इस सिद्धान्त से चिपटा हुआ हूँ और मरते दम तक चिपटा रहूँगा। इसीलिए मैं तुम्हें समझा रहा हूँ कि जब

भाई शौकतअली रक्तपात में विश्वास रखते हुए भी असहयोग को कमजोरों के हथियार के तौर पर मंजूर करते हैं, तब मैं तो उसे सबल से सबल का हथियार ही मानता हूँ। मैं तो मानता हूँ कि जो हथियार के बिना दुश्मन के सामने छाती खोलकर मरने का साहस कर सकता है, वह सबसे शूर-वीर सिपाही है। रक्तपातरहित असहयोग ऐसा है। इसलिए मैं अपने विद्वान् देशबन्धुओं को समझा रहा हूँ कि जब तक असहयोग रक्त के धब्बे से रहित है, तब तक उसमें अवैध कुछ भी नहीं है।

मैं तो उल्टा सवाल करता हूँ कि आज ब्रिटिश सरकार को यह कहना कि 'मैं तुम्हारी सेवा करने से इनकार करता हूँ' क्या अवैध है? हमारे मान्य अध्यक्ष महोदय अपने सारे पदक सरकार को विनयपूर्वक वापस सौंप दें, तो इसमें गैरकानूनी क्या है? सरकारी या सरकार से सहायता लेनेवाली पाठशालाओं से अपने बच्चों को हटा लेना किसी भी माता-पिता के लिए क्या अवैध है? जिस कानूनी सत्ता का उपयोग मुझे ऊँचा उठाने में नहीं, परन्तु नीचे गिराने में होता है, उसको मैं पोषण नहीं दे सकता, ऐसा किसी भी वकील के लिए कहना क्या गैरकानूनी है? 'जो सरकार सारी प्रजा की इच्छा का आदर नहीं करना चाहती, उसकी नौकरी करने से मैं इनकार करता हूँ', ऐसा किसी भी सिविल कर्मचारी या जज का कहना क्या अवैध है? मैं तुमसे पूछता हूँ कि किसी भी पुलिस या फौज के सिपाही का अपने ही भाइयों को अपमानित करनेवाली सरकार की सेवा करने के कर्तव्य के विरोध में अपनी नौकरी से त्यागपत्र देना कैसे गैरकानूनी है? मैं कृष्णा जिले के किसानों से जाकर कहूँ कि 'तुम जो कर सरकार को देते हो, उसका उपयोग सरकार तुम्हें उठाने में नहीं, परन्तु कमजोर करने में करे, तो बेहतर है कि तुम कोई कर न दो', यह क्यों अवैध है? मैं मानता हूँ और विनयपूर्वक कहता हूँ कि इसमें कुछ अवैधता नहीं है। मैंने इनमें से एक-एक बात अपने जीवन में करके देखी है और किसीने उसके औचित्य के बारे में चुनौती नहीं दी। खेड़ा में मैं सात लाख किसानों के बीच था। उन सभी ने अपने कर चुकाने से इनकार कर दिया था

और सारे भारत का मुझे समर्थन था। किसीको वह अवैध प्रतीत नहीं हुआ था।

मैं कहता हूँ कि असहयोग के सारे पंथ में कहीं भी अवैधता नहीं है। इस वैध सरकार के मातहत, आलीशान संविधानवाली ब्रिटिश जाति की हुकूमत के मातहत सबसे बड़ी अवैधता तो समस्त भारत के लोगों के निर्बल बनने और पेट के बल चलने में है। अवैधता तो यह है कि सारे भारत की प्रजा घड़ी-घड़ी और पल-पल होनेवाले अपने सारे अपमान को चुपचाप सहन कर ले। गैरकानूनी तो सात करोड़ भारतीय मुसलमानों का अपने धर्म पर गुजरे हुए अन्याय को बरदाश्त करना है। गैरकानूनी तो यह है कि सारा हिन्दुस्तान चुपचाप बैठे-बैठे यह सब देखता रहे और जिस अन्यायी सरकार ने पंजाब की इज्जत मिट्टी में मिलायी, उसके साथ सहयोग करे। मैं अपने एक-एक देशभाई से कहूँगा कि यदि तुममें स्वाभिमान की बूँद-भर भी हो, यदि तुम्हें इज्जत की कीमत हो, यदि तुम अपने-आपको अपने महान् बाप-दादों की पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही उच्च परम्पराओं के वारिस और रक्षक मानते हो, तो तुम देख सकोगे कि मौजूदा सरकार जितनी जालिम सरकार के विरुद्ध असहयोग न करना ही तुम्हारे लिए सबसे बड़ी अवैधता है।

मुझे अंग्रेजों से द्वेष नहीं। मुझे किसी सरकार के प्रति द्वेष नहीं। परन्तु असत्य से, आँख-मिचौनी से, अन्याय से मुझे हाड़वैर है। जब तक सरकार को अन्याय करना है, तब तक वह मुझे अपना शत्रु—जानी दुश्मन समझ सकती है। अभी पिछले ही साल अमृतसर-कांग्रेस के समय—यह मैं तुमसे ईश्वर को साक्षी रखकर कह रहा हूँ—मैंने इस सरकार से सहयोग करने के लिए घुटने टेक-टेककर जो मिन्नतें कीं, वे इस विश्वास से कि मुझे पूरी आशा थी कि ब्रिटिश मंत्रीगण, जो आमतौर पर समझदार जमात है, मुसलमान-भावनाओं पर ध्यान देंगे और पंजाब के अत्याचारों का पूरा निपटारा कर देंगे। और इसीलिए मैंने भरी कांग्रेस से बार-बार आग्रह करके प्रार्थना की कि सरकार ने मित्रता का हाथ बढ़ाया है, हमें भी अपनी शरा-

फत की तरफ देखकर विश्वास करके हाथ बढ़ाना उचित है। मैं मानता था कि सम्राट् की घोषणा के रूप में सरकार सच्चे दिल से दोस्ती का हाथ बढ़ा रही है। इसीलिए मैंने लोगों से सहयोग के पक्ष में इतना अनुनय-विनय किया। परन्तु ब्रिटिश मंत्रियों ने अपने हाथों मेरे उस विश्वास को मिट्टी में मिला दिया; और आज वही मैं तुम्हारे सामने केवल धारासभाओं में व्यर्थ शोर मचाने के लिए नहीं, परन्तु सरकार के साथ सच्चा, ठोस और संसार की सबसे बलवान् सरकार को अटका देनेवाला जोरदार असहयोग करने का अनुरोध कर रहा हूँ। तुम्हारे सामने इस समय यही मेरी माँग है। जब तक हम न्याय प्राप्त न कर लें, जब तक हम नाखुश नौकरशाही के हाथों अपने स्वाभिमान की रक्षा न कर लें, तब तक हमसे सहयोग हो ही कैसे सकता है? हमारे शास्त्र कहते हैं और मैं भी शास्त्रों और धर्माचार्यों के प्रति पूर्ण आदर रखकर कहता हूँ कि अन्याय और न्याय के बीच, अन्यायी और न्यायप्रिय मनुष्य के बीच, सच और झूठ के बीच कभी सहयोग नहीं होगा। जब तक सरकार तुम्हारी मान-मर्यादा की रक्षक है, तब तक उसके साथ सहयोग धर्म है। परन्तु जब वह सरकार तुम्हारी इज्जत बचाने के बजाय लूटने लगे, तब उस सरकार के साथ सहयोग नहीं, असहयोग उतना ही आवश्यक धर्म है।

असहयोग और विशेष कांग्रेस

मुझसे कहा जाता है कि मुझे लोकमत की आवाज के तौर पर कांग्रेस का विशेष अधिवेशन होने तक इंतजार करना चाहिए था। मैं जानता हूँ कि कांग्रेस लोकमत का प्रतिबिम्ब डालनेवाली संस्था है। मेरे अपने तक ही यह सवाल होता, तो मैं अनन्त काल तक भी प्रतीक्षा करने से इनकार न करता। परन्तु मेरे हाथ में मुसलमान कौम की पतवार सौंपी गयी थी। मैं मुसलमान कौम का सलाहकार था और फिल-हाल उसकी इज्जत मेरे हाथ में सौंपी हुई है। अन्तःकरण की आवाज की उपेक्षा करके किसी भी संस्था के निर्णय की बाट देखने की सलाह मैं उन्हें

कैसे दे सकता हूँ ? क्या मुसल्मान थूक चाटकर अपना अन्न तक स्वीकार किया हुआ शरीफाना तरीका आज बदलने को तैयार हो जायँ ? ईश्वर न करे, शायद कांग्रेस उनके विरुद्ध प्रस्ताव कर दे तो ? मैं तो तब भी मुसलमान भाइयों से कहता ही रहूँगा कि आप अपने धर्म के साथ हुए अपमान को सह लेने के बजाय अकेले दम खड़े रहिये और लड़ते जाइये। मुसलमान चाहें तो भले ही भिक्षुक की भाँति कांग्रेस से मदद माँगें; परन्तु मदद मिले या न मिले, कांग्रेस द्वारा पथ-प्रदर्शन की बाट वे नहीं देख सकते थे। उन्हें तो व्यर्थ रक्तपात या निर्दोष किन्तु सक्रिय असहयोग, इन दोनों में से एक रास्ता अपनाना ही पड़ता, और उन्होंने असहयोग का मार्ग अपना लिया। असहयोग का पवित्र स्वरूप मेरी ही तरह जिसके मन में बस गया है, उसका तो स्पष्ट कर्तव्य है कि वह बिना विलम्ब तदनुसार अमल करे और खुद कांग्रेस के लिए भी अन्य कोई निर्णय करना असम्भव बना दे, क्योंकि कांग्रेस भी अन्त में तो व्यक्तियों के बड़े समुदाय का मत प्रकट करनेवाली नहीं तो और क्या है ? और यदि व्यक्ति एकमत होकर कांग्रेस में जायँ, तो फिर कांग्रेस भी उनके मत से भिन्न मत कैसे दे सकती है ? यदि पहले मत बनाये बिना अथवा मत प्रकट करने से डरकर किसी मत के बिना ही कांग्रेस में जाना चाहते हों, तो ही हम कांग्रेस के निर्णय की बाट देखते रहें। जो निश्चय नहीं कर सकते, उनसे मैं कहता हूँ कि भले ही कांग्रेस तक ठहरिये, परन्तु जिन्हें इस मामले में दिये की तरह स्पष्ट दिखाई दे चुका है, उनके लिए तो अब ठहरना स्पष्ट पाप है। कांग्रेस उन्हें रुकने को नहीं कहती, परन्तु तुम्हें अपने विचारों के अनुसार आचरण करते देखना चाहती है, ताकि वह लोक-भावनाओं का सही अन्दाज लगा सके।

कौंसिलों का बहिष्कार

असहयोग की तफसील में मैंने सबसे पहले नयी धारासभा के बहिष्कार को रखा है। कुछ मित्रों ने इस 'बहिष्कार' शब्द पर आपत्ति की है। क्योंकि मैं शुरू से ही ब्रिटिश माल या किसी भी माल के बहिष्कार के विरुद्ध

हूँ। परन्तु वहाँ 'बहिष्कार' दूसरा भाव बताता है और यहाँ 'बहिष्कार' शब्द का दूसरा अर्थ है।

मैं आगामी नयी धारासभाओं का बहिष्कार पूरे विचार के साथ सुझा रहा हूँ। और वह किसलिए? लोग—जन-समुदाय आज नेताओं से ऐसे नेतृत्व की अपेक्षा रखता है, जो साफ समझ में आ सके, द्व्यर्थी बातों की नहीं। पहले धारासभा के लिए चुने जायँ और फिर सौगंध लेने से इनकार करें, ये जो बातें चल रही हैं, उनसे लोगों में नेताओं के प्रति अविश्वास ही पैदा होगा। लोग इसमें कुछ नहीं समझते। उल्टे लोगों में बुद्धिभेद होगा। इसी कारण मैं तुम्हें इस जाल में न फँसने की चेतावनी देता हूँ। पहले चुने जाकर धारासभा में जाने के बाद वहाँ शपथ न लेने का तरीका अख्तियार करके हम अपने हाथों से देश को बेचेंगे। बात कड़ी लगने जैसी है, फिर भी मैं खुले दिल से कहता हूँ कि जितने भारतीय इस समय उपर्युक्त बात कह रहे हैं, वे सभी तदनुसार कर ही सकेंगे, इसका मुझे भरोसा नहीं। यह राय रखनेवालों को मैं आज चेता देता हूँ कि ऐसा करके वे अपने लिए और लोगों के लिए जाल पैदा कर रहे हैं; और इसमें वे फँसेंगे। यह मेरी निजी राय है। मैं तो मानता हूँ कि जनता को सचमुच निर्मल मार्ग पर ले जाना हो, इस महान् जनता के साथ यदि आज हम मजाक न करना चाहते हों, तो जब तक भारत के साथ किया गया दोहरा अन्याय कायम है, तब तक सरकार की तरफ से की जानेवाली कितनी ही बड़ी मेहरबानियाँ भी छोड़नी ही पड़ेंगी; उसकी तरफ की किसी भी मेहरबानी को स्वीकार करने से पहले पंजाब और खिलाफत के दोहरा अन्याय का निपटारा होना ही चाहिए। प्राचीन यूरोप में कहावत प्रचलित थी कि 'यूनानियों से सावधान रहना; और जब उन्हें हाथों में बख्शिश लेकर आते देखो, तब तो खास तौर पर सचेत रहना।' जो मंत्रि-मंडल इस समय पंजाब और इस्लाम के प्रति किये गये अन्यायों को कायम रखने का निश्चय किये बैठा है, उसके हाथ का कोई भी पुरस्कार हम मंजूर ही कैसे कर सकते हैं? उल्टे, हमें तो उसके बिछाये हुए जाल में न फँसने

के लिए और भी सावधान रहना चाहिए। इसलिए मेरा आपसे अनुरोध है कि नयी धारासभाओं के साथ नखरे करने या और किसी भी तरह की लेन-देन रखने के सारे विचार हम छोड़ दें।

यह भी कहा जाता है कि लोकमत के सच्चे प्रतिनिधि हम धारासभाओं में नहीं जायँगे, तो नरम दल के लोग, जो लोकमत के सच्चे प्रतिबिंब नहीं हैं, धारासभाओं में चले जायँगे। मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। नरम दलवाले किसके सच्चे प्रतिनिधि हैं और काहे के राष्ट्रवादी हैं, यह मैं नहीं जानता। मैं तो मानता हूँ कि अच्छे-बुरे सभी जगह हैं। मैं यह भी मानता हूँ कि बहुत से नरम दलवाले सच्चे दिल से मानते हैं कि इस समय असहयोग अख्तियार करना पाप है। मैं आदरपूर्वक उनसे अलग हूँ। उनसे भी मैं कहता हूँ कि यदि आप चुनाव के लिए खड़े होंगे, तो आप अपने ही फैलाये हुए जाल में फँसेंगे। परन्तु इससे मेरी स्थिति में फर्क नहीं पड़ता। यदि मेरी अन्तरात्मा को यही लगे कि मुझे नयी धारासभाओं में नहीं जाना चाहिए, तो मुझे कम-से-कम अपने लिए तो उस पर अमल करना ही होगा; बाद में बाकी के लोग भले ही निन्यानबे फी सदी चुनाव में खड़े रहें। सार्वजनिक काम करने और लोकमत तैयार करने का यही रास्ता है। यही सुधार प्राप्त करने और धर्म की रक्षा करने का रास्ता है। मेरे लिए यदि यह धर्म की प्रतिष्ठा का प्रश्न है, तो मैं एक हूँ या हजारों में एक हूँ, मुझे अपने सिद्धान्त पर ही डटे रहना होगा। ऐसा करते हुए मेरी मौत हो जाय, तो भी वह अपने मुँह से अपने सिद्धान्त से इनकार करने की अपेक्षा तो बेहतर ही होगी। मैं बार-बार कहता हूँ कि किसीका भी धारासभाओं में जाना भारी भूल है। वर्तमान सरकार के साथ सहयोग नहीं किया जा सकता, ऐसा यदि हमें सचमुच महसूस हो गया है, तो हमें ठेठ ऊपर से ही आरंभ करना चाहिए। हम लोगों के स्वाभाविक नेता हैं और आज हमने जनता को असहयोग की सलाह देने का अधिकार और सामर्थ्य दोनों प्राप्त कर लिये हैं। इसलिए मैं तो बार-बार यही कहूँगा कि नयी धारासभाओं के लिए किसी भी शर्त पर खड़ा रहना असहयोग के तरीके के विरुद्ध ही है।

वकील और असहयोग

मैंने एक और कठिन कदम सुझाया है—वकीलों के वकालत छोड़ने का। यदि मैं पूरी तरह जानता हूँ कि सरकार वकीलों की सहायता से अपनी सत्ता कितनी कायम रखती है, तो मैं और कोई सलाह दे ही कैसे सकता हूँ ? यह बात सही है कि देश की लड़ाई लड़नेवाले हमारे मौजूदा नेताओं में अधिकांश वकील ही हैं। परन्तु जब सरकार का काम-काज बन्द कर देने की बात आये, तब तो मैं जानता ही हूँ कि सरकार अपना मान-मर्तबा कायम रखने के लिए वकील-वर्ग की ओर ही देखती है। इसीलिए मैं अपने वकील भाइयों को अपनी वकालत स्थगित करके सरकार को यह दिखा देने को समझा रहा हूँ कि वे अपने अवैतनिक पद और अधिक कायम नहीं रखना चाहते, क्योंकि वकील अदालतों के अवैतनिक अफसर माने जाते हैं और उस हद तक वे अदालतों के नियमों के अधीन हैं। यदि वे सरकार के साथ सहयोग हटा लेना चाहते हों, तो वे इन अवैतनिक पदों का उपभोग नहीं कर सकते। परन्तु यह सवाल किया जाता है कि ऐसा होने से कानून और व्यवस्था का क्या हाल होगा। मेरा जवाब यह है कि हम इसी वकील-वर्ग के जरिये अपना कानून और प्रबन्ध पैदा करेंगे। हम पंचायती अदालतें खड़ी करेंगे और अपने देशभाइयों को शुद्ध, सादा, निर्मल, घरेलू और स्वदेशी न्याय प्रदान करेंगे। वकीलों के वकालत छोड़ने का यही अर्थ है।

माँ-बाप और असहयोग

मैंने एक और भी उपाय लोगों को सुझाया है—लड़कों को पाठशालाओं से निकाल लेने का, कॉलेजों से विद्यार्थियों के हट जाने का और सरकारी और सरकार से सहायता लेनेवाले स्कूल-कॉलेजों को खाली कर देने का। और कुछ मैं सुझा ही कैसे सकता हूँ ? मुझे लोक-भावनाओं का पता लगाना पड़ता है। मुझे जानना पड़ता है कि मुसलमानों का जी कितना गहरा दुखा है। यदि गहरा दुखा होगा, तब तो वे इशारे में समझ जायँगे कि जिस सरकार पर से उनका सारा एतबार उठ गया है, उसके द्वारा अपने बच्चों क

शिक्षा दिलवाना कितना अनुचित है। यदि मैं सरकार की कोई सहायता करने को रजामन्द नहीं, तो मैं उसकी किसी भी तरह मदद कैसे ले सकता हूँ ? मेरी नजर में तो वर्तमान स्कूल-कॉलेज सरकार के लिए आवश्यक क्लर्क और नौकर तैयार करने के कारखाने मात्र हैं। यदि मैं सरकार से सहयोग हटा लेना चाहता हूँ, तो मैं इस बड़े कारखाने की हरगिज मदद नहीं करूँगा। किसी भी तरफ से विचार करके देख लो। असहयोग के सिद्धांत को मानना और बच्चों को सरकारी पाठशालाओं में भी भेजते रहना—ये दोनों बातें आप हरगिज नहीं कर सकेंगे।

पदवीधारियों का कर्तव्य

पदक और पदवीधारियों को मैंने अपने तमगे और खिताब छोड़ देने की सलाह दी है। अब वे सरकार के पदक रख ही कैसे सकते हैं ? किसी समय जब हम यह मानते थे कि इस सरकार के हाथ में हमारी इज्जत-आबरू सलामत है, तब ये पदक सचमुच ही प्रतिष्ठासूचक थे; परन्तु अब तो वे हमारे सम्मान के नहीं, अपमान और अपयश के सूचक हैं। क्योंकि हमने देख लिया कि इस सरकार के पास न्याय जैसी चीज नहीं है। प्रत्येक पदक-धारी अपनी पदवी का लोगों के ट्रस्टी की हैसियत से उपभोग करता है; इसीलिए इस समय सरकार के प्रति असहयोग के जनता की तरफ से पहले कदम के तौर पर एक क्षण भी देर या विचार किये बिना इस सरकार की पदवियों का त्याग हमारा धर्म हो गया। मैं अपने मुसलमान भाइयों से कहता हूँ कि यह पहला फर्ज अदा करने में अगर तुम असफल रहोगे, तो सारे असहयोग में असफल रहोगे; अलबत्ता जनता शिक्षित वर्ग को अलग रखकर जैसे क्रान्ति के समय फ्रान्स की जनता ने राज्य की बागडोर हाथ में ले ली थी, वैसे ही असहयोग की लगाम अपने हाथ में ले ले और विजय प्राप्त करे। मैं क्रान्ति की हिमायत नहीं करता; मैं तो प्रगति चाहता हूँ। मुझे अव्यवस्था नहीं चाहिए; मुझे अराजकता नहीं चाहिए। मुझे तो इस समय व्यवस्था के रूप में दिखाई देनेवाली अराजकता में से सच्ची व्यवस्था

चाहिए। यदि वह व्यवस्था जालिम द्वारा सरकार की जालिम लगाम हथियाने के लिए स्थापित व्यवस्था हो, तो मेरे लिए वह व्यवस्था नहीं, अव्यवस्था ही है। मुझे मौजूदा अन्याय में से न्याय पैदा करना है, इसीलिए मैं तुम्हारे सामने यह असहयोग रख रहा हूँ। यदि इस शान्त किन्तु रामबाण मार्ग का रहस्य हम समझ लेंगे, तो तुम देखोगे कि हमें किसीसे कोई कड़वी बात तक कहनी नहीं पड़ेगी। वे तुम्हारे विरुद्ध तलवार उठायेंगे; तुम्हें जवाब में तलवार तो क्या, साधारण लकड़ी या उँगली तक उठानी नहीं पड़ेगी।

असहयोग में साम्राज्य-सेवा

तुमको खयाल होगा कि ये शब्द मैंने क्रोध से भरकर कहे हैं, क्योंकि सरकार की वर्तमान नीति को मैं अन्यायी, अनीतिमय, नीचता और असत्य से भरी हुई मानता हूँ। मैंने ये विशेषण पूरी तरह विचार करने के बाद ही इस्तेमाल किये हैं। इनका उपयोग मैंने अपने सगे भाई के विरुद्ध किया है, जिनके प्रति मेरा असहयोग तेरह वर्ष तक रहा था। और आज यद्यपि वह भाई चिरनिद्रा में सोया हुआ है, परन्तु मैं आपसे कह सकता हूँ कि मैं रोज उससे कहता था कि 'तुम अन्यायी हो और तुम्हारे कामों का आधार अनीति पर रहता है।' मैं उससे कहता कि 'तुम सत्य को अपना सूत्र नहीं बनाते।' इसमें मेरा उसके प्रति रोष नहीं था। मैं उसे ऐसी कड़वी बातें कहता, क्योंकि मैं उसे चाहता था। इसी दृष्टि से आज मैं ब्रिटिश लोगों से कह रहा हूँ, क्योंकि मैं उन्हें चाहता हूँ और उनका साथ चाहता हूँ; परन्तु वह साथ साफ शर्तों पर चाहता हूँ। मुझे तो अपना स्वाभिमान कायम रखकर, उनके खालिस बराबरी के बनकर ही रहना मंजूर हो सकता है। यदि वह समानता ब्रिटिश लोग देने को तैयार न हों, तो मुझे यह ब्रिटिश सम्बन्ध नहीं चाहिए। इसमें यदि मुझे ब्रिटिश लोगों को निकालकर देश में थोड़े समय के लिए अव्यवस्था और अराजकता भी मोल लेनी पड़ेगी, तो वह भी ले लूँगा, परन्तु अंग्रेजों जैसी महान् जाति के हाथों अन्याय

स्वीकार नहीं करूँगा। तुम देखोगे कि यह सारा काण्ड समाप्त होने पर यही मि० मॉन्टेग्यू और उनके बाद के अधिकारी मुझे असहयोग द्वारा और युवराज के निजी नहीं, किन्तु अधिकारी वर्ग द्वारा जनता की गर्दन में फाँसी और भी मजबूत करने की नीयत से रखे गये आगमन का बहिष्कार घोषित करके उसके द्वारा साम्राज्य की अभूतपूर्व महती सेवा करने के प्रमाण-पत्र देंगे! युवराज के आगमन का स्वागत न करने और उसका भरसक और जोरदार बहिष्कार करने के लिए मैं लोगों को समझा नहीं सकूँ, तो भी अकेला खड़ा होकर उसके विरुद्ध नारे लगाता रहूँगा। इसीलिए मैं तुम्हारे सामने खड़ा होकर तुमसे इस धर्म-युद्ध में सम्मिलित होने का अनुरोध कर रहा हूँ।

यह धर्म-युद्ध कोई ख्वाबी या त्यागी-वैरागी नहीं सुझा रहा है। मैं साधु या त्यागीपन से इनकार करता हूँ। मैं ख्वाबी या शेखचिल्लीपन से भी इनकार करता हूँ। अपने पर साधु-संन्यासीपन का आरोप मुझे मान्य नहीं है। मैं मिट्टी का आदमी हूँ, मिट्टी से पैदा हुआ हूँ। तुममें से हरएक जैसा—शायद तुमसे अधिक—दुनियादार सीधा-सादा किसान हूँ। तुम जैसी ही दुर्बलताओं से घिरा हुआ हूँ। परन्तु मैंने काले सिरवाले इन्सान के सिर पर आनेवाली कठिन-से-कठिन परीक्षाएँ पार की हैं। उन्हें पार करने की तालीम पायी है। मैंने अपने पवित्र हिन्दू-धर्म का रहस्य जान लिया है। मैं यह पाठ सीखा हूँ कि असहयोग साधु-संन्यासी या त्यागी-वैरागी के लिए ही नहीं, परन्तु प्रत्येक साधारण प्रजाजन के लिए, अधिक बातें जाने बिना, गहरे पानी में उतरे बिना—उतरने की इच्छा किये बिना—केवल अपना साधारण गृहस्थ-धर्म पालन करने की इच्छा रखनेवाले प्रत्येक मनुष्य के लिए भी है।

यूरोप आज जनसाधारण को भी तलवार का न्याय सिखा रहा है, परन्तु भरतखण्ड के ऋषियों ने, जो आर्यावर्त की महान् परम्पराओं के रक्षक थे, भारतवर्ष के लोगों को तलवार या मारकाट का नहीं, परन्तु सहन करने का, आत्मयज्ञ कर डालने का मंत्र सिखाया है; और जब तक

मैं और तुम इस सादी साधना से श्रीगणेश करने को भी तैयार नहीं, तब तक तुम निःसन्देह मान लो कि तलवार उठाने की तैयारी तो सैकड़ों योजन दूर है। यह रहस्य जब भाई शौकतअली के हृदय पर अंकित हुआ, तभी उन्होंने मेरी सचमुच भक्तिभाव और विनयभाव से दी हुई सलाह मान ली है और आज 'असहयोग जिन्दाबाद' कहकर असहयोग की जय बुलवा रहे हैं।

खुद इंग्लैण्ड में भी हाल ही की लड़ाई में छोटे बच्चों तक को स्कूलों से हटा लिया गया था। ऑक्सफर्ड और केम्ब्रिज के कॉलेज भी बन्द कर दिये गये थे, यह न भूलो। वकीलों ने अपनी अदालतें और दफ्तर छोड़ दिये थे और खाइयों में सड़ते रहकर लड़ना स्वीकार किया था। मैं तुम्हें खाइयों में तो लड़ने को नहीं कहता, परन्तु इंग्लैण्ड में सभी पुरुषों और शूर-वीर बालकों ने जो आत्मयज्ञ किये, वह आत्मयज्ञ मैं तुमसे जरूर माँग रहा हूँ। यह न भूलना कि जिस जाति के साथ तुम लड़ाई करने तैयार हो रहे हो, वह समय पर कितना आत्मबलिदान करनेवाली है। साथ ही यह भी याद रखना कि बोअरों की एक छोटी-सी जमात ने इसी जबर्दस्त जाति को छका दिया था। परन्तु उसके वकीलों ने भी वकालत तो छोड़ी ही थी, उनकी माताओं ने अपने बच्चों को स्कूल-कॉलेजों से हटा लिया था और वे ही बालक जनता के स्वयंसेवक बने थे। मैंने उन्हें अपनी इन आँखों से देखा है। आज मैं अपने देशभाइयों से प्रत्येक लड़ाई से पहले आत्मबलिदान की जो साधना करनी पड़ती है, उसके लिए अनुरोध कर रहा हूँ। तुम मारकाट में विश्वास रखनेवाले हो या अहिंसा में विश्वास रखनेवाले हो, इस आत्मबलिदान की तालीम की परीक्षा तुम्हें देनी ही पड़ेगी। ईश्वर तुम्हें और हमारे नेताओं को सद्बुद्धि दे, जनता को अपने वांछित ध्येय की ओर ले जाने का सम्यक् ज्ञान दे। ईश्वर हिन्दुस्तान की जनता को सत्य मार्ग पर चलाये और आत्मयज्ञ के इस कठिन किन्तु सरल मार्ग को तय करने की दृष्टि, शक्ति और साहस प्रदान करे।

एक आदर्श मान-पत्र

गांधीजी और शौकतअली को कई जगह मान-पत्र दिये गये हैं, परन्तु एक मान-पत्र, जिसके लिए कहा जा सकता है कि उसने उनका मन हर लिया, वह मलाबार तट पर कालीकट और मंगलोर के बीच स्थित कासरगोड़ स्टेशन पर दिया गया था। उस मान-पत्र का भावार्थ नीचे देता हूँ :

"प्रिय तथा पूज्य बन्धुओ,

"हम कासरगोड़ ताल्लुके के लोग, हमारे जिले में पहले-पहल आपके चरण-स्पर्श होने पर आपका हृदयपूर्वक स्वागत करते हैं। आप अपने विविध कार्यों के बीच कोने में पड़े हुए हमारे कन्नड़ प्रान्त के दौरे के लिए अवकाश निकाल सके, यह हमारे लिए बड़े आनन्द और सम्मान की बात है और इस सम्मान के लिए हम अपने अन्तःकरण का आभार प्रकट करते हैं।

"पूज्य बन्धुओ, जैसे बच्चे को कोई दुःख होते ही वह अपनी माँ की ओर जाता है, वैसे ही पीड़ित और अपमानित भारत इस नाजुक समय में सहायता और मार्गदर्शन के लिए आपकी तरफ देख रहा है। स्वदेशी और असहयोग के आध्यात्मिक शस्त्रों द्वारा हमें शक नहीं कि हम अपना पुरुषातन प्रतिपादन कर सकेंगे और ब्रिटिश साम्राज्य में बराबरी के हिस्सेदार के रूप में अपना स्थान स्वीकार करा सकेंगे। प्रिय बन्धुओ, हमें आपमें अपने पुरातन ऋषियों के दुर्धर्ष उत्साह और आत्मबल का पुनरुद्धार हुआ जान पड़ता है, और देश के पवित्र और उदात्त कार्य के लिए अपने-आपको होम देनेवाले आप जैसे राजनैतिक साधुओं में ही हमारी एक पूरी आशा समायी हुई है। असहयोग की तमाम सीढ़ियाँ चढ़ना शायद हमारे भाग्य में न हो, परन्तु हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि आपकी निश्चित की हुई दिशा में अपनी शक्ति के अनुसार नम्र भाव से जिस हद तक हम जा सकते हैं, वहाँ तक जाने की हम उम्मीद रखते हैं और जिस लड़ाई को आपने अपनी बना ली है, उसमें हम अपनी सच्ची हमदर्दी और हिमायत अर्पण करते हैं।

"आपकी बिरादरी में हिन्दू-मुसलिम एकता का उदात्त और सजीव दृष्टान्त देखकर हमारे हृदय हर्ष और उत्साह से फूले नहीं समाते और हमें तो इस बिरादरी में अपने उज्ज्वल भविष्य की आशा समायी हुई लगती है।

"अन्त में हम आशा रखते और प्रार्थना करते हैं कि आप बहुत वर्ष तक हमारे बीच विराजमान रहें, ताकि हमारी भारतमाता की पुरानी कीर्ति और वैभव के पुनरुज्जीवन के आपके उदात्त प्रयत्न सफल हों।"

इस मान-पत्र के बारे में गांधीजी ने अपने उद्गार मंगलोर के भाषण में मुक्तकण्ठ से इस प्रकार प्रकट किये :

"सफर के दौरान में हमें अनेक स्थानों पर मान-पत्र मिले हैं। परन्तु मेरी नम्र राय में कासरगोड़ा में दिये गये मान-पत्र जैसा सच्चा मान-पत्र एक भी नहीं होगा। उसे मैं 'सच्चा' इसलिए कहता हूँ कि उसके विशेषणों में अधिकांश सच्चे थे। उसमें हमें 'प्रिय और पूज्य बन्धु' सम्बोधन किया गया है। 'पूज्य' विशेषण हमारे लिए भारी पड़ता है, परन्तु 'प्रिय' विशेषण हमें प्यारा लगता है और उससे भी अधिक प्यारा लगता है हमें मधुर नाम 'बन्धुओ'। वह मान-पत्र देनेवालों ने हमारी यात्रा का हेतु समझ लिया है। हमारे खयाल से हमसे अधिक गहरा नाता रखनेवाले दो अन्य सगे भाई शायद ही होंगे। एक ध्येय को लेकर एक ही कार्य में हमसे अधिक प्रेम से प्रेरित और दो सगे भाई कोई शायद ही होंगे। इस भाई-बन्दी से मेरी छाती अभिमान के मारे उछल रही है और उस मान-पत्र में मुझे और शौकतअली को सगे भाई कहकर सम्बोधन किया गया है, इससे हमारे हर्ष का पार नहीं रहता। आगे चलकर वे भाई हममें हिन्दू-मुसलिम ऐक्य को मूर्तिमान् होते देखते हैं और मैं तुमसे कहना चाहता हूँ कि इस इष्ट ऐक्य का उदाहरण हम न कायम कर सकें, इन दोनों जातियों की अखंड ग्रंथि न लगा सकें, तो और कौन ऐसा कर सकेगा ? कुछ भी अतिशयोक्ति अथवा अलंकाररहित भाषा में खिलाफत और पंजाब की

लड़ाई का रहस्य उसमें बताया गया है और फिर सादी और मीठी भाषा में उसमें सत्याग्रह और असहयोग का तात्पर्य वर्णन किया गया है। अन्त में एक शुद्ध और निर्मल वचन दिया गया है। हमारी कठिन और जबर्दस्त लड़ाई के लिए वे मुक्तकण्ठ से अपनी हमदर्दी और हिमायत अर्पण करने की इच्छा प्रकट करते हैं, फिर भी नम्रता के साथ उसमें यह भी बता दिया गया है कि सभी सीढ़ियों पर चढ़ने के लिए वे तैयार नहीं हैं। इससे अधिक सच्चे, अधिक सबल वचन और कहाँ होंगे? उतने ही सच्चे और सबल शब्दों में वे कहते हैं कि वे असहयोग में हमारे साथ अमुक हद तक न रह सकें, तो वह प्रयत्न के अभाव में नहीं, परन्तु केवल शक्ति की कमी के कारण ही। इससे अधिक सुन्दर मान-पत्र की मुझे इच्छा नहीं, इससे अधिक वचन की इच्छा नहीं। आप मंगलोर के लोग इस मान-पत्र के देनेवालों की कोटि में भी रह सकें, तो हमें सन्तोष ही है।"

पुनः बताने की जरूरत नहीं कि उस मान-पत्र का सत्य ही प्रिय और रुचिकर बन गया। हम 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का रहस्य समझ जायँ, तो अपना श्रेय जल्दी ही साध सकेंगे।

खिलाफत-असहयोग प्रश्नोत्तरी

पंजाब की तरह ही मद्रास में भी गांधीजी हर जगह स्थानीय नेताओं और कार्यकर्ताओं की खानगी सभा करते हैं। असहयोग की लड़ाई के सिलसिले में उठनेवाले प्रश्नों का हल इन खानगी सभाओं में होता है, जब कि असहयोग का तत्त्व-निरूपण बड़े जलसों के सामने दिये जानेवाले भाषणों में होता है। मंगलोर में हुई ऐसी खानगी बैठक में पूछे गये प्रश्नों जैसे ही प्रश्न अन्य स्थानों पर पूछे जाते हैं, इसलिए मेरे खयाल से उस चर्चा का सार प्रश्नोत्तरी के रूप में दे देना ठीक है। यहाँ दी गयी अधिकांश दलीलें तो अलग-अलग स्थानों पर मिल चुकी हैं, फिर भी संगठित रूप में वे सारी दलीलें यहाँ देने की आवश्यकता स्पष्ट ही है।

भारत सरकार के विरुद्ध असहयोग क्यों ?

प्रश्न—यह लड़ाई तो भारत सरकार के विरुद्ध छेड़ी गयी है। भारत सरकार ने क्या अपराध किया ? वह तो बेचारी ब्रिटिश सरकार का हुक्म बजानेवाली एजेन्सी है।

उत्तर—भारत सरकार का अपराध तो जबर्दस्त है। खिलाफत के प्रश्न का सन्तोषजनक निपटारा करने के लिए वह अनेक बार वचन दे चुकी है। सार्वजनिक रूप में और खानगी में भी मेरे रूबरू एक नहीं, परन्तु अनेक अधिकारियों ने कहा है कि मुसलमानों की भावना और माँग के लिए उन्हें बड़ी हमदर्दी है। उस हमदर्दी का हमें कोई फल दिखाई नहीं दिया। मुख्य अपराध करनेवाला बड़ा अपराधी भारत सरकार न हो, परन्तु अपराध शुरू हो जाने के बाद उसमें शरीक होकर अपराधी बननेवाली तो भारत सरकार है ही। भारत सरकार का स्पष्ट कर्तव्य है कि वह अपने को मुसलमानों की स्थिति में समझ ले और मुसलमानों के प्रति भावना कार्यरूप में प्रकट करे। वाइसराय और उनके साथी एक साथ त्याग-पत्र दे सकते थे। वे उन्होंने कहाँ दिये ?

वाइसराय को आप नौकर और आढ़तिया कहते हैं। वाइसराय को अपने सेठ के अपराध में भाग लेने का कोई हक नहीं। उन्हें पता है कि सेठ ने अपराध किया है। उन्हें यह भी पता है कि उस अपराध से उस देश में, जिसके वे हाकिम हैं, खलबली मची हुई है। वे जान-बूझकर अपराध को क्यों टेका या सहारा देते हैं ? भारत में राज्य करने आनेवाले प्रत्येक वाइसराय को लोकमत समझ लेना चाहिए और लोगों के मत पर अमल करना चाहिए। ऐसा न करे, तो लोगों का विरोध सह लेना चाहिए। परन्तु ऐसा न करके कड़वी जहर की गोली को गुड़ में लपेटकर हमें देने का उन्होंने और उनकी सरकार ने प्रयत्न किया है। कैसी सुन्दर धारासभाएँ आपको मिलेंगी, तीन-तीन भारतीय तो वाइसराय की कौंसिल में बैठेंगे—यह सारा मुलम्मा गुड़ के पुट जैसा है; परन्तु इस पुट के नीचे तो

हलाहल विष भरा है। कहाँ छोड़ा है उन्होंने अपना कड़वापन, कहाँ किसी भी प्रकार न्याय प्रदान करने की उनकी नीयत है ? किसी भी अधिकारी ने ऐसा कहा है कि मुसलमान लोगों की भावना को भारी धक्का नहीं पहुँचा है ? मुझे बोअर-युद्ध के बाद की स्थिति अच्छी तरह याद आती है। बोअरों को देने के लिए शासन-व्यवस्था सम्बन्धी वार्तालाप होने लगे। जब ये बातें होने लगीं कि इतना ही दिया जा सकता है और इतना नहीं दिया जा सकता, तब लॉर्ड मॉर्ले ने कहा था कि 'आपको दक्षिण अफ्रीका के साथ फिर लड़ाई तो शुरू नहीं करनी है ?' वाइसराय भी ब्रिटिश सरकार से साफ कह सकते हैं कि 'आपको भारत के विरुद्ध युद्ध-घोषणा तो नहीं करनी है ?' इस बात से वे इनकार नहीं करते कि भारत सरकार हमारी ओर से हमारा मत उपस्थित करनेवाली है। तब फिर उसकी जिम्मेदारी भी स्पष्ट ही है। मुझे सन्देह नहीं कि भारत में उनकी आँखें खोल देने लायक शक्ति है। उस शक्ति का उन्हें भान न हो, परन्तु भान होने की ही देर है। भान होते ही भारत दिखा देगा।

असहयोग और तुर्की का सुलतान

प्र०—सुल्तान ने तो संधि पर हस्ताक्षर कर दिये। अब हमारी उखाड़-पछाड़ से क्या फायदा ?

उ०—सन् १९१८ में लॉयड जॉर्ज का दिया हुआ वचन सबको याद होगा। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि 'जगत्प्रसिद्ध उपजाऊ प्रदेश—थ्रेस और एशिया माइनर—तुर्की सल्तनत से छीन लेने का हमारा इरादा नहीं है। यह लड़ाई न इस हेतु से लड़ी जा रही है और न कुस्तुन्तुनिया छीनने के लिए।' उस समय लोक-सदन में जो बहस हुई थी, उसके दौरान में लॉयड जॉर्ज ने अधिक स्पष्टीकरण किया था कि 'यह वचन तुर्की या तुर्की के सुल्तान के लिए नहीं दिया जा रहा है। यह भारतीय मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए दिया जा रहा है। युद्ध में इस समय नाजुक अवसर है

और भारतीय सेना के बिना कुछ हो नहीं सकता। भारतीय मुसलमानों को खुश किये बिना वह सेना नहीं आयेगी, इसीलिए यह वचन दिया गया है।' इन वचनों के आधार पर ढेरों मनुष्य लड़ाई में शरीक हुए। इसलिए तुर्की के सुलतान ने संधि पर जो हस्ताक्षर किये, उनका तो फूटी कौड़ी के बराबर भी मूल्य नहीं। मुसलमानों की यही शिकायत है कि उनकी मदद लेने के लिए जो वादे किये गये थे, वे मदद ले लेने के बाद तोड़ दिये गये हैं। यहाँ मैं धर्म की बातों में पड़ना नहीं चाहता, परन्तु संक्षेप में आपसे कह दूँ कि मुसलमान धर्म के विरुद्ध सुलह करने का किसी भी सुलतान का मकदूर नहीं। सुलतान इस प्रकार पराया घर किराये पर नहीं दे सकते। और सुलतान ऐसा करें, तो उन्हें मुसलमान तुरंत छुट्टी दे सकते हैं। और सुलतान भले ही कुस्तुन्तुनिया में नाममात्र का राजा बनकर बैठने को तैयार हो जाय, परन्तु कुस्तुन्तुनिया के साथ इसलाम का इतना वास्ता नहीं, जितना नजीर-तुल अरब के साथ है। यह लड़ाई मुसलमान कौम के धर्म की प्रतिष्ठा के लिए है, इज्जत के लिए है।

मुसलिम संसार में क्षोभ

प्र०—दूसरे देशों के मुसलमानों को इस सवाल में इतनी दिलचस्पी नहीं है या भारत के मुसलमानों ने ही इस बात का ठेका लिया है?

उ०—और लोग अपनी इज्जत बेच दें, तो क्या हम भी बेच दें? परन्तु यह वस्तुस्थिति तो अलग ही है। अन्यत्र भी विरोधाग्नि प्रज्वलित हो रही है। हमें ठीक खबरें कौन देता है? हमारे सामने जो जानकारी आती है, वह भी गोलमोल आती है। वैसे जितनी सूचना मिलती है, उससे भी निष्णात लोग तो समझ चुके हैं कि मध्य एशिया में भयंकर दावानल धधक रहा है। हाँ, यह हो सकता है कि और जगह मुसलमान यहाँ की तरह संगठित नहीं हैं, इसलिए भी वहाँ की परिस्थिति का कम पता लगता है। परन्तु भारतीय मुसलमान इतने संगठित हैं, यह तो उनके लिए शोभा की बात है। अभी तक संभव है, कुछ स्थानों पर खिलाफत के बारे में ठीक समझ न

हों, इसलिए वे अज्ञान संतोष में पड़े हों; परन्तु हमें उनका अज्ञानान्धकार दूर करना होगा ।

असहयोग का सरकार पर असर

प्र०—अच्छा, तो असहयोग के इस सवाल का निपटारा कैसे होगा ?

उ०—इसका उत्तर तो साफ ही है। सरकार के अंग-प्रत्यंग असहकार के कारण बेकार हो जायँगे, तो सरकार ठिकाने आ जायगी। सुलह की शर्तों में फेरबदल क्यों नहीं हो सकता ? और यूँ समझ लीजिये कि यहाँ का शासक-मंडल परिवर्तन न करा सके, तो उसे यहाँ से बिदा ले लेनी चाहिए। उन्हें बिदा होना पड़े, ऐसी स्थिति हम इस निर्दोष हथियार के बल पर पैदा कर सकें और इस अपराध के करनेवाले यहाँ से बिदा हो जायँ, तो हमारा काम हो गया । मुसलमानों को फिर उनसे कोई झगड़ा नहीं रहेगा ।

असहयोग की संभवता और व्यावहारिकता

प्र०—तो असहयोग ही आपको एकमात्र उपाय दीखता है ? और यही रामबाण औषधि लगती है ? हमें तो इसकी संभावना के बारे में शंका रहती है। वह संभव और व्यावहारिक दोनों ही प्रतीत नहीं होता।

उ०—इससे अधिक जल्दी परिणाम लानेवाला उपाय होता, तो हम उसे क्यों छोड़ते ? यह तुरंत अमल में लाया जा सकता है और व्यावहारिक भी है। व्यक्ति के सम्बन्ध में कहूँ, तो यह एक अमोघ अस्त्र है। प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्तव्य करके बैठ सकता है। अपने कर्तव्य का पालन ही उसका संतोष है। अनेक व्यक्ति करें, तो यही उपाय पूर्ण रूप में व्यावहारिक हो जाता है। व्यक्तियों के लिए बोलूँ, तो मैं हम दोनों का ही उदाहरण दूँगा। हमारे दोनों के दिल इतने अधिक नाजुक हैं कि किसी भी विषमता से उन पर असर हुए बिना नहीं रहता, फिर भी हम आजाद आलमगीरों की तरह भ्रमण करते हैं। इसका क्या कारण है ? कर्तव्य-पालन का भान। यही आजादी हरएक व्यक्ति भोग सकता है। तलवार के उपाय

की इससे तुलना कीजिये। वह संभव है, परन्तु व्यावहारिक नहीं। उसकी अव्यावहारिकता का जीता-जागता उदाहरण शौकतअली ही हैं। शौकत-अली तो बड़े अखाड़ेबाज हैं, बड़े पहलवान हैं, हम जैसे अनेकों को चिमटी से मसल डालें। परन्तु वे समझते हैं कि वे अकेले तलवार लेकर नहीं लड़ सकते, लड़ें तो उसमें कोई सार नहीं। उधर असहयोग में देश भी शरीक हो सकता है और अकेले लड़नेवाले बहादुर भी निकल सकते हैं। देश में जाग्रति होती रहेगी, तो इस उपाय की व्यावहारिकता बढ़ती जायगी।

असहयोग और वैध उपाय

प्र०—क्या वैध उपायों पर से आपका विश्वास उठ गया ?

उ०—नहीं, हरगिज नहीं। यह उपाय वैध उपायों में शिरोमणि है। इसके अतिरिक्त अन्य उपायों पर से मेरा विश्वास अवश्य उठ गया है। मैंने कितने और क्या-क्या उपाय किये, इसकी मैंने आपको और देश को खबर तक नहीं दी। मुझसे बना सो सब कर चुका हूँ। शायद ही किसीको पता होगा कि मांटेग्यू से वार्तालाप करने की मुसलमान भाइयों की फर्माइश होने से मैंने भारत सरकार से उसके लिए मंजूरी और अनुमति माँगी थी। भारत सरकार ने भलमनसाहत से मुझे उत्तर दे दिया था कि आपके जाने में हम रुकावट नहीं डालेंगे, परन्तु मंजूरी भी नहीं देंगे। इसलिए मैंने मांटेग्यू साहब को तार दिया। उन्होंने मुझे तुरंत सूचित कर दिया कि 'संधि की शर्तें विधाता के अक्षर हैं। वे मिट नहीं सकते। उन्हें मिटाने आना हो, तो न आइये। हाँ, सुलह से उपस्थित होनेवाले और भारत के हित के अन्य साधारण प्रश्नों की चर्चा करने आना हो, तो आइये!' इस जवाब के बाद मेरे दूसरे उपाय बन्द हो गये। मैं तो राजनीतिज्ञ घराने का हूँ, परन्तु मुझ जैसे अकेले की राजनीतिज्ञता भी काम नहीं आयी। पर हरगिज न मानिये कि मैं किसी भी उपाय की उपेक्षा कर रहा हूँ। स्वराज्य के लिए जो जबर्दस्त आन्दोलन करते रहे हैं, उसका मूल्य मैं अच्छी तरह समझता हूँ। तिलक महाराज ने जो भगीरथ प्रयत्न किये हैं, उन्हें मैं भूल नहीं सकता, परन्तु

उस पुराने ढंग को छोड़कर मैं असहयोग के इस सुधरे हुए तरीके को अपनाऊँ, तो इसमें दूसरों को बुरा क्यों लगना चाहिए ?

असहयोग और अराजकता

प्र०—असहयोग की नीति अराजकता की जननी सिद्ध नहीं होगी ?

उ०—जिस धीरज, शान्ति और समझदारी से हम काम ले रहे हैं, उसीमें आपके कथनानुसार न होने का आश्वासन मौजूद है । आप मौलाना शौकतअली को नहीं देख रहे हैं ? वे कितने ठंढे दिमाग से काम ले रहे हैं ! वे अपने जी में आये वही करते हों, तो आज वे धड़ से सिर अलग करके घूमते होते ? परन्तु वे समझते हैं, इसीलिए धड़ पर सिर रखकर घूमते हैं । वे समझते हैं कि हिंसारहित असहयोग का परिणाम हिंसा अथवा अराजकता हो ही नहीं सकता । आप पूछते हैं कि पुलिस अपने काम पर से हट जाय, तो रक्षा कौन करेगा ? जो काम छोड देंगे, वे बेकार नहीं बैठे रहेंगे । वे हमारे अधिक सच्चे रक्षक बनकर रहेंगे । और वे नहीं बनेंगे, तो 'काम कोतवाली सिखाता है', इस कहावत के अनुसार हममें से आदमी तैयार नहीं हो जायँगे ? पिछले साल लाहौर और अमृतसर में जब तीन दिन तक पुलिस उठा ली गयी, तब आपको मालूम है क्या हुआ था ? अमृतसर तो चोर-डाकुओं का घर है । वहाँ आम तौर पर जान-माल मुश्किल से सुरक्षित रहता है । फिर भी वहाँ तीन दिनों में चोरी या डाके की एक भी घटना नहीं हुई थी । निःशस्त्र स्वयंसेवकों ने रात-दिन पहरा दिया और लोगों के जान-माल की रक्षा की ।

असहयोग और राष्ट्रीय एकता

प्र०—हममें एकता तो है नहीं; असहयोग कैसे होगा ?

उ०—असहयोग सबसे सुन्दर झाल है । उससे समाज के बिखरे हुए अंग अच्छी तरह झल जायँगे और वे अंग एक हो जायँगे । बेशक बहुत काम करना बाकी है, परन्तु लोग किस मात्रा में रोज ऊँचे उठते जायँगे,

इसका किसे खयाल है ? मैं तो बड़ा आशावादी हूँ। वैसे ही शौकतअली हैं। आपको हँसी आयेगी, परन्तु मैं सच कहता हूँ कि धर्म के कट्टर लोग बड़े आशावादी होते हैं। इसलिए मुझे तो सन्देह नहीं कि हममें जल्दी ही एकता होती जायगी। पृथ्वीतल पर फटनेवाले ज्वालामुखी कोई नियम के बिना यूँ ही नहीं फट पड़ते। और हमारे यहाँ फटा हुआ ज्वालामुखी भी उसी प्रकार नियमानुसार हमें एक कर देगा।

आत्मसन्तोष की दृष्टि से पदवी-त्याग

प्र०—आपने पहले कदम के तौर पर खिताब छोड़ देना वगैरह सुझाया है, परन्तु कितने खिताब छोड़े गये ? और बहुत से खिताब न छोड़े जायँ, तब तक होगा क्या ?

उ०—मैं आपको समझाना चाहता हूँ कि एक खिताब छोड़ा जाय, तो उसका भी मूल्य है। जैसे घर की दीवार की एक ईंट के भी ढीली होकर गिर पड़ते ही कुशल घरवालों के सामने चिन्ता खड़ी हो जाती है, वैसे ही खिताबों के गिरने से ब्रिटिश हुकूमत जैसी होशियार राजसत्ता को जैसे-जैसे अपने सत्ता-भवन से ईंटें गिरती दिखाई देंगी, वैसे-वैसे उसकी जड़ें हिलने लगेंगी। परन्तु मैं स्वीकार करता हूँ कि इन छुटपुट खिताबों के छोड़ने का सरकार पर भारी असर नहीं होगा। बात यह है कि यह वस्तु ध्यान में रखकर ही इस कार्रवाई का विचार किया गया है कि पदवियाँ धारण करनेवाले ने अपना कर्तव्य पालन किया है, यह मानकर वह कैसे आत्मसन्तोष प्राप्त कर सकता है।

नौकरी छोड़ने में डर

प्र०—आपने नौकरी छोड़ने को कहा है, तो क्या जो हिन्दू-मुसलमान नौकरी छोड़ देंगे, तब क्या दूसरे हिन्दू-मुसलमान उनका स्थान ले लेनेवाले नहीं निकलेंगे ?

उ०—जरूर निकल सकते हैं। परन्तु हम किसीकी नीति या अंतरात्मा के चौकीदार नहीं हैं। यदि ऐसा हो, तो मुझे बहुत दुःख जरूर होगा, परन्तु ऐसा मुझे असम्भव दीखता है। हमारी धर्म की लगन का इतना असर क्या नहीं पड़ेगा कि दूसरों को ऐसी जगहों पर भरती होने में ही शर्म आये ?

पाठशाला-त्याग और स्वावलम्बन

प्र०—आपने पाठशालाएँ जारी करने को कहा है। हमें इस समय जो शिक्षा मिल रही है, वह पाठशालाओं में मिल रही है। उन्हें बन्द करके हम शिक्षा को असम्भव बना देंगे, तो क्या उससे प्रगति असम्भव नहीं हो जायगी ?

उ०—इसका उत्तर तो इसीमें आ जाता है। पाठशाला बन्द करते ही उस पाठशाला का काम हमीं सँभाल लेंगे। हमारे शिक्षक समझदार होंगे, तो यह पाठशाला बन्द हो जाने के बाद हमारे ही हाथों खुलनेवाली पाठशालाओं में काम करेंगे। और आप लम्बा विचार क्यों करते हैं ? आप तो मंगलोर की पाठशाला बन्द करके नयी जारी कर दें, तो काफी है। देश में प्रत्येक गाँव अपनी-अपनी जरूरतें सँभाल लेने के लिए समर्थ है; और यही बात पाठशाला के बारे में है। सरकार ने अब तक हमारी जरूरतें पूरी की हैं, परन्तु अत्यन्त विघ्नकारक ढंग से की हैं। अब वे ही जरूरतें हम अपने निजी परिश्रम से नहीं सँभाल सकते ?

ब्रिटिश माल का बहिष्कार

प्र०—ब्रिटिश माल का बहिष्कार करने से कुछ नहीं हो सकता ?

उ०—मैं इस विषय में दो वर्ष से देश के सामने अपने विचार रख रहा हूँ, फिर भी आपके सामने संक्षेप में उनका तात्पर्य रख दूँगा। यह उपाय दीखता तो अच्छा है, परन्तु अमल में लाना कठिन है, क्योंकि इस उपाय में तो उन करोड़पतियों को पिघलाने की जरूरत है, जिन्हें हम

मुश्किल से समझा सकते हैं। मैं उनकी परिस्थिति समझता हूँ, परन्तु चूँकि ब्रिटिश माल के पोषक वे हैं, इसलिए जब तक वे न छोड़ें, तब तक कुछ नहीं हो सकता। यदि वे छोड़ने को तैयार हों, तो बेशक बहिष्कार का कुछ-न-कुछ असर हो सकता है। परन्तु अन्त में यह विचार आकर तंग करता है कि वह अशुद्ध, द्वेषदूषित और हिंसादूषित हथियार है; इसमें एक को छोड़कर दूसरे विदेशी माल का सेवन करने का आत्मघाती अवगुण मौजूद है। जल्दी से प्रयोग हो, तभी उसका असर हो सकता है। इसलिए वह असंभव-सा है, क्योंकि हमारे पास बहिष्कार जबर्दस्त मात्रा में, सम्पूर्ण रूप में करने की सामग्री ही नहीं है। गंगाधरराव देशपांडे ने सोचा था कि अहमदनगर-सम्मेलन के समय इस बारे में प्रस्ताव करने से वह तीन महीने के भीतर अमल में आ जायगा। परन्तु उस बात को वर्षों बीत गये और वह जहाँ की तहाँ रह गयी। अब वे मेरी बात मानने लगे हैं। यही बात हसरत मोहानी की है। बंगाल में बंग-भंग के बाद कोई उत्साह की कमी थी ? प्रयत्न में कुछ खामी थी ? अनेक बार शुद्ध की हुई भावनाओं के अर्करूप बंगाल में भी वह असंभव और अव्यवहार्य साबित हुआ। कारण क्या ? उसका उचित और कारगर मात्रा में अमल करने के लिए सामग्री ही नहीं थी।

बहिष्कार-बहिष्कार में भेद

प्र०—आप यह कहते हैं कि ब्रिटिश माल का बहिष्कार कारगर होने के लिए उसको बहुत बड़े क्षेत्र में फैला हुआ होना चाहिए और यह कहकर कि वर्तमान स्थिति में उसका इतने विस्तार में होना असम्भव है, आप बहिष्कार को अव्यावहारिक ठहराते हैं। धारासभाओं और पाठशालाओं के बहिष्कार की बात भी ऐसी ही है। छुटपुट लोग अपने बच्चों को पाठशालाओं में भेजना बन्द कर दें, तो यह भी संकुचित मात्रा में होनेवाले बहिष्कार की तरह निरर्थक तथा अव्यावहारिक नहीं होगा ?

उ०—नहीं। ऐसा होता, तो मैं यह सुझाव ही न देता। धारासभा-बहिष्कार और पाठशाला-त्याग एक-एक व्यक्ति करके भी कर्तव्य-पालन का संतोष प्राप्त कर सकता है। मतलब यह है कि कौन्सिल-बहिष्कार और पाठ-शाला-त्याग दोनों को मैंने आदर्श (ideal) माना है। इसीलिए केवल एक व्यक्ति करके बैठ जाय, तो भी उसका मूल्य है; जब कि ब्रिटिश माल को मैंने आदर्श नहीं माना। एक ही व्यक्ति को धर्म के रूप में मैं उसका उप-देश नहीं दे सकता; जब कि उपर्युक्त दोनों वस्तुएँ तो मैं धर्म के रूप में लोगों के सामने रख रहा हूँ। मेरा दावा है कि ब्रिटिश माल का बहिष्कार केवल राजनैतिक अस्त्र है और मेरे बताये हुए शस्त्र आध्यात्मिक हैं। यह दावा आप मान लें, तो आपके प्रश्न का उत्तर स्पष्ट ही है।

स्वराज्य में सेना

प्र०—हमारा सेना और शस्त्रास्त्रों के बिना कैसे काम चल सकेगा? आप तो ब्रिटिश सम्बन्ध तोड़कर देश को रक्षा-विहीन कर डालेंगे!

उ०—(हँसकर) आप जब सब तरह हारकर बैठ गये हैं, तब क्या हो? हम सब कुछ कर सकेंगे। हमारे हाथ में अधिकार आने पर हम तैयारी नहीं कर सकते? अरे, समय आने पर हम शौकतअली को ही अपना प्रधान सेनापति बना देंगे और मुझे विश्वास है कि वे जनरल मनरो से कम नहीं निकलेंगे। [यहाँ शौकतअली भी कहने लगे, 'करोड़ों सिपाही बनाने की ताकत मैं रखता हूँ।']

असहयोग और आम लोग

प्र०—यह प्रश्न पहले करने का था, परन्तु माफ कीजिये, अब उठ रहा है। साधारण आदमी से आप क्या काम ले सकेंगे? और काम नहीं ले सकेंगे, इसीलिए तो आप बड़ों को पकड़ रहे हैं?

उ०—अरे, राम-राम भजो। ये लोग मेरी अटूट खान हैं। इनसे मैं जो करा सकता हूँ, वह आपसे नहीं करा सकूँगा। परन्तु अभी उन्हें मैंने

बचत में रख छोड़ा है। अभी उनमें सम्पूर्ण आत्मनिग्रह नहीं है। किसान तो मैं लाखों तैयार कर सकता हूँ, परन्तु अभी मुझे उन्हें इसके लिए तैयार करना होगा कि जब उनके गाड़ी, बैल, ढोर-डंगर, जमीन-जायदाद बिकें, तब वे मीठी मुद्रा रख सकें। मेरा किसानों के साथ बहुत सम्बन्ध है। उनसे मैंने धीरज के काम लिये हैं। परन्तु इस काम के लिए अभी उनसे माँग करने में मैं सकारण ही विलंब कर रहा हूँ। इसमें तो मुझे सन्देह ही नहीं कि मैं उन्हें तैयार कर सकूँगा। दक्षिण अफ्रीका में हजारों मजदूर तैयार हो गये और हजारों जेल गये, यह भूलने की बात नहीं है। परन्तु उन्हें निग्रह रखने को कहने में मुझे संकोच नहीं होता, इसलिए मैंने आप बड़े लोगों से शुरुआत की है। अब्दुल बारी साहब ने मुझसे यह कहा था कि उनके पास बीस हजार आदमी नौकरी छोड़ने को भी तैयार हैं। परन्तु अभी उनसे नौकरी छुड़वाकर क्या करूँ? मेरे पास अभी उनके लिए प्रबंध नहीं। और हम तो समझदार दूरंदेशी और धीरज से लड़ाई लड़ रहे हैं। हम अपनी सामग्री का अपव्यय नहीं करेंगे। मौका आने पर ही काम में लेंगे।

तप, तप और तप

प्र०—परन्तु मुझे न हमारी तैयारी में विश्वास रहा है और न हमारी सहन-शक्ति में। आप तो केवल 'तप, तप और तप' का पाठ पढ़ा रहे हैं। इस तप के रूखे पाठ से लोग थक जायँगे और अन्त में हारकर बैठ जायँगे।

उ०—आपको मानव-जाति के इतिहास का पता नहीं। मानव-जाति अखंड रही है, जब कि अनेक नीची कोटियाँ नष्ट हो गयी हैं, क्योंकि मानव-जाति में सहन करने का बड़ा गुण मौजूद है। आप देखिये, हमारे गरीब कैसी यातनाएँ भोगते हैं। हमारी स्त्रियाँ कैसी यातनाओं में से गुजरती हैं, यह देखिये। हमारी माताओं से पूछिये। वे आपको जवाब देंगी और आपके अविश्वास का कारण नहीं रहेगा।

मेरा प्रयत्न और आशावाद

हाँ, आपके कहने का तात्पर्य यह हो सकता है कि देश राजनैतिक कारण से दुःख सहने को तैयार नहीं। परन्तु आप इतना ही कह सकते हैं कि तैयार नहीं; अशक्त है, यह कहेंगे तो मैं नहीं मानूँगा। परन्तु मैं देश को उसके लिए तैयार करने की ही कोशिश कर रहा हूँ; मैं उनमें देश की लगन का गुण जाग्रत कर रहा हूँ। अन्य यूरोपीय देशों में राष्ट्र के लिए कष्ट सहन करने की जो भावना है, उसीको मैं प्रेरित कर रहा हूँ; और वह बहुत थोड़े काल में उदय हो जायगी, इस बारे में मुझे शंका नहीं है। आप मुझे इन भारी जलसों द्वारा सम्मान दे रहे हैं, हजारों मनुष्य मुझे देखकर हर्षोन्मत्त हो जाते हैं, यह किसलिए ? आपके हर्ष को, आपके उत्साह को मैं ठीक दिशा में मोड़ने का प्रयत्न कर रहा हूँ। यह कहना कायरों की बात है कि चूँकि तैयार नहीं हैं, इसलिए तैयार होने तक बैठे रहें। ऐसा कहकर तो हम कभी खड़े नहीं होंगे। देश-प्रेम का गुण जाग्रत करने में मुझे जरा भी निराशा नहीं होती। आपका हर्ष, आपका उत्साह इसकी संभावना की गवाही दे रहा है। इटली के दुःख के लिए मैं दुःखी नहीं हो सकता, जर्मनी के दुःख के लिए मैं लोगों में दुःख पैदा नहीं कर सकता, ऐसा करने की आशा भी नहीं रखूँगा; क्योंकि मैं परमेश्वर नहीं हूँ। परन्तु अपने देश के दुःख से दुःखी होने को तो मैं देश में जनमे हुए प्रत्येक को तैयार करूँगा। यहीं कह दूँ कि खिलाफत के सवाल में तुर्की के लिए सहानुभूति प्रकट करने को नहीं कहता। मैं तो सात करोड़ मुसलमान भाइयों के साथ न रहता होता, तो यह लड़ाई छेड़ता ही नहीं। मैं तो उनकी भावना के मारे ही यह लड़ाई लड़ रहा हूँ।

सत्याग्रह की त्रिकालाबाधितता

प्र०—पहले के एक प्रश्न से उपस्थित होनेवाला प्रश्न मैंने छोड़ दिया। सत्याग्रह तो जाता ही रहा न ?

उ०—अरे, सत्याग्रह कैसे जाता रहेगा? वह तो त्रिकालाबाधित है। वह हरगिज असफल नहीं हुआ। वह तो अनेक रूपों में जारी ही रहेगा। मुझे नहीं लगता कि सत्याग्रह का कुछ भी बुरा नतीजा निकला है। मैं जलियाँवाला बाग को भूलता नहीं, न कई जलियाँवालों से डरता हूँ। परन्तु मैंने सत्याग्रह तो इसलिए मुल्तवी कर दिया कि मैं सच्चे सिपाही की भाँति व्यर्थ संहार नहीं होने दूँगा। यह सत्याग्रह की ही करामात है कि आज हम खुलेआम राजद्रोह की वे बातें करते हैं, जिनके करने से हम काँपते थे। यह भी कह सकते हैं कि हमने राजद्रोह का कारखाना कायम कर दिया है। मैं आप सबमें इस सरकार के प्रति अप्रीति भर रहा हूँ।

और यह न समझना कि यह मेरा एक स्वप्नमात्र है कि सुलह की शर्तें रद हो जायँगी। कारण, उनको रद किये बिना ब्रिटिश सरकार शान्ति से नहीं रह सकती, साम्राज्य को चैन नहीं मिल सकता। और इस प्रकार अपार अशान्ति का मूल्य चुकाकर सरकार अपने हठ पर कायम रहेगी ही नहीं।

२३-८-'२०

बेजवाड़ा। मद्रास-यात्रा के दिनों में सरलादेवी के सात-आठ पत्र आये। उनमें···के बारे में शंका। उनसे बापू चकित रह जाते हैं, यह आक्षेप। बापू के पत्रों में मानसिक थकावट दिखाई देती है, यह शिकायत। मैंने यह सब त्याग किया, जीवन का आनन्द, संसार के सुख एक पलड़े में और दूसरे पलड़े में आप और आपके कानून रखकर दूसरा पलड़ा चुनने की बेवकूफी की! वगैरह उन्हें लम्बा पत्र :

¶ "प्रतिदिन रात हो या दिन, रेल में बिताता हूँ। रात को भीड़ के शोर से विक्षेप हो जाता है। ईश्वर के अनुग्रह से यह थका देनेवाली यात्रा लगभग पूरी कर ली है। सब बातों को देखते हुए मैं अपना स्वास्थ्य अच्छा रख सका हूँ।

"आपके पत्र आपके हमेशा के स्वभाव के अनुसार हैं। कुछ में असंदिग्ध निराशा की ध्वनि है। कुछ नास्तिक और कुछ शंकाशील हैं।

"आपने अभी तक ··· को पहचाना नहीं। वे और दूसरे जो मुझे घेरे रहते हैं, हमसे बढ़कर हैं, यदि मेरे साथ अपने को भी गिनने दें तो। मुझसे तो श्रेष्ठ हैं ही। और ऐसा ही होना चाहिए। मेरा यह दावा है कि मैंने जिन्हें अपना साथी चुना है, वे चरित्र में मुझसे बढ़कर हैं। बढ़कर इस अर्थ में कि उनके ऊपर उठने की सम्भावना अधिक है। मेरी तो अब प्रगति होगी नहीं। उनकी प्रगति की गुंजाइश अमर्यादित है। मेरा चरित्र उनके लिए आदर्श है और इसका उन्हें अभिमान है। मुझे और आपको उनकी ममता और प्रीति का पात्र बनने के लिए सर्वस्व देना चाहिए। हाँ, जहाँ एकमात्र सिद्धान्त का प्रश्न आ जाय, वहाँ समझौता नहीं किया जा सकता। इसके लिए तो सभी का त्याग करने की तत्परता होनी चाहिए। मैं तो इतने शुद्ध और निःस्वार्थ प्रेम का पात्र होने की खातिर सारी पृथ्वी का त्याग कर दूँ। उनका प्रेम मुझे ऊँचा उठाता है और ठिकाने रखता है। वे मेरा और मैं उनका लगा हूँ। उनकी चिंता और निगहबानी के लिए मुझे तो गर्व है। वे कोई जोखम नहीं उठाना चाहते और इसमें वे सच्चे हैं। उनकी प्रत्येक वाजिब माँग को सन्तोष देना आपका और मेरा धर्म है।

"हाँ, आप लाहौर में अपने स्थान पर बनी रहें, यही सर्वथा उचित है। धूमधाम और कष्ट के इस सप्ताह में कलकत्ता आकर आप बहुत कम प्राप्त कर सकेंगी। अपनी माताजी से मिलने की बात आप किसी शान्त समय में, चरखा और हिन्दी अच्छी तरह सीख लेने के बाद तथा लाहौर का आपका काम पटरी पर लग जाने के बाद रखें, तो ठीक हो। आप देखेंगी कि पंजाब के बजाय लाहौर शब्द को मैंने चुना है। मुझे जड़ पक्की करनी है, इसलिए मैं व्यापकता के बजाय गहराई चाहता हूँ।

"आप अपने महान् बलिदान के बदले की बात कहती हैं। मैं कहता हूँ कि यही इसका बदला है।

"खूब प्यार के साथ।"

¶ "प्रिय चार्ली,

"मद्रास प्रान्त का थका देनेवाला दौरा आज खत्म हो रहा है। सतत प्रवास करता रहा। इस लड़ाई के सच्चेपन का और शौकतअली की महानता और भलेपन का मुझे अनुभव से विश्वास हो गया है। मुझे जितने आदमी मिले हैं, उनमें सचमुच ही वे एक खूब सच्चे दिल के आदमी हैं। वे उदार, शुद्ध, बहादुर और नम्र हैं। उन्हें अपने छेड़े हुए काम के और अपने-आपके प्रति विश्वास है। ईश्वर में अपार श्रद्धावान् होने के कारण वे इतने आशावादी हैं कि दूसरे को सीधा खड़ा कर दें। लोगों का उत्साह भी विलक्षण है। कार्यक्रम का अहिंसावाला भाग जोर पकड़ता जा रहा है। बैंगलोर में इतनी भीड़ इकट्ठी हुई थी कि नजर नहीं पहुँच सकती थी। उसमें एक अंग्रेज स्त्री-पुरुष अकेले थे। परन्तु भीड़ में किसीने उनको धक्का तक नहीं लगने दिया। हर जगह से बड़ी-बड़ी भीड़ों के अहिंसक व्यवहार के प्रमाण मेरे पास आते रहते हैं। तुमने देखा होगा कि मुहाजरीन को होनेवाले कष्टों की बात सरकार ने* मजबूर होकर स्वीकार की है। मेरी राय में ये सब शुभ चिह्न हैं। दूसरी ओर नेताओं की जमात से मुझे पोचा जवाब मिला है। वे जरा भी त्याग करना नहीं चाहते। वे तो भाषणों और प्रस्तावों से सब कुछ ले लेने की आशा रखते हैं। त्याग करने के लिए तैयार राष्ट्र को वे पीछे खींचने का काम कर रहे हैं।"

बेजवाड़ा से रात को चले।

२४-८-'२०

बम्बई के लिए हैदराबाद से मनमाड़ जाते हुए सरलादेवी को यह पत्र लिखा :

¶ "आपके पत्रों से मुझे दुःख हुआ। आपको मेरे उपदेश-प्रवचन

---

* वाइसराय के उस समय के भाषण में, असहयोग और खिलाफत के विषय में बोलते हुए।

पसन्द नहीं आते। परन्तु जब तक आप पाठशाला जानेवाली लड़की की तरह रहें, तब तक शिक्षा देने के सिवा और मैं क्या करूँ? मेरा प्रेम यदि सच्चा हो, तो जब तक आप अपनाये हुए आदर्श को ठीक न मान लें, तब तक मुझे उपदेश देते ही रहना पड़ेगा? आपने जो जीवन स्वीकार किया है और जिसे स्वीकार करने का प्रयत्न कर रही हैं, उसकी आवश्यकता के बारे में आप शंका कर रही हैं, यह मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगता। जान जोखिम में डालकर भी सदा-सर्वदा सत्य बोला और आचरण किया जाय, तो उसका बदला क्या हो सकता है? अपने देश के लिए मरने का भी बदला होता है? पियानो बजाने में प्रवीणता प्राप्त करने में आपने बरसों लगाये हैं, उसका आपने बदला चाहा है? अपनाये हुए कार्य के लिए हम सर्वस्व अर्पण करते हैं, क्योंकि ऐसा किये बिना हमसे रहा नहीं जाता। आपका सन्तोष अपने सम्पूर्ण आत्मविलोपन में है। जिस विलोपन से आपको सन्तोष न हो, वह बलात् शरणागति है। स्वाभिमान-वाले मनुष्य को वह शोभा नहीं दे सकती। मेरी संगति से आपको इतना सादा सत्य समझ में न आया हो, तो मैं आपके प्रेम के लिए नालायक हूँ। मेरे जीवन से आप इतना भी न सीखी हों, तो मैं अयोग्य मनुष्य हूँ। अमर्यादित आत्मविलोपन और सत्य-परायणता की शक्ति के सिवा मुझमें और कोई योग्यता नहीं। ये गुण मुझमें सबने पाये हैं। और आप जो मेरे जीवन में इतनी गहरी गयी हैं, न देख सकी हों, तो मुझमें कोई बड़ी कमी है। अपनी सबसे कीमती सम्पत्ति में हिस्सेदार बनाने के अतिरिक्त मैं आपको और क्या दे सकता हूँ? इसलिए मेरे उपदेश-प्रवचनों से आपको बुरा न मानना चाहिए, परन्तु जो मैं प्रेम से देता हूँ, उसे आपको प्रेम से स्वीकार करना चाहिए। आप मुझे अपना स्मृतिकार मानती हों, तो भले ही मैं सदा आपके लिए स्मृति न दूँ, परन्तु मैं इतना तो करूँगा कि शाश्वत महत्त्व की वस्तुओं के बारे में अथवा जिस देश को हम इतना चाहते हैं और जिसके लिए जीते हैं, उसके लिए अत्यन्त महत्त्व की बातों के बारे में मैं आपसे बहस करूँ?

"परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि आपको बुरे विचार आते ही हों, तो वे आप न लिखें। मेरा आग्रह तो यह है कि आपको बुरे विचारों का सेवन ही नहीं करना चाहिए। प्यार।"

४-९-'२० से ९-९-'२०

कलकत्ते की विशेष कांग्रेस। उसमें असहयोग का प्रस्ताव पेश करते हुए भाषण :

मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इस महान् सम्मेलन के समक्ष यह प्रस्ताव रखकर कितनी अधिक गंभीर जिम्मेदारी अपने सिर पर ले रहा हूँ। मैं यह भी समझता हूँ कि आप यह प्रस्ताव मंजूर कर लेंगे, तो मेरी अपनी और आपकी भी मुश्किलों में कितनी वृद्धि हो जायगी। मेरा प्रस्ताव आप मंजूर करें, इसका यही अर्थ होगा कि अब तक जनता अपने हक और सम्मान की रक्षा के लिए जो नीति अपनाती रही, उसे हम बिलकुल बदल रहे हैं। मैं पूरी तरह जानता हूँ कि हमारे बहुत से नेता इसके विरुद्ध हैं। हमारी मातृभूमि की सेवा में जितना समय और शक्ति मैं नहीं दे सका हूँ, उतना उन्होंने दिया है। चाहे जिस कीमत पर भी सरकार की शासन-नीति में क्रान्ति कर डालने को कहनेवाली इस नीति का विरोध करना उन्हें अपना कर्तव्य प्रतीत होता है। यह सब पूरी तरह समझकर मैं आपके सामने खड़ा हूँ। मैं यह प्रस्ताव परमेश्वर से डरता हुआ और स्वदेश के प्रति धर्म के भान से प्रेरित होकर पेश कर रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप उसका स्वागत करें।

गांधी का खयाल छोड़ दो

मैं आपसे माँग लेता हूँ कि मैं गांधी हूँ, यह खयाल घड़ीभर के लिए छोड़ दीजिये। मुझ पर ये आरोप हैं कि मैं बड़ा 'महात्मा' हूँ और स्वेच्छाचारपूर्ण शासन करना मुझे अच्छा लगता है। मैं साहसपूर्वक कहता हूँ कि मैं आपके पास 'महात्मा' बनकर नहीं आया और न मन-

मानी हुकूमत करने की आकांक्षा से आया हूँ। मैं तो आपके सामने अपने अनेक वर्षों के आचरण में असहयोग का जो अनुभव हुआ, उसे उपस्थित करने खड़ा हुआ हूँ। हजारों की भीड़वाली सैकड़ों सभाओं ने असहयोग को स्वीकार किया है और मुसलमानों ने तो पहली अगस्त से उसे आचरण में लाने लायक स्वरूप भी दे दिया है। निश्चित किये हुए कार्यक्रम की अधिकांश बातें थोड़े-बहुत जोश के साथ अमल में आती जा रही हैं। मैं फिर आपसे माँग लेता हूँ कि आप इस महत्त्व के प्रश्न में कौन आदमी है, उसकी तरफ न देखिये, परन्तु धीरज और शान्ति से प्रस्ताव के गुण-दोष पर अपना निर्णय बनाइये।

सहनशक्ति की तालीम

और यह प्रस्ताव मंजूर करते ही आप छूट नहीं जायँगे। प्रत्येक को प्रस्ताव की जो-जो धारा लागू होती हो, उस हद तक लगे हाथों उस पर अमल शुरू कर देना पड़ेगा। मेरा अनुरोध है कि आप धीरज रख-कर मेरा कहना सुन लीजिये। तालियाँ भी न बजाइये और फजीहत भी न कीजिये। मेरे अपने लिए तो आप ऐसा करें, तो भी मुझ पर बहुत असर नहीं होगा। परन्तु तालियों से विचारों का प्रवाह रुकता है और तिरस्कार से बोलने और सुननेवालों के बीच जुड़ा हुआ तार टूट जाता है। इसलिए आपका अपना रवैया कुछ भी हो, फिर भी किसी भी वक्ता को आप मजाक उड़ाकर बिठा न दीजिये। असहयोग में तो अनुशासन और त्याग की साधना की कल्पना की गयी है और विरोधी पक्ष के मत को धीरज और शान्ति से समझ लेना असहयोग का लक्षण है। पूर्व-पश्चिम जैसे विरुद्ध विचारों को भी आपस में सह लेने की वृत्ति जब तक हम पैदा नहीं कर लेंगे, तब तक असहयोग असंभव है। क्रोध की बाष्प निकलते हुए वातावरण में असहयोग चल ही नहीं सकता। मैं कड़वे अनुभव से तीस वर्ष में एक महत्त्व की इतनी-सी बात सीखा हूँ कि क्रोध को दबा दिया जाय। जैसे दबाकर रखी गयी उष्णता में से शक्ति

उत्पन्न होती है, वैसे ही संयम में रखे गये क्रोध से भी ऐसा बल पैदा किया जा सकता है कि सारे संसार में हलचल मचा दे। कांग्रेस में आनेवालों को मैं एक ही सेना के सैनिक मित्र के नाते पूछता हूँ कि हम अपने बीच परस्पर सहानुभूति पैदा कर लें और एक-दूसरे के मत कितने ही विरोधी होने पर भी सहन करना सीख लें, तो इससे अधिक अनुशासन और क्या हो सकता है?

कांग्रेस और अल्पमत

मुझे कहा जाता है कि अपना प्रस्ताव पेश करके मैं बड़ी फूट डालने जा रहा हूँ। अपने प्रस्ताव से मैं देश के राजनैतिक जीवन में दरार डाल रहा हूँ। कांग्रेस किसी खास दल की संस्था नहीं है। प्रत्येक मत-मतांतर के लिए कांग्रेस का मंच खुला होना चाहिए। हमारे दल की संख्या थोड़ी है, इसीलिए किसीको कांग्रेस छोड़कर चले जाने की जरूरत नहीं। उन्हें समय पाकर देश के लिए अपना मत रुचिकर बनाकर अपना ही बहुमत बना लेने की आशा रखनी चाहिए, कांग्रेस द्वारा निन्दित किसी भी नीति को कांग्रेस के नाम से कोई अख्तियार नहीं कर सकता। आप मेरा ढंग नापसन्द करेंगे, तो मैं कोई कांग्रेस छोड़कर नहीं चला जाऊँगा। आज मेरे विचारों का अल्पमत हो, तो जब तक वह बदलकर बहुमत नहीं बन जायगा, तब तक मैं कांग्रेस को समझाता ही रहूँगा।

एकमात्र उपाय—असहयोग

खिलाफत के साथ अन्याय हुआ है, इस बारे में तो दो मत हैं ही नहीं। कुछ भी कुर्बानी करनी पड़े, तो वह करके भी यदि मुसलमान अपनी इज्जत इस समय कायम नहीं रख सकेंगे, तो वे इज्जत के साथ रह नहीं सकेंगे और अपने हजरत पैगम्बर का धर्म पालन नहीं कर सकेंगे।

पंजाब पर सितम गुजरे हैं; और यह समझ लीजिये कि जिस दिन एक भी पंजाबी को पेट के बल चलना पड़ा, उस दिन सारा भारत पेट

के बल चला। यदि हम भारत के नाम को लजाना नहीं चाहते हों, तो हमें यह कलंक का टीका मिटा ही डालना होगा। इन दो जुल्मों का न्याय कराने के लिए हम महीनों से पच रहे हैं, परन्तु अभी तक हम ब्रिटिश सरकार को रास्ते पर नहीं ला सके। क्या लोग अब तक इतना सब कुछ करने के बाद, इतना जोश और भाव प्रकट करने के बाद केवल अपनी क्रोध की भावना का थोथा प्रदर्शन करके ही बैठ रहना पसंद करेंगे? अध्यक्ष महोदय ने अपने प्रारंभिक भाषण में पंजाब के जुल्मों का जो दिग्दर्शन कराया, उससे अधिक हूबहू विवेचन आपने पहले कभी सुना था? ऐसी हालत में अनिच्छुक अधिकारियों को न्याय करने के लिए विवश किये बिना, खून से सने हुए उनके हाथों से कितनी ही बड़ी मेहरबानी स्वीकार करने से पहले, उनके हृदय का पश्चात्ताप देखे बिना, कांग्रेस के लिए, इस मामले में न्याय प्राप्त करने का, अपने नाम और सम्मान की रक्षा करने का और उपाय ही क्या है?

असहयोग की सर्वोत्तम योजना

केवल इसी कारण से मैं अपनी असहयोग की योजना आपके सामने रख रहा हूँ और आपसे आग्रह कर रहा हूँ कि इसके एवज में और किसी भी योजना को आप मंजूर न करें। मैं आपको यह इसीलिए नहीं कहता कि मुझे अपनी योजना का आग्रह है। मेरे कहने का मतलब यह है कि आप मेरी योजना को तभी मंजूर कीजिये, जब खूब विचार करके देख लेने पर इससे और कोई योजना बढ़कर मालूम न हो। मैं यह दावा करता हूँ कि इस योजना को लोगों की ओर से काफी मात्रा में समर्थन मिला है और मैं आपसे फिर कहने की हिम्मत करता हूँ कि इस पर आप अमल करें, तो एक ही वर्ष में स्वराज्य ले सकते हैं। यह विराट् समाज इस प्रस्ताव को केवल पास कर दे, इतना ही काफी नहीं, परन्तु लोग दिन-दिन अधिक जोश के साथ उस पर अमल करें, तभी

वह सफल हो सकता है। यह अमली कार्यक्रम देश की मौजूदा हालत को पूरी तरह ध्यान में रखकर ही तैयार किया गया है।

त्याग और अनुशासन की शिक्षा

असहयोग के सिवा एक और मार्ग लोगों के सामने था और वह था तलवार उठाने का। परन्तु भारत के पास इस समय तलवार नहीं है। यदि उसके पास तलवार होती, तो मैं जानता हूँ कि वह असहयोग की इस सलाह को सुनता तक नहीं, परन्तु मैं तो आपको यह बता देना चाहता हूँ कि आप अनिच्छुक शासकों के हाथों रक्तपात के मार्ग द्वारा भी जबरन न्याय प्राप्त करना चाहते हों, तो उस मार्ग में भी इस असहयोग के कार्यक्रम के लिए आवश्यक अनुशासन और त्याग—इन दो चीजों के बिना आपका काम नहीं चलेगा। मैंने आज तक नहीं सुना कि बेताल मस्तिष्कवाले डाकुओं ने कभी लड़ाई जीती हो। परन्तु अपने-अपने नाके की रक्षा करते हुए सिर हाथ में रखकर मरनेवाली कवायदी सेना को जीतते मैंने और आपने भी देखा है। आपको ब्रिटिश सरकार से, अंग्रेज जाति से या यूरोप के तमाम लोगों से एक ही बार में सफाई कर डालनेवाली लड़ाई लड़ लेनी हो, तो हमें अनुशासन और त्याग पैदा करना ही होगा। मैं लोगों को उस अनुशासन और त्याग की स्थिति में पहुँचा हुआ देखने को उत्सुक हूँ। वह स्थिति देखने को मैं उतावला हो गया हूँ। बुद्धिबल में हम पिछड़े हुए नहीं हैं। परन्तु मैं देखता हूँ कि राष्ट्रीय पैमाने पर अभी तक हममें त्याग और अनुशासन नहीं आया है। कौटुम्बिक क्षेत्र में तो हमने अनुशासन और त्याग का जितना विकास किया है, उतना संसार के और किसी राष्ट्र ने नहीं किया। उसी वृत्ति को राष्ट्रीय व्यवहार में भी दिखाने का इस समय मैं आपसे अनुरोध कर रहा हूँ।

विजय के मूलाक्षर

मैं भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक इसी बात का पता लगाने घूम रहा हूँ कि लोगों में सच्चा सार्वजनिक जोश आया है या नहीं, लोग

राष्ट्र की वेदी पर अपना धन, अपने सभी पुरुष और अपना सर्वस्व बलिदान करने को तैयार हैं या नहीं। और यदि लोग कुछ भी बाकी रखे बगैर अपना सब कुछ होम देने को आज तैयार हों, तो इसी क्षण मैं स्वराज्य आपके हाथ में रखवा देने को तैयार हूँ। इतना त्याग करने को लोग तैयार हैं? खुश हैं? शक्तिमान् हैं? पदवीधारी अपनी पदवियाँ और सम्मान के पद छोड़ देने को तैयार हैं? माँ-बाप देश की लड़ाई लड़ने के लिए अपने बच्चों की किताबी शिक्षा डुबो देने को तैयार हैं? मैं तो कहता हूँ कि जो स्कूल-कॉलेज सरकार के लिए क्लर्क बनाने के कारखाने मात्र हैं, उनमें बच्चों को न भेजने से हम बच्चों की शिक्षा को डुबाते हैं, जब तक हम यह मानते रहेंगे, तब तक स्वराज्य हमसे सैकड़ों कोस दूर है। अन्य राष्ट्र के हाथों दबी हुई कोई भी जनता एक तरफ उसकी मेहरबानी स्वीकार करती रहे और दूसरी ओर शासक जनता पर जो बोझ और जिम्मेदारी डालें उन्हें वह हटाती रहे, यह नहीं हो सकता। विजेताओं की तरफ से होनेवाली कोई मेहरबानी विजित जाति के कल्याण के लिए नहीं, परन्तु शासकों के लाभ के लिए ही होती है, यह बात जिस क्षण किसी भी पराधीन जाति को सूझ जाती है, उसी क्षण से वह जाति शासकों को हर प्रकार की स्वेच्छापूर्ण सहायता देना बन्द कर देती है और उस प्रकार की सहायता लेने से साफ इनकार कर देती है। हमारी आजादी की लड़ाई की जीत के ये मूलाक्षर हैं। फिर भले ही वह आजादी साम्राज्य के भीतर हो या बाहर।

इज्जत-आबरू के लिए

मैं चाहता हूँ कि मेरे देशबन्धु मेरी यह बात अच्छी तरह समझ लें; और यदि यह बात उनके गले न उतरी हो, तो मेरा प्रस्ताव नामंजूर कर देना ही उनका कर्तव्य होगा। हिन्दू-मुसलमानों के बीच सच्ची एकता को मैं ब्रिटिश सम्बन्ध से हजारों गुना अधिक मूल्यवान् मानता हूँ और यदि उस सम्बन्ध और हिन्दू-मुसलिम एकता—इन दोनों में से कोई एक ही

चुनने की नौबत आ जाय, तो मैं हिन्दू-मुसलिम एकता को ही पसन्द करूँगा और ब्रिटिश सम्बन्ध को छोड़ दूँगा। इसी प्रकार एक तरफ पंजाब और सारे भारत की इज्जत और दूसरी ओर भारत में कुछ समय तक अंधाधुंधी, लड़कों की शिक्षा की बर्बादी, अदालतों और धारासभाओं की बन्दी और ब्रिटिश सम्बन्ध का त्याग—इनके बीच चुनाव करना पड़े, तो भी मैं पंजाब और भारत का सम्मान और उसके साथ आनेवाली अराजकता और स्कूलों, अदालतों वगैरह के बन्द होने और इनके साथ लगी हुई तमाम अव्यवस्था का जरा भी आनाकानी किये बिना स्वागत करूँगा। आपका जी भी उतना ही जल रहा हो, आप भी इसलाम की इज्जत अक्षुण्ण रखने को मेरे जितने ही उत्सुक हों, पंजाब की इज्जत निष्कलंक करने को तड़प रहे हों, तो बिना संकोच के आपको यह प्रस्ताव मंजूर कर लेना उचित है।

धारासभाओं का बहिष्कार

परन्तु इतना ही काफी नहीं है। असली मुद्दे की बात पर तो अभी तक मैं आया ही नहीं। वह बात यह है कि धारासभाओं के उम्मीदवार तथा मतदाता पूर्ण बहिष्कार करें। इस समय यही मुद्दे का प्रश्न हो गया है, और मैं जानता हूँ कि अन्य छोटी-मोटी बातों में समझौता हो जायगा, तो भी इस सभा का मत-विभाजन होगा, तो वह इसी बात पर होगा। धारासभाओं द्वारा स्वराज्य मिलेगा या धारासभाओं का त्याग करके? क्या सचमुच धारासभाओं द्वारा स्वराज्य लेने की बात में लोगों को विश्वास है? इस सम्बन्ध में मैं इस समय अधिक बहस नहीं करूँगा। धारासभाओं का बहिष्कार न करने के पक्ष में जो-जो दलीलें पेश होंगी, उनका जवाब मैं बाद में दूँगा। अभी तो इतना ही कहूँगा कि यदि ब्रिटिश सरकार और उसके मौजूदा अधिकारियों पर से हमारा विश्वास बिल्कुल ही उठ गया हो, यदि हम यह मानते हों कि ब्रिटिश सरकार को अपने दुष्कृत्यों के लिए किसी भी तरह का पश्चात्ताप नहीं हुआ, तो आप यह

मान ही कैसे सकते हैं कि इन सुधारों के जरिये अन्त में स्वराज्य मिल जायगा ?

विदेशी माल का बहिष्कार

मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि लोग विदेशी माल का बहिष्कार करें, परन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि इस समय यह बात नहीं हो सकती। जब तक हमें सूई-काँटे के लिए भी विदेशों के मुँह की ओर देखना पड़ता है, तब तक विदेशी माल का बहिष्कार असंभव है। परन्तु यदि आप उद्दिष्ट स्थान पर पहुँचने को अधीर हो गये हों और कुछ भी कुर्बानी करने को तैयार हों, तो मैं स्वीकार करता हूँ कि विदेशी माल का बहिष्कार करके बताने पर पलक मारने में ही भारत अपनी आजादी प्राप्त कर सकता है। इसलिए मैंने आनाकानी किये बिना अपने प्रस्ताव में किया गया संशोधन स्वीकार कर लिया। इतनी ही बात है कि वह मेरे प्रस्ताव की सुन्दरता को जरा बिगाड़ देता है। मेरे नम्र मतानुसार प्रस्ताव के बहिष्कार सम्बन्धी वे शब्द कार्यक्रम के संतुलन को अवश्य बिगाड़ते हैं। परन्तु यहाँ मैं साँचे में ढले हुए कार्यक्रम की वकालत करने खड़ा नहीं हुआ हूँ। मुझे तो लोगों के आगे व्यावहारिक कार्यक्रम रखना है और मैं सहज ही स्वीकार कर लेता हूँ कि यदि हमसे विदेशी माल का बहिष्कार हो सके, तो वह जबर्दस्त चीज है। वह बहिष्कार और स्वराज्य दोनों आपको पसन्द हों, तो वे प्रस्ताव में अंतिम पैरे में हैं।

परिश्रमपूर्वक तैयार किया हुआ कार्यक्रम

अन्त में मैं आपसे इस मामले पर खूब गहरा विचार करके मत देने और मेरी तरफ का कोई निजी खयाल न करने का अनुरोध करता हूँ। मैंने देश की सेवाएँ की हों, तो उनका खयाल भी बीच में न आने दीजिये। यहाँ उनका मूल्य नहीं हो सकता। मेरा यह जरा भी दावा नहीं है कि मैं जो कार्यक्रम देश के सामने रखूँ, वह भूल-रहित ही होगा। मैं

इतना ही दावा करता हूँ कि मैंने यह कार्यक्रम तैयार करने में बहुत ही मेहनत की है, अत्यंत विचार किया है और यही निश्चय कायम रखा है कि व्यावहारिक हो वही कार्यक्रम तैयार किया जाय। इन दो बातों का तो आप अवश्य हिसाब लगाइये। आपके पास काम करनेवाली संस्था भी मौजूद है। इस समय यह तरीका तय करते समय भी भले ही फिलहाल विचार करने के लिए ही क्यों न हो, परन्तु कार्यक्रम को प्रत्यक्ष स्वीकार करनेवाले हजारों अनुयायी आपके साथ खड़े हैं।

प्रस्ताव पर आपत्तियों का उत्तर

प्रस्ताव के विरुद्ध पेश की गयी आपत्तियों का उत्तर देना मेरा धर्म है। मुझे यह देखकर बड़ा अफसोस हुआ कि आपने भाई जमनादास की बात सुन नहीं ली।

सारे एतराज मैंने खूब ध्यान से सुने, परन्तु वे मेरे गले नहीं उतर सके। मि० जिन्ना और दास कहते हैं कि वे अव्यावहारिक हैं। मैं तो कहता हूँ कि उसका कोई भी भाग इसी क्षण अमल में लाया जा सकता है और पाठशालाएँ और वकालत बन्द करने के मामले में जो 'रफ्ता-रफ्ता' शब्द जोड़ दिये गये हैं, वे कोई इस योजना की अव्यावहारिकता साबित नहीं करते। वे हमारी दुर्बलता के सूचक अवश्य हैं। लोगों में जितनी लगन पैदा हो जायगी और काम करनेवाले जिस हद तक इस कार्यक्रम को सफल करने के लिए खून-पसीना एक करेंगे, उस हद तक वह दिखाई देगा। वैसे असहयोग समिति जब तक जिन्दा है, तब तक तो वह ऐसी और दूसरी अनेक धाराओंवाला कार्यक्रम लोगों के सामने रखती ही रहेगी। अपने डेढ़ ही महीने के अनुभव से मुझे इतमीनान हो गया है कि लोगों में काफी जाग्रति है और वे इस कार्यक्रम पर अमल करने को तैयार हैं।

इसके विपरीत विदेशी माल का बहिष्कार सचमुच असंभव है, यह कल्पना ठीक न हो तो भी लोग चाहें तो मैं उनके सामने ऐसा व्याव-

हारिक कार्यक्रम ही रखने को उत्सुक हूँ, जो आज ही अमल में लाया जा सके।

युद्धकाल में स्कूल व अदालतें

यह बात साफ करने को मैं खास तौर पर उत्सुक हूँ। यदि आप असहयोग का कार्यक्रम मंजूर कर लेते हैं, तो यह ध्यान में रखें कि कल से ही बच्चों को स्कूलों से हटा लेने और वकालत बन्द कर देने की जिम्मेदारी आप पर है। यदि आप तुरन्त ऐसा करने को तैयार न हों, तो ही 'रफ्ता-रफ्ता' विशेषण आपको विचार करने का समय लेने के लिए छूट देता है। यह तो बुनियाद के बिना मकान बनानेवाली बात है। लड़कों को शिक्षा दिये बिना सुन्दर मकान तो क्या, परन्तु घास का झोपड़ा भी मैं खड़ा नहीं कर सकता। परन्तु लोग एक बार लड़ाई में पड़े—फिर वह रक्तपात-वाली हो या रक्तहीन हो—कि तत्काल उसकी पाठशालाएँ और अदालतें बन्द ही होनी चाहिए। मैंने दो लड़ाइयाँ स्वयं देखी हैं। वहाँ तो मैंने शुरू से ही अदालतें बन्द हो जाती देखीं, क्योंकि लोगों को अपने खानगी झगड़ों का विचार करने की फुर्सत नहीं रही और पाठशालाएँ इसलिए बन्द हो गयीं कि माँ-बाप ने देखा कि ऐसे आपत्काल में उनके लड़कों के लिए ऊँची-से-ऊँची शिक्षा यही है कि वे पाठशाला जाना छोड़ दें। ये दो बातें ही हमारी भावना और लगन की कसौटी हैं।

ब्रिटिश राष्ट्र को नोटिस

ब्रिटिश सरकार को पहले से नोटिस दिये बिना असहयोग में स्वराज्य की माँग शामिल करने पर आपत्ति की गयी है; परन्तु मेरे प्रस्ताव में स्वराज्य की स्वतंत्र माँग नहीं की गयी है। यह कहा गया है कि स्वराज्य इसलिए इस बात के साधन के रूप में जरूरी है कि जैसे जुल्म हुए, वैसे आइंदा न होने पायें। और पालबाबू के सुझाव में भी मिशन के विलायत रहकर काम करने के अर्से में कुछ बातों का अमल कल से ही होना और

दूसरी बातों की तैयारी करना तो है ही। तो फिर उसीको नोटिस की मुद्दत मान लेने में क्या बाधा है ?

धारासभा और विरोध-नीति

धारासभाओं के बहिष्कार के मामले में तो इतनी चर्चा में मैंने एक भी सारवाली दलील नहीं सुनी। सबके मुँह से मैंने एक यही मुद्दा सुना कि पैंतीस वर्ष में हम धारासभाओं द्वारा कुछ न कुछ कर सके हैं और यह मुझे मंजूर है; और हमारा बहुमत हो जाय, तो वहाँ रहकर हम अधिक तंग कर सकते हैं और सरकार को खड़ी भी रख सकते हैं। यह भी मुझे मान्य है। परन्तु इंग्लैण्ड के अध्ययनकर्ता के रूप में मैंने देख लिया है और विलायत में आजकल यह बात सिद्धान्त रूप में मानी जाती है कि कोई भी संस्था विरोध से उलटा पोषण और वृद्धि प्राप्त करती है।

धारासभा और लोकमान्य

सरकार इस समय नहीं चाहती कि राष्ट्रवादी धारासभाओं से बाहर रहें। मैं निश्चित मानता हूँ कि धारासभाओं में जाने की अपेक्षा धारासभाओं के बाहर रहकर ही अधिक देश-सेवा हो सकती है। भारत के एक पूरे लोकमान्य धारासभा से बाहर रहे, इसीलिए इतनी अलौकिक लोक-सेवा कर सके। वे धारासभा में जाते, तो क्या सचमुच करोड़ों भारत-वासियों पर ऐसा जादू का-सा असर डाल सकते थे ? असहयोग के बारे में आपके सामने लोकमान्य का मत पेश किया गया है; परन्तु उनके साथ की दूसरी बात आपसे नहीं कही गयी, जो मुझे कहनी है। उनके निधन से पंद्रह दिन पहले मैं और भाई शौकतअली उनसे मिलने गये, तब उन्होंने कहा था कि 'मैं स्वयं इस मत का हूँ कि धारासभा में जाकर जरूरत पड़ने पर वहाँ सरकार को बाधा देना और जरूरत पड़ने पर सहयोग देना बेहतर है', परन्तु भाई शौकतअली ने उनसे पूछा कि 'आपने दिल्ली में मुसलमानों को जो वचन दिया, उसका क्या हुआ ?' लोकमान्य ने उत्तर

दिया कि 'अलबत्ता, यदि मुसलमान करेंगे'—और ये शब्द केवल धारा-सभाओं के बहिष्कार के लिए ही नहीं थे—'तो मैं आपको वचन देता हूँ कि मेरा दल आपके साथ ही रहेगा।'

पश्चात्ताप कहाँ है ?

और ये धारासभाएँ क्या हैं ? क्या आप यह मानते हैं कि वहाँ जाने से और जाकर चर्चा करने से आप ब्रिटिश मंत्रियों पर असर डालकर तुर्की के साथ सुलह की शर्तें बदलवा सकेंगे अथवा पंजाब के लिए पश्चात्ताप करा सकेंगे ? मालवीयजी कहते हैं कि कांग्रेस-कमेटी की ज्यादातर माँगें अब जल्दी ही पूरी हो जायँगी, क्योंकि जुल्म में भाग लेनेवाले अधिकांश बड़े अधिकारी चले गये हैं या जानेवाले हैं और खुद वाइसराय भी गरमी आने पर चले जायँगे। मैं आदरपूर्वक कहता हूँ कि मैंने खुद तो केवल इतना ही कराने के लिए रिपोर्ट में कलम नहीं उठायी। मैंने तो जब इस बारे में चर्चा हुई, तब इसी बात पर जोर दिया था कि अधिकारियों को उनकी अयोग्यता और अत्याचार की दृष्टि से ही बर्खास्त किया जाय, उनकी मियाद पूरी हो जाने पर नहीं। और यदि वाइसराय भी अपनी मियाद पूरी होने से पहले त्यागपत्र न दें, तो उन्हें जबरन रिटायर किया जाय। मियाद पूरी होने पर तो वाइसराय क्या और दूसरे अफसर क्या, कब जाते हैं, इससे मुझे क्या वास्ता ? मुझे उनसे पश्चात्ताप कराना है, उनके अन्तःकरण बदलने हैं और यह मैं कुछ देख नहीं रहा हूँ। ऐसी स्थिति की मैंने अमृतसर-कांग्रेस के समय आशा रखी थी और इसीलिए उस समय मैंने सरकार से सहयोग करने के पक्ष में कांग्रेस से इतना आग्रह किया था। परन्तु बाद में मेरी आँखें खुलीं और मैंने दुःखी हृदय से देखा कि ब्रिटिश मंत्रिमंडल या भारत सरकार किसीने शुरू से ही कभी भारत का भला नहीं चाहा। पश्चात्ताप करने के बजाय उल्टे आपको दिखा दिया गया कि ब्रिटिश राज में यदि आपको रहना हो, तो जुल्म और आतंक का आदेश (हुक्म) आपको मानना पड़ेगा। इसीलिए इन जालिमों की

टोली के मौजूदा विद्यालयों के स्थान पर राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित न कर सकूँ, तो अपने बच्चों की शिक्षा तक को भेंट चढ़ा देना चाहता हूँ।

परन्तु मैं यह राह देखने से साफ इनकार करता हूँ कि पहले ये राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित हों और फिर हम अपने बच्चों को स्कूलों से हटायें। जरूरत पैदा होगी, तो साधन अपने-आप पैदा हो जायँगे। हमारे बच्चे विद्यालयों से बाहर निकलेंगे, तो हमारे मालवीयजी ही राष्ट्रीय स्कूलों के लिए चंदा करने लगेंगे। मैं भारतीयों को ज्ञानहीन नहीं रखना चाहता। मैं चाहता हूँ कि प्रत्येक भारतवासी बाकायदा पढ़े, अपने राष्ट्र की प्रतिष्ठा समझने लगे और गुलाम बनानेवाली शिक्षा पाने से इनकार कर दे।

धारासभा-बहिष्कार के अन्य लाभ

अन्त में दो ही बातें और कहूँगा। लोग सूक्ष्म भेद नहीं समझ सकते। उनका तो यही खयाल है कि लोग सरकार से सहयोग करने से इनकार करते हों, तो नयी धारासभाओं की भूल से जनता की प्रतिनिधि मानी जानेवाली संस्थाओं में तो असहयोग सबसे पहले दिखाई पड़ना चाहिए। और ऐसा होने से जरूर सरकार की आँखें खुलेंगी। बात यह है कि धारासभाओं में जाने से इनकार करनेवाले धारासभाओं का बहिष्कार करके कोई बैठे तो रहेंगे नहीं, परन्तु देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक भ्रमण करके सरकार की नहीं, परन्तु लोगों की नजरों में एक-एक सार्वजनिक दुःख लायेंगे और कांग्रेस भी हर साल उन दुःखों की घोषणा करती रहेगी, ताकि इन सब दुःखों का जोश इस महान् जनता में उन्हें दूर करने की असाधारण लगन पैदा करे और उसके महाक्रोध का संयम करके उसे अदम्य कार्यशक्ति के रूप में बदल डाले।

मुसलमानों का अटल निश्चय

ध्यान रखिये कि मुस्लिम लीग तो धारासभाओं के पूरे असहयोग का एलान कर चुकी है। हमारा चौथाई भाग एक तरफ खेंचे और तीन भाग

उससे बिलकुल उलटी दिशा में खेंचे, तो क्या यह अच्छा है ? दोनों स्वतंत्र होकर भी एक ही दिशा में खेंचते हों, तो दूसरी बात है। प्रत्येक मुसलमान धारासभाओं का बहिष्कार करे, तो क्या हिन्दू धारासभाओं में रहकर बाधक नीति अख्तियार करके सचमुच कोई लाभ उठा सकते हैं ? मुसलमान तो धार्मिक दृष्टि से धारासभाओं में जाकर वफादारी की शपथ लेना पाप समझते हैं। यहाँ व्यावहारिक मानी जानेवाली राजनीति के हिमायती नेताओं का मैं इस ओर खास तौर पर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। यदि आप यह मानते हों कि मुसलमानों के प्रस्ताव नाम के ही हैं, तो अलबत्ता मेरी दलील गिर जाती है। परन्तु यदि आप मानते हैं कि मुसलमान नींद में बात नहीं कर रहे हैं, जो अन्याय हुए हैं उनसे वे उबल रहे हैं और जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा है, वैसे-वैसे वह अन्याय की भावना मंद पड़ने या विस्मृत होने के बजाय अधिकाधिक तीव्र होती जा रही है—तो आप देखेंगे कि हिन्दू मदद करें या न करें, फिर भी मुसलमान तो आगे बढ़ते ही जायँगे। इसी बात का निर्णय इस कांग्रेस को करना है। इसलिए मैं आदरपूर्वक कहता हूँ कि मैंने बिना विचारे यह रास्ता नहीं पकड़ा, बिना विचार मेरे जैसे एक मामूली, एकाकी, भूल करनेवाले आदमी ने देश के उत्तम नेताओं के विरुद्ध खड़ा होने की जिम्मेदारी नहीं ली है। मुझे तो यही धर्म दिखाई देता है। हिन्दू-मुसलमानों में एकता करनी हो और वह भी स्थायी करनी हो, तो इस समय जब तक मुसलमान शराफत के रास्ते, रक्तपात के बिना, अनुचित माँगें न करके न्यायपूर्ण माँगें कर रहे हैं, तब तक हिन्दुओं के लिए पूरी तरह उनके साथ खड़े रहने के सिवा और कोई चारा नहीं है।

निजी सम्बन्ध बनाम अन्तःकरण

मैं आपका और समय नहीं लूँगा। मैंने वकील न बनकर हरएक दलील आपके सामने निष्पक्ष होकर रखी है। मैंने तो पंच के रूप में यह चीज आपके सामने रखने का प्रयत्न किया है और इसके लिए मैं माल-

वीयजी का आभारी हूँ। उन्हें मैं इतना मानता हूँ कि उन्हें प्रसन्न करने के लिए मैं प्राण तक देने में नहीं हिचकूँगा। परन्तु जहाँ कर्तव्य और अन्तःकरण की आवाज की बात आ जाय, वहाँ तो मैं उनके प्रति अपने कर्तव्य से भी मुक्त हो जाता हूँ और वे भी मुझे मुक्त कर देते हैं; और यदि मैं उनका आदर करते हुए भी उनके मत से भिन्न अपने अन्तःकरण को शुद्ध लगनेवाला मार्ग अपना सकता हूँ, तो इस मंडप में उपस्थित तमाम भाई-बहनों से भी मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि मेरे अपने बारे में कुछ भी खयाल अपनी राय बनाने में बिलकुल बाधक न होने देकर आप अपना मत दीजिये। अन्त में, यदि आप इस प्रस्ताव को स्वीकार करें, तो आँखें खोलकर कीजिये। आपमें से हरएक आदमी देश के लिए और स्थायी हिन्दू-मुसलिम एकता के लिए प्रस्ताव में सूचित त्याग करने को तैयार और समर्थ हो, तो बिना आनाकानी के यह प्रस्ताव पास कीजिये; न हो तो उतनी ही दृढ़तापूर्वक उसे नामंजूर करने का बल बताइये।

कलकत्ता-कांग्रेस में लोगों ने श्रीमती बेसेण्ट को बोलने नहीं दिया, उस समय प्रकट किये हुए उद्‌गारों का सार :

हम यहाँ न्याय माँगने के लिए एकत्र हुए हैं। आपको न्याय चाहिए, तो आपको न्याय करने को भी तैयार होना चाहिए। श्रीमती बेसेण्ट आपकी शत्रु नहीं हैं। असहयोग की लड़ाई का आरंभ ऐसे अशुभ ढंग से न हो। वे अपनी उम्र के कारण ही नहीं, परन्तु देश के लिए अपनी भारी सेवाओं के कारण भी पूज्य हैं। उनका विरोध करने में जैसे मैं किसीसे कम नहीं, वैसे ही उनकी भक्ति में भी किसीसे कम नहीं। आज आप जिस आत्मनिग्रह और संयम की लड़ाई में कूदने के किनारे पर हैं, ऐसे समय मैं आपसे अत्यंत नम्रतापूर्वक प्रभु-प्रार्थना के साथ याचना करता हूँ कि निग्रह और संयमविहीन आचरण से दूर रहिये।

शांतिनिकेतन में एक सप्ताह

सितंम्बर १९२०

कलकत्ता-कांग्रेस के समय गांधीजी का स्वास्थ्य खूब गिर गया था और वे दार्जिलिंग जाने का विचार कर रहे थे। इतने में प्यारे एण्ड्रूज साहब का तार आ गया कि 'शांतिनिकेतन में आपको जैसी शान्ति और आराम मिलेगा, वैसा दार्जिलिंग में कोई नहीं दे सकेगा; यहीं आ जाइये।' इसलिए गांधीजी दार्जिलिंग का विचार छोड़कर शांतिनिकेतन चले गये। शान्तिनिकेतन कलकत्ते के उत्तर में सौ मील दूर बोलपुर गाँव के पास है। महर्षि देवेन्द्रनाथ की थोड़ी-सी पुरानी जायदाद थी। उसके आसपास कुछ और जमीन लेकर यह ब्रह्मचर्य-आश्रम स्थापित किया गया है। कोसों तक फैले हुए वीरान मैदान में सुन्दर वृक्षों से भरा हुआ यह स्थान मरुभूमि में एक हरे-भरे टापू की तरह विराजमान है। जमीन की खूब बहुतायत के कारण विद्यार्थियों के शिक्षालय और छात्रालय तथा शिक्षकों के निवास-स्थान सब एक-दूसरे से काफी दूर-दूर बनाये गये हैं। सारे मकान कला की दृष्टि से ऐसे विवेक से बनाये गये हैं कि किसी तपस्वी के आश्रम को सुशोभित करें। विद्यार्थी-गृह सुन्दर आम, बकुल और इमली की वृक्षराजियों से घिरे हुए हैं और ये घर और पेड़ कविवर रवीन्द्रनाथ के बालकों के लिए रचे गये 'आमादेर शान्तिनिकेतन' काव्य में अमर हो गये हैं। महर्षि देवेन्द्रनाथ की स्मृति सूक्ष्म रूप में जहाँ-तहाँ नजर आती है; उसे स्थूल रूप में कायम रखने के लिए वे जहाँ समाधिस्थ हुए, उस स्थान पर एक बकुल वृक्ष के नीचे संगमरमर के चबूतरे पर खड़ी की गयी संगमरमर की शिला पर थोड़े से परन्तु अर्थपूर्ण और प्रेमपूर्ण शब्दों में इस प्रकार लेख है :

वे हमारे प्राणों के आराम
मन के आनन्द
आत्मा की शान्ति

इस रम्य वातावरण में वृक्षों के नीचे बैठकर विद्यार्थी अध्ययन करते हैं और अध्ययन के सिवा शेष समय में रविबाबू के गीत गुनगुनाते रहते हैं। मैं यहाँ तक तो हरगिज नहीं कहूँगा कि वहाँ का जीवन संगीतमय है, परन्तु इतना अवश्य है कि घड़ीभर के लिए जानेवाले किसीको भी महसूस हुए बिना नहीं रहेगा कि संगीत ही मानो उनका जीवन है।

रविबाबू के रहने का मकान इस रचना से दो-एक फलांग दूर बनाया गया है। प्रथम तो शान्तिनिकेतन की शान्ति ही जबर्दस्त और उसमें भी यह तो सब घरों से दूर है, इसलिए वहाँ अपार शान्ति है। गांधीजी को इसी घर में रखा गया था। हम रहे उन दिनों दिनभर बरसात होती थी, इसलिए गांधीजी को जो सूखी हवा चाहिए थी, वह तो नहीं मिली, परन्तु शान्ति और आराम से जो लाभ हो सकता है, वह तो हुआ ही।

परन्तु इस शान्ति से भी बड़ी शान्ति देनेवाला वहाँ का सत्संग हो गया। मोहनमूर्ति एण्ड्रूज तो वहाँ थे ही। उन्होंने और विद्यार्थियों ने हमें प्रेम से शराबोर कर दिया। परन्तु एक पूज्य मूर्ति वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध बाबू द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर भी वहीं रहते हैं। बड़ो दादा—यह उनका प्यार का नाम है—की उम्र अस्सी से अधिक होने पर भी अध्ययन और तत्त्व-चिन्तन में वे निरंतर निमग्न रहते हैं और यह जानकर किसीको आनंद हुए बिना नहीं रहेगा कि अपने अध्ययन में उन्होंने आजकल 'असहयोग' आन्दोलन को भी प्रमुख स्थान दे रखा है। परन्तु वह असहयोग पर मुग्ध हैं, यह तो जब वे गांधीजी से मिलने आये, तभी देखा। बड़ी उमंग से बातें करते हुए उन्होंने कहा कि 'जिन चीजों का मेरा रॉबी—रवीन्द्रबाबू—लेखों द्वारा, काव्यों द्वारा, पत्रों द्वारा उपदेश और प्रचार कर रहा है, उनका आप आचरण कर रहे हैं और उन्हें देश के आगे आचरण के लिए रख रहे हैं, इससे मेरे हर्ष की सीमा नहीं रहती। आपने देश के सामने एक रखने योग्य सिद्धान्त रखा है। असहयोग के सिवा शासकों के प्रति हमारी और कोई वृत्ति हो ही नहीं सकती। सहयोग बराबरीवालों में होता है, गुलाम और मालिक के बीच नहीं हो सकता। अंग्रेज हमें बरा-

बरी के नहीं मानते; जब तक हम उनके साथ समानता अनुभव नहीं करते, तब तक मेरे खयाल में सहयोग की बात भ्रमपूर्ण है। और जब तक यह विषमता विद्यमान है, तब तक सहयोग में मुझे हमारा नाश ही दिखाई देता है। पृथ्वी बेचारी सूर्य के साथ सहयोग करने लगे, तो भस्म नहीं हो जायगी ?, फिर तो उन्होंने 'असहयोग' के बारे में एक लेख लिखने की बात कही।

एक सप्ताह के हमारे वहाँ के निवासकाल में विद्यार्थियों ने 'वाल्मीकि-प्रतिभा' नामक रविबाबू का एक छोटा-सा नाटक दो बार खेलकर दिखाया। परन्तु गांधीजी को तो सबने सभी दिन शांति ही दी। अन्तिम दिवस सबसे मिलना रखा था। प्रातः विद्यार्थी प्रार्थना-मंदिर में मिले, बाद में शिक्षक मिले और फिर दोपहर को स्त्रियाँ मिलीं। उन सबसे हुई बातचीत देने का लोभ तो मैं नहीं करता, परंतु प्रार्थना-मंदिर में हुई बातचीत खास तौर पर विशेषतावाली थी, इसलिए उसका संक्षिप्त सार दे देना ठीक प्रतीत होता है।

प्रार्थना-मंदिर एक सादा स्फटिक बरामदेवाला मकान है। नित्य-प्रार्थना तो विद्यार्थी बाहर करते हैं, परंतु हर हफ्ते कविश्री होते हैं, तो वे अथवा अन्य कोई अध्यापक, जो धर्म-नीति सम्बन्धी बोध-वचन कहते हैं, वे इस स्थान पर कहे जाते हैं। शिक्षकों और विद्यार्थियों के साथ जो मिलाप होने का मैंने ऊपर उल्लेख किया है, वह इस मन्दिर में हुआ था। एक छोटे से आसन पर गांधीजी विराजमान थे, सामने गंध-पुष्प रखे गये थे और सामने विद्यार्थी और शिक्षक एक साथ बैठे थे और एक ओर बहनें बैठी थीं। इस मिलाप का आरम्भ और उपसंहार बहुत समुचित ढंग से हुआ। आरम्भ रविबाबू के निम्नलिखित प्रसिद्ध गीत से हुआ :

अन्तर मम विकसित करो
अन्तरतर हे !
निर्मल करो, उज्ज्वल करो,
सुन्दर करो हे ! अन्तर०

जाग्रत करो, उद्यत करो,
निर्भय करो हे !
मंगल करो, निरलस, निःसंशय
करो हे ! अन्तर०
युक्त करो हे सवार[1] संगे
मुक्त करो हे बंध,
संचार करो सकल कर्मे
शान्त तोमार छंद[2] !
चरणपद्मे मम चित्त निष्पंदित[3]
करो हे !
नन्दित करो, नन्दित करो,
नन्दित करो हे !
अन्तर मम विकसित करो
अन्तरतर हे !

अन्तर को निर्मल निर्भय करने की इस गंभीर प्रार्थना के बाद गांधीजी श्रोताओं को सम्बोधन करके अंग्रेजी में जो बोले, उसका सार यह था :

भाइयो और बहनो,

आपके साथ थोड़े दिन के आनंद का जो सहवास मिला, वह तो अवर्णनीय है। मैं अपनी गिरी हुई तंदुरुस्ती सुधारने यहाँ आया था और आपको आनंद होगा कि मैं बिलकुल स्वस्थ होकर नहीं, तो भी अच्छी तरह सुधरकर तो यहाँ से जरूर जाऊँगा।

मुझे यह बुरा लग रहा है कि आपके साथ बंगला में बात नहीं कर सकता। मेरे खयाल से किसी दिन आपके साथ बंगला में बात करने की

---

१. सबके साथ।

२. सब कर्मों में तेरे शान्त संगीत का संचार कर। ३. निश्चल।

मेरी आशा ठीक न हो, तो भी मेरी यह आशा तो हरगिज अनुचित नहीं कि आप मेरी हिन्दुस्तानी समझ सकेंगे। जब तक आपके स्कूल में हिन्दुस्तानी अनिवार्य विषय न हो जाय और आप उसे सीख न लें, तब तक आपकी शिक्षा सम्पूर्ण नहीं कही जा सकती। और एक बात मैं आपसे छिपाना नहीं चाहता कि मैं आपकी पाठशाला को कल से ही अत्यंत उद्यमी मधुमक्षिकाओं से भरा हुआ सुन्दर छत्ता बना हुआ देखने की आशा रखता हूँ। जब तक हमारे हृदय के साथ हमारे हाथों का सुन्दर सहयोग न हो, तब तक हमारा जीवन सच्चा जीवन नहीं बनेगा।

मुझे लगता है कि मैं अभी जिस काम में गिरफ्तार हो रहा हूँ, उसका रहस्य छोटे बच्चों के सामने भी रखा जा सकता है। फिर भी मैं जो कहनेवाला हूँ, वह सब बालकों के लिए नहीं। मैंने अपने बच्चों से, स्वयं अपने से और दक्षिण अफ्रीका में अपने माने हुए बच्चों से कोई बात छिपा नहीं रखी।

मेरे लिए तो केवल एक धर्म है। वह है हिन्दू-धर्म। मैं अपने को हिन्दू कहलाकर अभिमान करता हूँ, मगर मैं कोई कट्टर कर्मठ हिन्दू नहीं हूँ। मैं हिन्दू-धर्म को जिस प्रकार समझता हूँ, तदनुसार वह अत्यन्त व्यापक है। उसमें अन्य सब धर्मों के लिए समभाव है, आदर है। इसीलिए मैं अपने धर्म की रक्षा के लिए जितने उत्साह और वेग से प्रयत्न करता हूँ, उतने ही उत्साह और वेग से इसलाम की रक्षा करते हुए आप मुझे देखते हैं। इसलाम का बचाव करने में तो मुझे बेहद प्रसन्नता होती है, क्योंकि मुझे लगता है कि ऐसा करके मैं अपने धर्म का बचाव करने की योग्यता प्राप्त कर रहा हूँ। यूरोप की पाशवी सत्ताओं का खतरा इसलाम पर जितना मँडरा रहा है, उतना ही हिन्दू-धर्म पर मँडरा रहा है। आज इसलाम की बारी है, कल हिन्दू-धर्म की बारी आ सकती है। मेरे विचार से हिन्दू-धर्म पर खतरा तो तभी से है, जब से ब्रिटिश हुकूमत इस मुल्क में आयी है। यह खतरा बहुत सूक्ष्म रूप में रहा है। मैंने देखा है कि हमारे विचारों की जड़ें पाश्चात्य प्रभाव से हिल उठी हैं। पाश्चात्य

सभ्यता शैतान की प्रवृत्ति रूप है। अनेक वर्षों से हम किसी अजीब माया के भुलावे में आये हुए हैं।

मेरी आँखें दरअसल तो पिछले साल ही खुलीं। मित्र-राज्य युद्ध में शरीक हुए, तब उनका स्पष्ट उद्देश्य तो निर्बल राष्ट्रों की रक्षा करना था, परन्तु इस उद्देश्य के पर्दे में उन्होंने अनेक छल-कपट के प्रयोग किये। फिर भी पिछली अमृतसर-कांग्रेस के समय सरकार के साथ सहयोग करने के लिए मैंने देश से अत्यन्त आग्रहपूर्वक और सच्चे दिल से अनुरोध किया, क्योंकि मुझे उस वक्त तक भरोसा था कि ब्रिटिश प्रजा अपने पापों के लिए पश्चात्ताप करेगी, ब्रिटिश मंत्री अपने वचनों का पालन करेंगे। परन्तु पंजाब के काण्ड का निपटारा होने पर और तुर्की की सुलह की शर्तें प्रकट होने पर मेरा वह सारा विश्वास जाता रहा। मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि मनुष्य के जीवन में एक बार ऐसा अवसर अवश्य आता है, जब उसे खुदा या शैतान दोनों में से एक का पथ ग्रहण कर लेना चाहिए। ब्रिटिश राजसत्ता के साथ इतने वर्षों के सहयोग के परिणामस्वरूप मैंने यह देखा कि इन सत्ताधीशों के साथ जिसका पाला पड़ता है, उसकी अवनति होती है। मुझे निश्चित प्रतीति हो गयी है कि जब तक भारत अपना आदेश समझ न जाय और इंग्लैण्ड के लोगों के साथ सारी जनता को बराबरी का भान जाग्रत न हो जाय, तब तक ब्रिटिश संबंध जारी रहने से हमारी अवनति होती ही रहेगी। मैंने यह भी देखा कि मुसलमानों के साथ हमारी एकता बनाये रखना ब्रिटिश सम्बन्ध कायम रखने की अपेक्षा कई गुनी अधिक कीमती है और मुसलमानों के साथ की एकता हम उन्हें नाजुक समय में मदद न दें, तो टिकाये रखना मुश्किल है। और राष्ट्र-शरीर का चौथाई भाग रह जाय, तो हमारे स्वदेशाभिमान का विकास होना अशक्य है।

इसलिए मैंने शौकतअली के साथ दोस्ती की और उन्हें अपना भाई बनाया। उनके साथ का अपना सम्पर्क मेरे लिए आनंद और अभिमान की बात है। कुछ बातों में मेरा-उनका मतभेद है। मैं अहिंसा-धर्म का

माननेवाला हूँ। वे हिंसाधर्म को मानते मालूम होते हैं। वे यह मानते हैं कि कुछ संयोगों में मनुष्य मनुष्य का शत्रु हो सकता है, और दुश्मनों को कत्ल किया जा सकता है। परन्तु मैं उनके साथ काम कर रहा हूँ, तो उसका कारण यह है कि उनमें कुछ भव्य गुण देखे। वे एकवचनी हैं, वे अत्यंत वफादार मित्र हैं, अत्यंत शूर-वीर हैं। उन्हें ईश्वर पर भारी श्रद्धा है। मुझे तुरंत लग गया कि इतने गुण तो धार्मिक मनुष्य में ही हो सकते हैं। उनकी धर्मनिष्ठा पर मुग्ध होकर ही मैंने उनका साथ किया और मैंने तो सदा ही विश्वास रखा है कि मेरे अहिंसा के सफल प्रयोग से ही वे अहिंसा की खूबी समझ सकेंगे।

अंग्रेजी शब्द 'innocence' में जितने अहिंसा के भाव आते हैं, उतने किसी शब्द में नहीं लाये जा सकते। इसलिए अहिंसा और innocence शब्द लगभग एक-से कहे जा सकते हैं। मेरा विश्वास है कि अहिंसा के मार्ग पर चलनेवाले की सभी तरह कुशल है। अहिंसापंथी को जो शस्त्र मिल सकते हैं, वे हिंसामार्गी को मिल सकनेवाले शस्त्रों से अधिक जोरदार हैं। हिंसा की योजना को मैं एक जंगली योजना कह सकता हूँ। उसमें पाशविकता अवश्य रहती है। अहिंसा-धर्म का सम्पूर्ण पालन करनेवाला ही पूरी मर्दानगी दिखा सकता है। एक आदमी भी अहिंसा-जीवन पूरी तरह बिताने को तैयार होगा, तो संसार को वश में कर सकेगा। मैं नम्रता से कहूँगा कि आज मेरे इस जर्जर शरीर से भी इतनी भारी लड़ाई छेड़ने की मुझमें कुछ शक्ति है, तो वह मेरे अहिंसा-धर्म के पालन के कारण ही है। और हिन्दू अपना धर्म पहचानकर उसे पालन करें, तो अपना असर दुनिया पर जरूर डालेंगे। जिस दिन भारत हिंसा-को प्रधानता देगा, उसी दिन मेरा जीवन शून्यरूप हो जायगा।

परन्तु मेरा विश्वास अब भी अविचलित है। और आप यह समझ लेंगे कि हिन्दू माता-पिता की सन्तान हिन्दू के नाते विश्व के प्रति आपका कर्तव्य क्या है, तो आप कभी अन्यायी और दुर्जन के साथ सहयोग नहीं करेंगे। दुर्जनों से पाला न पड़ने के बारे में तुलसीदासजी ने जो

अमर दोहे लिखे हैं, उनके सौंदर्य की तुलना नहीं हो सकती। ब्रिटिश राज्य इस समय जिस प्रकार का है, उससे भारत का कोई भी शुभ आशा रखना ऐसा ही है, जैसा आकाश को बाहुपाश में लेना। मैंने तो इस राज्य के साथ कई वर्ष तक गाढ़ सहयोग किया है और उस सहयोग के अंत में मुझे कुछ जबर्दस्त अनुभव हुए हैं। उन अनुभवों के परिणामस्वरूप ही मैंने यह भयंकर किन्तु उदात्त और तेजस्वी युद्ध छेड़ा है और आप सबको उसमें सम्मिलित करने के लिए खप रहा हूँ। इस धर्म-मन्दिर में मैं आपसे इतना ही माँगता हूँ कि आप यह प्रार्थना करें कि आत्म-विश्वास के इस युद्ध में ईश्वर मुझे आरोग्य और सन्मति दे और दोष तथा कातरता से सदा ही दूर रखे।

गांधीजी के अंतिम शब्दों में किये गये अनुरोध का शान्ति-निकेतन के बंधुओं ने रविबाबू के निम्नलिखित गीत द्वारा अनुपम औचित्यपूर्ण उत्तर दिया :

आमादेर जात्रा हलो शुरू, एखन ओ गो कर्णधार!
तोमारे करि नमस्कार;
एखन बातास छुटुक, तुफान उठुक, फिरवो ना गो आर,
तोमारे करि नमस्कार।
आमरा दिये तोमार जयध्वनि विपद बाधा नाहि गणि,
ओ गो कर्णधार!
एखन 'मा भैः' बोली, भासाई तरी, दाओ गो करि पार,
तोमारे करि नमस्कार।
एखन रईलो जरा आपन घरे, चावोना पथ तादेर तरे,
ओ गो कर्णधार!
जखन तोमार समय एलो काछे, तखन केबा कार?
तोमारे करि नमस्कार।

आमार केवा आपन केवा अपर, कोथाय बाहिर, कोथा वा घर?
ओ गो कर्णधार!

चेये तोमार मुखे, मनेर सुखे, नेबो सकल भार,
तोमारे करि नमस्कार।

आमरा नियेछि दांड, तुलेछि पाल, तुमि एखन धर गो हाल,
ओ गो कर्णधार!

मोदेर मरण बांचन ढेउयेर नाचन, भावना कि वा तार?
तोमारे करि नमस्कार।

आमरा सहाय खुंजे द्वारे द्वारे, फिरबो ना आर बारे बारे,
ओ गो कर्णधार!

केवल तुमिइ आछो, आमरा आछि, एइ जेनेछि सार,
तोमारे करि नमस्कार।*

उसी दिन शाम को हमने वहाँ से विदा ली। सारे विद्यार्थी और शिक्षक हमें विदा देने इकट्ठे हुए थे। सबके मुख पर वियोग-दुःख की छाया स्पष्ट थी। वे 'आमादेर शान्तिनिकेतन' गा रहे थे। हमारी गाड़ी

---

* यह सुप्रसिद्ध गीत बंगाल में स्वदेशी की हवा पहले-पहल चली, उन दिनों में कविवर रवीन्द्रनाथ ने बनाया था। इसका संगीत पढ़कर भी अनुभव किया जा सकता है, इसलिए उसे ज्यों का त्यों यहाँ दिया गया है। शब्दार्थ इस प्रकार है:

हमारी यात्रा अब शुरू हो गयी है, अब हे कर्णधार, तुझे हमारा नमस्कार हो; अब भले ही पवन फुंकार करे, तूफान उठे, तो भी हम वापस नहीं लौटेंगे। तुझे हमारा नमस्कार हो।

हम तेरा जयजयकार करते हैं। किसी कष्ट या आपत्ति को अब हम नहीं गिनते, अब तो 'मा भैः' (डरो मत) बोलकर किश्ती डालकर हमें पार लगा दे; हे कर्णधार, तुझे हमारा नमस्कार हो।

इस समय जो अपने घरों में छिपे हुए हैं, हम उनकी तरफ मुड़कर नहीं देखेंगे; जब तेरा समय आ गया है, तब कौन किसका? हे कर्णधार, तुझे हमारा नमस्कार हो।

चली और उनके रुद्ध कंठ से गीत का शेष भाग न निकल सका। हमारी स्मृति में तो ,आमादेर शां·····ति·····नि·····के·····तॉन' की गूँज अभी कत हो रही है।

२८-९'२०

अहमदाबाद में एलिस ब्रिज के नीचे विद्यार्थियों की एक आम सभा में दिया गया भाषण :

पंजाब में विद्यार्थियों को सत्रह-अठारह मील पैदल चलाया, कुछ बच्चों के कोड़े लगाये गये। इतना ही अपमान हुआ हो, सो बात नहीं; परन्तु विद्यार्थियों को यूनियन जॅक को सलामी देने के लिए बुलाया जाता था। इस प्रकार जबरन यूनियन जॅक और खुद परमेश्वर को भी सलामी दिलायी जाय, तो जिसके साथ जोर-जुल्म किया जाय, उस पर और स्वयं परमेश्वर पर क्या असर होगा, यह सोचने का काम मैं विद्यार्थियों को सौंपता हूँ। और कुछ को कॉलेज से निकाल दिया गया। उन विद्यार्थियों के मेरे पास पत्र आते। उन्हें तो ऐसा ही लगता कि वे बेहाल हो गये और सब कुछ गँवा बैठे।

विद्यार्थियों को पंजाब-काण्ड से कुछ सीखना हो, तो वह यह है कि कॉलेजों के प्रति जो मोह है उसे निकाल दें; और यह मान्यता छोड़ दें कि वहाँ नहीं जायँगे, तो हम बेरोजगार हो जायँगे।

हमारे लिए अपना कौन और पराया कौन ? घर क्या और बाहर क्या ? केवल तेरे मुँह पर दृष्टि रखकर, पूर्ण संतोष से, सारा भार वहन करेंगे। हे कर्णधार, तुझे हमारा नमस्कार हो।

हमने डाँड पकड़ लिये हैं और पाल खोल दिये हैं। अब पतवार सँभाल, हे कर्णधार; हमारा मरना-जीना तो उछलती हुई लहरों के समान है। उसकी क्या चिन्ता ? —तुझे हमारा नमस्कार हो।

हे कर्णधार, अब हम सहायता की खोज में द्वार-द्वार नहीं भटकेंगे, केवल तू ही है और हम हैं, इतना सार हमने समझ लिया है—तुझे हमारा नमस्कार हो।

जब मैं लाहौर गया, तब विद्यार्थियों के चेहरों पर जो उल्लास था, उससे मैंने देखा कि कॉलेजों का उनका मोह कुछ कम हुआ है। यदि मैं भी विद्यार्थियों के साथ घबरा गया होता और गलत भावना दिखाई होती कि यदि हम कॉलेजों में नहीं जायँगे तो हम मनुष्य ही नहीं रह जायँगे, तो उनका मोह बढ़ता। यदि विद्यार्थी सरकारी कॉलेजों में न होते, तो सरकार उनका क्या कर सकती थी? मैं कहता हूँ कि वे विद्यार्थी सरकारी कॉलेजों में न होते, तो सरकार उनका बाल भी बाँका न कर सकती; उन्हें सलामी देने को विवश नहीं कर सकती थी। विद्यार्थियों को जो सबसे बड़ा डर था, वह यह था कि हम यूनियन जॅक को सलामी देने नहीं जायँगे, तो हम मर ही जायँगे। यदि वे विद्यार्थी स्वतंत्र–सरकार से कुछ भी सम्बन्ध न रखनेवाले–स्कूलों में पढ़ते होते, तो उनका कुछ न होता। परन्तु विद्यार्थी सरकारी स्कूलों में होने के कारण सरकार अधिक नियंत्रण रख सकी और उसने जनता की नाक काट ली। विद्यार्थियों के कारण ही हम स्वतंत्रता ले सकते हैं और विद्यार्थियों की कमजोरी से ही हम परतंत्रता में पड़े रहेंगे। यह सच है कि मैंने धारासभा-बहिष्कार पर खूब जोर दिया है। मनुष्यमात्र मूर्तिपूजक है; इसलिए जब प्रतिनिधि बनने के योग्य नेता धारासभाओं में जाना छोड़ देंगे, तब उसका क्षणिक असर बहुत बड़ा होगा, यह मैं जानता हूँ। वह काम अभी का अभी किया जा सकता है, इसलिए तुरंत होना चाहिए। उसका असर भी बड़ा होगा। फिर भी मैं यह भी वचन देना चाहता हूँ कि यदि सरकार के अधीन सभी पाठशालाएँ खाली हो जायँ, तो तुम एक मास के भीतर भारत का चेहरा बदला हुआ देख लोगे। प्रत्येक विद्यार्थी एकाएक कल ही निकल आये, तो उसका जो असर जनता और सरकार दोनों पर होगा, वह किसी और बात का नहीं होगा। जितना प्रभाव विद्यार्थियों के छोड़ने से पड़ेगा, उतना वकीलों के छोड़ने से भी नहीं पड़ेगा। जब विद्यार्थी सरकारी स्कूलों से निकल आयेंगे, तब सरकार समझ लेगी कि हमारा *तानसा

* बंबई के वॉटर वर्क्स का नाम।

वॉटर वर्क्स—या दूर क्यों जायँ?—*दूधेश्वर वॉटर वर्क्स बन्द हो गया। विद्यार्थियों पर ही भारत की स्वतंत्रता निर्भर है, क्योंकि विद्यार्थी युवक-वर्ग है। वकील बुजुर्ग माने जाते हैं, क्योंकि उनका धंधा ठहरा। परन्तु विद्यार्थी निर्दोष जीवन व्यतीत करते हैं। वकीलों के स्वार्थ (भरण-पोषण का) लगा हुआ है, इसलिए उनसे वकालत छुड़वाना मुश्किल है; परन्तु विद्यार्थियों को यह स्वार्थ न होने से केवल पाठशालाओं का मोह छोड़ा जा सके, तो विद्यार्थियों के लिए स्कूल छोड़ देना आसान है।

कोई कहेगा कि विद्यार्थी ऐसा क्यों करें? पाठशालाएँ किसलिए छोड़ें? इस आन्दोलन के विरुद्ध हमारे महान् धर्मधुरंधर, जनता की सेवा में अत्यंत परखे हुए पंडित मदनमोहन मालवीयजी, भारत में अत्यंत विचार-शक्ति रखनेवाले शास्त्रीजी और हमारे दूसरे नेता—लाला लाजपत-राय तक—यह कह रहे हैं कि विद्यार्थियों से स्कूल छुड़वाना बड़ा खतरनाक कदम है। मैं यह नहीं चाह सकता कि उनके विचारों का असर तुम पर न पड़े। इसलिए विद्यार्थियों को मैं यही सूचित करता हूँ कि हमारे ऐसे देशभक्त नेताओं के कहने पर तुम पूरी तरह विचार करो और इस प्रकार विचार करने पर भी यदि तुम्हें यही लगे कि मैं जो कह रहा हूँ, वह ठीक है, तभी तुम पाठशालाएँ छोड़ो।

कोई सवाल करेगा कि हम जो शिक्षा पा रहे हैं, वह आज ही कैसे जहर बन गयी? सरकार कितनी भी खराब क्यों न हो, परन्तु जिन पाठ-शालाओं में जाते हैं उनमें अच्छी व्यवस्था हो, अच्छे प्रोफेसर हों, अच्छे शिक्षक हों, तो हम उन्हें क्यों छोड़ें? यह प्रश्न हरएक के लिए हो सकता है।

जब पंजाब-काण्ड हुआ और खिलाफत-काण्ड हुआ, तब सरकार की राजनीति सह्य थी। मैं आपसे विश्वासपूर्वक कहना चाहता हूँ कि जब मैं पंजाब में था, तब मुझे यह प्रतीति थी कि हमें न्याय मिले बिना रहेगा ही

* अहमदाबाद के वॉटर वर्क्स का नाम।

नहीं। मुसलमान भाइयों से भी मैं यही कहता था कि आपको जो वचन प्रधानमंत्री लायड जॉर्ज ने दिया था, उतना तो अवश्य पूरा होगा। फिर भी हमें पंजाब के मामले में सख्त चोट पहुँची और उस अन्याय पर पर्दा डाल देने के लिए बुरे-से-बुरे षड्यंत्र किये गये। खिलाफत के मामले में ऐसा वचन-भंग किया गया, जिसे एक लड़का भी समझ सकता है।

पंजाब में जिन लोगों पर अत्याचार हुआ, वे कोई मामूली आदमी नहीं थे; परन्तु सरकार ने जिस शिक्षित वर्ग को शिक्षा दी थी, उस पर जितने अत्याचार करने थे, उतने किये।

सरकार ने भारत का स्वत्व हरण किया है। यदि कोई डाकू हमारा घरबार लूट ले जाय और हमसे आकर कहे कि 'मैं तुम्हारा धन लूट ले गया हूँ। उससे बनी हुई पाठशाला में तुम पढ़ो' तो मुझे विश्वास है कि हम तो उस डाकू को यही जवाब देंगे कि 'हमें तुम्हारी शिक्षा नहीं चाहिए।' कोई डाकू मेरा घर लूट ले जाय, तो उसे मैं सहन कर सकता हूँ, परन्तु मेरा मानभंग हो जाय, मेरा पुरुषत्व या स्त्रीत्व लूट लिया जाय, तो वह वापस कैसे प्राप्त कर सकता हूँ? मेरी नाक काट ली जाय, तो उसे मैं कैसे लगा सकता हूँ? काठियावाड़ के डाकू मुसाफिरों की नाक काट डालते और एक डॉक्टर ऐसा निकला था, जो कटी हुई नाक को ठीक कर देता। परन्तु हिन्दुस्तान की नाक जो कट गयी, जो चपटापन आ गया, उसे नुकीला बनानेवाला कोई डॉक्टर है ही नहीं। उस नाक को नुकीला बनाना हो, तो वह हमीं कर सकते हैं। अच्छे-से-अच्छे दूध में संखिया पड़ने पर जैसे हम उसका त्याग कर देंगे, उसी प्रकार हमें यह मान ही लेना चाहिए कि अच्छी-से-अच्छी शिक्षा में जहर पड़ जाने पर वह त्याज्य है। मुझे अवश्य यह शंका होती है कि जितना दर्द इन दो काण्डों से मुझे हुआ है, उतना ही दर्द पंडित मालवीयजी और शास्त्रीजी को नहीं हुआ। सरकार ने जो शासन-नीति प्रकट की है, उससे दूध जैसी उसकी दी हुई चीजें भी जहर जैसी बन गयी हैं, यदि उन्हें ऐसा लगता हो, तो वे वही कहेंगे, जो मैंने कहा है। मुझे कहना चाहिए कि

सरकारी शिक्षा में घुसे हुए विष को हमारे ये महान् पुरुष पहचान नहीं सकते।

यदि हम इस स्थिति में कुछ न करें, तो हमारी नाक सदा के लिए कट जायगी; कुछ समय तक लोग अपना स्वत्व इस संसार के सामने बताने के लिए अयोग्य बन जायँगे। तुम विद्यार्थी बच्चों की उम्र के हो, यह तो हरगिज नहीं कहा जा सकता। इसलिए तुम माता-पिता आदि बड़ों से आदरपूर्वक कह दो और कल ही स्कूल-कॉलेज छोड़ दो। परन्तु मैं चाहता हूँ कि तुम उस आजादी की शर्त को पूरी तरह समझ लो, जो सोलह वर्ष से ऊपर के लड़के और लड़कियों के काम में लेने के लिए है।

जिन्हें दुःख महसूस हुआ है—मानसिक और हार्दिक—और जो मानते हैं कि इस सरकार की हुकूमत एक मिनट भी मुझसे सहन नहीं हो सकती, जिस हुकूमत में अन्याय का जहर फैल गया है, उसमें रहना मेरे लिए बदनामी की बात है, उन्हींको स्कूल-कॉलेज छोड़ने का अधिकार है। जैसे हम उस डाकू के हाथ का दान नहीं ले सकते, जो हमारा सर्वस्व छीन ले जाय, उसी तरह सरकार के हाथ की शिक्षा हमें नहीं लेनी चाहिए। इसीमें माता के प्रति, पिता के प्रति और नेता के प्रति हमारा विनय है, इसीमें हमारी अधीनता है। जिस किसीको भीतर से दिल की आवाज आती है कि 'मुझे यह काम करना ही चाहिए' उस आदमी को ऐसा करने का हक है। इन चीजों की तुम्हें प्रतीति होती हो, तो मैं चाहता हूँ कि तुम कल ही स्कूल-कॉलेज छोड़ दो।

दूसरे स्कूल कहाँ हैं ? यह पूछनेवाले विद्यार्थी को मेरा यह जवाब है कि तुम्हें अभी प्रतीक्षा करने की जरूरत है, माँ-बाप के साथ सलाह करने की आवश्यकता है, क्योंकि तुम्हें शंका है। जिस कमरे में साँप रहता हो, उससे निकल जाने में मुझे शंका किस बात की हो सकती है ? राष्ट्रीय कांग्रेस ने जो प्रस्ताव किया है उसका अर्थ क्या है, यह तुम सोचना चाहते हो, तो मैं तुमसे कहता हूँ कि उस प्रस्ताव में हमें नया स्कूल मिल जाने की शर्त नहीं है। हमें नये स्कूल मिलें या न मिलें, परन्तु

जो पाठशाला हमारे लिए जहर बन गयी है, उसका त्याग करना आवश्यक ही है।

युद्ध का समय आ गया

इससे किसीको यह न समझ लेना चाहिए कि मैं शिक्षा के विरुद्ध हूँ या शिक्षा-सम्बन्धी मेरे जो विचार हैं, उनका प्रचार करना चाहता हूँ। उन विचारों का प्रचार मैं राष्ट्रीय पाठशाला द्वारा कर रहा हूँ और जिस समय उस शिक्षा का प्रचार मुझे अधिक करना होगा, तब मैं अपना साधन ढूँढ़ लूँगा। परन्तु इस समय जिस दृष्टि से मैं स्कूल-कॉलेजों का त्याग कराना चाहता हूँ, वह दृष्टि सिपाही की है। जब लड़ाई शुरू हो जाती है, तब स्कूलवाले स्कूल छोड़ देते हैं, अदालतें खाली हो जाती हैं और जेलें भी खाली हो जाती हैं। जेल में रहनेवाले कैदी भी अपना स्वभाव छोड़ देते हैं और लड़ाई में कूद पड़ते हैं। इसी प्रकार हमारे लिए यह युद्ध का समय आ गया है। यदि यह जनता हथियार उठानेवाली होती, तो हिन्दुस्तान में अब तक कभी से असंख्य तलवारें नंगी हो जातीं; परन्तु हिन्दुस्तान में यह तत्त्व अभी अशक्य है। अभी तो साधारण दृष्टि से, लौकिक दृष्टि से ही यह प्रश्न मैं जनता के सामने रख रहा हूँ कि जिस सरकार की तरफ से हमारा इतना अपमान हुआ है, उससे हम दान नहीं ले सकते, मदद नहीं ले सकते। इसलिए यदि यह तत्त्व मान्य हो, तो यह सवाल रहता ही नहीं कि स्कूल-कॉलेज हों या न हों। अतः तुम्हें तो इस दृष्टि से विचार करना है कि इस समय विद्यार्थियों का तात्कालिक कर्तव्य स्कूल-कॉलेज छोड़ना है या नहीं? स्कूल-कॉलेज छोड़कर विद्यार्थी क्या करें? जो विद्यार्थी मुक्त हो जाते हैं, वे संधिकाल में क्या करें? ये सारे प्रश्न तुम पूछ सकते हो। सिद्धान्त वही है, जो मैंने रखा है। इससे जो उप-सिद्धान्त निकलते हैं, वे मैं तुम्हारे सामने रख ही नहीं रहा हूँ। मुख्य सिद्धान्त के अनुसार हमारे हृदय में जो निर्णय हो, तदनुसार अटल होकर चलना

चाहिए। परन्तु शंका का समाधान हो जाने के बाद कमजोरी के कारण एक भी विद्यार्थी को कॉलेज या स्कूल में रहने का अधिकार नहीं, यह भी कह देना मेरा फर्ज है। यह समय लोगों के कमजोरी दिखाने का नहीं।

[उसके बाद कॉलेज छोड़नेवाले विद्यार्थियों के नाम पढ़कर सुनाये गये और विद्यार्थियों की ओर से प्रश्न पूछे गये, जिनके उत्तर गांधीजी ने इस प्रकार दिये :]

प्र०—महात्माजी, नागपुर में होनेवाली कांग्रेस इस प्रस्ताव को स्थगित कर दे, तो हम क्या करें ?

उ०—मैं मानता हूँ कि नागपुर में होनेवाली कांग्रेस इस प्रस्ताव को मुल्तवी करने का प्रस्ताव नहीं कर सकती। जो मनुष्य यहाँ कल्पित सिद्धान्त को समझ गया हो, उस पर यह लागू ही नहीं होता कि नागपुर में होनेवाली कांग्रेस क्या करेगी या क्या नहीं करेगी। गुजरात के विद्यार्थियों की जाग्रति कांग्रेस के लिए ऐसा प्रस्ताव करना असंभव बना सकती है।

प्र०—महात्माजी, आप विद्यार्थियों से आत्महत्या कराना चाहते हैं या स्वार्थत्याग ?

उ०—मैं विद्यार्थियों से स्वार्थ-त्याग कराना चाहता हूँ और स्वार्थ-त्याग द्वारा आत्मरक्षा कराना चाहता हूँ।

प्र०—गुजरात कॉलेज गुजरात के रुपये से बना है और सरकार ने उसका इंतजाम हाथ में ले लिया है, तो हम अपनी ही सम्पत्ति छोड़ें या इंतजाम वापस लें ?

उ०—जो वस्तु हमने किसी मनुष्य को विश्वास से सौंपी हो और वह दूसरी तरह उसका उपयोग करे, तो कानून में भी उस आदमी को विश्वासघाती कहते हैं। किसी धोबी को हम अपना कपड़ा धोने को दें और वह उसका दूसरा उपयोग करे, तो उस पर चोरी का इल्जाम लगाया जाता है। इसी प्रकार मैं सरकार पर चोरी का—विश्वासघात का—इल्जाम

लगा रहा हूँ : 'तुम्हें जब कॉलेज सौंपा, तब हमें पता नहीं था कि तुम जाब का अन्याय करोगे, खिलाफत का अन्याय करोगे।' दूसरे, जैसा अध्यक्ष महोदय ने कहा, गुजरात कॉलेज में कोई जानवर नहीं भरे जायँगे। यह कॉलेज आखिर हमारा ही है। हमारी जो सम्पत्ति इस समय यह हुकूमत लेकर बैठ गयी है, उसे पूरी तरह वापस अपने अधिकार में लेने के लिए भी जो गलत उपयोग हमें इस समय है, उसे छोड़ देना उचित है। जैसे हमारे अपने घर में प्लेग आ जाय, तो हम उसे छोड़ देते हैं, वैसे ही चूँकि इस कॉलेज पर से हमारा वास्तविक स्वामित्व जाता रहा, इसलिए उसका त्याग करना चाहिए। जिस आदमी का हाथ सड़ गया हो, उसका हाथ डॉ० कानूगा काट डालते हैं, क्योंकि उस हाथ में गंदगी घर कर लेती है। नावोंवाले अपना माल समुद्र में डुबो देते हैं, इसलिए वे कोई आत्महत्या नहीं करते। इसी तरह हमें इस समय अपने स्वामित्ववाले कॉलेज का भी त्याग करना उचित है और इस त्याग से ही हम अपना स्वामित्व वापस लेंगे।

प्र०—महात्माजी, जो पाठशालाएँ सरकारी न हों, खानगी हों, क्या उन्हें भी छोड़ दिया जाय ?

उ०—जो खानगी पाठशालाएँ सरकार के साथ (विश्वविद्यालय के साथ) सम्बन्ध रखती हों, उन्हें छोड़ देना चाहिए, क्योंकि उन पर सरकार का अधिकार है, वहाँ उसकी सत्ता चलती है। मेरे मतानुसार तो जिस पाठशाला में सरकारी प्रभाव की गंध भी हो, उस पाठशाला तक को छोड़ देना चाहिए।

प्र०—थोड़े से विद्यार्थी स्कूल-कॉलेज छोड़ दें, तो उससे सरकार पर क्या असर होगा ?

उ०—इसमें असर की बात नहीं, परन्तु सवाल यह है कि अन्याय-रूपी द्रव्य लिया जाय या नहीं। अपने सम्मान की रक्षा करना हमारा धर्म है। जिस भाई या बहन ने स्कूल-कॉलेज छोड़ा, उसने अपना कर्तव्य

उस हद तक पालन किया और संसार की भी सेवा की। एक के त्याग का भी असर हो सकेगा।

प्र०—मेरे विचार के अनुसार सरकार की नीयत ही हमें शिक्षा देने की नहीं थी। तो, कॉलेज छोड़कर हम सरकार को मदद नहीं देते?

उ०—मैं यह मानता ही नहीं कि सरकार यह चाहती हो कि हम कॉलेज छोड़ें। सरकार ने तो इस मामले में गश्तीपत्र भी जारी किया है। सरकार तो काँप रही है कि 'यदि स्कूल-कॉलेज खाली हो जायँगे, तो लोगों पर हमारा जो काबू है, उसे हम गँवा देंगे।' सरकार चाहे या न चाहे, परन्तु हमें उचित कार्य करना चाहिए।

प्र०—जो स्कूल-कॉलेज राष्ट्रीय बननेवाले हैं, उन्हें भी छोड़ दिया जाय?

उ०—उन शिक्षा-संस्थाओं को पत्र लिख भेजो कि 'आपने अपनी पाठशाला को राष्ट्रीय पाठशाला बनाने का विचार किया है, इसके लिए आपको बधाई देते हैं और प्रार्थना करते हैं कि आप सरकार को जल्दी ही नोटिस लिख भेजिये, जिससे हम निर्भय हो जायँ।'

प्र०—माँ-बाप हमारी बात न मानें, तो क्या किया जाय?

उ०—माता-पिता को समझाया जाय। हमें माता-पिता का अदब रखना है, विनय रखना है। यह न भूलना चाहिए कि हम उनके आज्ञाकारी हैं। जब हमें उनकी आज्ञा अनुचित मालूम हो, तब विनयपूर्वक उसका अनादर कर सकते हैं।

प्र०—यदि राष्ट्रीय पाठशालाओं को सिडीशियस—उत्पाती मान लिया जाय तो?

उ०—तब हर सरकारी स्कूल का लड़का निकल पड़े। यदि लोग उस समय सरकारी पाठशालाओं में रहेंगे, तो वे गुलामी के ही लायक रहेंगे। लोगों की राष्ट्रीय शिक्षा को सरकार नहीं रोक सकती। घरों में जानेवाले शिक्षकों और स्वयंसेवकों को नहीं रोक सकती।

प्र०—महात्मा गांधीजी ! आपने कहा कि पाठशालाएँ छोड़ देने से सरकार का दूधेश्वर का वॉटर वर्क्स बन्द हो जायगा, सो कैसे ?

उ०—सरकार को हम नौकरोंरूपी पानी पिलाते हैं और इन नौकरों से ही सरकार की प्यास बुझ सकती है। इसलिए यदि यह नल बन्द हो जाय, तो सरकार को प्यासा मरना पड़ेगा। मेकॉले साहब ने भी कहा है कि स्कूल-कॉलेजों द्वारा ही सरकार को नौकर मिल सकते हैं।

प्र०—कुछ लोग मानते हैं कि बंग-भंग के बुलबुले की तरह यह आन्दोलन भी फूट जायगा। इसके लिए क्या स्पष्टीकरण है ?

उ०—जनता में ऐसे बुलबुले पैदा होते और फूटते रहते हैं। माँ जितने पैदा करती है, वे सभी जीते रहें, तो चाहिए ही क्या ? हमें त्रुटियों का विचार करके ही यह काम करना चाहिए। बंग-भंग के आन्दोलन में दो त्रुटियाँ थीं : (१) सरकारी स्कूल-कॉलेजों से लड़कों को न हटाना और (२) नेताओं का अपने लड़कों को सरकारी शिक्षा-संस्थाओं में रखना। इन दो त्रुटियों को जहाँ तक रोका जा सकता है, वहाँ तक रोका जाता है। मुझे विद्यार्थी जो शाप दें, उसके लिए तो मैं तैयार ही हूँ। जिस मनुष्य को जन-सेवा करनी हो, उसे तो पहले से ही शाप मोल लेने चाहिए। इसके जो परिणाम हों, उन्हें मुझे और लोगों को अवश्य सहन करना चाहिए। इसीसे भावी प्रजा ऊपर उठेगी।

प्र०—इस आन्दोलन में युद्ध की सभी शर्तें आ जाती हैं ?

उ०—इस आन्दोलन में युद्ध की सब शर्तों का पालन होता ही रहता है, और यह युद्ध ही है।

२९-९-'२०

उसी स्थान पर दूसरे दिन शिक्षकों को ध्यान में रखकर दिया गया भाषण :

एक बार मैं खुद शिक्षक-वर्ग में ही था। अब भी दावा किया जा सकता है कि मैं शिक्षक हूँ। मुझे शिक्षा का अनुभव है। मैंने उसके

प्रयोग करके देखे हैं। वह काम करते-करते मुझे यह महसूस हुआ कि जिस जाति के शिक्षक अपना पुरुषत्व गँवा बैठे हैं, वह जाति कभी ऊपर नहीं उठ सकती।

हमारे शिक्षक अपना पौरुष अवश्य खो बैठे हैं। जो चीज वे करना नहीं चाहते, उसे वे मजबूरन करते हैं। उनसे कोई मारपीट कर कुछ नहीं कराता, परन्तु उन पर सूक्ष्म बलात्कार अवश्य होता है। उनके अफसरों की धमकियाँ, वेतन की हानि या वेतन न बढ़ने की धमकी या आज्ञाओं से शिक्षक घबरा जाते हैं।

अब हमारे सामने ऐसा अवसर आकर खड़ा हो गया है कि शिक्षक और शिक्षिकाएँ दोनों अपनी जान, अपना माल और अपना वेतन जोखिम में डाल दें और साहस के साथ सच्ची बात विद्यार्थियों के आगे रखें। वे ऐसा न कर सकें, तो उन्हें उदर-पोषण का साधन छोड़ देना चाहिए। यदि आज मैं शिक्षकों को इतना बता दूँ, तो मेरा आज का काम पूरा हो जायगा। मेरे विरोधी पक्ष में शास्त्रीजी जैसे महान् शिक्षक हैं। पंडित मालवीयजी भी, जिन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय जैसी संस्था स्थापित की है, मानते हैं कि मैं लोगों को उलटे रास्ते ले जा रहा हूँ। जो राष्ट्रवादी दल है, उसे भी शंका है। फिर भी मुझे लगता है कि मैं सच्चा हूँ।

अरबों का स्वातंत्र्य-प्रेम

बगदाद से आये हुए एक सज्जन ने मुझे अपना वहाँ का अनुभव सुनाया। उससे मैं तो चकित रह गया। मैं कहता हूँ कि भारत में रहना मेरे लिए कठिन हो गया है। यदि मैं चौबीसों घंटे असहयोग का विचार नहीं करता हूँ—सोते समय भी मेरा मन इसी विचार से व्याप्त होता है—तो हिन्दुस्तान में मेरे लिए रहना अशक्य हो जाता। मैं मानता हूँ कि बग-दाद के निरक्षर अरब हमसे अनंतगुना आगे बढ़े हुए हैं। ये सज्जन कोई फालतू आदमी नहीं हैं। वे बगदाद में सरकारी नौकरी में बड़े अफसर थे। वे अंग्रेज सरकार के दुश्मन नहीं हैं। उन्होंने मुझे जैसे के तैसे अनुभव

सुनाये। गंगाबहन ने उनसे पूछा : 'वहाँ अंग्रेजों का राज्य क्या सचमुच टिकेगा ?' उन्होंने कहा : 'वह क्या हिन्दुस्तान है ?' जब तक एक भी अंग्रेज मेसोपोटेमिया में होगा, तब तक अरब शान्त होकर नहीं बैठेंगे। अरबों के पास गोला-बारूद या तलवार आदि सामग्री नहीं है—होगी तो भी नगण्य होगी—परन्तु एक सामग्री उनके पास जरूर है। 'यह देश हमारा है। हमारे इस देश में जिसे हम इजाजत न दें, वह पलभर भी नहीं रह सकता।'

अंग्रेज सरकार ने वहाँ जितने सिखों को भेजा, उन सबको उन्होंने काट डाला। मैं भारत को यह शिक्षा नहीं देता हूँ। मैं तो उलटे उस ओर की गति रोक रहा हूँ। अरबों को सिक्खों से कोई विरोध नहीं था। हमें तो यही देखना है कि अरबों का उद्देश्य क्या था। अंग्रेजों ने उन्हें बड़ी-बड़ी आशाएँ दिलायीं। बगदाद में इतनी गरमी होती है कि आप सब जैसे यहाँ बैठे हैं, वैसे वहाँ की रेत में कोई बैठ नहीं सकता। वहाँ की रेत इतनी तप जाती है कि उस पर खाना बन सकता है। अंग्रेज सरकार ने कहा कि यहाँ तुम्हारे लिए पक्की सड़कें बना देंगे, रेलवे लाइनों का जाल बिछा देंगे, तुम्हें शिक्षा देंगे और आप लोगों को जिस प्रकार सुख हो, वैसी सब सुविधा कर देंगे। मोटर भी अरबों ने अभी-अभी पहली बार देखी। परन्तु अरबों को तो एक ही बात मालूम थी। उन्होंने कहा : 'तुम हमारा मुल्क लेने आये हो।' यहाँ के मुसलमानों से पहले ही मेसो-पोटेमिया के मुसलमान अंग्रेजों को अपने देश से निकाल रहे हैं।

अंग्रेजों के हवाई जहाज उन्हें डरा नहीं सकते। हवाई जहाज हो या और कुछ, अरबों को उससे क्या ? वे तो मौत को हथेली पर धरकर फिरते हैं। उनके पास ऐसी क्या वस्तु है, जिसे वे ले जायँ ? वे अपने लिए नहीं लड़ते। उनके कपड़े चमड़े के हैं। वे तम्बू में रहनेवाले हैं। उनका अपना देश चाहे रेतीला हो, उसे बचाना है। बगदाद शरीफ की पाक-भूमि पर अनेक पीर हो गये हैं। वहाँ क्या आज्ञा के बिना कोई जा सकता है ? वहाँ अंग्रेज, सिख या उनके भाई-बंदों में से कोई नहीं रह सकता।

अरब हमसे कई गुना बढ़े-चढ़े हैं। 'यह हमारा देश है; जो इस पर उँगली उठाये, उसकी उँगली काट डालेंगे, पराये को हम यहाँ रहने न देंगे।' यह जोश जिनमें है, वे सचमुच सुखी हैं। यदि हम यह मानते हों कि अरब जंगली और हम सुधरे हुए हैं, तो हम उनके और स्वयं अपने साथ बेइन्साफी करते हैं। हम स्वयं गुलामों की दशा में रहते हुए भी थोड़े-बहुत सुख और भोग भोगते हैं। जब तक हम इस भोग-विलास की इच्छा रखते हैं, तब तक हम अरबों से घटिया ही हैं।

धर्मविमुख ब्रिटिश राज्य

हमारे बाप-दादा कह गये हैं, वेदों में, उपनिषदों में कहा है कि पवित्र भूमि को अपवित्र न होने दो। दूसरे तुम्हारी भूमि में घुसें, तो अतिथि बनकर ही घुस सकते हैं। जिसने स्वतंत्रता खो दी, उसने सब कुछ खो दिया, धर्म खो दिया।

मैं यह नहीं मानता कि ब्रिटिश राज्य में हम अपना धर्म आराम से पालन कर सकते हैं और मुसलमानों के राज्य में कम पालन कर सकते थे। मैं जानता हूँ कि मुसलमानी राज्य में जुल्म होते थे। उनमें अभिमान था। इस समय तो अंग्रेजी राज्य नास्तिक है, धर्म से विमुख है। इस राज्य में हमारा धर्म खतरे में पड़ गया है।

हमारे आसपास के मुल्कों में पठानों, ईरानियों और अरबों की स्थिति हमसे अच्छी है। उन्हें हमारे जैसी शिक्षा नहीं मिलती, तो भी वे हमसे बढ़कर हैं।

इस प्रकार हमारी दीन दशा का चित्र देने के बाद मैं शिक्षकों के पास अपना मामला रखता हूँ। जब तक हम अपनी शिक्षा की आहुति देने को तैयार नहीं, तब तक देश को स्वतंत्र नहीं किया जा सकता।

आजकल बहुत विद्यार्थी मेरे पास आकर अपनी बातें हृदय-विदारक ढंग से कहते हैं, फिर भी मैं देखता हूँ कि वे घबराये हुए हैं। हम पाठ-शाला छोड़ दें, तो कल ही दूसरी पाठशाला मिलेगी या नहीं, ऐसे सवाल

करते हैं। यह शिक्षा का मोह है। कोई यह नहीं कह सकता कि मैं स्वयं शिक्षा का विरोधी हूँ। मैं क्षणभर भी विचार या वाचन के बिना नहीं रहता। परन्तु चारों ओर आग लगी हो, तब डिकन्स या शेक्सपियर लेकर पढ़ने नहीं बैठा जा सकता। इस समय आग लगी हुई है। इस समय शिक्षा का मोह नहीं रखना चाहिए।

गंदी शिक्षा का त्याग

यदि आपको जँच गया हो कि अंग्रेजों ने पंजाब में और खिलाफत के मामले में भारत पर अत्याचार किया है, दगा दिया है, तो जब तक वे उस अत्याचार का प्रायश्चित्त न करें, अपना मलिन अन्तःकरण पूरी तरह स्वच्छ न करें, तब तक उनसे किसी भी प्रकार का दान या वेतन या शिक्षा स्वीकार करना महापाप है। हम राक्षस से शिक्षा नहीं लेते। मैले हाथों से दी गयी शुद्ध-से-शुद्ध शिक्षा भी मैली ही है। अंग्रेज तो अपने मैल को भी स्वच्छता कहकर बताते हैं।

इस समय हममें जो दीनता है, पामरता है, हम जिस भ्रम में पड़े हुए हैं, वह अंग्रेजी शिक्षा के कारण ही है। अंग्रेजी शिक्षा न मिली होती, तो हम इस समय कोई आन्दोलन न करते होते, यह मिथ्या बात है।

देश के लिए मरने की वृत्ति अरबों में है। हममें नहीं है। जब तक हम ऐसी पतित दशा से निकल नहीं जाते, तब तक भारत स्वतंत्र नहीं हो सकेगा, यह मेरी भविष्यवाणी है।

शिक्षकों और प्रोफेसरों से मैं साहसपूर्वक कहता हूँ कि यदि प्रजा को उछलती और उत्साही बनाना हो, तो कल ही त्यागपत्र दे दीजिये। त्यागपत्र देनेवाला शिक्षक विद्यार्थियों को बड़ी-से-बड़ी शिक्षा देगा।

यदि शिक्षकों में वीरता आ जाय, उन्हें लगे कि जो हुकूमत इन्साफ नहीं करती, अपने अन्याय का प्रायश्चित्त नहीं करती, उससे वेतन नहीं लिया जा सकता, तो गुजरात में आज ही स्वराज्य है। यदि शिक्षक

हिम्मत करके कह दें कि हम भीख माँगकर भी सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा ही देंगे, तो आकाश में देवता भी देखने आयेंगे और रुपये की वर्षा करेंगे।

६-१०-'२०

सूरत पाटीदार विद्यार्थी आश्रम की अमराई में सार्वजनिक कॉलेज और हाईस्कूल के विद्यार्थियों और शिक्षकों के सामने दिया गया भाषण :

अहमदाबाद के विद्यार्थी भाइयों को दिये गये भाषण का सार आपने पढ़ा होगा; उसमें की कुछ बातें आपसे कहना चाहता हूँ। आपके बुजुर्गों से शाम को बात करूँगा। मैं जहाँ जाता हूँ, वहाँ विद्यार्थियों के साथ अपना विशेष सम्बन्ध बनाये रखना चाहता हूँ। मैं खुद भी चार लड़कों का पिता हूँ, इसलिए पुत्रों के प्रति माता-पिता का कर्तव्य समझ सकता हूँ। मैं भी किसी समय बेटा था और जिन्हें बुजुर्ग की हैसियत से पूजूँ, ऐसे कुछ आदमी अभी तक जिन्दा हैं। इसलिए मैं पिता के प्रति पुत्रों का कर्तव्य अच्छी तरह जानता हूँ। लड़के को ऐसी सलाह दी जा सकती है कि मौका आने पर बाप का भी विरोध किया जा सकता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि मैंने विरोधी सलाह दी। मैं जो उद्‌गार प्रकट करनेवाला हूँ, वे मैंने अपने पुत्र को सुनाये हैं। मेरे अनेक पुत्र हैं, अनेक बालक बचपन से मुझे सौंपे गये हैं और मैंने उनका पालन किया है। कल ही एक ढेढ़ माता-पिता ने अपनी पुत्री मुझे सौंपने की इच्छा प्रकट की। वह लड़की पहले मेरे साथ रह चुकी थी। मैंने उसके बाप से कहा कि बहन लक्ष्मी पर से अपना तमाम दावा हटाकर ही तुम उसे मुझे सौंप सकते हो। मुझे सौंपे गये सभी बच्चों के माँ-बाप के साथ ऐसी शर्त नहीं थी। फिर भी जिन्हें मैंने पाला-पोसा है, उन्हें भी मैं अपना पुत्र ही समझता हूँ। जो सलाह आज मैं विद्यार्थियों को दे रहा हूँ, वही कड़ी मैंने अपने लड़कों को दी है। उचित अवसर पर तुम मेरे विरुद्ध, माँ-बाप के विरुद्ध और सारी दुनिया के विरुद्ध हो सकते हो। मैं यह न कहूँ, तो जो धर्म मैं समझता हूँ, वह मिट जाय। धर्म का विकास करना

हो, तो जिस समय वास्तविक भावना हो जाय, उस समय माँ-बाप, सगे-सम्बन्धी सबका बलिदान इस यज्ञ में करना उचित हो, तो कर देना चाहिए, जैसे प्रह्लाद ने अपने बाप का बलिदान किया था। प्रह्लाद ने अपने बाप के विरोध में लाठी तक नहीं उठायी, फिर भी हिरण्यकश्यप के अंतःकरण के विरुद्ध आदेश को—विष्णु का भजन न करने के हुक्म को—न मानकर कहा, 'इस समय जो आपके भी पिता हैं और उनके प्रपिता के प्रपिता हैं, उनकी आज्ञा मैं शिरोधार्य करूँगा।'

तुम्हारे माँ-बाप कहते हैं कि तुम स्कूल-कॉलेज न छोड़ो और मैं छोड़ने को कहता हूँ। मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे तुमने धर्म जान लिया हो, तो तुम विनयपूर्वक कहना कि हम इन स्कूल-कॉलेजों में नहीं जा सकते। तुम्हारी भावना उत्तेजित हो गयी हो, तो तुम्हारा यह कर्तव्य हो जाता है। मैं ऐसी सलाह क्यों दे रहा हूँ? मैं जो कहता हूँ, वह दस-बारह वर्ष की आयु के विद्यार्थी पर लागू नहीं होता। उन्हें स्वतंत्र विचार का अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। उन्हें तो जैसा माँ-बाप कहें, वैसा ही करना चाहिए। हमारे शास्त्रों में है कि बच्चे का पाँच वर्ष तक लालन किया जाय, दस वर्ष तक ताड़न किया जाय—ताड़न का अर्थ लकड़ी से मारना नहीं, परन्तु शिक्षा देकर समझाना है—और सोलह वर्ष के पुत्र को अपना मित्र माना जाय। मैं जवान लड़कों को ऐसी सलाह कैसे दे रहा हूँ? बहुत वर्षों से मैं ब्रिटिश हुकूमत के साथ सहयोग करता रहा हूँ। मुझसे अधिक अच्छा सहयोग किसीने नहीं किया होगा, क्योंकि उससे अधिक सहयोग लगभग असंभव था। मेरे उस सहयोग में कुछ भी स्वार्थ नहीं था। मुझे अपने भाई या लड़के को सरकारी नौकरी दिलवानी नहीं थी। मुझे खिताब की अपेक्षा नहीं थी। इसलिए मेरा सम्बन्ध केवल शुद्ध था। मैं सहयोग धर्म-कर्तव्य समझकर करता था। इनके शासन का मैं आदर करता रहा हूँ—वह इसलिए नहीं कि उस शासन में दण्ड है, परन्तु यह समझकर कि उसका आदर करना चाहिए। इसका एक उदाहरण दूँगा।

मुझे तीसरे पुत्र की प्राप्ति हुई, तब चेचक के टीके लगवाने का प्रश्न

पैदा हुआ। मैं मानता हूँ कि चेचक का टीका लगवाकर मैं अच्छा नहीं करता। फिर भी सन् १८९७ में मैंने उस बालक को टीके लगवाये। निश्चित अवधि में टीके न लगवाने से जुर्माना होता था। यह कानून पुस्तक में ही है। लोग उसका आवश्यक आदर नहीं करते। मुझे लगा कि या तो मुझे उसे मानना चाहिए या सरकार से सफाई कर ली जाय अर्थात् उसके कानून का सादर अनादर किया जाय, क्योंकि यह कानून मुझे पसन्द नहीं। परन्तु जब तक उसे बदल न दिया जाय, तब तक उसके आगे सिर झुकाना मुझे ठीक मालूम हुआ और इसलिए मैंने लड़के को टीके लगवा लिये। परन्तु आगे चलकर इसी चेचक के टीके का विरोध करने की नौबत आ गयी। हम दक्षिण अफ्रीका में जेल गये। जेल के कानून के अनुसार टीके लगवाना ही चाहिए था। तब हमने असहयोग किया—सविनय अनादर किया। मैंने कह दिया कि सरकार चाहे तो हमें अधिक समय तक जेल में रख ले, परन्तु हम टीके नहीं लगवायेंगे। सरकार को अन्त में हुक्म जारी करना पड़ा कि इसमें धर्म की बात हो, तो भले ही कोई न लगवाये।

सहयोग का मैंने किस हद तक विकास किया है? मैं मानता हूँ कि सरकार की तरफ की छोटी-छोटी झंझटों को सहन कर लेना और उसे निभा लेना सुन्दर धर्म है। हम स्वराज्य ले लेंगे, तब भी पाखंड, चोरी और डायरिज्म होगा। मैं इतना भोला नहीं और न इतना पाखंडी हूँ कि यह कहूँ कि स्वराज्य से सतयुग हो जायगा। यह स्वराज्य सतयुग का नहीं, परन्तु कलियुग का ही होगा। वह अंग्रेजों-अरबों जैसा ही होगा। परन्तु उस वक्त का डायरिज्म सह्य होगा। सत्ता हमारे हाथ में होगी। इसलिए अधिक-से-अधिक यह होगा कि हम सत्ता का स्वयं दुरुपयोग करेंगे या करने देंगे। परन्तु आज जो कुछ हुआ है, वह ऐसा नहीं है। वह हमारी मर्जी के विरुद्ध है। वाइसराय लॉर्ड चेम्सफर्ड को या लॉर्ड सिंह को हम मुकर्रर करते, तो दूसरी बात थी। हमारा विरोध चमड़ी से नहीं, परन्तु तरीके से है। मेरे साथ दयालजी

या कल्याणजी अन्याय करें, तो मैं उनका विरोध करूँ या उनका दिया हुआ दूध न लूँ। भाई एण्ड्रूज, मुहम्मदअली या शौकतअली सहोदर हैं, परन्तु सरकार उन्हें वाइसराय नियुक्त करे, तो वे भी मुझे मंजूर नहीं होंगे, क्योंकि वे सरकारी तौर पर नियुक्त होंगे। हमारे अपने हाथ में सत्ता और हमें विश्वास हो, तो हम लॉर्ड चेम्सफर्ड को भी वाइसराय बना सकते हैं और विश्वास उठ जाने पर हटा भी सकते हैं। आज सारा भारत लॉर्ड चेम्सफर्ड से कहता है कि आप हट जाइये, फिर भी वे बैठे ही हैं। मैं तो जैसा यहाँ कहा, उसी प्रकार का सहयोग करना चाहता हूँ। इस समय ऐसा नहीं है, इसलिए असहयोग चाहता हूँ।

हुकूमत का निचोड़

मैंने सरकार की हुकूमत का निचोड़ निकाला, तो उसमें कुछ जमा नहीं, बल्कि बाकी निकला। रिफार्म्स में सुधार देने की बात नहीं, परन्तु ले लेने की बात दिखाई दी। सरकार की सत्ता मशीनगनों से नहीं, परन्तु उसके प्रति हमारे मोह से टिकी हुई है। यह मोह तीन प्रकार का है। जिसे द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर ने मायामृग कहा है, वह धारासभाओं का मोह, अदालतों का मोह और शिक्षा का मोह है। पदवियों और पदकों का तो मैं नाम-निशान ही उड़ा देता हूँ, क्योंकि इनके धारण करनेवाले बहुत ही थोड़े हैं। परन्तु इन तीनों मोहों में हम बहुत फँसे हुए हैं। हमारे अगुवा विद्वान् और बुजुर्ग नेता लाला लाजपतराय भी इनमें फँसे हुए हैं। मेरे लिए सदा पूजनीय मदनमोहन मालवीय भी यह मानते हैं कि मेरी मति फिर गयी है और मैं सबको उलटे रास्ते ले जा रहा हूँ। वे मानते हैं कि धारासभाओं में जाना धर्म है, स्कूल-कॉलेजों में जाना धर्म है। मेरे खयाल से धारासभाओं में जाना पाप है, अदालतों में जाना पाप है और स्कूल-कॉलेजों में जाना महापाप है।

मैं वकीलों को नहीं समझा सकता, इसका कारण है। मैं जानता हूँ, उनमें कितनी माया है। बाल-बच्चों, आरामकुर्सियों और मोटरगाड़ियों

का त्याग मुश्किल है। परन्तु विद्यार्थियों के लिए ऐसी कोई बात नहीं। उन्हें जिधर मोड़ो, उधर मुड़ सकते हैं। जो गुलामी की शिक्षा पायें और नौकरी के लिए पाठशाला जाते ही रहें, उन्हें न रोकूँ, तो हुकूमत की जड़ नहीं उखड़ सकती। मैं वह जड़ उखाड़ना चाहता हूँ। विद्यार्थियों द्वारा हुकूमत को खाद-पानी मिलता है; यह पानी नायगरा फाल्स जैसे—गंगा, जमना, ब्रह्मपुत्रा के इकट्ठे प्रपात जैसा है। तुम इशारे में समझ जाओगे कि यह वहमी विद्या—गुलामगिरी की विद्या—हमें नहीं चाहिए। मैं गुलामी छोड़ने का अलिफ बे और ककहरा न सीख लूँ, तब तक और सब बेकार है। मैले बर्तन में दूध उँडेलते रहोगे, तो बर्तन साफ नहीं होगा, परन्तु दूध मैला हो जायगा। जब तक हम गुलामी के पाप से बिगड़े हुए रहेंगे, तब तक शिक्षा निकम्मी है। ऊपर देवता हों और वे देखें कि भारत मैला पात्र है, तो शिक्षा की वर्षा व्यर्थ है। इसलिए पहले साफ हो जाओ। कानून और वैद्यक का ज्ञान न मिले, तो हिन्दुस्तान रसातल नहीं चला जायगा; परन्तु गुलामी से रसातल पहुँच जायगा। तब भारत मनुष्यों के नहीं, परन्तु पशुओं के देश के रूप में जाना जायगा। मनुष्य किसीसे—बड़ी हुकूमत से भी—दबकर अपने शुद्ध उद्गार प्रकट न कर सके, इसीका नाम गुलामी है। इससे निकलना हमारा प्रथम पाठ है। जो लगन मुझे लगी है, वह जलियाँवाला के दृष्टान्त तथा इसलाम के अपमान से सबको लगे।

इसलाम का घेरा भारत को नोटिस है

हिन्दुओं पर दोहरी मार है। मुसलमान गुलाम बन जायँगे, तब इन इसलामी गुलामों द्वारा हिन्दुओं को गुलाम बनाया जायगा। यह त्रैराशिक का उदाहरण है। मुझे हिन्दू-धर्म की रक्षा करनी हो, छाया में बैठकर विष्णु को भजना हो, तो मुसलमानों की मदद करना मेरा फर्ज है। मुसलमान भविष्य में कदाचित् जुल्म करें, तो मैं उनसे कहूँगा, 'भाई, वे दिन याद करो!' तुम भी कह सकते हो कि हममें का एक गांधी मरे तो

कैसा ही था परन्तु—तुम्हारे लिए कुछ कर गया है। इससे भी काम न चले, तो तुम लड़ लेना। मैं तो मर्द बनने को कहता हूँ। लाठी उठाकर मरने को तैयार होने से लाठी छोड़कर मरे, वह ज्यादा मर्द है। हिमालय पर लाठी लेकर या डोली में बैठकर चढ़नेवाले से लाठी या डोली के बिना जाय, उसका श्वास कितना मजबूत होना चाहिए! ऊपर चढ़कर वह सारे भारत के सामने खिलखिलाकर हँसेगा। मेरे पास बैठे हुए मेरे भाई मुहम्मदअली इसे कमजोरी का हथियार मानते हैं। यह सही हो या न हो, परन्तु तलवार का न्याय भी इसीसे सीखा जा.सकता है। मैंने भाई शौकतअली से कहा कि मुसलमानों में कुर्बानी की ताकत नहीं है। मरने की ताकत आ जायगी, तब वे देखेंगे कि तलवार की जरूरत ही नहीं। फिर भी जब जरूरत मालूम हो, तब शौक से तलवार निकाल लेना। जिस हुकूमत ने इसलाम को धोखा दिया, जिसने भारत को पेट के बल चलाया—क्योंकि एक भी मनुष्य पेट के बल चला है—, जिसने औरतों के बुर्के उठाये—क्योंकि पंजाब में ऐसा हुआ है—, उस सरकार के साथ सहयोग ही हो कैसे? कितनी ही पक्की सड़कें, मिलें, देश में कितना ही अमन रहे, उसकी बजाय खून की नदियाँ बहना मंजूर है। अरे, रेल चली जाय, जहाज न रहें, व्यवस्था भंग हो जाय, यह सब मेरे खयाल में उस स्थिति से बेहतर है। मेरे जितनी ही लगन तुममें आ गयी हो, तो जिस विद्यार्थी को माँ-बाप ने इनकार कर दिया हो, वह भी पाठशाला का त्याग कर सकता है। एक विद्यार्थी के पिता ने कहा कि जो राष्ट्रीय पाठ-शाला खुली है, वह कैसी चलती है, यह देख लेने के बाद सब कुछ हो जायगा। राष्ट्रीय पाठशालाओं की ऐसी परीक्षा करके बच्चों को सरकारी स्कूल-कॉलेजों से हटा लेनेवालों से भारत फतह नहीं होगा। विद्या मिले या न मिले, इसकी परवाह न होनी चाहिए। गुलामी की हालत में रहते हुए आजादी की बात सिखायी जा सकती हो, तो भी उससे स्वतंत्रता का विकास हरगिज नहीं किया जा सकता। यह जो मैं कह रहा हूँ, वह अच्छी तरह समझ में आ जाय, तो सब कुछ छोड़ देना चाहिए। फिर

सब कुछ मिल जायगा। ईश्वरीय कानून है कि जो श्रद्धापूर्वक भक्ति करे, उसे सब कुछ मिल जाता है।

सूरत के सभी स्कूलों में से तमाम विद्यार्थी निकल जायँ, तो कैसा शुभ परिणाम हो? उस समय तो प्रोफेसर और शिक्षक तुम्हें पूछने आयेंगे कि तुम किन शर्तों पर रहना चाहते हो? तुम कहना कि सरकार के साथ सम्बन्ध और उसकी सहायता छोड़कर हम भिक्षा माँगकर भी पाठशाला के खर्च का बंदोबस्त करेंगे। यह असली न्याय है। पहले के जमाने में विद्यार्थी गुरु के पास समित्पाणि होकर जाता। गुरु से कहता कि मैं आपका ईंधन लाऊँगा, ढोर-डंगर की सँभाल रखूँगा; आप मुझे पढ़ाइये। पूना में ऐसा एक अनाथ विद्यार्थी आश्रम विद्यार्थी मधुकरी करके चला रहे हैं। तुम भी ऐसा ही करना, परन्तु मौजूदा स्कूलों में जाकर अपना मनुष्यत्व न गँवाना। तुमसे तो बड़ी आशा है।

यहाँ सूरत में ये दो संस्थाएँ बड़ी हैं। इनके विद्यार्थी बहुत सुन्दर काम कर सकते हैं। सूरत इस समय बेसूरत बन गया है। मैं सूरत से ऐंठ की आशा रखता हूँ। 'हम विद्या के बिना रह जायँगे अथवा अपनी शर्त पर ही पढ़ेंगे।' तमाम विद्यार्थी इतना बल बता दें, तो एक महीने में मनचाहा हो जाय। फिर भी दो-चार विद्यार्थियों के ही जँच जाय, तो भी उन्हें तो आज पाठशालाओं से निकल जाना है। उनसे मैं कहूँगा कि तुमने स्वराज्य के लिए एक कदम उठाया है, भारत के लिए बड़ा भाषण दिया है। तुम्हें घर से मदद न मिले तो मजदूरी कर लेना, हाथ-पैर हिलाना न सीखा हो तो सीख लेना, परन्तु गुलामी में मत फँसना। विद्यार्थियो, जरूर मान लो कि भारत के लिए स्वराज्य चाहिए, तो पाठशालाओं का, अदालतों का और धारासभाओं का मोह छोड़ना चाहिए। स्वराज्य की सबसे पहली और अंतिम सीढ़ी स्वयं स्वच्छ बनना ही है। जिसे दाँत दिये हैं, उसे चबेना देनेवाली सरकार नहीं, परन्तु सरकार की भी सरकार है। यह हमारा पहला पाठ है। उसे हम भूल गये हैं। मैं तो सेठ या सरकार का चबेना स्वीकार नहीं करता। सरकार के

रहते हुए भी उड़ीसा में हजारों अकाल-पीड़ित मर गये। भारत में अनेक सेठों के होने पर भी हजारों अकाल-पीड़ित हरिशरण हो गये। तुम ईश्वर का नाम लेकर, हिम्मत करके कोई भी हिसाब लगाये बिना, कुछ भी गिनती किये बगैर, गुरु और माँ-बाप को नोटिस भेज दो कि मैं पाठशाला नहीं जा सकता। मैंने कहा है, उससे उत्तेजित होकर नहीं। मैं तुम्हारे हृदय और बुद्धि को सतेज कर रहा हूँ। बुद्धि और हृदय न मानते हों, तो बालक का अधिकार नहीं कि बड़ों के विरुद्ध हो। यह अधिकार तो उसी बालक को है, जिसका दिल मेरी ही तरह जल रहा हो। शराबी माँ-बाप से शराब का व्यसन छुड़वाने के लिए लड़के को उसकी विरासत, घर और छत्रछाया का त्याग करना चाहिए। तुम्हें महसूस होता हो कि जो शिक्षा मिल रही है, वह गुलामी की छत्रछाया में मिल रही है, तो माँ-बाप की आज्ञा के विरुद्ध भी कल ही कूद पड़ो।

सवाल-जवाब

सवाल—महात्माजी! आप मानते हैं कि आपको पकड़ लिया जाय या निर्वासित कर दिया जाय, तो देश में शान्ति रहेगी?

जवाब—हाँ। और शान्ति न रहे, तो मैं मान लूँगा कि हम नालायक हैं। मैंने तलवार इसलिए नहीं छोड़ी कि मुझे चलाना नहीं आता या मैं कमजोर हूँ। आज भी मैं एक पिस्तौल चलाने की ताकत तो रखता ही हूँ। नुकीला छुरा पेट में भोंकना हो, तो मैं भोंक सकता हूँ। फिर भी मैंने उसका त्याग किया है, क्योंकि उससे फायदा नहीं। मुझे, भाई शौकतअली या भाई मुहम्मदअली को पकड़ लें और देश में शान्ति न रहे, तो मुझे खयाल होगा कि हिन्दुस्तान अभी समझा नहीं। ऐसी अशान्ति आयर्लैंड में हो सकती है, अरबस्तान में हो सकती है। वहाँ सबको तलवार रखने का हक है और सब उसे काम में लेना जानते हैं। मैं उनके बीच में हूँ और सरकार मुझे पकड़े, तो वे सरकार से कहेंगे कि लड़कर ले जाओ। परन्तु यहाँ ऐसा नहीं। यहाँ शान्ति न रहे, तो मुझे

हिमालय चला जाना पड़ेगा, क्योंकि मेरे लिए रक्तपात नहीं होने दिया जा सकता। परन्तु यह ताकत हिन्दुओं में नहीं। मुसलमानों में भी नहीं। मैंने अहमदाबाद में मुसलमान भाइयों से कहा था कि मैंने आज जो बात रखी है, वह नयी नहीं है। सभी शास्त्रों ने सुझायी है। परन्तु अब तक हम उसे भूल गये थे। तुम्हारा खयाल हो कि आज ही तलवार से मुकाबला करके इसलाम का बचाव कर सकते हैं, तो तलवार खेंच सकते हो। मान लीजिये कि वाइसराय को छुपके से मार सकते हैं या मरवा सकते हैं, परन्तु इससे इसलाम का बचाव नहीं होगा। इससे मार्शल लॉ हो जायगा। उसकी भी जरूरत नहीं। परन्तु उससे भारत दब जायगा। यह मार्ग इस समय बलवान् का नहीं, परन्तु निर्बल का शस्त्र है। यदि मुसलमानों में वैसा जोर होता, तो वे मुझसे कहते कि तुम हमें तलवार खेंचने से रोकनेवाले कौन होते हो? कुरान शरीफ का फरमान है। हिन्दुओं में भी मेरी न माननेवाले मौजूद हैं। फिर भी भारत ने यह घूँट पी लिया, यह ध्यान में रखना चाहिए। जलियाँवाला में मरनेवाले कोई शहीद नहीं थे—वीर नहीं थे। वीर होते, तो जब डायर उद्धतता से आया, तब या तो तलवार निकालते या लाठी उठाते या छाती खोलकर खड़े होकर मरते; भागते नहीं। जैसे हजरत इमाम कर गुजरे, वैसा करनेवाले भारत में इस समय न सिख हैं, न गुरखे हैं, बनिये तो हैं ही नहीं और राजपूत तो निरे बनिये बन गये हैं। इसलिए अगर मेरे पकड़े जाने से हिन्दुस्तान में अशान्ति हो, तो मैं कहूँगा कि तुम हार गये; क्योंकि तुममें वह ताकत नहीं। मैं पकड़ा जाऊँ, तो तुमसे आज पाठशाला न छूटती हो तो उस दिन छोड़ देना, वकील वकालत छोड़ें, सिपाही सिपाहीगिरी छोड़ें और सेना हथियार छोड़े। और मैं किसान हूँ। किसान उस दिन कह दें कि हम कर नहीं देंगे। ऐसा होगा, उसी दिन हमारा उद्धार है।

शायद हम तीनों को एक साथ ही घसीट ले जायँ। पहले मैं हम दोनों को एक साथ पकड़ें, इसके लिए बंदगी करता था। अब तीन के लिए करता हूँ। इसीलिए जब शौकतअली अकेले दिल्ली जा रहे थे, तो

मैंने इनकार कर दिया था, क्योंकि मेरी मुराद यह है कि पकड़े जायँ, तो दोनों साथ पकड़े जायँ। सरकार को पागलपन हो जायगा, तब वह हम तीनों को या तीनों में से जो अधिक अपराधी मालूम होगा, उसे पकड़ेगी।

सरकार हमें तलवार से नहीं दबा सकती। मुझे यह कहने का हक होना चाहिए कि 'तुम्हारी हुकूमत गैरकानूनी होगी, तो तुम्हें धक्के देकर निकाल देंगे।' अब तक मन में कुछ और मंच पर कहना कुछ, शान्ति का अर्थ अशान्ति, इस प्रकार करने की नीति थी। अब वह जाती रही। इन दो भाइयों पर मुझे इतना अधिक विश्वास है कि जिस दिन इन्हें अशान्ति करनी होगी, उस दिन पहले से नोटिस दे देंगे कि आज से एक भी अंग्रेज की जान-माल सलामत नहीं। इस बारे में इन दोनों भाइयों से पूछ लेना। अलग-अलग पूछ देखना। मुझसे पूछना। तीनों का एक जवाब निकले, तो मान लेना कि हम पकड़े जायँ, तब तुम सब स्वयंसेवक बनकर शान्ति रखने के लिए निकल पड़ना। नहीं तो मार्शल लॉ हो जायगा। मार्शल लॉ होने से हर्ज नहीं; परन्तु हर्ज यह है कि सरकार को उसे जारी रखना पड़े, तो लड़ाई जारी रखने की हममें ताकत नहीं है।

स०—महात्माजी! आप अंग्रेजी स्कूल-कॉलेजों से लड़कों को हटा लेने को कहते हैं, तो म्युनिसिपैलिटी की प्रारंभिक पाठशालाएँ छोड़ने को क्यों नहीं कहते?

ज०—म्युनिसिपैलिटियाँ भी सरकारी सहायता और सम्बन्ध ठुकराकर स्वतंत्र हो सकती हैं। नड़ियाद म्युनिसिपैलिटी ऐसा कदम उठाने की तैयारी में है।

स०—आप जब स्कूल-कॉलेज छोड़ने को कहते हैं, तब सरकार की दूसरी सहायता या रेलगाड़ी का उपयोग, पानी के नलों का लाभ वगैरह छोड़ने को क्यों नहीं कहते?

ज०—मैं 'प्रेक्टिकल आइडियालिस्ट' (व्यावहारिक आदर्शवादी) हूँ, इसलिए जो बात हो सकती हो, वही लोगों के सामने रखता हूँ।

फिर भी कोई इनका त्याग करे, तो मैं उसे बधाई दूँगा। मेरे असहयोग के विरुद्ध जब श्रीमती बेसेण्ट ने यह सुझाव दिया कि सरकार गांधी और शौकतअली की डाक बन्द कर दे, इन्हें रेलगाड़ी का टिकट न दिया जाय वगैरह, तब मेरे आसपास जो भाई बैठे थे, उनसे मैंने कहा था कि ऐसी नौबत आ जाय, तो वह दिन सुन्दर होगा। उससे खिलाफत या असहयोग का काम रुकेगा नहीं।

स०—महात्माजी! हमारे यहाँ प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य है, तो स्कूल छोड़ने को कैसे कहा जा सकता है?

ज०—शिक्षा अनिवार्य है, स्कूल थोड़े ही अनिवार्य है।

स०—असहयोग के मामले में देशी राज्यों में क्या किया जाय?

ज०—देशी राज्यों में रहनेवाले तो गुलामों के गुलाम हैं। अभी तो सीधे गुलामों की ही बात करो। फिर भी वहाँ कोई अपने-आप स्कूल-कॉलेज छोड़ दे, तो दूसरी बात है। परन्तु वहाँ मैं आन्दोलन करने नहीं जाऊँगा। इससे देशी राज्यों की विषम स्थिति हो सकती है। परन्तु बड़ौदा के गायकवाड़ को ही ऐसा लगे कि अपनी मुसलमान प्रजा के धर्म की रक्षा करने के लिए राजपाट छोड़ देना बेहतर है, तो यह बात अलग है।

मौलाना मुहम्मदअली—यह प्रश्न तो न्यूटन की बिल्ली और उसके बच्चों के कमरे में घुसने के छेदों जैसा है। अर्थात् बड़ी बिल्ली का रास्ता हुआ कि बच्चे अपने-आप घुस जायँगे। ब्रिटिश भारत का निपटारा होते ही देशी राज्यों का भी हुआ ही समझो।

स०—सरकार राष्ट्रीय पाठशालाएँ बन्द कराये, तो क्या हो?

ज०—यह सरकार सयानी सरकार है, इसलिए ऐसा कदम नहीं उठायेगी और यदि उठाये, तो इससे कोई राष्ट्रीय शिक्षा रुक नहीं जायगी। उलटे जो विद्यार्थी और शिक्षक आज पाठशाला नहीं छोड़ रहे हैं, वे उस दिन छोड़ देंगे और शिक्षक विद्यार्थियों के घर जा-जाकर पढ़ाने लगेंगे। इसे कोई सरकार रोक नहीं सकती। रोके तो इसका अर्थ

यह होगा कि हिन्दू गीता न पढ़ें, क्योंकि उसमें युद्ध की बात है और मुसलमान कुरान न पढ़ें। ऐसी कार्रवाई सरकार कर ही नहीं सकती।

८-१०-'२० से १७-१०-'२०

संयुक्तप्रान्त (उत्तर प्रदेश) का दौरा। यह दौरा तो पागल की तरह किया है, यह निम्नलिखित डायरी देखने से मालूम हो जायगा :

८ रोहतक।

९-१०-११ मुरादाबाद।

११ रात को चंदौसी।

१२ अलीगढ़।

१३ हाथरस, एटा, कासगंज।

१४ कानपुर।

१५ लखनऊ।

१६ शाहजहाँपुर।

१७ बरेली।

रोहतक में मौलवी लाकाउल्ला और सूफी इकबाल को राजद्रोहात्मक भाषण देने के बारे में पकड़ लिया गया था। इनमें पहले भाई से गांधीजी कलकत्ते में मिले थे। उनसे बातें करते हुए गांधीजी ने मजाक में कहा था कि 'आप कुछ काम करके दिखायें, तो मैं रोहतक आऊँ।' उन्होंने कहा था कि 'मैं जेल चला जाऊँ, तो आप आयेंगे या नहीं?' और गांधीजी ने वचन दिया था कि 'तो मैं जरूर आऊँगा।' मौलवी लाकाउल्ला ने वचन का पालन किया, तो गांधीजी को भी वचन का पालन करना पड़ा। रोहतक दिल्ली से पैंतालीस मील दूर छोटा-सा कस्बा है और ज्यादा आबादी जाट लोगों की है। लोग बहुत सादे, भोले दिल के और सच बोलनेवाले हैं। मौलवी लाकाउल्ला के विरुद्ध अभियोग-पत्र सौभाग्य से गांधीजी को रोहतक में मिल गया। अभियोग यह था कि मौलवी साहब ने एक भाषण में अंग्रेजों को 'हरामजादे', 'बेईमान' और 'धोखे

बाज' कहा था और यह कहा था कि हुकूमत मिट्टी में मिल जायगी। गांधीजी ने भाषण में साफ कहा कि 'हरामजादा' गाली है। यह गाली हमारे मुँह से कभी नहीं निकलनी चाहिए, परन्तु वे अवश्य ही सरकार को 'बेईमान' और 'धोखेबाज' अर्थात् दगाबाज कह सकते हैं और ऐसा कहने के लिए सरकार पकड़ती हो, तो उन्हें अवश्य पकड़े। गांधीजी ने कहा कि यह कहने में कि मक्का-मदीना पर गोलियाँ चलती थीं, मौलवी साहब का अज्ञान था और साथ ही बताया कि "जिस हुकूमत ने बेईमानी की है, जो हुकूमत तीस करोड़ लोगों के प्रति जालिम बनी है, जो हुकूमत तीस करोड़ लोगों को धोखा दे रही है, वह इस दुनिया में कोई खुदा हो, तो जरूर मिट्टी में मिलनी चाहिए।" मुहम्मदअली ने मक्का-मदीना सम्बन्धी मौलवी साहब के कथन के लिए कहा कि खुद एक अंग्रेज प्रोफेसर ने आक्सफोर्ड में जाहिर किया था कि मक्का-मदीना पर हवाई जहाज उड़े थे। इसलिए मौलवी लाकाउल्ला के कथन में थोड़ी तफसील की ही खामी हो सकती है। इन दोनों मौलवियों ने वकीलों द्वारा कोई सफाई पेश नहीं की।

रोहतक से चलकर दूसरे दिन मुरादाबाद गये। वहाँ संयुक्त प्रान्त की राजनैतिक परिषद् बड़ी भारी हुई।

मुसलमान भाई खिलाफत का प्रश्न उठा, तब से राजनैतिक मामलों में भाग लेने लगे हैं; तो भी ऐसे जलसों में अधिक मुसलमान दिखाई नहीं देते। इस परिषद् में तो मुसलमान और हिन्दू एक-दूसरे के साथ कंधे से कंधा मिलाकर बैठे हुए जहाँ-तहाँ नजर आ रहे थे। स्वागत समिति के अध्यक्ष भी मुसलमान ही थे। इस परिषद् के अध्यक्ष काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् बाबू भगवानदास थे। उनका भाषण हिन्दी में दिया गया था। भाषण गौरवपूर्ण वाणी में लिखे गये विचारों और विद्वत्ता से भरपूर था। उसका सारमात्र ही बाबू भगवानदास के शब्दों में दिया जा सकता है।

बाबू भगवानदास ने ब्रिटिश राज्य के दो मूल दुःख बताये: (१) मन का—अर्थात् तिरस्कार और अपमान का दुःख, (२) तन का—अर्थात् रोजगार और खाने-पीने-पहनने के नाश का दुःख। ब्रिटिश राज्य से

कुछ सुख भी मिले हैं—शान्ति, डाक, पुलिस, रेलवे, बिजली, गैस की रोशनी वगैरह के; परन्तु ये सुख ऐसे हैं, जो भांग, गाँजा, शराब और अफीम से उत्पन्न होते हैं, जिनसे भीतर ही भीतर प्राण क्षीण होते जाते हैं, जब कि बाहर से दिखाऊ स्फूर्ति मालूम पड़ती है; जिससे स्वाधीनता हर प्रकार कम होती जा रही है, परवशता बढ़ती जा रही है; और ज्यों-ज्यों परवशता बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों हमारा तिरस्कार बढ़ता जा रहा है और भांग, शराब, अफीम पिलाकर हमारी सारी दौलत बर्बाद की जाती है।

दोष राजनीति के तरीके का है। सरकार का सिद्धान्त यह नहीं कि भारतवासियों को सुख मिले; सिद्धान्त यह है कि राज्य की इज्जत बढ़े। इस राज्य की नीयत यह नहीं कि भारतीयों और अंग्रेजों में बराबरी, भाई-चारा और मनुष्यत्व का बर्ताव रहे; बल्कि यह है कि भारतीय सदा शासित रहें—दुधारी गाय और हल चलानेवाले बैल रहें।

उत्तम, मध्यम और अधम राजा

बाबू भगवानदास ने राजा-प्रजा का सम्बन्ध बहुत बढ़िया ढंग से बताया।

इस देश के पुरातन सिद्धान्तों के अनुसार तो राजा क्षत्रिय वृत्ति-वाला होना चाहिए। प्रजा की रक्षा करके उससे कर लेकर राज्य का प्रबंध करे, वह राजा उत्तम कहलाता है। जो राजा स्वयं व्यापार करके अपनी आमदनी बढ़ाये, वह वैश्य वृत्तिवाला राजा मध्यम कहलाता है; क्योंकि उससे प्रजा का व्यापार-धंधा नष्ट होता है। परन्तु जो राजा नीच रोजगार करे और कराये—जैसे कि आबकारी और अफीम का प्रचार और बिक्री—वह अधम है। इस नये राज्य में शराब और अफीम का व्यवसाय किया जाता है।······शिक्षा की जो पद्धति नये राज्य ने हमारे देश में प्रचलित की है, उससे हम नया धन पैदा करने का उपाय नहीं सीखते। केवल एक मुँह से रोटी और जेब से रुपया लेकर दूसरे के मुँह और जेब में रखने की चतुराई सिखायी जाती है। यही इस राज का दोष है। इस देश में लोगों को बदमाशी के धंधे सीखने और करने पड़ते

हैं, क्योंकि पहले के सारे रोजगार तो विलायती रोजगार ने नष्ट कर डाले और यहाँ की नीति का वातावरण दूषित कर दिया।

संक्षेप में अब तक की इन दुःखों को दूर करने की प्रणाली का वर्णन करके बाबू भगवानदास ने उस प्रणाली से मिले हुए सुधारों का मायावी स्वरूप दिखा दिया। पंजाब और खिलाफत भयंकर अपमान हैं, यह थोड़े ही वाक्यों में कह दिया और उसके लिए जो शीघ्र उपाय काम में लिया गया है, उसकी चर्चा में उतरे।

असहयोग 'राज्यमान्य' (constitutional) नहीं है, इस भ्रम का भगवानदासजी ने पहले खंडन किया। उन्होंने बताया कि इस राज्य में यह तय करना कठिन है कि अमुक 'वैध' है और अमुक 'अवैध' है। अमृतसर में कांग्रेस करने की एक बार मनाई हो चुकी थी, बाद में अनुमति मिल गयी। यदि मनाई रहती, तो कांग्रेस 'वैध' नहीं थी, इजाजत मिल गयी, तो 'वैध' हो गयी। सन् १९१७ की श्रीमती बेसेंट की नजरबन्दी का विरोध करने को कलकत्ते में मनाई होने पर भी सभा हुई, तो लॉर्ड रोनाल्डशे ने मनाई हटा ली और सभा 'वैध' हो गयी! 'वैध' और 'अवैध' करार देना तो अंग्रेज कर्मचारियों के बायें हाथ का खेल है। रौलट ऐक्ट, सिडीशियस मीटिंग्स ऐक्ट, डिफेंस ऑफ इण्डिया ऐक्ट, प्रेस ऐक्ट, गवर्नर जनरल के आर्डिनेंस, मार्शल लॉ आदि सब 'वैध' हों, तो लोगों के प्राण लेना भी 'वैध' है।

हमारा धर्म क्या कहता है ?

पश्चिम के विलायती कानून कुछ भी कहें, परन्तु इस देश के हजारों वर्ष के पुराने धर्म के कानून, जो आदिराज मनु के नाम से प्रसिद्ध हैं और उनके बाद लिखी गयी शुक्र और व्यासादि ऋषियों की नीति तो स्पष्ट कहती है कि यदि राजा और उसके नौकर अधर्म करें, अन्याय करें और सही रास्ता छोड़कर कुपथ पर चलें और प्रजा को सतायें, तो प्रजा की तरफ से उसका निग्रह होना चाहिए, दण्ड होना चाहिए।

पुराने जमाने में तो राजा को प्रतिज्ञा लेनी पड़ती थी और राजा को चेतावनी दी जाती थी कि वह कर लेकर प्रजा का वैतनिक नौकर और गुलाम बनकर रहे और अपना आराम छोड़कर प्रजा को आराम दे। इतना ही नहीं, यदि अपनी मनमानी से वह प्रजा को दुःख देगा, तो जो दण्ड प्रजा में से दुष्ट जनों का दमन करने को ठहराया गया है, उसी दण्ड से राजा का दमन होगा।

इन सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए भगवानदासजी द्वारा दिये गये उद्धरण ज्यों के त्यों यहाँ दे देता हूँ :

यथा हि गर्भिणी हित्वा स्वं प्रियं मनसोऽनुगम्।
गर्भस्य हितमाधत्ते तथा राज्ञाप्यसंशयम्॥
वर्तितव्यं कुरुश्रेष्ठ सदा धर्मानुवर्तिना।
स्वं प्रियं तु परित्यज्य यद्यल्लोकहितं भवेत्॥[1]

(म० भा० शां० अ० ५५)

प्रजा सूद्विजते यस्माद्यत्कर्म परिनिन्दति।
त्यज्यते धनिकैर्यस्तु गुणिभिः स नृपाधमः॥
नरश्चेत्कृषिगोरक्ष्यं वाणिज्यं चाप्यनुष्ठितः।
संशयं लभते किंचित्तेन राजा विगर्ह्यते॥
अधर्मशीलो नृपतिर्यथा तं भीषयेज्जनः।
वहूनामैकमत्यं हि नृपतेर्वलवत्तरम्।
वहुसूत्रकृतो रज्जुः सिंहाद्याकर्षणक्षमः।[2]

---

१. जिस प्रकार गर्भवती स्त्री अपनी मनपसन्द वस्तुओं का त्याग करके केवल वही सेवन करती है, जिससे गर्भ का ही हित हो, वैसे ही हे कुरुश्रेष्ठ (युधिष्ठिर), निरंतर धर्मानुसार व्यवहार करनेवाले राजा को भी अपनी पसंद की चीजें छोड़कर ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए, जिससे लोगों का हित हो।

२. जिससे प्रजा वहुत दुःख पाती है, जिसके काम की चारों ओर निन्दा की जाती है और जिसका गुणवान् और धनवान् लोग संग नहीं करते, वह राजा अधम है।

यदि राजा इतने से भी न समझे तो

नवीनकरशुल्कादेर्लोक उद्विजते यतः ।
गुणनीतिबलद्वेषो कुलभूतोऽप्यधार्मिकः ।।
नृपो यदि भवेत्तं तु त्यजेद्राष्ट्रविनाशकम् ।
तत्पदे तस्य कुलजं गुणयुक्तं पुरोहितः ।।
प्रकृत्यनुमतिं कृत्वा स्थापयेद्राज्यगुप्तये ।[1]

('शुक्रनीति' अ० २७४-२७५)

अंतिम दंड मनु भगवान् इस प्रकार बताते हैं :

कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते ।
दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्मभिः ।
धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम् ।
वेनो विनष्टोऽविनयान्नहुषश्चैव पार्थिवः ।
सुदा पैजवनश्चैव सुमुखो निमिरेव च ।।[2]

खेती, गोपालन और व्यापार करनेवाले मनुष्यों को ये धंधे करने में संशय या खतरा हो, तो इससे राजा की ही निन्दा होती है।

अधर्मी राजा को लोगों द्वारा डर दिखाना चाहिए। अनेक लोगों की एकता या एकमत राजा के बल से भी अधिक बलवान् है, जैसे कि अनेक तंतुओं से बनी हुई रस्सी से सिंह वगैरह जैसे बलवान् प्राणियों को भी बांधकर खेंचा जा सकता है।

१. नये करों से प्रजा को उद्वेग होता है; इसलिए ऐसा करनेवाला राजा राजकुल में जनमा हो, तो भी यदि वह गुण और नीति से द्वेष करनेवाला और अधार्मिक हो, तो यह समझकर कि वह राष्ट्र का विनाश करनेवाला है, उसका त्याग करना चाहिए। और उसके स्थान पर उसके कुल में उत्पन्न किसी गुणवान् पुरुष को राज्य की रक्षा होने के लिए प्रजा की अनुमति लेकर पुरोहित को गद्दी पर बिठाना चाहिए।

२. विषय-लम्पट, क्रोधी और क्षुद्र वृत्तिवाला राजा दण्ड से ही अमात्य वगैरह के द्वारा मारा जाता है। दंड महातेजस्वी होता है; वह नीच वृत्तिवाले या असंस्कारी राजा द्वारा कठिनता से धारण किया जाता है। दण्ड राजधर्म से विचलित राजा का उसके बान्धवों सहित नाश करता है।

वेन और नहुष तथा पिजवन का पुत्र सुदा तथा सुमुखी निमि—ये सब राजा अपने अविनय या उद्धतता के कारण विनाश को प्राप्त हुए।

इस प्रकार हमारे देश के पुराने 'संविधान' के अनुसार राजा की नीति-अनीति की जाँच हो सकती थी और राजा का कसूर साबित होने पर अपराध की मात्रा के अनुसार सजा भी होती थी। सिर्फ इस प्रकार जाँच करने और दण्ड देने का अधिकार सच्चे साधु पुरुषों को था।

परन्तु सरकार ने तो 'वैध' के चाहे सो अर्थ किये हैं। हमारे विलायती भाइयों ने देश का संविधान ऐसा बनाया है कि जिससे राजा केवल पुतला बनकर रहता है। सब काम राजा के प्रतिनिधि करते हैं; और देखने लायक बात यह है कि प्रधानमंत्री खुद तो 'अवैध' वस्तु है, क्योंकि उसका नाम विलायती कानून में नहीं है। वह भी अपने पद पर तभी तक कायम रह सकता है, जब तक लोकमत का समर्थन हो।

इस देश में अंग्रेजों ने संविधान ऐसा बनाया है कि उसमें न राजा है, न प्रजा। कुल अख्तियार केवल नौकरों के हाथ में है; और इन नौकरों को चुनने या निकालने का एक भी अधिकार जनता के पास नहीं है।

इस प्रकार 'असहयोग' की वैधता नहीं, तो धर्म-मान्यता समझाकर बाबू भगवानदास ने असहयोग-सम्बन्धी नरम-गरम दल के विचारों का विवेचन किया और अपना मत बताया। भगवानदासजी कांग्रेस के प्रस्ताव की सभी बातें स्वीकार नहीं करते। उनका खयाल है कि धारासभाओं में अच्छे-अच्छे आदमी नहीं जायँगे, तो बुरे चले जायँगे और धारासभाओं का काम ठीक नहीं चलेगा और स्कूल-कॉलेज भी उचित व्यवस्था के बिना चल नहीं सकेंगे। अब तक के काम का कोई फल नहीं निकला, तो एक वर्ष के भीतर हम क्या कर लेंगे? महात्मा गांधी, पंडित मोतीलाल नेहरू और श्री विट्ठलभाई पटेल साहब ने जो कार्यक्रम तैयार किया है, वह नहीं से तो कुछ अच्छा है; परन्तु कोई संगठन नहीं, हमारे नियंत्रण के रोजगार हमारे हाथ में नहीं कि वकील अपनी वकालत छोड़कर शुरू कर सकें। हाँ, ईश्वर की सहायता टपक पड़े, तो कुछ हो सकता है; परन्तु ईश्वर की मदद न मिले और एक वर्ष में कुछ न हो, तो बड़ी भारी मूर्खता होगी और परतंत्रता पहले से अधिक मजबूत हो जायगी।

साथ ही देश में क्रोध, आवेश इत्यादि का पार नहीं, क्रोध उत्पन्न करनेवाली वस्तुओं का पार नहीं, तब शान्ति से और काम करनेवाले योग्य मनुष्यों के बिना असहयोग जैसा शस्त्र कैसे चलाया जा सकेगा ?

तब उपाय क्या है ? बाबू भगवानदास ने उपसंहार करते हुए बताया कि उपाय केवल हमारे प्राचीन ग्रंथों में उपलब्ध 'विद्या और तपस्या' का है। जिन महात्मा गांधी की विद्या और तपस्या से विवश होकर इंग्लैण्ड का मंत्रिमंडल तक थर्रा रहा है, वैसे अनेक गांधी हों—ऐसी विद्या और तपस्यावाले बहुत से गांधी हों—तो ही उद्धार है। ऐसी विद्या और तपस्या की सम्पत्ति प्राप्त देश-सेवक मंडल तैयार कीजिये, जो अपना सारा समय देश को अर्पण करके कुर्बानी के लिए तैयार रहे। हमारे लिए अजीगर्त और इब्राहीम जैसी कुर्बानियाँ किये बिना दूसरा कोई उपाय नहीं।

बाबू भगवानदास के भाषण के ऊपर दिये हुए सार से पता लगेगा कि वे तैयारी पर खूब जोर देते हैं और यह बात ठीक है। परन्तु हम तैयार नहीं, इसका यह अर्थ नहीं कि तैयार हो नहीं सकते और तैयार होने तक इंतजार करते रहें, तो उचित मुहूर्त खो बैठेंगे। विद्या, तपस्या और त्याग का उपदेश तो सभी के संग्रह करने लायक है।

प्रस्ताव

इस सुन्दर भाषण के बाद दूसरे दिन परिषद् में जो पहला प्रस्ताव लाया गया, वह कांग्रेस के ध्येय में उचित परिवर्तन करने की कांग्रेस को सिफारिश करने के बारे में था। भाई सुन्दरलाल, जवाहरलाल नेहरू वगैरह उस प्रस्ताव के समर्थन में बोले। इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में बोलते हुए एक सज्जन ने एक मजेदार मिसाल दी : "एक स्त्री अदालत में गयी। उसे न्यायाधीश ने पूछा, 'तुम्हारी उम्र क्या है ?' उसने कहा, 'पचीस।' न्यायाधीश ने पूछा, 'तुम पाँच वर्ष पहले आयी थी, तब भी तुमने पचीस वर्ष की उम्र बतायी थी और अब भी तुम पचीस वर्ष की हो ?' स्त्री ने कहा, 'हाँ, मैं तो वैसी की वैसी ही हूँ।' हमारी कांग्रेस को उस स्त्री की तरह वैसी की वैसी ही नहीं रहना चाहिए।"

यह प्रस्ताव पास हो जाने के बाद यह प्रस्ताव उपस्थित हुआ कि यह परिषद् कांग्रेस द्वारा स्वीकृत असहयोग का प्रस्ताव मंजूर करती है और उसे अमल में लाने के लिए कार्रवाई करने की प्रान्तीय समिति से सिफारिश करती है। इसके पेश होने के बाद एक भाई की ओर से उस पर संशोधन लाया गया कि 'परिषद् असहयोग के सिद्धान्त को स्वीकार करती है, परन्तु स्कूल-कॉलेज-त्याग, न्यायालय-त्याग और धारासभा-त्याग की कार्रवाई उचित नहीं है, इसलिए नागपुर-कांग्रेस से सिफारिश करती है कि कोई अन्य उचित उपाय करे।' इन सज्जन की दी गयी दलीलों में से एक यह थी। उनका भाषण एक ही प्रश्न में रखा जा सकता है: 'अब तक क्या काम हुआ? कितनी पाठशालाएँ खाली हुईं? कितने वकीलों ने वकालत छोड़ी?'—सौभाग्य से यह प्रश्न तो नहीं पूछा गया कि कितने आदमी धारासभाओं में जाने से रुके?

यहाँ परिषद् की कार्रवाई बन्द हो गयी। दूसरे दिन उसी प्रस्ताव पर बोलनेवाले स्वामी श्रद्धानंदजी, अलीभाई, माननीय पंडित मालवीयजी, पंडित मोतीलालजी, गांधीजी इत्यादि के नाम पहले ही घोषित कर दिये गये थे। इसलिए सभा में एक भी जगह खाली नहीं रही थी।

पंडित मोतीलालजी

पंडितजी ने उन प्रश्नों का जो एक ही जवाब हो सकता है, वह दिया: 'Circumspect यानी अपने आसपास आँखें खोलकर देखिये। अब तक के थोड़े से समय में कितना काम हुआ, सो सुनाया। 'क्रमशः' शब्द जो गांधीजी ने उन्हींके कारण प्रस्ताव में शामिल किया था, उसका अर्थ समझाया और अपना ही उदाहरण देकर दूसरे वकीलों से अपना पेशा छोड़ने की प्रार्थना की। उन्होंने स्पष्ट किया कि 'क्रमशः' शब्द का कभी यह अर्थ नहीं होता कि मनुष्य धीरे-धीरे अपनी कमाई कम करता रहे और अन्त में अनेक वर्षों में सफेद बाल होने का समय आने पर छोड़े। वे शब्द तो इसीलिए रखे गये थे कि जो वचन पहले से दिये हुए हैं, उन्हें यथाशक्ति जल्दी पूरा करके उनकी रक्षा की जा सके।

मालवीयजी

मालवीयजी का भाषण उनके पिछले दो महीने के सभी भाषणों से विलक्षण था। अपनी स्थिति का समर्थन करने के लिए इस समय पंडितजी ने जो दलीलें काम में लीं, दुःख के साथ कहना पड़ता है कि वे पंडितजी के मुँह में शोभा नहीं देती थीं।

उन्होंने कहा, "आप सरकार के साथ सम्बन्ध छोड़ दें तो इससे मेरा झगड़ा नहीं, लड़कों को पाठशालाओं से निकालें तो उससे मेरा झगड़ा नहीं, वकालत छोड़ें तो उससे भी मेरा झगड़ा नहीं, परन्तु जब कांग्रेस और कान्फरेंस द्वारा आप लोगों से ऐसा करने की सिफारिश करते हैं, तब मेरे खयाल से आप देश की हानि करते हैं।"

देश में दी जानेवाली शिक्षा ठीक नहीं, उसमें धर्म का तत्त्व नहीं, इसलिए नया विश्वविद्यालय स्थापित करना चाहिए, ऐसी जबर्दस्त दलीलों से एक करोड़ रुपया देश में से इकट्ठा करके हिन्दू विश्वविद्यालय खड़ा करनेवाले पंडितजी के मुँह से इसके बाद जो दलीलें निकलीं, वे आश्चर्य पैदा करनेवाली थीं। उन्होंने पूछा, "आप यह कहते हैं कि अभी जो शिक्षा मिल रही है, वह गुलाम बनाती है, इसलिए उसे छोड़ना चाहिए, तो मैं पूछता हूँ कि आपमें से बड़ों ने क्या शिक्षा पायी थी? आपके गांधी, श्रद्धानंदजी, मुहम्मदअली, मोतीलालजी क्या सीखे थे? यही शिक्षा पाकर वे देशाभिमान सीखे, देशप्रेमी बने।"

"अंग्रेज तालीम न देते, तो गांधीजी, श्रद्धानंदजी जैसे संन्यासी किस प्रकार राजकाज में भाग लेने निकल पड़ते?

"मौजूदा शिक्षा में खामी है, परन्तु उस खामी को सुधारिये; विद्यालयों में धर्म की और स्वदेश-भक्ति की शिक्षा दीजिये; वैसी शिक्षा सरकार न देने दे, तो वे स्कूल—विद्यालय बन्द कीजिये।" उन्होंने वर्तमान पद्धति की चलती रेलगाड़ी से उपमा दी: "यह रेलगाड़ी चल रही है। खामी सिर्फ इतनी ही है कि स्टेशन पर पानी नहीं मिलता। तो स्टेशन-स्टेशन पर पानी रखवाइये, परन्तु ऐसा न करके यह कहने में क्या बुद्धिमानी है

कि रेलगाड़ी ही बन्द कर दो, पुरानी बैलगाड़ियों से काम लेने का विचार करो ?

"इस शिक्षा में रोग क्या है ? कोई रोग नहीं। उससे गोखले, रानडे और दादाभाई पैदा हुए। यह शिक्षा पाकर ही हम अंग्रेजों से नाराज हुए हैं। पाठशालाएँ हमारी, उनमें पढ़ानेवाले हमारे ही लोग और उन्हें चलाने के लिए हमारा ही रुपया—उसे लेने से क्यों इनकार करें ? सरकार के साथ हमारा सम्बन्ध संरक्षक और नाबालिग का है। रुपया हमारा है, सरकार न दे तो हम लड़कर लेते हैं। सरकार से मदद लेने के दो तरीके हैं। एक गुलाम का तरीका और दूसरा मालिक का। हम मालिक के तरीके से मदद लेना चाहते हैं।"

धारासभाओं में जाने के बारे में बोलते हुए उन्होंने कहा : "जो लोग स्वराज्य लेने की शपथ लेकर जायँगे, क्या आप उन्हें भी रोकेंगे ? धारासभा में जाकर प्रस्ताव करें कि हमें लॉर्ड चेम्सफर्ड नहीं चाहिए और फिर भी लॉर्ड चेम्सफर्ड न जायँ, तो धारासभा से उठ जायँ। इसमें अधिक गौरव है या पहले से ही धारासभा में न जाने में अधिक गौरव है ? और अन्त में चुन लिये जाने पर भी आप वहाँ जाने को बँधे नहीं हैं। आप अपनी जगह खाली रख सकते हैं। आप नहीं जायँगे तो कुछ जमींदार, जिन्होंने विषैली शिक्षा नहीं पायी, जायँगे और वे वहाँ जाकर क्या करेंगे ? मैदान में कूदकर लड़ने के बजाय मैदान से हट क्यों रहे हो ?"

ये दलीलें इतने विस्तारपूर्वक देने का कारण यह है कि इनमें से बहुत सी दलीलें साधारण हैं और तुरंत उड़ सकती हैं। 'नवजीवन' के पन्नों में तो उनमें से अधिकांश का खंडन हो चुका है और यह जो माना गया था कि पंडितजी जैसे पुरुष तो ऐसा हरगिज नहीं करेंगे, सो अब गलत साबित हो गया। पंडितजी ने अन्त में पोच-से-पोच हथियारों का उपयोग किया है, इससे दुःख होता है।

मुहम्मदअली

इसके बाद मुहम्मदअली उठे। उन्हें उपर्युक्त दलीलों की धज्जियाँ उड़ाने में क्या मुश्किल थी ? उन्होंने कहा, "इतने वर्षों में मोतीलालजी जैसे इने-गिनों के दाँत निकले हैं और आँखों का अँधेरा दूर हुआ है, यह देश का सौभाग्य है या दुर्भाग्य ? आज हजारों मोतीलालजी होते, उसके बजाय एक मोतीलाल है, इसकी जिम्मेदारी मौजूदा तालीम की नहीं है, तो किसकी है ? महान् दुःख की बात यह है कि इस शिक्षा की महामाया हमें भुलावे में डाले हुए है; इस जहर को हम अमृत समझ रहे हैं।

"पंडितजी पढ़ाई में रद्दोबदल कराने की बात करते हैं ! पढ़ाई में क्या तबदीली करेंगे ? जब तक पहला पाठ गुलामी का है, तब तक दूसरे हजारों आजादी के पाठों से क्या होगा ? इस 'प्रथा' में जहर भरा है और इस प्रथा के विरुद्ध हमारा विद्रोह है।"

गांधीजी

यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि गांधीजी को पंडितजी के भाषण से दुःख हुआ है। उन्होंने उनकी एक भी दलील को स्पर्श न करके इतना ही कहा कि "जिस हुकूमत का और जिसकी शिक्षा का यह प्रभाव पड़ रहा है कि उसके अधीन रहे हुए सारे देश का भला करने का मंत्र जपनेवाले मेरे भाई मालवीयजी यह मान रहे हैं कि इस हुकूमत से इस तालीम के जरिये कुछ हासिल किया जा सकता है, उस हुकूमत के साथ मैं आज क्षणभर भी सहयोग नहीं कर सकता।"

असहयोग के विषय में उनके जो विचार पहले बताये गये हैं, वे ही थोड़े में उन्होंने हिन्दुस्तानी में बताये और कहा कि "जो सरकार पंजाब जैसे घोर अन्याय करके पंजाब को भूल जाने की सलाह देने जैसी बेहयाई करती है, मेसोपोटेमियाँ में दूसरों के गले में गुलामी का फंदा डालने के लिए जो सरकार सिपाही भेज रही है, जिस सरकार के स्कूल-कॉलेजों में ऐसे पापाचार होने पर भी यूनियन जैक की सलामी लिवाई जाती है,

उस सरकार की धारासभाओं में, न्यायालयों में और शिक्षा-संस्थाओं में जाना हराम है।"

शौकतअली की माताजी

अलीभाइयों की माताजी के बुर्का डालकर मंच पर आते ही सारी सभा ने खड़े होकर उनका स्वागत किया। पहले तो उनकी आवाज धीमी होने के कारण उनका कहा हुआ जोर की आवाज में सुनाने के लिए शौकतअली खड़े हुए। शुरू का वाक्य शौकतअली ने कह सुनाया : "ऐसे जलसों में आने का पर्दानशीन औरतों का रिवाज नहीं; परन्तु अब ऐसा समय आ गया है कि केवल मेरे जैसी बुजुर्ग ही नहीं, परन्तु जवान लड़कियाँ भी इन जलसों में भाग लेंगी।" इस वाक्य का लोगों ने बड़े हर्षनाद के साथ स्वागत किया और उस हर्षनाद से मानो उनकी आवाज में भी जोर आ गया हो, इसलिए वे खुद ही बोलने लगीं। दो-तीन मिनट बोली होंगी, परन्तु उसका चमत्कारिक असर हुआ। उन्होंने पूछा, "मैं आपसे पूछती हूँ कि खुदा जोरावर है या सरकार? आपको पैदा किसने किया? आप जान-माल बचाकर क्या इज्जत हासिल करेंगे? हिम्मत को मजबूत कीजिये, खुदा को याद कीजिये। मुसलमान के लिए इसलाम से ज्यादा कोई चीज नहीं। मेरे अपने लड़के मेरे नहीं, खुदा के हैं। खुदा उन्हें मारे या बचाये। मैंने उन्हें खुदा को सौंप दिया है। खुदा का डर करो, इन्सान का क्या डर करते हो? खुदा तुम्हें ताकत दे—इतना करने की कि जिससे तुम्हारी, तुम्हारे देश की और तुम्हारे धर्म की इज्जत कायम रहे। हिन्दू-मुसलमान एक हो जाओ। फिर सरकार तुम्हें मार नहीं सकती। और मरने का एक वक्त है।" इसका क्या असर हुआ होगा, यह तो इन थोड़े से हृदयभेदी वाक्य पढ़ने से ही कल्पना की जा सकती है। मत लेने पर दो या तीन हाथ प्रस्ताव के विरुद्ध थे। बाबू भगवानदास ने प्रस्ताव पास हुआ घोषित करते हुए बड़े औदार्य से कहा, "अलीभाइयों की

माता नहीं, परन्तु हिन्दू और मुसलमान दो जातिरूपी पुत्रों की माता—इस देवी ने हमें आशीर्वाद दिया है। हमारी कुशल है।"

विश्वविद्यालयों से असहयोग का प्रस्ताव

परन्तु इससे भी अधिक महत्त्व का प्रस्ताव तो अभी तक बाकी था। वह प्रस्ताव सम्बद्ध लोगों से यह सिफारिश करनेवाला था कि मुसलिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ और काशी का हिन्दू विश्वविद्यालय सरकारी मदद लेना बन्द कर दें और सरकार का 'चार्टर' फाड़ डालें और ऐसा न हो तो विद्यार्थी इन संस्थाओं को खाली कर दें। उसके लिए बोलनेवाले चुनने में भी बड़ा औचित्य था। अलीगढ़ के लिए खड़े हुए शौकतअली, जिन्होंने अलीगढ़ कॉलेज को अपनी माता की तरह चाहा है, जिसकी समृद्धि पर उन्होंने अभिमान किया है। काशी विश्वविद्यालय के लिए खड़े हुए पंडितजी के दिली दोस्त और विश्वविद्यालय को नख-शिख तक जाननेवाले बाबू शिवप्रसाद गुप्त।

मौ० शौकतअली ने कहा, "लाख रुपये की गंदी मदद सरकार को लौटाकर शिक्षा में असहयोग करने की भारी परीक्षाओं में पास होना अलीगढ़ के भाग्य में है। बारह सौ लड़कों को खाली करके खिलाफत की सेवा में भेज सकूँ, तो उस तालीम से ज्यादा बढ़िया तालीम में उन्हें और कौनसी दिला सकूँगा?"

बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने अत्यंत विनय और नम्रता से पंडितजी की शिक्षा-सम्बन्धी कल्पना की विचित्रता का पर्दाफाश किया। उन्होंने कहा: "जिन्होंने सन् १९०६ से १९१० तक पंडित मालवीयजी के अमृतभरे भाषण सुने हैं, उन्हें आज का भाषण सुनकर बेहद दुःख हुए बिना नहीं रह सकता। उन्होंने यह विश्वविद्यालय स्थापित करने के लिए देश के सामने घोषणा की थी कि 'वर्तमान शिक्षा तीन कारणों से दूषित है, जिनसे मौजूदा स्कूल-कॉलेज नहीं चल सकते: (१) उनमें मातृभाषा द्वारा शिक्षा न दी जाने से रचनात्मक शक्ति का नाश होता है।

(२) उससे केवल वकील, डॉक्टर और क्लर्क पैदा होते हैं। (३) उसमें गलत इतिहास पढ़ाया जाता है।' इस प्रकार पुकार-पुकारकर कहनेवाले पंडितजी इस शिक्षा पर मोहित हैं! इस सरकार के लाख फेंक दें, तो करोड़ों इकट्ठे करने की शक्ति रखनेवाले पंडितजी को लाख रुपये हर साल नहीं मिल सकेंगे? और कहाँ गयी पंडितजी की धर्मपरायणता? इसी मुरादाबाद शहर में इसी विश्वविद्यालय के लिए रुपया जमा करते समय जब एक वेश्या ने तीन हजार रुपये सामने रख दिये, तब पंडितजी ने उसे अपवित्र दान कहकर स्वीकार नहीं किया था। वही पंडितजी सरकार के दान को उस दान से ज्यादा पवित्र समझते हैं?"

इस प्रकार मुरादाबाद-परिषद् खूब रही। अंतिम दिन की पिछली रात में गांधीजी ने एक छोटी-सी खानगी बैठक की थी। उसमें प्रान्त के लिए कार्य करनेवालों के नाम लिखे गये और घड़ीभर में साठ आदमियों के नाम लिखे गये! उनमें से चार जनों ने दूसरे दिन अपनी बैरिस्टरी छोड़ने का एलान किया। तीन जनों ने अपनी आनरेरी मजिस्ट्रेटी छोड़ने की घोषणा की। एक भाई ने अपना खिताब और अपनी पेंशन छोड़ने का एलान किया। इस प्रकार अमली काम करके मुरादाबाद-परिषद् ने बहुत-से विरोधियों का मुँह बंद कर दिया है। आलोचना का अमली काम जैसा और कोई ठोस जवाब नहीं है।

परिषद् के आखिरी दिन मुरादाबाद से अलीगढ़ जाना था। अलीगढ़ के रास्ते में ही चंदौसी आता है। चंदौसी तक मोटर में जाकर गांधीजी, स्वामी श्रद्धानंदजी और स्वामी सत्यदेवजी ने छोटे-छोटे भाषण दिये थे।

अलीगढ़ तो गांधीजी खास तौर पर शौकतअली के आग्रह पर ही गये थे। शौकतअली जहाँ-तहाँ यह कहते थे कि "पहले अलीगढ़ खाली करेंगे, तो हिन्दुस्तान पर भारी असर पड़ेगा और तभी गुजरात ने जो काम किया है, वैसा काम मुसल्मान कर बतायेंगे।" दोपहर को अलीगढ़ के विद्यार्थियों से कॉलेज के क्षेत्र में ही स्थित उनकी 'यूनियन' के मकान में गांधीजी, मौलाना शौकतअली और मुहम्मदअली मिले। शुरू में गांधीजी

ने विद्यार्थियों को असहयोग का सिद्धान्त समझाया। अपनी अनेक वर्षों की हुकूमत की सेवा—निःस्वार्थ सेवा—हुकूमत के साथ अनेक वर्षों का सहयोग, बोअर और जूलु-युद्ध तथा पिछली लड़ाई में सरकार को दिया हुआ अपना सहयोग और पिछले छह मास में सरकार पर से विश्वास का उठ जाना—ये सब बातें खूब विस्तार से उन्होंने कह सुनायीं और खूब अदब के साथ ट्रस्टियों से सरकारी मदद छोड़ देने की नोटिस देने और ऐसा न हो, तो अपने-अपने माँ-बाप से कॉलेज छोड़ देने की इजाजत देने की प्रार्थना करने की उन्होंने विद्यार्थियों से खास तौर पर माँग की। विद्यार्थियों में तो बहुत दिन से हलचल मची ही हुई थी। उनमें से बहुतों ने उठकर सवाल किये। एक बैरिस्टर ने, जो पहले अलीगढ़ के विद्यार्थी थे, खूब दलीलें कीं: "आपका काम खंडनात्मक (destructive) है, मंडनात्मक (constructive) नहीं। जब तक नया कॉलेज नहीं बना सकते, तब तक विद्यार्थी क्या करेंगे? सरकार से जितनी मदद मिलती है, उतनी दीजिये, बाद में कॉलेज बन्द हो सकता है। तालीम बहुत उत्तम नहीं मिलती, तो भी त्याज्य शिक्षा तो हरगिज नहीं मिलती।" ऐसी-ऐसी दलीलें दीं। गांधीजी ने स्वीकार किया, "यह काम खंडन का जरूर है, परन्तु अभी जो खराब घास उग आयी है, उसे जड़ से ही उखाड़ने की जरूरत है, जिससे उसमें अच्छा अनाज बोया जा सके।" तालीम के अच्छे-बुरेपन के बारे में गाधीजी ने इतना ही कहा कि "जहाँ आपको क्षणभर के लिए भी 'यूनियन जैक' को स्वीकार करना पड़ता है, जहाँ कोई भी गवर्नर या दूसरा बड़ा अधिकारी आये, तो उसे आपको कहना पड़ता है कि आप वफादार हैं और असल में आप वफादार नहीं, वहाँ आप क्षणभर भी कैसे ठहर सकते हैं?" रुपये की दलील के जवाब में गांधीजी ने कहा कि "स्वतंत्र हुए कॉलेज के लिए तो रुपये अधिक आ जायँगे और जहाँ शौकतअली और मुहम्मदअली जैसे बहादुर मौजूद हैं, वहाँ रुपये का क्या डर है?" मौ० शौकतअली ने भी इस सवाल-जवाब में बड़ा आवेशपूर्ण भाग लिया था। उन्होंने कहा कि "खिलाफत के लिए

यों कह सकते हैं कि १३ तारीख का सफर तो उड़ते-उड़ते किया। अलीगढ़ से बीस मील हाथरस मोटर से गये। वहाँ की सभा ठीक हुई। वहाँ से बीस मील मोटर से कासगंज गये, क्योंकि कासगंज से कानपुर की गाड़ी पकड़नी थी। कासगंज की सभा बड़ी व्यवस्थित थी, इसलिए गांधीजी को कासगंज से कुछ शान्ति मिली; परन्तु यह किसे पता था कि वही शान्ति रात को भंग हो जायगी? उस रात की दुःखदायक यात्रा का वर्णन गांधीजी ने 'यंग इंडिया' में किया है। उसका अनुवाद 'नवजीवन' में आ गया है, इसलिए मैं नहीं दे रहा हूँ। लोगों ने हर स्टेशन पर ऊधम मचाकर सारी रात घड़ीभर भी चैन नहीं लेने दिया। लोगों ने कभी गांधीजी के दर्शन नहीं किये थे, इसलिए पागल हो रहे थे। इस पागलपन का मूल्य अमृतसर के लोगों को भारी चुकाना पड़ा, क्योंकि इस पागलपन की सरकार को कोई कद्र नहीं है। हमारा यही पागलपन बना रहा, तो सरकार भविष्य में भी उसका दुरुपयोग करने में नहीं चूकेगी। इसलिए गांधीजी ने उपदेश दिया है कि इस असहयोग की लड़ाई में लोगों को एक-दूसरे से और आरंभ में अपने नेताओं से सहयोग करके अर्थात् जैसा वे कहें, वैसा करके ही लड़ाई में विजय प्राप्त करनी चाहिए। यही उपदेश प्रातःकाल में जो स्टेशन हमारे रास्ते में आये, वहाँ के लोगों को देते हुए गांधीजी १४ तारीख को कानपुर आ पहुँचे।

कानपुर में गांधीजी स्त्रियों की दो सभाओं में बोले। दोपहर को उन्होंने सरकार से सहायता न लेनेवाली एक गुजराती पाठशाला खोली और शाम को आमसभा में गये। शाम की सभा में उपस्थित लोगों की संख्या तीस से चालीस हजार तक बतायी जाती है। व्यवस्था की कमी तो यहाँ भी जान पड़ती थी। व्याख्यान-मंच तक पहुँचने में ही दस-पंद्रह मिनट लग गये होंगे। परन्तु सभा की कार्रवाई शुरू हो जाने के बाद जबर्दस्त शान्ति छायी रही। गांधीजी का भाषण व्यवस्था-शक्ति की आवश्यकता से शुरू हुआ। उन्होंने कहा, "हम भारत को हुकूमत करना

चाहते हैं, तो हममें अंग्रेजों की-सी व्यवस्था-शक्ति आनी चाहिए। मैंने इस जलसे से भी बड़ी सेना देखी है। उसके साथ कूच किया है। परन्तु उसमें मैंने बड़ा अनुशासन देखा। प्रातः दो बजे उठकर दस हजार मनुष्यों को लेकर मैंने स्वयं कूच किया है। रात को हमें हुक्म मिला था और सुबह तक तो चुपचाप खास स्थान पर पहुँच जाना था। सुबह तक हममें से न तो किसीने आपस में बातें कीं और न बीड़ी पीने को दियासलाई सुलगायी, परन्तु वहाँ तो तलवार से मुकाबला करना था। यहाँ तलवार छोड़कर मुकाबला करना है। इसलिए सैनिक तालीम से भी अधिक जबर्दस्त तालीम की जरूरत होगी। उस तालीम के बिना हमारा लड़ाई लड़ना बड़ा कठिन हो जायगा। लड़ाई में जीत की दूसरी कुंजी हिन्दू-मुसलिम प्रेम की है। जबानी मुहब्बत नहीं, परन्तु माँ-जाये भाइयों के बीच जो मुहब्बत होती है, मैं चाहता हूँ वैसी हिन्दू-मुसलमानों के बीच हो।" सरकार के साथ असहयोग का अर्थ है आपस में सहयोग। उन्होंने बताया कि आपसी सहयोग का भान न हो, तो असहयोग जारी रखना असंभव है। "आपस में सहयोग करके जो कुर्बानी होगी, उसमें कुछ और ही बल होगा। उसमें मकान नहीं जलाने होंगे; उसमें दिल को जलाना होगा और दिल को जलाये बिना दिल की कुर्बानी नहीं हो सकेगी।"

असहयोग के कार्यक्रम पर कुछ विवेचन करके उन्होंने उपसंहार करते हुए कहा : "यह सही है कि हमारा पक्ष सचाई का है, परन्तु सचाई के साथ कुर्बानी आवे, तभी सचाई जीत सकती है। सचाई की परीक्षा कुर्बानी है।"

मौ० मुहम्मदअली ने सदा की भाँति दो बातों पर खास जोर दिया : "एक तो यह कि किसी बाहरवाले पर विश्वास रखने में कोई सार नहीं; और दूसरी यह कि आपको अपनी आजादी बनाये रखनी है, तो अपने बाहर के पड़ोसियों की आजादी की भी रक्षा कीजिये। आज सारा यूरोप बर्बाद होकर बैठा है। दूसरों की गुलामी की जंजीरें अधिक मजबूत करने के लिए सरकार को भारत के ही गुलाम मिलते हैं। आप यह काम

जारी रखेंगे, तो यह निश्चित समझ लीजिये कि जिन्हें वे आपके द्वारा गुलाम बना रहे हैं, उनकी सहायता द्वारा आपकी गुलामी कायम रखने की यह सरकार कोशिश करेगी। यह सल्तनत आपको गुलामों से घेर-कर दिन-रात ऐसी स्थिति उत्पन्न करने की कोशिश में है कि आप कभी चूँ भी न कर सकें।"

लखनऊ की जबर्दस्त सभा

कानपुर छोड़कर हम लखनऊ गये। सारे प्रांत में सबसे कम जाग्रतिवाला लखनऊ माना जाता है। दो साल पहले जब गांधीजी सत्याग्रह की प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर कराने लखनऊ गये थे, तब वहाँ सभा करने में भी गांधीजी को बड़ी मुसीबत हुई थी। जैसे-तैसे सभा की गयी। और वह भी तभी हो सकी थी, जब हाल ही में दो वर्ष और नौ महीने की जेल भुगतकर आजाद हुए मालवी जफरुल्मुल्क ने अध्यक्ष बनने का बीड़ा उठा लिया था। उस सभा में आये भी मुश्किल से कोई पाँच सौ आदमी होंगे। उसी लखनऊ में १६ तारीख के दिन 'रिफाऐ-आम' का बड़ा मैदान मनुष्यों से उमड़ रहा था। व्यवस्था भी जबर्दस्त थी और व्याख्यानों की शुरुआत होते ही पचीस-तीस हजार की सारी सभा चित्रवत् बन गयी थी।

जहाँ यह सभा जबर्दस्त थी, वहाँ उसमें कमी यह थी कि शहर के नेताओं का नाम-निशान नहीं था। यह दुःख की बात तो है, परन्तु निराश करनेवाली बात नहीं है। लोग ही जाग्रत होकर सोते हुए नेताओं को जगायेंगे और वे नहीं जागेंगे, तो नेता नहीं रहेंगे। जैसे जमाना बदलता जा रहा है, वैसे लोगों में नये काम करनेवाले—कुर्बानी करने-वाले नेता पैदा होंगे।

गांधीजी ने अपना भाषण आरंभ करते हुए कहा कि "हमें तो बड़ी राष्ट्रीय सेना बनानी है। जबर्दस्त अनुशासन के बिना वैसी सेना नहीं बना सकेंगे।" आगे उन्होंने कहा कि "ब्रिटिश हुकूमत इस समय

शैतानियत की मूर्ति है। और जो खुदा के बन्दे हैं, वे शैतानियत के साथ मुहब्बत नहीं रख सकते।"

अनुशासन की आवश्यकता पर बोलते हुए गांधीजी स्वाभाविक रूप में ही मि० विलोबी की हत्या के बारे में बोले। उन्होंने कहा : "तुमने तलवार न उठाने की प्रतिज्ञा ली है, तो इस तरह छिटफुट हत्याओं का होना अनुशासन का गंभीर उल्लंघन सूचित करता है। मैं नहीं मानता कि इसलाम-धर्म में भी ऐसे अनुशासन-भंग की इजाजत है। जब तक मुसल्मान हिंसारहित असहयोग से बँधे हुए हैं, तब तक उन्हें यह विचार तक नहीं आना चाहिए कि तलवार उठाने से अच्छा काम होगा। इस हुकूमत ने बुराई की है, परन्तु बेगुनाह आदमियों को मार-कर तो हम सरकार की दमन और आतंक की नीति को ही प्रोत्साहन देंगे। इसलाम में तलवार के उपयोग की इजाजत जरूर है, परन्तु मेरा विश्वास है कि इस प्रकार सिर उड़ाने की बात तो इसलाम में भी नहीं होगी और मैं मानता हूँ कि उलेमा भी मेरे खयाल की ताईद करेंगे। आप (यानी मुसल्मान) जिस दिन हिंसा-रहित असहयोग का सिद्धांत छोड़कर तलवार उठाने का निश्चय करें, उस दिन अवश्य ही प्रत्येक यूरोपियन स्त्री, पुरुष और बच्चे को चेतावनी दे सकते हैं कि उनकी जिन्दगी जोखिम में है। परन्तु मैं ऐसी आशा रखूँगा कि आपको ऐसा निश्चय करने की नौबत नहीं आयेगी।"

हुकूमत को मिटाना फर्ज है

इसके बाद गांधीजी ने जफरुल्मुल्क की, जो उस दिन जेल में थे, अनुपस्थिति पर खेद प्रकट किया। उन्होंने कहा : "जफरुल्मुल्क तो अत्यन्त प्रामाणिक और निडर आदमी हैं, इसलिए उन्हें तो जेल में जाने से ही शान्ति मिलनेवाली है। वे किसलिए जेल में हैं? उन्होंने एक भाषण में कहा था कि यह हुकूमत मिट्टी में मिलेगी, इसलिए और सरकार की रँगरूटी में जाना दोजख का रास्ता अपनाना है, इसलिए।" गांधीजी

ने कहा, "इस हुकूमत ने इतने घोर अत्याचार किये हैं कि वह खुदा और हिन्दुस्तान के आगे तोबा न करे, तो जरूर मिट्टी में मिलेगी। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि जब तक वह तोबा न करे, तब तक उसे मिटाना हर भारतीय का कर्तव्य है। यह कहना कि सरकार की रँगरूटी में जाना नर्क में जाने के समान है—अपराध हो, तो अवश्य ही यह अपराध करके साफ होना प्रत्येक व्यक्ति का फर्ज है।"

आगे चलकर गांधीजी ने बताया कि मौ० जफरुल्मुल्क का मुकदमा सार्वजनिक रूप में चलाने की माँग लोगों की तरफ से होना कितना गल्त है : "हम ऐसी माँग कर ही नहीं सकते। ऐसी माँग करना यह बताता है कि जेल में जाने की हमारी नीयत नहीं है। समझ में नहीं आता कि हम ऐसा क्यों करते हैं। खुद जफरुल्मुल्क के लिए तो जेल महल के समान है। हमें तो ऐसा काम करना चाहिए, जिससे सरकार त्राहि-त्राहि पुकारे और हमारा माँगा हुआ दे दे अथवा हमें समुद्र में डाल दे। गुलामी में रहने से समुद्र में पड़ना बेहतर है।"

"मैं सरकार की तुलना डाकू से करता रहा हूँ। कोई डाकू हमारी जायदाद लूट ले जाय और बाद में हमें आधी वापस देना चाहे, तो क्या हम उसे ले सकते हैं ? परन्तु यह सरकार तो डाकू से भी बुरी है। सरकार ने हमें थोथा बना दिया है। इतना ही नहीं, वह तो हमारी आत्मा पर भी अधिकार करने बैठी है। सरकार हमें गुलाम बनाने बैठी है। तो हमें उसे इतना ही कह देना है कि जब तक हमारा वित्तमात्र ही नहीं, बल्कि हमारी इज्जत, हमारी आजादी वापस न दो, तब तक तुमसे मुहब्बत रखना हराम है।"

मैं यहाँ मुहम्मदअली के लम्बे भाषण का सार नहीं दूँगा। खेरी की हत्या के बारे में मौलाना शौकतअली और मौलाना अब्दुल बारी के खास-खास उद्गार इस अवसर पर प्रकट करना जरूरी है।

खेरी की हत्या और शौकतअली

मौ० शौकतअली ने कहा कि इस हत्या का खिलाफत कमेटी ने

सम्बन्ध जोड़नेवाले लोग बिलकुल झूठे हैं। खिलाफत कमेटी ने हिंसा-रहित असहयोग की प्रतिज्ञा ली है। उसने तलवार उठाने का फरमान निकाला होता, तो एक विलोवी की नहीं, परन्तु एक हजार विलोवियों की हत्या होती। [इन उद्गारों का सभा में बहुत लोगों ने तालियों से स्वागत किया था, यह बता देना यहाँ जरूरी है।]

खेरी की हत्या और मौ० अब्दुल बारी

बाद में मौ० अब्दुल बारी साहब उठे। वे नमाज पढ़ने की स्थिति में घुटनों के बल बैठकर बोले; कारण उन्होंने यह बताया कि मैं एक आलिम की हैसियत से बोल रहा हूँ और खुदा को हाजिर रखकर बोल रहा हूँ।

उन्होंने कहा : "मैं समझता हूँ कि मुझसे खेरी की हत्या के बारे में बोलने को कहा गया है, इसलिए आलिम के नाते अपने विचार बताऊँगा। इस हत्या के लिए जितना दुःख मुझे हो रहा है, उतना शायद और किसीको नहीं होता होगा। परन्तु जब उस हत्यारे की निन्दा के प्रस्ताव पास किये जाते हैं, तब उनके पास कराने में मैं भाग नहीं ले सकता। यह बात ही उस आदमी और खुदा के बीच की है। मैं उसे अपराधी नहीं कह सकता। यह संभव है कि उस आदमी को ऐसा करते समय यह महसूस हुआ हो कि 'मैं खुदा की सेवा कर रहा हूँ।' मजहब तो उसे शहीद ही कहेगा। कुरान शरीफ में तो जिसे काफिर कहा है, उस पर तलवार चलाने की इजाजत है। जो आदमी जिहाद का एलान हो चुका समझता है, उसके लिए काफिरों के काफिले में सभी दुश्मन हैं, फिर भले ही वे दोषी हों या निर्दोष। वह शत्रु की टोली में है, इतना तय हुआ कि बात खत्म। आजकल की लड़ाई में भी क्या होता है? एक तरफ का सिपाही दूसरी तरफ के सिपाही को मारता है, इसमें कोई सिपाही सामनेवाले सिपाही का व्यक्तिगत रूप में कुछ बिगाड़ नहीं करता; परन्तु यह तो लड़ाई का कानून ही है। ऐसा ही जिहाद का भी है। जिस आदमी ने हत्या की, उसका गलत या सही यह खयाल था कि उसकी अंग्रेज लोगों के साथ दुश्मनी है। इसलिए उनमें से किसी पर भी तलवार खींची जा सकती है।

उसने जो हत्या की, उसके लिए उसे जन्नत मिले या जहन्नुम, यह खुदा के हाथ है। परन्तु हम उसकी निन्दा करनेवाले कौन? हमें मानना चाहिए कि वह तो शहीद था। परन्तु बात यह है कि हमने तो कुरान शरीफ के फरमान से भी गांधीजी के फरमान को ज्यादा पसन्द किया है।* हमने गांधीजी की गोद में अपना सिर रख दिया है, इसलिए हम तलवार नहीं उठा सकते।

"हमारी लड़ाई ही आज दूसरी तरह की है। और इस लड़ाई में हम तलवार न उठाने के लिए बँध चुके हैं। इस हत्या से खिलाफत के सवाल को जरा भी फायदा नहीं हुआ; उल्टे मैं मानता हूँ कि नुकसान पहुँचा है। शायद इस विचार में बहुत-से उलेमा मुझसे अलग होंगे। मैं हिंदुओं से हमदर्दी करके गोवध के विरुद्ध हो गया हूँ, इससे भी मेरी निन्दा हुई है। परन्तु मैं तो जब से लड़ाई में उतरा हूँ, तब से मुझे तो हिन्दू और गाय जितने प्रिय हैं, उतना कुछ भी प्रिय नहीं है।"

इस प्रकार मैंने अपने शब्दों में मौलाना साहब की दलील रख दी है। इसमें दोष भी हो सकता है। परन्तु मैंने उसे अपनी समझ और याद के अनुसार रख दिया है। वह प्रसंग इतना अधिक गंभीर था और उस पर विवेचन इतने अधिक तुले हुए शब्दों में किया गया था कि वे शब्द ज्यों-के-त्यों दिये बिना कुछ-न-कुछ अधूरापन रह ही जा सकता है।

१६ तारीख को शाहजहाँपुर और बरेली गये। शाहजहाँपुर का कोई खास जानने लायक हाल नहीं है। बरेली में लोगों का उत्साह अवर्णनीय था। १७ तारीख को सुबह अनेक संस्थाओं की तरफ से गांधीजी और अली भाइयों को मानपत्र दिये गये। इन मानपत्रों में—जिनकी संख्या सात थी—विशेष उल्लेखनीय मानपत्र बरेली की म्युनिसिपैलिटी का था। वह मानपत्र म्युनिसिपैलिटी की तरफ से सर्वसम्मति से दिया गया था। अध्यक्ष और बहुत-से सदस्य उपस्थित थे। उस मानपत्र में

* देखिये आगे दिया हुआ 'एक निर्दोष खून' नामक भाई का लेख।

असहयोग के लिए सहानुभूति प्रकट की गयी है। ऐसी निर्भयता दिखानेवाली म्युनिसिपैलिटी हमें अपने दौरे में यह पहली ही मिली है। गांधीजी ने उस मानपत्र का छोटा-सा ही उत्तर दिया। बहुत धन्यवाद देने के बाद उन्होंने कहा : "मैं आपसे यह आशा रखूँगा कि आप इतने निडर हो गये हैं, तो निडर ही रहियेगा। अमृतसर में सरकार ने म्युनिसिपैलिटी से जो नीच कृत्य कराये- लोगों को पानी पहुँचाना बंद करा दिया—उससे अधिक निर्दय कृत्य और क्या कहा जा सकता है? आप पर सितम गुजरे, तो भी अपनी स्वतंत्रता कायम रखियेगा, दबियेगा नहीं और अमृतसर म्युनिसिपैलिटी की तरह न कीजियेगा। दूसरी बात मैं यह कहता हूँ कि यदि आपमें शक्ति हो, तो आप अपनी पाठशालाओं को स्वतंत्र बना सकते हैं। सरकार की तरफ से मिलनेवाली मदद बन्द कर दें, तो आपकी पाठशालाएँ स्वतंत्र हो जायँगी। मैं चाहता हूँ कि आप इन दोनों मामलों में खूब विचार करें।"

एक निर्दोष भूल

'नवजीवन' के पिछले अंक में लखनऊ की भारी सभा का हाल सब बातों को देखते हुए भाई महादेव देसाई ने बहुत अच्छे ढंग से दिया है। उसीमें उन्होंने मौ० अब्दुल बारी साहब के भाषण का मुख्य विवरण भी दिया है। वह भाषण सबने बड़े ध्यान से सुना था। उसका अनर्थ मि० डगलस नामक एक ईसाई ने तो यहाँ तक किया कि असहयोग स्वीकार करके उन्होंने वकालत छोड़ दी थी, सो वापस अपना ली है और असहयोग का काम छोड़ दिया है। औरों पर भी उस भाषण का असर एक-सा नहीं पड़ा। मैं जानता हूँ कि महादेव देसाई मौलाना साहब की फारसी और अरबीमयी उर्दू पूरी तरह नहीं समझ सकते। उन्होंने जो विवरण दिया है, उसमें मेरी समझ में भूल की है। मौ० साहब के भाषण का मुझ पर दूसरा ही असर हुआ है। वह भाषण जिस तरह मुझे याद है, मैं ज्यों-का-त्यों दिये देता हूँ। ये शब्द मौ० साहब के नहीं माने जा

सकते, क्योंकि मैंने उस भाषण के कोई नोट नहीं लिये थे, परन्तु यह मेरा निश्चित खयाल है कि विचार जैसे-के-तैसे ही हैं।

"गांधीजी ने खेरी की घटना का जो विवेचन किया है, उसके बाद मेरा बोलना मैं अपना फर्ज समझता हूँ। मैं राजनैतिक विषय नहीं जानता। मैं भाषण देना नहीं चाहता। एक आलिम की हैसियत से ही बोलना चाहता हूँ। इसलिए बैठे-बैठे ही बोलूँगा। इस हत्या के बारे में बहुत-से लोगों ने बहुत-से उद्‌गार प्रकट किये हैं। उनमें से कुछ तो कुछ समझते ही नहीं। मैं तो अपने दीन के फरमान को जिस प्रकार जानता हूँ, उसे सोचकर ही अपनी राय देना चाहता हूँ। कोई कहता है कि हत्या करनेवाला आदमी जहन्नुम में जायगा। मैं ऐसा कभी नहीं कह सकता। इन्सान का दिल खुदा ही समझता है। इस आदमी ने किसलिए और किस प्रकार हत्या की, इसका मुझे क्या पता? इसलाम में दुश्मन को मारने का हक साफ तौर पर दिया हुआ है। दुश्मन में निर्दोष कौन और दोषी कौन, यह विचार नहीं किया जा सकता। लड़ाई में दुश्मन कौम के सभी आदमी मारे जा सकते हैं, यह प्रसिद्ध नियम है। मि० विलोबी काफिर थे, दुश्मन कौम के आदमी थे और यदि जिहाद की घोषणा हो गयी होती और ऐसे आदमी की भी बाकायदा हत्या हुई होती, तो वह आदमी अवश्य शहीद होता। परन्तु इस बार हम जिहाद नहीं कर रहे हैं। हमें गांधीजी ने दूसरा रास्ता बताया है और हमने देख लिया है कि इस समय हम जिहाद करके इसलाम को नहीं बचा सकते, हमारी ऐसी ताकत नहीं। गांधीजी ने हमें 'तर्के मवालात' करना बताया है और उसे हमने पसन्द किया है। इसके लिए कुरान शरीफ में निश्चित रूप में फरमान हैं। पैगम्बर साहब ने भी तेरह साल तक 'तर्के मवालात' अख्तियार किया था। मैंने गांधीजी की गोद में अपना सिर रख दिया है, इसलिए कुछ मुसलमान मुझसे नाराज हो गये हैं, परन्तु मैं कह सकता हूँ कि वे बिलकुल समझते ही नहीं। जिन काफिरों ने इसलाम को खतरे में डाला है, उनसे दोस्ती करने की तुलना में हिंदुओं से मित्रता करना मैं

अधिक पसन्द करता हूँ और उनकी खातिर गाय को बचा लेना भी जायज समझता हूँ। पैगम्बर साहब ने खुद बुतपरस्तों से दोस्ती की थी। जब तक खिलाफत कमेटी और आलिम लोग जिहाद का फरमान नहीं निकालते, तब तक हम तलवार नहीं उठा सकते। और इसलिए मि० विलोबी की हत्या के लिए मुझे दुःख होता है। मुझे पता चल जाता, तो मैं अवश्य इस हत्या को रोकता। परन्तु यह कहना और हत्या नापसन्दी जाहिर करना एक बात है और यह कहना कि हत्या करनेपर वाला जहन्नुम में जायगा, दूसरी बात है। उस आदमी के लिए जहन्नुम है या जन्नत, ऐसा प्रस्ताव तो सिर्फ खुदा ही कर सकता है। हम तो इतना ही कह सकते हैं कि इस हत्या से खिलाफत की लड़ाई को धक्का पहुँचा है और ऐसे कामों को हमें रोकना चाहिए।"

मौलाना साहब के भाषण को मैंने यों समझा है। इससे हम देख सकते हैं कि जब तक शार्ट हैण्ड रिपोर्ट न ली गयी हो, तब तक महत्त्वपूर्ण भाषणों का विवरण देना बड़ी जोखिम की बात है। भाई महादेव के विवरण से अनजाने मौलाना साहब के साथ बेइन्साफी हो गयी है। मौ० साहब ने यह नहीं कहा कि हत्यारा शहीद हो गया और मैं तो यह मानता हूँ कि ऐसा कहने से इसलाम की भी बदनामी होती है। जब जिहाद की घोषणा नहीं हुई, तब कोई मुसलमान अच्छे उद्देश्य से और खिलाफत की खातिर भी अपनी जिम्मेदारी पर हत्या करे, तो मेरी अल्प मति यह है कि वह शहीद नहीं हो सकता। वह जहन्नुम के योग्य न हो, यह दूसरी बात है और वह समझ में आ सकती है, परन्तु शहीदपन तो अच्छे काम का खास इनाम है। जिस काम के लिए हम यह स्वीकार करें कि उससे खिलाफत को धक्का पहुँचता है, उससे शहीद नहीं हो सकता। इसलिए मेरा खयाल है कि मौ० साहब के भाषण में यह वचन संभव नहीं हो सकता कि हत्यारा शहीद बन गया।

भाई महादेव की रिपोर्ट में दूसरी भूल मैं यह पाता हूँ कि उसमें यह कहा गया है कि मौ० साहब ने कुरान शरीफ के फरमानों से भी मेरे

फरमान ज्यादा पसन्द किये हैं। कोई मुसलमान कुरान शरीफ के फरमान की अपेक्षा किसी मुसलमान के फरमान को भी ज्यादा पसन्द नहीं कर सकता, तो फिर एक हिन्दू के फरमान की तो बात ही क्या ? जैसे हिन्दू के लिए गीता या वेद अन्तिम आज्ञा है, वैसे मुसलमान के लिए कुरान-शरीफ है और मौलाना साहब जैसे आलिम को मुझसे फरमान दिया ही नहीं जा सकता। मैं तो खिलाफत कमेटी को भी हुक्म नहीं दे सकता। मैं केवल सलाहकार ही हो सकता हूँ और हूँ।

अभी एक और भूल बताना रह गयी है। भाई महादेव ने मौ० साहब के भाषण का अन्तिम वाक्य यों दिया है :

"परन्तु मुझे तो जब से मैं इस लड़ाई में उतरा हूँ, तब से हिन्दू और गाय जितने प्रिय हैं, उतना कोई प्रिय नहीं।"

इस प्रकार मौलाना का कहा हुआ मुझे याद नहीं है और मैं मानता हूँ कि ऐसा वे नहीं कहेंगे। वे इतना ही कह सकते हैं कि औरों के मुकाबले में हिन्दू उन्हें इस समय अधिक प्यारे हैं। फिर भी यह भूल उपर्युक्त दो भूलों के मुकाबले जैसी नहीं है। पहली भूल से अज्ञानी लोगों को हत्या करने में प्रोत्साहन मिल जाता है, जो देना मौलाना साहब का कभी विचार न था और न है, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। दूसरी भूल से मौलाना साहब के प्रति अन्याय हो जाता है और मुसलमानों को दुःख मानने का भी कारण मिल जाता है। कुरान शरीफ के फरमान से और किसीके फरमान को कोई मुसलमान अधिक पसन्द करे, यह कट्टर मुसलमानों के लिए असह्य हो जाता है।

स्मृति के अनुसार रखी है। वह प्रसंग इतना अधिक गम्भीर था और उस पर विवेचन इतने अधिक तुले हुए शब्दों में किया गया था कि उसे शब्दशः दिये बिना इसमें कुछ-न-कुछ अधूरापन रह सकता है।"

भाई महादेव ने भी कोई शब्दशः रिपोर्ट तो ली नहीं थी। इसलिए जो अधूरापन मैंने देखा, वह पाठकों के सामने रख दिया है। मेरा अधूरापन दूसरे सुननेवाले अवश्य बता सकते हैं। एक पत्रकार के नाते मेरी क्या जिम्मेदारी है, यह मुझे इस घटना से सीख लेना होगा। प्रत्येक सम्पादक अपने पत्र की हर पंक्ति पर अंकुश नहीं रख सकता। मैंने यदि भाई महादेव की रिपोर्ट पहले देख ली होती, तो मैं उपर्युक्त परिवर्तन अवश्य करता। परन्तु मैं भाई महादेव का दोष निकालने को भी तैयार नहीं। रिपोर्टर अपना सुना हुआ और समझा हुआ प्रामाणिकता और शुद्ध बुद्धि से दे दे, तो उसने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया। पाठकों को सम्पादक और रिपोर्टरों की कठिनाइयों का खयाल करके हमेशा अखबारों में उचित सुधार करके पढ़ना चाहिए। ऐसा न करें, तो वे पत्र-संचालकों के साथ बड़ा अन्याय करते हैं और जितना लाभ वे उठा सकते हैं, उतना हरगिज नहीं उठा सकते।

अब रहे मि० डगलस, जिन्होंने मेरे ऊपर कहे अनुसार त्यागपत्र दिया है। इन भाई ने केवल जल्दबाजी की है। मौ० साहब ने ईसाइयों के बारे में 'काफिर' शब्द का प्रयोग किया, इससे उन्हें दुःख हुआ। यह दुःख मैं समझ सकता हूँ। काफिर शब्द काम में न लिया जाता, तो अधिक अच्छा होता। परन्तु मौ० साहब ने तो उस शब्द का प्रयोग शुद्ध हृदय से किया था और जिन अंग्रेजों को वे इस समय शत्रु के रूप में देख रहे हैं, उनके लिए वह प्रयोग था। फिर भी मि० डगलस ने जो कदम उठाया, उससे पहले उन्हें मौ० साहब से उनके कहने का अर्थ जरूर जान लेना चाहिए था। ऐसा न करके निहायत जल्दबाजी में उन्होंने अपना त्यागपत्र दे दिया, इससे मैं तो उनकी कार्रवाई को शक की नजर से देखता हूँ। मौ० साहब के वचन तीखे थे, परन्तु मुझे

विश्वास है कि वे किसी निर्दोष मनुष्य को बुरा लगने जैसे नहीं थे; और इसी प्रकार मुझे विश्वास है कि उनमें हत्या को प्रोत्साहन देने का भी किंचित् मात्र भाव नहीं था। उन्होंने तो अपने भाषण में शास्त्रार्थ दिया और अपने पर हुए आक्षेपों का खंडन किया।

१८-१०-'२० से २२-१०-'२०

पंजाब का दौरा

१८ अमृतसर
१९, २०, २१ लाहौर
२२ भिवानी

बरेली से संयुक्त प्रान्त का और दौरा कुछ कारणों से छोड़ देना पड़ा। अमृतसर में सिखों की भारी जाग्रति गांधीजी को उधर खींच रही थी। १८ तारीख को अमृतसर पहुँचे। दोपहर को खालसा कॉलेज के विद्यार्थियों से मिलाप हुआ। उन्हें आरंभ में गांधीजी ने स्थिति समझायी। उन्होंने कहा: "मेरे भाई मुहम्मदअली ने 'Choice of the Turks' (तुर्कों का चुनाव) नामक लेख लिखा था, जो जब्त हो गया। मैं तुमसे आज कहता हूँ कि आज Choice of the Believers of India–भारत के धर्मनिष्ठ लोगों के लिए यह निर्णय करने का समय आ गया है कि वे क्या पसन्द करें। सिख विद्यार्थियों से मैं यह पूछने आया हूँ कि तुम हुकूमत के वफादार रहना चाहते हो या गुरु नानक के? जिन अरबों ने हमारा कुछ नहीं बिगाड़ा और जो एक बड़ी स्वतंत्र जाति है, उसे अधीन बनाने के लिए तुम्हारे सजातीयों को भेजा जाता है। तुमसे सरकार लिरण की चोरी करके सूई का दान कर रही है। सरदार गौहरसिंह पर जो सितम गुजरा, उसके बाद कोई सिख सरकार के लिए तलवार उठा ही कैसे सकता है? जलियाँवाला में बॉस्वर्थ स्मिथ ने जो अत्याचार किये, उनके बाद इस सरकार से प्रेम कैसे रखा जा सकता है? पंजाब के लिए जितना दुःख मुझे हुआ है, उतना आपको होता हो, तो खालसा कॉलेज की याद

छुड़ाकर म्युनिसिपैलिटी के साथ उसका सम्बन्ध तुड़वाकर, तुम उसे सचमुच खालसा बना सकते हो। ऐसा न हो सके, तो उसे छोड़कर तुम खुले बन सकते हो।"

रुपया देकर गुलामी

इसके बाद मुहम्मदअली ने अलीगढ़ की स्थिति समझायी : "अलीगढ़ के लिए चन्दा किया जा रहा था। उसके लिए शौकतअली को मनाई की गयी, तो उन्होंने अपनी सरकारी नौकरी छोड़ दी थी। वही शौकतअली आज उस कॉलेज को खाली कराने को कैसे तैयार हो गये? हमसे कहा जाता है कि हमारे अपने मकान हैं, हमारे अपने रुपये से ये कॉलेज चलते हैं, तो किसलिए कॉलेज छोड़ा जाय? मैं आपसे पूछता हूँ कि ये मकान हमारे थे, तो क्यों हमारे मकानों को 'मॅकडोनाल्ड हाउस', 'लिटन लाइब्रेरी' आदि नाम दिये गये? ये हमारे रुपये से चलनेवाले कॉलेज हों, तब तो ऐसी बात हुई कि हम रुपया देकर गुलाम बनते हैं। मैं यह नहीं कहता कि तुम्हें खराब तालीम मिलती है, इसलिए तुम कॉलेज छोड़ो। मैं छोड़ने को इसलिए कहता हूँ कि शिक्षा सबके जैसी मिलती हो, तो भी वह साफ नीयत से नहीं मिलती। पकवान सूअर के गोश्त का पुट लगाकर परोसा जाता है, इसलिए तुमसे वह पकवान छोड़ने को कहता हूँ।" इसके बाद विद्यार्थियों की ओर से अध्यापक गांधीजी से मिले थे। कुछ वाद-विवाद करने के बाद उन्होंने बताया था कि दूसरे दिन होनेवाली सिख संघ की बैठक जो निश्चय करेगी, तदनुसार चलने को वे तैयार हैं। रात को गांधीजी कालेज के प्रिंसिपल से, जो एक अंग्रेज हैं, और अध्यापकों से मिले। उनसे खूब बातचीत हुई। प्रिंसिपल बहुत मृदुभाषी—परन्तु केवल मृदुभाषी ही—लगे। अधिकांश दलीलें वे स्वीकार करते थे, परन्तु अन्तिम निर्णय से वे सटक जाते थे।

रात को अमृतसर में बड़ी आम सभा हुई। उसका विस्तृत वर्णन करके मैं पत्र को बहुत लंबा नहीं बना देना चाहता। दो महीने पहले जिस

अमृतसर के जलसे में एक भी सिख वक्ता नहीं था, उसी अमृतसर में एक नहीं, दो नहीं, परन्तु पाँच वक्ता एक के बाद एक उठकर जोशीले भाषण दे गये और कहा कि हमें शंका नहीं कि सिख संघ तो असहयोग का प्रस्ताव पास करेगा। सिख श्रोताओं में भी बड़ा उत्साह दिखाई देता था, कुछ जरूरत से ज्यादा भी कहा जा सकता है, क्योंकि बहुत-से अपने कृपाण खड़े करके दिखा रहे थे कि यह हथियार हाथ में है, इसलिए जरूर नहीं डरेंगे।

लाहौर

लाहौर तीन दिन ठहरे। पहले दिन यानी १९ तारीख को रात को जबरदस्त जलसा हुआ। तीस-चालीस हजार मनुष्य उपस्थित होंगे।

आरंभ पंजाब के निवासी स्वामी सत्यदेव ने किया। अत्यन्त भावनापूर्ण ढंग से उन्होंने पूछा : "मुल्क में आजादी की लहर चल रही है, और सब प्रान्त जाग उठे हैं, तब क्या पंजाब ही सोता रहेगा ?"

तलवार कातिल की तरफ से उठेगी, हमारी तरफ से नहीं

मौ० मुहम्मदअली ने यह समझाया कि यूरोप में तुर्की-सुलहनामे के बारे में क्या रवैया है। उन्होंने अपना विश्वास बताया कि यह सरकार दगाबाजी के साथ दाँवपेंच खेलनेवाली है। इसलिए वे भारत की ओर से विलायत में घोषणा कर आये हैं कि जिसकी वफादारी के कारण तुम दुनिया में बड़ी हुकूमत माने जाते हो, उसकी वफादारी तुम्हें अब नहीं मिलेगी। इसका कारण उन्हें अंग्रेज सरकार का ही सारा कसूर दिखाई दिया। "फ्रांस ने हमारी बात सुनी है, फ्रांस सुलहनामे के विरुद्ध है और ऐसा लगता था कि सुलहनामा बदल जायगा, परन्तु ब्रिटिश मन्त्री के षड्यंत्र से नहीं बदल सका। परन्तु आज क्या स्थिति है : आज हमारी गुलामी कैसे कायम रही है ? अंग्रेजी सेना से नहीं, फ्रेंच सेना से नहीं, इटालियन फौज से नहीं, परन्तु हमारी गुलाम सेना भेजी जा रही है, इस-

लिए गुलामी बनी हुई है। हमीं पड़ोसी मुल्कों की गुलामी कायम रखने की कोशिश कर रहे हैं। इस सारी स्थिति का उपाय 'तर्के-मवालात' है। आज तलवार हमारी तरफ से नहीं उठ सकती; तलवार केवल कातिलों की तरफ से, जालिम की ओर से उठ सकती है। यह निश्चित समझो कि हमारी तरफ से उठेगी, तो हमारी जीत नहीं होगी। न करे खुदा, समय आया और मैं उस समय जीवित रहा, तो फर्ज हो जाने पर जिहाद का एलान मैं ही पहले करूँगा और पहली तलवार मैं ही चलाऊँगा।" इस बात पर तालियाँ बजीं और एक फकीर उठकर बोला 'मेरा आशीर्वाद है कि जैसा कहते हो, वैसा ही हो।'

मौलाना अबुल कलाम आजाद ने पूछा : "पंजाब के मुर्दे कब जिन्दा होंगे? जब क्षण-क्षण में संसार की जातियों के भाग्य बदले जा रहे हैं, तब दलीलों का समय रह ही कहाँ गया है? जो कौम फरेब और जुल्म की पुतली है, जो कौम तमाम इन्सानों की आजादी का नाश करनेवाली है, जिस कौम में बहुत-सी बातें हैं, परन्तु इन्साफ नहीं, उस कौम से तुम शिक्षा पाओगे? उसकी अदालतों में इन्साफ ढूँढ़ने जाओगे?"

गांधीजी ने जफरअली खाँ के जेल-गमन को अपने भाषण का विषय बनाया। उन्होंने आरंभ में कहा कि "सुख की बात है कि मौलवीजी जेल में हैं, क्योंकि वे जेल में जाकर आजाद बने हैं, जब कि हम अभी तक गुलाम बने हुए हैं।" जफरअली खाँ ने यह वचन कहा था कि हुकूमत मिट जायगी। उसे लखनऊ की तरह यहाँ भी गांधीजी ने विशेष जोर देकर कह सुनाया : "यह हुकूमत पंजाब और खिलाफत के मामले में इन्साफ नहीं करेगी, तो जरूर उखड़ जायगी। यह भी कहता हूँ कि प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है कि सचाई और न्याय के रास्ते पर रहकर सब हुकूमत को उखाड़ने के लिए भरसक प्रयत्न करें। इस जालिम को नष्ट करना खुदा का हुक्म मानने के बराबर है।"

"हमारे भाई मुहम्मदअली ने कहा कि 'हम थोड़े दिन में जफरअली खाँ से मिल सकेंगे।' मैं कहता हूँ कि थोड़े दिन में मिलना असंभव है। हम

केवल दो शर्तों पर उनसे मिल सकते हैं। जफरअली खाँ को एक गंदी कोठरी मिली है, उन्हें जेल का खाना मिलता है, उन्हें बुखार आता है, परन्तु वे अपनी हिम्मत पर कायम हैं। वे माफी नहीं माँगेंगे, इसलिए उनसे बाहर मिलने की एक शर्त बन्द है। अब रह गयी दूसरी शर्त उनसे जेल में जाकर मिलने की। सिक्ख, हिन्दू, मुसलमान सबमें से कोई ऐसी ताकत रखता हो कि उनके जैसे कार्य करके जेल में जाय, तो उन्हें आज मिलकर छुड़वा सकता है। जो भी बाहर रहकर सरकार से कहेगा कि उन्हें छोड़ो, वह जनता का अपराध करेगा।

"मैंने जान-बूझकर सिक्खों को बहादुर कहा है। सिक्खों ने सरकार के लिए अपना खून बहाया है। उनके खून से दूसरी जातियों का पतन हो रहा है। अरबों और मिस्रियों के गले सिखों के कारण काटे गये हैं। अब तक सिखों ने सरकार के लिए जो शौर्य दिखाया है, उसका परिणाम क्या निकला? सरदार गौहरसिंह शेखूपुरावाले से पूछिये। मैं तो कहता हूँ कि सिख हिन्दू-मुसलमानों के साथ अपना कर्तव्य पूरा कर सकेंगे, तो जफरअली खाँ को छुड़वा सकेंगे। स्वराज्य लेना और जफरअली खाँ को छुड़वाना दोनों काम साथ होंगे।

"मुहम्मदअली ने जब तलवार इस्तेमाल करने की बात कही, तब किसी फकीर ने 'जो बोले वह हो' की आवाज लगायी। इससे मुझे दुःख हुआ। तलवार के लिए जब तक सामान तैयार नहीं, तब तक तलवार से हानि ही होगी। मैंने तो अपना विचार अंतिम रूप में बता दिया है। मैं अपने लिए तो तलवार का उपयोग कभी नहीं देखता। मुहम्मदअली के लिए यह शुरू का मामला है। मैं उम्मीद रखता हूँ कि उन्हें भी अन्त में तलवार की व्यर्थता मालूम हो जायगी। आज तो एक अंग्रेज का कत्ल करके हजारों जलियाँवाले बनाओगे, परन्तु स्वतंत्रता नहीं ले सकोगे। तलवार से मुकाबला चाहते हो, तो भी कुर्बानी और तालीम की जरूरत है।

"मुझे अमृतसर में कल सुबह एक स्त्री मिली। उसने मेरे सामने पुरुषों के विरुद्ध बड़ी शिकायत की : 'पुरुष सच्ची बात नहीं कहते। स्त्रियों

को फुसलाते हैं। उनमें खुदा का डर नहीं। हमारे गंदे मर्दों और गंदी औरतों द्वारा क्या आप यह मामला जीत सकेंगे ? आप पुरुषों को जितेन्द्रिय बनायें तो कुछ हो।' ये उस स्त्री के ही शब्द हैं। मुझे बात ठीक लगती है। जितेन्द्रिय हुए बिना असहयोग की लड़ाई लड़ना कठिन है। जो आदमी जबान से झूठ नहीं बोलता, गंदा खाता नहीं, जो बुरा देखता नहीं, जिसकी नजर साफ है, जिस मनुष्य के लिए अपनी स्त्री के सिवा सब स्त्रियाँ माँ-बहन के समान हैं, जिसका मन वश में है, वह जितेन्द्रिय है। आज तो आप न मर्द हैं, न औरत। आप तलवार उठाने की बात करते हों, तो आपको तलवार मुबारक हो, वैसे मुझे तो साफ नजर आता है कि आप जितेन्द्रिय बनकर, कांग्रेस में जिस प्रस्ताव के लिए हाथ उठाकर आये हैं, उस पर अमल करके आजाद हो सकते हैं। इस जालिम सरकार से इन्साफ लो। इन्साफ न मिले तो उससे मुहब्बत छोड़कर उसे मिटा दो; और जफरअली को छुड़वाओ अथवा सब जेल में जा बैठो।"

इसके बाद अमृतसर की तरह लाहौर में भी बहुत-से सिख भाइयों ने जोशीले भाषण दिये और यह बताया कि सिख संघ अवश्य असहयोग का प्रस्ताव पास करेगा।

डॉ० किचलू ने घोषणा की कि पंजाब में स्वराज आश्रम स्थापित हुआ है। उन्होंने यह भी बताया कि उनका अनुभव यह है कि पंजाब में सही जवाब तो सिख लोग ही देंगे।

पं० रामभजदत्त चौधरी ने कहा कि उनमें तो सचमुच परिवर्तन हो गया है। उन्हें एक वर्ष पहले सम्राट् के विरुद्ध युद्ध करने के अभियोग में जेल भेजा गया था, तब तो उन्होंने लड़ाई नहीं की थी। हाँ, आज उन्होंने अवश्य सम्राट् के अन्याय के विरुद्ध लड़ाई छेड़ दी है। उन्होंने यह भी घोषणा की कि स्वराज आश्रम के लिए उनका घर तैयार है।

मौलाना शौकतअली ने इसके बाद एलान किया कि भाई गुलाम मुहीउद्दीन ने वकालत छोड़ दी है। गुलाम मुहीउद्दीन पंजाब के एक बहुत प्रसिद्ध वकील हैं। उनका धंधा धड़ाके से चल रहा है। वे अत्यंत नम्रता

से उठे और बोले : 'मैं रात-दिन सोच रहा था, परन्तु आज इसी क्षण खुदा ने फरमाया कि वकालत छोड़ दे। सबको मालूम है कि मेरे कितनी लड़कियाँ हैं। छह लड़कियाँ हैं, सो सब कातने का काम करेंगी। मेरे एक लड़का है, जिसे मैं गांधीजी के अर्पण कर दूँगा। मैं अपने-आपको भी नजर करता हूँ। मुझसे जो काम लेना हो, लीजिये। और कुछ नहीं तो स्वदेशी के प्रचार का काम तो मैं करूँगा ही।'

विद्यार्थियों में बड़ी जाग्रति फैल रही थी। उनके झुंड-के-झुंड गांधीजी के निवासस्थान रामभजदत्त चौधरी के मकान पर दूसरे दिन इकट्ठे हुए। साढ़े सात बजे गांधीजी उनसे मिले। कॉलेज बन्द होने पर पाँच सौ से अधिक विद्यार्थी उपस्थित होंगे। पहले गांधीजी ने बताया कि यह असहयोग का मामला उत्पन्न तो हुआ खिलाफत में से, परन्तु जब पंजाब इसमें मिल गया, तब वे सारे देश को उसमें शरीक कर सके। उनके गुजरात के एक अच्छे-से-अच्छे कार्यकर्ता इन्दुलाल याज्ञिक जब पंजाब का कारण इसमें दाखिल हुआ, तभी असहयोग में भाग लेने लगे। "जिस पंजाब के लिए सारा देश यह लड़ाई लड़ने को तैयार हो गया, वह पंजाब क्या सोता ही रहेगा? तुम कदाचित् खिलाफत को भूल जाओ, परन्तु पंजाब को नहीं भूल सकते। जलियाँवाला से हम बहादुर बन गये, परन्तु जब पेट के बल चलने का अवसर आया तब कायर बन गये; जलियाँवाला से भारत ऊँचा उठा है, परन्तु पेट के बल चलने से भारत नीचे गिरा है। विद्यार्थियों से यूनियन जैक को सलाम कराना तो इससे भी अधिक कड़वा था। कर्नल जॉनसन ने तुम्हारी नाक काटी और तुमने कटवायी। मेरा सत्याग्रह कभी इज्जत गँवाने को नहीं कहता। पंजाब में मारे गये लड़कों की आत्मा यहाँ आकर पुकार रही है कि तुम क्या करना चाहते हो? तुम सर माइकेल को फाँसी पर चढ़ाना चाहते हो, तो भी तुम्हें तो फाँसी पर चढ़ने के लिए योग्य बनना चाहिए।"

रहा था, तब स्मट्स और हरजोग जैसे नामी वकील वकालत छोड़कर लड़ाई में कूद गये थे। बोअर स्त्रियाँ लड़कों को सिखातीं कि एक भी शब्द अंग्रेजी न बोलें। तब यहाँ स्त्री-पुरुष—उदाहरणार्थ पंडित रामभजदत्त चौधरी और सरलादेवी—एक-दूसरे के साथ अंग्रेजी में पत्र-व्यवहार करते हैं! इसमें मुझे नामर्दी दिखाई देती है। ट्रांसवाल की स्त्रियाँ तो झाँसी की रानियाँ थीं। हमारी स्त्रियों में ऐसी बहादुरी कब आयेगी? मैं अंग्रेजी भाषा पर मोहित हूँ। न्यू टेस्टामेण्ट पर मैं फिदा हूँ। टॉल्स्टॉय और कुरान को मैंने अंग्रेजी द्वारा ही पढ़ा है। परन्तु भारतीयों के बीच आपस में अंग्रेजी भाषा काम में लिया जाना मैं हरगिज बर्दाश्त नहीं कर सकता। मैं तो मानता हूँ कि हिन्दुस्तान का जो पिता अपने पुत्र के साथ, पति पत्नी के साथ अंग्रेजी में पत्र-व्यवहार रखता है, वह नामर्द है। जब मैं अंग्रेज के साथ तुलना कर सकूँगा, तभी उसकी कोई चीज काम में ले सकूँगा। बोअर लोगों की दूसरी कुर्बानी फ्रीनिखन की सलाह के बाद की थी। स्मट्स-बोथा ने सुधारों को ठुकरा दिया, सब जगह असहयोग हुआ और वह तभी बन्द हुआ, जब लोगों को वांछित स्वतंत्रता का संविधान मिला।"

इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों को और बहुत-सी बातें सुनायीं। इसके बाद लगभग एक घंटे तक विद्यार्थियों के साथ सवाल-जवाब होते रहे। कुछ विद्यार्थियों ने माँग की कि कॉलेज छोड़नेवाले विद्यार्थियों के नाम लिख लिये जायँ। गांधीजी ने इनकार कर दिया। सबको एक दिन खूब विचार करके निश्चय पर पहुँचने को कहा। दूसरे दिन तो पहले दिन से भी ज्यादा विद्यार्थी मौजूद थे। धड़ाधड़ विद्यार्थियों ने नाम लिखवाये। इन नाम लिखानेवालों की संख्या नब्बे थी, परन्तु श्रीमती सरलादेवी चौधरानी लिखती हैं कि अब तो वह संख्या सैकड़ों पर चली गयी है। इसके परिणाम-स्वरूप एंग्लो वैदिक कॉलेज, दयालसिंह कॉलेज और सनातनधर्म कॉलेज खाली होंगे या ग्रांट छोड़कर युनिवर्सिटी के साथ सम्बन्ध तोड़कर स्वतंत्र होंगे। स्वामी सत्यदेवजी वहाँ विद्यार्थियों में काम कर रहे हैं; सरलादेवी तो

हैं ही। और डॉ० किचलू तथा अन्य कार्यकर्ता मिलकर विद्यार्थियों को कॉलेज छोड़ना पड़े, तो उनके लिए शिक्षा का प्रबंध करने में जुटे हुए हैं। मौलाना मुहम्मदअली और शौकतअली ने इस्लामिया कॉलेज और स्कूल में तो चमत्कार कर दिया है। ऐसा निश्चय है कि वहाँ के ट्रस्टी ही मान जायँगे। इसलिए वहाँ तो कॉलेजों को खाली करने की बात ही नहीं रहेगी। कॉलेज ही आजाद हो जायगा और उसमें अनायास ही दूसरे कॉलेजों से निकले हुए विद्यार्थियों की भी व्यवस्था हो सकेगी। इस प्रकार अलीगढ़ का असर इस्लामिया कॉलेज पर हुआ है, इस्लामिया कॉलेज का असर अलीगढ़ पर हुआ है। क्या परिणाम हुआ, यह तो २६ तारीख को मालूम पड़ेगा।

सिख-परिषद् और भिवानी-परिषद् के लिए तो मुझे दूसरा ही पत्र लिखना होगा। चारों ओर जाग्रति की कल्पना तो इतने से ही काफी हो जायगी। जगह-जगह नये-नये जन-समूहों में चेतना, आती जा रही है। इस चेतना के साथ कुछ तेजी तो जारी ही है। यह सूचना लखनऊ और लाहौर में तलवार का नाम सुनकर तालियाँ बजानेवालों से मिलती है। सिख-परिषद् और भिवानी-परिषद् का जो हाल अगले पत्र में दूंगा, उससे यह कथन अधिक प्रमाणित होगा। हमने जिन बलों को गति दी है, उन्हें नियंत्रण में रखने का कर्तव्य दिन-दिन बढ़ता जा रहा है। यह ईश्वर की कृपा है कि वे हाथों से निकल नहीं रहे हैं।

२

कीड़ा थाप देवे पादशाही लश्कर करे सवाह,
नदियाँ वीचो टीबे देखाले थली करे असगाह,
नानक ज्यों ज्यों साचे भावे तींवें चलाई राह।

[कीड़ा बड़ी बादशाहत को उखाड़ सकता है, और सारी सेना को स्वाहा कर सकता है; नदी के भीतर पहाड़ और मैदान पैदा हो सकते हैं; जल के स्थान पर स्थल और स्थल के स्थान पर जल हो जाता है: नानक कहता है ईश्वर की जैसी इच्छा हो, वैसे ही पदार्थ कर सकता है।]

पिछले पत्र में मैं सिख-परिषद् और भिवानी-परिषद् का उल्लेख कर चुका हूँ। इन दोनों परिषदों का मुझ पर जो असर हुआ, उसे इस पत्र में दूँगा।

सिख-परिषद् तो बहुत देखने लायक थी। ब्रॅडला हॉल में सिख भाइयों का—या उनका अधिक उचित नाम 'खालसों' का—सम्मेलन हुआ। अध्यक्ष-पद सियालकोट के एक प्रतिष्ठित सिख जमींदार को दिया गया था।

अध्यक्ष महोदय के आने से पहले तो सारा ब्रॅडला हॉल स्त्री-पुरुषों से खचाखच भर गया था। स्त्रियाँ भी भारी संख्या में उपस्थित थीं। अध्यक्ष महाशय के आने से पहले दो बुलंद आवाजवाले सिख भाई 'ग्रंथसाहब' में से ईश्वर-स्तुति और ईश्वर-श्रद्धा के वचन बोल रहे थे। सारा पुरुष-वर्ग उन्हें दोहराता था और उसके बाद तमाम स्त्रियाँ दोहराती थीं। यह दृश्य हृदय को हिला डालनेवाला था। ऐसा मालूम होता था कि वे वचन सभी स्त्रियों को कण्ठस्थ थे। लगभग एक घंटे तक गुरु नानक और कबीर साहब के भजनों की धुन चलती रही और परिषद् के कार्य के लिए शान्ति पैदा कर दी गयी। मेरे खयाल से राजनीति की चर्चा करनेवाली किसी भी परिषद् या संस्था में गुरु नानक और कबीर साहब के पवित्र भजनों से शायद ही मंगलाचरण होता होगा। जिस जोश और उल्लास से वे गाये जा रहे थे, उससे किसी भी अपरिचित श्रोता पर इस जाति की गहरी श्रद्धा का असर पड़े बिना नहीं रह सकता था।

व में सच्चा एको सोई;
जिसका किया सब कुछ होई।

× × ×

गुरु गुर दीना मीठा पियारिया
कहत कबीरा मेरी शंका नासी
सर्व निरंजन दीठा पियारिया।

ये और ऐसे तो हमारे सारे देश के लोक-भजन हैं। परन्तु ऐसा महसूस हुआ कि इन्हें भक्ति से संग्रह करके रखनेवाला तो आज सिख-समाज ही है। इस पत्र के शीर्षक में उद्धृत किये वचन इसी परिषद् में दूसरे दिन गाये हुओं में से हैं। उनमें सिख-स्वभाव का प्रतिबिम्ब है। इनमें जो नम्रता भरी है—हममें कोई शक्ति नहीं, हमारे पास बड़ी साधन-सम्पत्ति नहीं—फिर भी ईश्वर में जो यह अटल श्रद्धा है कि शुभ संकल्प को पूरा करनेवाला मालिक है, उसकी इच्छा हो जाय, उस दिन कीड़ा भी बड़ी बादशाहत को पलट दे सकता है—यह नम्रता और अटल श्रद्धा हम सब इस महाभारत युद्ध में अपनी रग-रग में अनुभव कर सकें, तो क्या नहीं हो सकता ?

सिख लोग तो अब तक अंग्रेज सरकार का दाहिना हाथ माने जाते थे; उन्हीं सिखों को इस परिषद् में एक स्वर से 'स्वराज्य' की घोषणा करते सुना, नामिल वर्तन—असहयोग के लिए उचित पंजाबी शब्द—की बात आते ही उमंग और आशा से उन्हें उछलते देखा, इस शब्द के नाममात्र का 'बोले सो निहाल, सत् श्री अकाल' के पवित्र उद्‌गार से स्वागत करते सुना, इसका क्या कारण होगा ? सिखों ने सरकार से जिस चीज की आशा लगा रखी थी, वह नहीं मिली, उल्टे जलियाँवाला और शेखूपुरा के मार्शल लॉ की बख्शीश मिली, यही प्रत्येक वक्ता के वचनों की ध्वनि थी। सरकार सिख-जाति की जागृति की अवहेलना नहीं कर सकती।

स्वागताध्यक्ष और परिषद् के सभापति दोनों के भाषणों की ध्वनि नामिल वर्तन की ही थी। दूसरे दिन पहला प्रस्ताव नामिल वर्तन का ही था, कांग्रेस का सारा कार्यक्रम ग्रहण करने की तरफ था और ऐसा मालूम होता था कि उसके विरुद्ध मत तो सारे मंडप में इने-गिने ही होंगे।

परन्तु यह भी दुःख के साथ बताना पड़ता है कि इन विरुद्ध मतों के प्रति सहिष्णुता नहीं थी। एक भी विरोधी वक्ता को व्याख्यान सहन नहीं कर सके। सरदार गुरुबख्श सिंह शर्मा और गुजराँवाला

खालसा कॉलेज के विद्वान् प्रोफेसर जोधसिंह जैसों की दलीलें सुनने को भी श्रोतागण तैयार नहीं थे। पल-पल में खलबली होती थी। खलबली होते ही गुरु नानक और कबीर साहब का स्मरण कराया जाता और तुरंत शांति छा जाती। शान्ति फैलाने का यह उपाय देश की अन्य राजनैतिक संस्थाओं के अनुकरण करने जैसा है। परन्तु ऐसा जान पड़ता था कि सारे मंडप में नामिल वर्तन के विरुद्ध श्वास तक सुनने की वृत्ति नहीं थी।

गांधीजी ने तो सिख नेताओं की सम्मति से पहला प्रस्ताव पास हो जाने के बाद ही जाकर बोलने का निश्चय किया था। तदनुसार गांधीजी तीन बजे आये, परन्तु प्रस्ताव पास नहीं हुआ था; पास होने की तैयारी में था। पाँच बजे की गाड़ी से जाना था, इसलिए गांधीजी से तुरंत ही बोलने को कहा गया और यहाँ असहयोग के प्रस्ताव का समर्थन करने को नहीं, प्रत्युत सिख-समाज को कुछ न कुछ संदेश देने को वे उठे। जहाँ सारा समाज नामिल वर्तन का निश्चय कर चुका था, वहाँ उन्हें नामिल वर्तन का प्रस्ताव पास करने के बारे में तो अधिक क्या कहना था? नामिल वर्तन चलाने के लिए क्या-क्या सामग्री चाहिए, इसी बारे में गांधीजी ने अपने भाषण में जोर दिया।

शुरू में गांधीजी ने कहा कि "आप हिन्दुस्तानी होने का दावा करते हों, पंजाबी होने का दावा करते हों, अपने गुरु नानक के धर्म को आजाद रखना चाहते हों, तो मेरे खयाल से नामिल वर्तन के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं।" इसके बाद गांधीजी ने नामिल वर्तन की जीत की कुछ शर्तें बतायीं। उन्होंने कहा: "नामिल वर्तन बड़ा जबर्दस्त शब्द है। यदि आप इसका सही इस्तेमाल करना चाहते हों, तो आपको दो शर्तें पालनी चाहिए। एक शर्त तो यह कि आपको दंगा-फसाद को ताक में रख देना चाहिए। इस लड़ाई में तलवार के लिए अवकाश नहीं। तलवार में दण्ड आ जाता है। इतना ही नहीं, किसी भाई को जबर्दस्ती

करके बोलने से रोकना भी फसाद है। आप नानकपंथी 'नामिल वर्तन' ठीक तरह करना चाहते हों, तो आपको तलवार म्यान में रख देनी होगी। गुरु नानक को जैसे आप पूजते हैं, वैसे मैं भी उनका पुजारी हूँ। वे खुदा के सच्चे बन्दे थे। खालसा साहब गुरु गोविन्दसिंह ने तलवार के लिए जरूर स्थान रखा है, परन्तु उसके लिए एक शर्त भी रखी है; वह यह कि जब तक आपको आज्ञा न मिल जाय, तब तक आप तलवार नहीं उठा सकते—आपके गुरु हुक्म न दे दें, तब तक आप तलवार नहीं उठा सकते। आज आपकी जाति में गुरु नानक की बराबरी करनेवाला कोई गुरु है ?

"सिखों ने तलवार का अच्छी तरह उपयोग किया है; मुसलमानों ने भी अच्छी तरह उपयोग किया है। परन्तु तलवार चलाने का भी ढंग होता है। इसलिए आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने जोश को रोकें। सान पर चढ़ाये बिना तलवार पानीदार नहीं कहला सकती। इसी तरह जो आदमी अपने जोश को नहीं रोक सकता, वह पानीदार नहीं कहलाता। जोश में आकर जो आदमी वक्त-बेवक्त गुस्सा दिखा देता है, उसके लिए यह लड़ाई है ही नहीं। यदि हिन्दुस्तान में कोई तलवार निकालने के हकदार हैं, तो वे मुसलमान अवश्य हैं। परन्तु उनके धर्म में भी यह तो जरूर है कि तलवार के बिना काम हो सकता हो, तो तलवार उठाना ठीक नहीं। इसलिए उन लोगों ने 'तर्के मवालात' पसन्द किया है। आप भी तलवार म्यान में रखकर ही काम ले सकेंगे।"

गुरु की आज्ञा के बिना तलवार नहीं उठायी जा सकती, इस दलील को दोहराते हुए गांधीजी ने स्त्रियों को ध्यान में रखकर कहा : "आपके यहाँ क्या आज गुरु नानक और गुरु गोविन्दसिंह जैसे गुरु हैं ? आप तलवार निकालना चाहती हों, तो गुरु नानक को पैदा कीजिये। काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर को जीत लोगी, तो ही आप ऐसे वीरों की माता बन सकोगी। उन गुरुओं के बिना इस समय तलवार की गुंजाइश ही नहीं रही है। आज तो आपको अपना आवेश दबाने के लिए स्थान

करना सीखना, अपनी विदेशी पोशाक छोड़ना, अपने गहने छोड़ना और नानक के भजन गाते-गाते नामिल वर्तन करना ही आपका फर्ज है।"

नामिल वर्तन की फतह की दूसरी शर्त गांधीजी ने एक-दूसरे के साथ सहयोग की बतायी। "हम अब तक गुलाम क्यों रहे हैं? हमें एक-दूसरे पर विश्वास नहीं था, हम एक-दूसरे को शंका की दृष्टि से देखते रहे थे। हिन्दू मानते थे कि मुसलमानों को मारकर गाय को बचाया जा सकता है। परन्तु उन्होंने अपनी भूल समझ ली। उन्हें महसूस हुआ कि मुसलमानों के साथ भाईचारे के बिना गो-वध रोकना असंभव है। सिख यह मानते थे कि उनकी वीरता का इतिहास तो तभी अखंड रह सकता है, जब वे अंग्रेजों के साथ सहयोग बनाये रखें। उस सहयोग से आपने क्या पाया? पजाब में जो हुआ, वही। जिस सरकार ने हमें लांछित और अपमानित किया है, उसके साथ सहयोग हराम है। आपस में लड़ाई करने से तो हम नष्ट हो जायँगे, परन्तु यदि एक-दूसरे के साथ एकता सिद्ध कर सकेंगे, तब तो एक लाख अंग्रेज तीस करोड़ की फूँक से भी चले जायँगे अथवा भारत के सेवक बनकर भारत में रहेंगे।"

अंत में गांधीजी ने इस बारे में स्पष्टीकरण किया कि स्वराज्य में सिखों को जातीय प्रतिनिधित्व का हक रहेगा या नहीं और कहा कि जिसमें यह हक न हो, वह स्वराज्य नहीं हो सकता। बाद में सबसे गुरु नानक की सादगी और सचाई ग्रहण करने की सिफारिश करके गांधीजी ने भाषण पूरा किया।

'नामिल वर्तन' का प्रस्ताव तो पास हो गया। देखना है खालसाजी क्या करते हैं। जो जोश आज सिख लोगों में पैदा हो रहा है, उसे काबू में रखकर उसका व्यवस्थित उपयोग करने की जिम्मेदारी पंजाब के नेताओं पर है। खालसा कॉलेज के तेरह प्रोफेसरों ने कॉलेज का युनिवर्सिटी के साथ का संबंध तोड़ देने की सूचना दी है।

गांधीजी ने जो वर्णन कासगंज से लखनऊ के सफर का किया है, लगभग वही भटिंडा से भिवानी की यात्रा का किया जा सकता है।

लाहौर से चलकर भटिंडा रात को साढ़े ग्यारह बजे पहुँचते हैं। रात को भटिंडा स्टेशन पर मनुष्यों की इतनी भीड़ थी कि हमें अपना सामान निकालना कठिन हो गया। भटिंडा में गाड़ी से उतरकर भिवानी के लिए हमें दूसरी गाड़ी पकड़नी थी। दूसरी गाड़ी प्लेटफार्म पार करके ही मिल सकती थी। मगर लोगों ने हमारी मुश्किल का कोई खयाल नहीं रखा। हम कष्ट करके सामान ठिकाने लगा सके और उसे अलग-अलग डिब्बों में बाँट देना पड़ा। परन्तु हमारे कष्टमात्र से ही यह बात रुक जाती, तो ठीक था। कुछ लज्जास्पद बातें भी हुईं। गांधीजी और मौलाना लोग जिस डिब्बे में बैठे थे, उसके और पासवाले डिब्बे के बाहर हजारों आदमियों ने घेरा डाल रखा था। मौ० मुहम्मदअली और दूसरे उनसे हट जाने का अनुरोध कर रहे थे : 'हमारा सामान तो अन्दर आ ही जाने दो, तुम भीड़ हटाओ, तो हमारा सामान आ सके।' इस प्रकार बार-बार की गयी प्रार्थना बेकार गयी। 'महात्मा गांधीजी की जय' 'मौलाना मुहम्मदअली शौकतअली की जय' के नारों में गांधीजी और मौलानाजी की प्रार्थनाएँ तो डूब जाती थीं! रेलवे पुलिस, जो अब तक तटस्थ थी, अब बीच में पड़ी। उसे ऐसा लगा कि लोग नाहक तंग कर रहे हैं, इसलिए वह लाठी और चाबुक चलाने लगी! लोग क्षणभर हटकर फिर वहीं इकट्ठे हो जाते थे—वे यह नहीं समझ सके कि यह स्थिति उनके और हमारे दोनों के लिए लज्जाजनक है!

अन्त में हमारे भाग्य से गाड़ी चली, परन्तु बदकिस्मती से वह गाड़ी कासगंज कानपुर की गाड़ी की तरह सब स्टेशनों पर ठहरनेवाली थी। इसलिए सबेरे भिवानी पहुँचे, तब तक हममें से जो दूर के डिब्बों में सटक गये थे, उनके सिवा किसीको नींद नहीं मिल सकी।

उपर्युक्त चित्र कँपकँपी पैदा करनेवाला है। परन्तु सन्तोषजनक चित्र अब आता है और वह बता देता है कि व्यवस्थापक जरा कष्ट करें, स्वयंसेवकों को तालीम दी जाय, तो भारी जनसमूह के साथ भी कैसे सुन्दर ढंग से निभाव हो सकता है। भिवानी अम्बाला विभाग का एक

कसबा है। सेना का बड़ा केन्द्र है। वहाँ इस वर्ष पहली ही बार विभागीय परिषद् हुई। उसके स्वागताध्यक्ष हमारे सुप्रसिद्ध दीवान बहादुर अंबालाल साकरलाल के पुत्र कृष्णलाल अंबालाल देसाई थे। उन्होंने स्टेशन पर, शहर में और खास तौर पर मंडप में जो व्यवस्था की थी, वह आश्चर्यजनक थी। स्टेशन पर स्वयंसेवकों के सिवा एक भी आदमी नहीं था। गाँवों से पचास हजार से कम आदमी नहीं आये होंगे। फिर भी बाहर रास्ते के दोनों ओर मनुष्यों की बड़ी भीड़ बीच में गाड़ियों के लिए काफी खुला रास्ता छोड़कर शान्त खड़ी थी। जुलूस के बिना तो लोगों को सन्तोष कैसे हो? परन्तु जुलूस थोड़े समय में आराम से खत्म कर दिया गया।

मंडप दस-बारह हजार आदमियों के लिए था, परन्तु इतनी गुंजाइशवाला था कि खचाखच भरा होने पर भी उसमें मनुष्यों की भीड़ नहीं लगती थी। मंडप वर्तुलाकार था। कुर्सी-मेज का कहीं नाम-निशान नहीं था, इसलिए मंडप किसी प्राचीन राजसभा जैसी शोभा दे रहा था। ीच में अध्यक्ष और माननीय नेताओं के लिए भी बैठक ही थी। एक अमेरिकी सज्जन खास तौर पर परिषद् के लिए ही आये थे। वे भी जमीन से बैठे थे। प्रेक्षकों और दूसरे लोगों के लिए जाने-आने को चौड़े रास्ते। शान्ति भी अनुपम थी।

परिषद् में असहयोग का अखंड स्वर निकल रहा था। भाई कृष्णलाल देसाई का भाषण छोटा-सा दस मिनट में पढ़ लिया गया, जो अच्छी हिन्दी में लिखा हुआ था और कांग्रेस के प्रस्ताव का स्वागत करनेवाला। अध्यक्ष के चुनाव का प्रस्ताव करनेवाले अलग-अलग जिलों के ...नों में कुछ वकील थे। उनमें से जो धारासभा में जानेवाले थे, उन्होंने अपनी उम्मीदवारी वापस ले ली थी। वकीलों में वकालत छोड़नेवाले भी थे। अध्यक्ष वयोवृद्ध लाला मुरारीलाल अंबाला के पुराने वकील थे। उनकी उम्र अन्दाजन अस्सी वर्ष की होगी। उनकी सारी जिन्दगी 'मॉडरेट' के तौर पर बीती। ... पंजाब के 'ग्राण्ड ओल्ड मैन' के रूप में

पहचाने जाते हैं। अभी निवृत्त हैं और कुछ समय हुआ, असहयोग के सिलसिले में उन्होंने अपना रावसाहब का खिताब सरकार को लौटा दिया है।

इतने वृद्ध होने पर भी उन्होंने व्याख्यान-मंच पर जाकर 'यं ब्रह्मा-वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैः' के पवित्र स्तोत्र से मंगलाचरण किया। भाषण की हस्तलिखित प्रति उनके हाथ में थी। मुझे बाद में मालूम हुआ कि वह भाषण उन्होंने पहले ही दिन लिखा था, इसलिए छपा नहीं सके थे। वे आशुकवि हैं, इसलिए उनके गद्य में स्थान-स्थान पर पद्य स्वाभाविक रूप में ही पिरोया हुआ था। और फिर भी वह भाषण बहुत ही संक्षिप्त था। वह कोई पंद्रह मिनट में पूरा हो गया होगा। भाषण के शुरू में ईश्वर के प्रति उनकी भारी श्रद्धा का सूचक एक पद्य था :

> पंख-पंखियों की करता है कौन रक्षा?
> बिन माँगे भिक्षुओं को देता है कौन भिक्षा?
> फरियाद बेनवा की सुनता है कौन राजा?
> तेरे सिवा विधाता है कौन अन्नदाता?
> भारतवासियों की विनती है तुझसे—
> कर दे दया से अपनी भारत का पार बेड़ा।

और एक पद्य में मुरलीधर की विशेष वन्दना थी। उसकी दो अंतिम कड़ियाँ उल्लेखनीय हैं :

> धर कर अधर में फिर से बजा ऐसी बंसरी।
> बोसीदा उस्तखाँ में आ जाय जिन्दगी।

(हे कृष्ण दीनबन्धु! तू फिर अधर पर रखकर ऐसी बंसरी बजा कि जिससे निष्प्राण अस्थियों में प्राण आ जायँ।) आगे चलकर 'मुल्क का रोशन सितारा' 'हिन्द की आँखों का तारा' बाल गंगाधर तिलक के श्रद्धांजलि थी।

भाषण में पंजाब और खिलाफत की विपत्तियों का संक्षिप्त निरूपण और कांग्रेस के प्रस्ताव की सभी तफसीलों के बढ़िया समर्थन के सिवा और कुछ नहीं था। 'असहयोग' सम्बन्धी उनका कवित्त मजेदार है :

तर्क कौन्सिल, तर्क कालेज, तर्क सरकारी स्कूल।
तर्क असनादि वकालत, कांग्रेस का है उसूल।
अदल की उम्मीद रखना है अदालत से फजूल।
जिन्स पर इन्साफ की जो टैक्स करती है वसूल।

इतना ही नहीं, कौंसिल, स्कूल, कॉलेज और अदालतों से फायदे की आशा रखने को उन्होंने

'बेंत की शाखों में कब लगते व खिलते फूल हैं ?'

यह सवाल पूछकर बताया कि यह बेंत के पेड़ से फूल तोड़ने की आशा करने जैसा ही है।

गांधीजी ने इन सीधे-सादे भोले लोगों की मजलिस में अपना भाषण बहुत ही संक्षेप में समाप्त किया। आरंभ में उन्होंने व्यवस्थापकों को व्यवस्था के लिए और भारतीय सभ्यता को पहचानकर कुरसियों को रुखसत देने पर शाबाशी दी। 'खिलाफत और पंजाब के घोर अन्याय बताते हैं कि हम पर शैतान की हुकूमत है और हमारे धर्म में कहा गया है कि जो खुदा से डरता है, उसके लिए शैतान से मुहब्बत रखना हराम है' यह कहकर कांग्रेस, मुसलिम लीग और सिख-समाज ने स्वराज्य लेने के लिए असहयोग का जो उपाय ग्रहण किया है, उसे ग्रहण करने की सिफारिश की। संक्षेप में असहयोग की तीन शर्तें बतायीं : (१) हत्या और क्रोध को रोकना, (२) शुद्ध त्याग करना, (३) व्यवस्था-शक्ति प्राप्त करना। त्याग में वकालत का त्याग, पाठशालाओं का त्याग और रँगरूटी का त्याग। भिवानी रँगरूटी का केन्द्र है, इसलिए उन्होंने कहा कि यहाँ तो सबसे रँगरूट भरती न होने का आग्रह करना चाहिए। "हिसार जिले से बहुत से रँगरूट बनकर जाते हैं। उन सबसे कहता हूँ

कि जिस हुकूमत में शैतानियत भरी हुई है, उसके लिए रँगरूटी करना हराम है।"

अन्त में स्वदेशी में निहित बलिदान का अनुरोध किया। यह कहकर कि विदेशी कपड़े पहनने से नंगा रहना बेहतर है, नेकी, हिम्मत, साफ़-दिली और सचाई समझकर इस शैतानियतभरी हुकूमत को छोड़ दो, इन शब्दों के साथ उन्होंने अपना भाषण समाप्त किया।

इसके बाद मौ० शौकतअली, मुहम्मदअली, अबुल कलाम आजाद, डॉ० अन्सारी सभी नेता दो-दो तीन-तीन मिनट बोले थे।

शाम को किसानों की जो दुनिया उलट आयी थी और जो टिकट लेकर परिषद् में नहीं आये थे, उनके लिए एक सभा की गयी थी। उन्हें उनका कर्तव्य समझाकर सब मोटर में रात को दिल्ली के लिए रवाना हो गये।

श्री कृष्णलाल देसाई और पंडित नेकीराम शर्मा, जो रैयत की इस भारी जाग्रति के लिए जिम्मेदार हैं, उनके सामने अब अधिक कठिन कार्य उपस्थित है। वे इन लोगों को भारी तालीम दे सकेंगे–और तालीम देने का काम आसान नहीं–तो यह रैयत ऐसी है, जो इस लड़ाई में बड़ा सुन्दर भाग ले सकेगी।

इस पवित्र स्थान पर केवल रणछोड़जी के दर्शनों के लिए नहीं आया। इस समय रणछोड़राय में ऋण छोड़ने की ताकत नहीं रही। इसका कारण यह है कि हम पुजारी नहीं रहे; हम अपनी श्रद्धा खो बैठे हैं। यात्रा-स्थान पवित्रता के बजाय पाखंड के घर बन गये हैं, यह मैं आँखों देख रहा हूँ। इस आपत्ति से, इस पाप से ईश्वर हमें कब छुड़ायेगा ?

मैंने कई बार सुना है कि डाकोरजी में आनेवाले बहुत से लोग अच्छे चाल-चलन से नहीं रहते। आते-आते कुछ स्थानों पर अत्याचार करते हैं। मुझे पता नहीं यह बात सही है या गलत। परन्तु यदि हमारा धर्म—हिन्दुओं का धर्म और मुसलमानों का धर्म—हमें कुछ सिखाता है, तो पहली चीज वह यह सिखाता है कि हमें अपने विषयों और इन्द्रियों को काबू में रखना चहिए। सभी धर्म हमें सिखाते हैं कि संसार में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब, बड़ी उम्रवाली हमारी माता समान हैं, बराबर की उम्रवाली बहन के बराबर हैं और छोटी पुत्री के समान हैं। मैंने सुना और माना भी है कि डाकोर में आनेवाले धर्म के इस पहले नियम का उल्लंघन करते हैं। फिर भी वे मानते हैं कि गोमती में स्नान करके पवित्र हो जायँगे। यह किस काम का ? मैं यह भी नहीं मानता कि स्नान करके उनका इरादा पवित्र होने का होगा। सत्य का पालन, ब्रह्मचर्य का पालन साधारण धर्म हैं। गृहस्थों के लिए भी ब्रह्मचर्य-पालन धर्म है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है कान, आँख, नाक, जीभ और त्वचा सभी इंद्रियों का संयम। यह धर्म केवल संन्यासियों के लिए नहीं, सद्गृहस्थों के लिए भी है। यह सादा नियम जो न पालता हो, वह सद्गृहस्थ ही नहीं। इस संसार में, हिन्दू-संसार में भी और मुसलिम संसार में भी, यदि हमें ठीक ढंग से रहना हो, स्वतंत्र होकर रहना हो, किसीके गुलाम न बनना हो, तो यह हमारा सबसे पहला कर्तव्य है।

ठाकुर भाइयों से

मुझे किसीने कहा कि इस जलसे में बहुत से ठाकुर भाई होंगे, उन्हें

दो शब्द कहिये। उनसे मैं क्या कहूँ? परन्तु इतना तो मुझे उनसे कहना ही चाहिए कि यदि आप धर्म को समझते हों, तो वह धर्म यह नहीं कहता कि आप दूसरों को लूटें। लूटकर जीने से तो आत्महत्या कर लेना अच्छा है। दूसरों को लूटकर खाने से भूखों मरना बेहतर है। दूसरों को लूटकर कपड़े पहनने से नंगी हालत में रहना ज्यादा अच्छा है।

आज मैं सारे भारत से आजीजी कर रहा हूँ। वह अकेले बनिये, ब्राह्मणों से नहीं करता, परन्तु भारत में ढेढ़, भंगी, ठाकुर जो भी हैं, सबसे—मुसलमान, ईसाई, पारसी सबसे, मैं बिनती कर रहा हूँ कि अगर आपकी इच्छा भारत को सुखी बनाने की हो, तो आपका पहला धर्म यह है कि आपको भिन्न-भिन्न धर्मों के साथ एकदिल होकर रहना चाहिए। यह पड़ोसी का धर्म है। भाई शौकतअली को काम के सिलसिले में बम्बई से बाहर न जाना पड़ा होता, तो आप उन्हें हिन्दुओं के इस तीर्थ-स्थान में मेरे पास देखते। मैं जहाँ जाता हूँ, वहाँ उन्हें—और अब तो इन दोनों भाइयों को—अपने साथ ही दौरा कराता हूँ। मैं सबसे कहता हूँ कि मेरे दो सगे भाई गुजर गये हैं, परन्तु इन दो भाइयों के प्रति मुझे सगे भाई से जरा भी कम भावना नहीं। मैं सनातनी हिन्दू होने का दावा करता हूँ और इन दो मुसलमानों के साथ भाई-चारा रखकर अपना हिन्दू-धर्म पूरी तरह पाल सकता हूँ। इसमें मेरा स्वार्थ है। यदि मैं एक हिन्दू होकर इसलाम के लिए मर सकूं, तो समय आने पर हिन्दू-धर्म के लिए भी मर सकूँगा। इसमें मेरी अपनी और देश की परीक्षा है।

सात करोड़ मुसलमान भाइयों पर महान् धर्म-संकट आ पड़ा है। एक विकराल हुकूमत उनके धर्म को छिन्न-भिन्न कर देने पर तुली हुई है। जैसे इस समय आकाश में चंद्रमा को ग्रहण लगा हुआ है, वैसे इसलाम को इस सल्तनत के ग्रहण ने घेर लिया है। उसे आप छुड़ाइये। चंद्रमा का ग्रहण तो स्थूल ग्रहण है। उसे छुड़ाना हमारे हाथ में भी नहीं। मुझे यह चंद्रग्रहण जरा भी नहीं डराता, इससे यह नुकसान नहीं करा

सकता। परन्तु हमारी आत्मा को जो ग्रहण लग गया है, हमारे हृदय को जिस ग्रहण ने घेर लिया है, उससे मैं काँपता हूँ। उस ग्रहण को छुड़वाने का उपाय उपवास हो, तो मैं ईश्वर से माँगता हूँ कि मुझे उपवास करने की शक्ति दे। इस ग्रहण को छुड़वाने का इलाज आत्महत्या हो, तो परमेश्वर मुझे आत्महत्या करने की शक्ति दे। भारत का सुन्दर चन्द्र इंग्लैण्ड के कलंक से घिरा हुआ है। इसका एक कारण मैं बता चुका हूँ। इसलाम पर हुकूमत की तलवार लटक रही है। आज इसलाम पर, तो कल हिन्दू पर। जिस हुकूमत ने इसलाम को दगा दिया है, जिस हुकूमत ने पंजाब के द्वारा सारे भारत को पेट के बल चलाया है, जिसने पंजाब के जरिये छोटे-छोटे बच्चों से जबरन् सलामी लिवायी है और ऐसा करते हुए जिस हुकूमत के हाथों छह-सात वर्ष के दो बालकों के प्राण चले गये, जिस हुकूमत के अधीन डेढ़ हजार या एक हजार निर्दोष मनुष्यों की हत्या हुई है, वह हुकूमत कैसी होगी? इस हुकूमत का ग्रहण हम पर किस हद तक है, इसका मैं अन्दाज नहीं लगा सकता।

मौजूदा शासन रामराज्य नहीं; रावण-राज्य है। इस रावण-राज्य में हम पीड़ित हैं और पाखंड सीखते हैं। ऐसे रावण-राज्य में हम मुक्ति कैसे प्राप्त कर सकते हैं? पाखंडियों के साथ पाखंडी बनकर? शठ के साथ शठता से सामना करके? पाखंड में हम उनकी बराबरी कैसे कर सकेंगे? इस सल्तनत के भेदों तक हम कैसे पहुँच सकेंगे? जिस सल्तनत ने अपने छल-कपट से यूरोप को भी मात कर दिया है, उसके सामने यहाँ के पाखंडी क्या कर सकते हैं? हिन्दू-मुसलमानों को पाखंड करना हो, तो भी हमारे पास पाखंड नहीं। रावण को पाखंड से मारना हो, तो उसके जैसे दस सिर और बीस भुजाएँ चाहिए, सो कहाँ से लायें? उसे मारने का काम राम जैसा पाखंडी ही कर सकता है। राम के पास क्या पाखंड था? उसने ब्रह्मचर्य का पालन किया था; उसे ईश्वर का डर था; उसकी सेना बन्दरों की थी। बन्दरों ने कभी हथियार उठाये हैं? आज भी हम दिवाली मनाते हैं, सो राम की रावण पर विजय मनाते हैं। परन्तु यह

विजय हम तभी मना सकते हैं, जब हम इस दस नहीं, किन्तु दस हजार सिरोंवाले रावण को छिन्न-भिन्न कर सकें। जब तक हम यह न कर सकें, तब तक हमारे लिए वनवास ही रहेगा। आप सीताजी जैसी सतियों पर कुदृष्टि न करें, तो इस सल्तनत को मात कर सकेंगे। शैतान को ईश्वर ही मात कर सका है। उसीने शैतान को पैदा किया और वही उसे मार सकता है। इन्सान की ताकत से वह नहीं हारता। अकेले ईश्वर की गुलामी करनेवाले मनुष्य के हाथ से ईश्वर ही उसे हराता है।

हमें इतनी जबर्दस्त हुकूमत से मुकाबला करना है। उसकी तरफ से आनेवाले दुःखों का रोना मैं रोना नहीं चाहता। मैं तो उल्टे भारत से माँगता हूँ कि उसकी बुराई करने का अधिकार मुझे अकेले को ही दे दे। मैं जब सरकार के साथ सहयोग करता था, तब आपके मुँह से इस सरकार के बारे में मैंने अंगारे झरते देखे हैं। आपके मुँह से सरकार की निन्दा भी शोभा नहीं देती। मैंने जो कड़वी घूँटें पी हैं, वे आपने कभी नहीं पी। वे कड़वी घूँटें पीकर मैंने जो शक्ति प्राप्त की है, उसका शतांश भी आपने प्राप्त नहीं की। उससे नाराज होने के मुझे बहुत से कारण मिले, परन्तु अपना गुस्सा पी गया हूँ। इस अवसर पर भी मैं क्रोध में आकर एक भी शब्द नहीं बोलता, परन्तु अपनी आत्मा के ही शब्द कह रहा हूँ। अंग्रेजी राज के लिए मैं आपसे क्रोध का वाक्य तक नहीं माँगता। अंग्रेजों की बुराई देखने के बजाय आप अपनी ही बुराई देखिये और उन्हें निकाल दीजिये। तब आप स्वतंत्र हो जायगे—छूट जायँगे। अंग्रेजी हुकूमत का मैं ऐब दिखा रहा हूँ, सो साक्षी के रूप में दिखा रहा हूँ। इस हुकूमत की तीस साल सच्चे दिल से सेवा करने के बाद मुझे इतमीनान हो गया है कि यह राम-राज्य नहीं, किन्तु रावण-राज्य है। यह हुकूमत इस समय मुझे बुरी लग रही है, तो मुझे कोई अंग्रेजों के प्रति तिरस्कार नहीं; मुझे तिरस्कार हुकूमत के प्रति है। जब तक अंग्रेज सरकार पश्चात्ताप नहीं करती, भारत की स्त्रियों से और पुरुषों से माफी नहीं माँगती और यह नहीं कहती कि 'हम तुम्हारे नौकर हैं और नौकर

बनाकर रखो तो रहना चाहते हैं', तब तक मैं इस हुकूमत के हवाई जहाजों और मशीनगनों का सामना करने को तैयार हूँ। इसके हवाई जहाज या मशीनगन मुझे डरा नहीं सकते।

इस हुकूमत का सामना करने में मुझे धर्म की हानि बिलकुल नहीं दिखाई देती। मौका पड़े तो जैसे मैं लड़के के विरुद्ध असहयोग कर सकता हूँ, वैसे ही हुकूमत के विरुद्ध भी करता हूँ। यह भी धर्म है। मनुष्यमात्र भूलों से भरा है, पापी है। मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं संयम-धर्म पालता हूँ, फिर भी सम्पूर्ण नहीं। मुझमें पाप और अपूर्णता भरी है। तो भी मैं पाप से डरता हूँ। मुझमें त्रुटियाँ हैं और उन्हें निकालने की मैं कोशिश करता हूँ। मैं उनका गुलाम नहीं हूँ। यह हुकूमत तो पाप को ही धर्म मानती है। यह हुकूमत दूसरे देशों को कुचलकर अपने देश को खुश-हाल बनाती है। यह अत्याचार है। मैं दूसरे देशों को कुचलकर—मिट्टी में मिलाकर—भारत को खुशहाल बनाना नहीं चाहता। दूसरों के धर्म को मिटाकर मैं भारत को उठाना नहीं चाहता। परन्तु यह सल्तनत तो कहती है कि हम बादशाहत के लिए चाहे जो अत्याचार करेंगे। सल्तनत बोल्ती नहीं, करके बताती है। पंजाब में उसने करके बता दिया। मैं कृष्ण का पुजारी आप सबसे कहता हूँ कि ऐसी हुकूमत के स्कूल-कॉलेजों, उसकी अदालतों को ठुकरा दीजिये। मुझे अपने शरीर के लिए किसीका डर नहीं है। अपना शरीर तो मैं इस हुकूमत को सौंपकर ही यहाँ बैठा हूँ। अपने हृदय का नेतृत्व आप ईश्वर को ही सौंप दीजिये। उस समय आपकी बेड़ियाँ टूट जायँगी।

असहयोग सोने जैसा शस्त्र है, दिव्य शस्त्र है। हिन्दुओं को वह श्रीकृष्ण से मिला है; मुसलमानों को मुहम्मद पैगम्बर ने दिया है; पारसियों को जेन्द अवस्ता से मिला है। जहाँ तुम अन्याय देखो; किसी मनुष्य में अन्याय को मूर्तिमान् देखो, तो उस मनुष्य का त्याग कर दो। तुलसीदासजी ने बहुत ही मृदु भाषा में कहा है कि असंत से दूर भागो, असंत अपने समागम से पीड़ित करते हैं। जैसे दावानल से दूर भागते हो, वैसे

ही असंत से—अन्याय से भागो। भागने का ही अर्थ असहयोग है। असहयोग द्वेष या वैर नहीं है। यह तो धर्मात्मा का धर्माचरण है। असहयोग बाप-बेटे में उचित है, स्त्री-पुरुष के बीच कर्तव्य है, सगे-सम्बन्धियों में फर्ज है। मेरा लड़का मद्य-मांस खाकर आये और मैं उसका वैष्णव बाप उसे अपने घर में क्षणभर भी रखूँ, तो फिर मुझे रौरव नरक में ही जाना पड़े। इस असहयोग का रहस्य मैं आपको न समझा सकूँ, तो फिर स्वराज एक असंभव वस्तु है। स्वराज लेना हो, तो एक ही उपाय है और वह असहयोग है।

हाँ, तलवार भी जरूर एक उपाय है। परन्तु तलवार के लिए आपने कभी तपस्या की है? तलवार के लिए संयम किया है? इसलामियों को तो तुमसे ज्यादा तलवार चलानी आती है। उन्होंने भी जान लिया कि यह काम तलवार से नहीं होगा। क्या दो-चार आदमियों को मार देने से डरकर यह सल्तनत स्वराज दे देगी? जो सल्तनत हजारों अंग्रेजों की लाशों पर बनी है, जिसने हजारों अंग्रेज, सिख और पठानों के खून की नदी बहायी, वह सल्तनत क्या पाँच-दस हत्याओं से डर जायगी? हरगिज नहीं। मैं अंग्रेजी सल्तनत की निन्दा करता हूँ, परन्तु उसे बहादुर भी बताता हूँ। उसे स्वदेश प्यारा है। उसमें जो राक्षसी भावना है, वह त्याज्य है। मैं तो रावण की बहादुरी की भी तारीफ करनेवाला हूँ। तुलसीदासजी ने कहा है कि दुश्मन मिले तो रावण जैसा मिले। लक्ष्मण के साथ लड़नेवाला तो इन्द्रजीत जैसा होना चाहिए। ऐसी हुकूमत से लड़ो, तो बहादुरी से मैदान में उतरकर तलवार निकालकर लड़ो। परन्तु वह चीज ताकत से बाहर की है। मैं जिस प्रकार हिन्दू-धर्म को समझता हूँ, तदनुसार हिन्दू को तलवार के बिना ही लड़ना चाहिए, दूसरे का सिर काटने के बजाय अपना ही सिर उड़ा देना चाहिए। मैं स्वयं भारत का एक बड़े-से-बड़ा क्षत्रिय होने का दावा करता हूं। मुझे रिवाल्वर से पाँच वार करने नहीं आते? मुझसे किसीको जहर नहीं दिलाया जा सकता? मुझे कोई वायुयान में ले जायँ, तो वहाँ से मैं बम नहीं फेंक सकता?

परन्तु मैंने इन वस्तुओं का ज्ञानपूर्वक त्याग कर दिया है। मुझे ईश्वर ने एक खटमल तक भी पैदा करने की शक्ति नहीं दी, तो फिर किसीको मारने का काम भी मेरा नहीं है। मेरा काम मरना है। मैं अपनी, अपनी स्त्री की और अपने देश की रक्षा करने में सिर दूँ, तब मैं शुद्ध क्षत्रिय हूँ। अशक्त-से-अशक्त मनुष्य—स्त्री भी—अपने अन्दर क्षत्रिय का स्वभाव पैदा कर सकती है; अर्थात् शत्रु से कह सकती है कि मैं तो अटल खड़ी रहूँगी, तुमसे हो सो कर लो। नहीं तो हत्यारा ही क्षत्रिय माना जायगा! जो पुरुष स्त्री पर हाथ उठाये, वह भी क्षत्रियों में गिना जायगा! इसलिए मैं भारत से पुकार-पुकारकर कह रहा हूँ कि जो कुछ करो सो शुद्ध क्षत्रिय-वृत्ति से करो। मुसलमानों को गालियाँ देने, मुसलमानों से तिरस्कार करने से हमारा धर्म लज्जित होता है। घड़ीभर मान लो कि मुसलमान तुम्हें धोखा देंगे, तो भी जो शक्ति तुम इस हुकूमत से असहयोग करने में इस्तेमाल करो, वही शक्ति तुम मुसलमानों से असहयोग करने में काम में लेना। अब तक तुमने मुसलमानों से सहयोग किया ही कहाँ है? एक बार उनसे सहयोग करके देखो। तुमने सरकार के साथ तो खूब सहयोग किया है; और इतने पर भी हम दुःखी हैं। इस लिए मैं तुमसे कहता हूँ कि सरकार के साथ असहयोग करो और मुसलमान भाइयों से सहयोग करो। असहयोग कराने के लिए तुम्हें मारकाट नहीं करनी है। जिसे उसमें शरीक न होना हो, उसे तुम मार-मारकर मुसलमान नहीं बना सकोगे। उससे तुम्हें नम्रता और विनय का व्यवहार करना चाहिए। लात मारने पर सहन कर लोगे, तब तुम असहयोग करा सकोगे। तुममें सच्चाई होगी, नम्रता होगी, एकदिली होगी, तुम बहादुर बनोगे, तो तुम्हें छोड़कर सरकार का साथ कौन दे सकेगा? ऐसे लोगों को समझाने के लिए तुम खुद बहादुर बनो और त्याग करो।

एक लाख गोरे इतने तीस करोड़ पर कैसे प्रभुत्व रख सकते हैं? कारण यह है कि हम गुलाम बन गये हैं। यदि हम यह कह दें कि भाई,

आज से हम गुलाम नहीं रहेंगे, तो या तो ये चले जायँगे या हमारे नौकर बनकर रहेंगे। परन्तु ऐसा कहने की शक्ति प्राप्त करने की पहली सीढ़ी यह है कि हम ठाकुर, भील, मुसलमानों के साथ, ढेढ़ भंगी लोगों के साथ, सभी जातियों के साथ भाईचारा रखें, उन्हें भाई समझें, उनका तिरस्कार न करें। मुसलमान गाय को मारते हैं, इससे तुम्हें क्रोध होता है, परन्तु हिन्दू गाय नहीं मारते? गाय का दूध खतम हो जाने पर भी उसका खून खेंच लेना, गाय की सन्तानों के आर (लकड़ी में लगी नुकीली कील) भोंकना भी गाय की हत्या के बराबर ही है। ऐसी गोहत्या सदा करनेवाले हिन्दू किस मुँह से मुसलमान भाइयों के पास जाकर कहें कि मेरी गाय को तुम क्यों मारते हो? गाय को बचाना हो, तो हिन्दुओं को स्वयं अपनी शराफत दिखानी चाहिए। मुझे तो मुसलमान से माँगने जाते शर्म आती है और तुम्हारी गाय को अंग्रेज तो रोज खाते हैं। अंग्रेज सिपाहियों का बीफ—गोमांस—के बिना घड़ीभर भी नहीं चलता। तुम मुसलमानों से क्यों तिरस्कार करते हो? मुसलमानों में तो ईश्वर का डर भी है। तुम थोड़े दिन अली भाइयों के साथ रहो, तो तुम्हें पता चले कि वे ईश्वर से कितने डरते हैं। मुसलमानों के साथ एकदिल हो जाओ, तो स्वराज मिलना थोड़े ही समय की बात है।

स्वदेशी

अपने लड़कों को सरकारी पाठशालाओं से हटा लो, धारासभाओं में प्रतिनिधि न भेजो, चरखे पर सूत कातो और खादी के कपड़े पहनो

अन्त में यह कहना है कि हमें लड़कों को शिक्षा देनी है, नयी शालायें चलानी हैं, उनके लिए रुपया चाहिए। तुम यथाशक्ति रुपया दो।* तुमसे रुपया लेना मुझे कठिन लगता है। मैं ऐसे बहुत-से नौजवान नहीं देखता, जिनके हाथ में रुपया सौंपकर निर्भय रह सकूँ। असहयोग की आपको मदद करनी हो, तो अब जो स्वयंसेवक घूमेंगे, उन्हें एक पैसे से

---

* गांधीजी ने ठाकोर से चंदा करना शुरू किया, जो अलग-अलग कामों के लिए अपने देहान्त तक जारी रखा।

लगाकर तुम्हें जितना देना हो, उतना देना। असहयोग के लिए एक-एक पैसा तो कम-से-कम हरएक दे ही सकता है। और कुछ नहीं, तो प्रत्येक मनुष्य कम-से-कम कातना-बुनना तो कर ही सकता है। यह मानते हो कि मिल का कपड़ा पहनकर स्वदेशी का पालन होता है, तो यह भूल है। मिलें भारत के लिए पूरा कपड़ा बना नहीं सकतीं। खादी में ही सौन्दर्य है। बारीक मलमल में गुलामी की निशानी है, इसलिए खादी मुझे हल्की फूल-सी लगती है और पतली मलमल भारी लगती है। तुम अपने लड़कों को घर ही बिठा दो। वे कुछ समय न पढ़ें, तो हर्ज नहीं। घर बैठे उन्हें भगवान् का भजन करने दो।

उपसंहार

तुम यदि असहयोग को पसन्द करते हो, इस राक्षसी राज्य के जुए से निकलना चाहते हो, तो स्वयंसेवक आयें तब उठकर चले न जाना, बल्कि यथाशक्ति उन्हें कुछ-न-कुछ देकर जाना। मेरा नाम लेकर या वल्लभभाई का नाम लेकर या स्वराज्य सभा का नाम लेकर कोई तुमसे कुछ माँगे, तो एकदम मत दे देना। तुम उन्हें पहचानते हो, तो उनके हाथ में रुपया देना। इस समय जिसके पास रुपया-पैसा न हो, वह अहमदाबाद भेज सकता है। आज से ईश्वर तुम्हें साहसी बनाये, बलिदान की शक्ति दे, ईश्वर तुम्हें सचाई और नम्रता दे और तुम केवल ईश्वर का ही डर रखो और ईश्वर तुममें से मनुष्यमात्र का डर निकाल दे।

२

स्त्रियों की सभा *

बहनो, आप सब शान्ति से मेरी बात सुनना। मैं थोड़े ही शब्दों में सब कह दूँगा। आपमें से कुछ बहनें डाकोर की ही होंगी और कुछ बाहर से यहाँ आयी होंगी। मुझे विश्वास है कि इतनी सारी बहनों में शायद

---

* इसी अवसर पर डाकोर में लगभग तीन हजार स्त्रियों के सम्मुख दिया गया भाषण।

ही किसीको पता होगा कि इस समय भारत की क्या दशा है ? आज हिन्दुस्तान की जैसी हालत है, उसमें हमारा कर्तव्य क्या है, हमारा धर्म क्या है ? आप सब इस तीर्थस्थान में पवित्र भाव से आयी हैं। आपको लगता होगा कि डाकोरजी के दर्शन कर लेने से सब पाप नष्ट हो गये। गोमती में स्नान कर लेने मात्र से सर्वस्व मिल गया। कुछ बहनों का यह भी खयाल होगा कि गांधी जैसे महात्मा के दर्शन करके कृतार्थ हो गये। यह बात बिलकुल झूठ है। गोमतीजी में स्नान करो और मन को पवित्र न बनाओ, तो उल्टे आप गोमतीजी को गंदा बनाती हैं। डाकोरजी के दर्शन करने जायँ और वहाँ केवल पैरों का मैल छोड़ आयें, तो वह दर्शन कोई काम नहीं आता। मन को पवित्र करें, हृदय में अच्छे भाव उत्पन्न करें, हम अपने बारे में ज्ञान प्राप्त करें, तो ही डाकोरनाथ के दर्शन सफल हों। यह तो आप खुद ही कहेंगी कि मेरे जैसे अश्रद्धावान् को या किसी ईसाई को दर्शन का क्या फल होगा। मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि जब तक हमारा मन शुद्ध नहीं, दिल जब तक साफ नहीं हुआ, तब तक गोमती का स्नान या रणछोड़राय के दर्शन कुछ भी सफल नहीं हो सकते।

अब सब बहनों से मेरा पहला अनुरोध यह है कि आप यह समझ लें कि सच्चा धर्म किसमें है। जब तक आप यह न समझें कि सच्चा धर्म किसमें है, तब तक नहीं समझोगी कि भारत की क्या दशा है। जब तक आप यह मानती हैं कि सरकार तो माँ-बाप है, उसके राज्य में हम शांति से रहती हैं, तब तक आप गुलामी से नहीं छूट सकतीं। मैं मानता हूँ कि सरकार ने हमें गुलाम बनाया है। तीस वर्ष तक मैं मानता था कि हम अंग्रेजी राज्य की छाया में सुखी हैं। परन्तु अब मुझे विश्वास हो गया है कि इस सरकार के नीचे हम छाया में नहीं, परन्तु धूप में भूने जा रहे हैं। हमारा धर्म जाने को तैयार है। मैंने रास्ते में तख्ते लटके हुए देखे कि होटल में जाने से हम अपना धर्म छोड़कर आते हैं। यह सच है, परन्तु अर्द्ध सत्य है। ये होटलें कब हुईं ? इस सरकार के राज्य में। और यहाँ

हुईं ? इसलिए कि इस सरकार ने हमें ऐश-आराम करना सिखा दिया। अब हम घर छोड़कर बाजार में स्वाद लेना सीख गये हैं, वैष्णवों के मर्यादा-धर्म का हमने उल्लंघन कर दिया है। यह सरकार ऐसी है, जो शराब और अफीम का व्यापार करके लाखों रुपये पैदा करती है। शास्त्र में कहा है कि जो राजा व्यापार करे वह मध्यम वर्ग का है; प्रजा की रक्षा कर सकने के लिए ही थोड़ा-सा उससे ले ले वह पहले वर्ग का, परन्तु जो प्रजा को व्यसनी बनाकर और मद्यपान सिखाकर रुपया पैदा करता है, वह अधम राजा है। आजकल हम पर ऐसा अधम राज्य है, यह मैं तुम बहनों को सिखाने यहाँ आया हूँ।

देश की दो आँखें

भगवद्‌गीता में हमें सिखाया गया है कि सबको समान समझें। हिन्दू-मुसलमान तो देश की दो आँखों के समान हैं। उनमें वैरभाव नहीं हो सकता। परन्तु हम इन मुसलमानों से तिरस्कार—असहयोग करते हैं, उनके साथ वैर करते हैं। यह सरकार आज इन मुसलमानों का धर्म मिटाने पर तुली हुई है। आज वह उनका धर्म मिटा सकती है, तो कल हमारा धर्म भी मिटा सकती है।

दूसरी बात पंजाब की है। पंजाब का नाम भी तुमने नहीं सुना होगा। परन्तु हमारे ऋषियों ने पंजाब से ही भारत में प्रवेश किया था। पंजाब वह भूमि है, जहाँ बैठकर ऋषियों ने सारे शास्त्र लिखे थे। उसी पंजाब में सरकार ने बहनों और पुरुषों का अपमान किया है; उसी पंजाब के बच्चों को कोड़े लगाये हैं; उसी पंजाब के आदमियों को साँप की तरह पेट के बल चलाया है। ऐसी सरकार की आन मानना अधर्म है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि हमें इस रावण-राज्य को बदलकर राम-राज्य स्थापित करना चाहिए।

मेरा दूसरा अनुरोध आपसे यह है कि आप स्वदेशी धर्म का पालन करने लग जायँ। इस सरकार ने हमें पाखंड सिखाया है। हमयह

मानना सीखे हैं कि विलायती कपड़े से शरीर की शोभा बढ़ती है। यहाँ आयी हुई बहनें जो कपड़ा पहने हुए हैं, उनमें भी विदेशी बदबू है। मिलों का कपड़ा भी स्वदेशी नहीं है। जितना कपड़ा मिलों में होता है, वह भारत के लिए काफी नहीं है। आप स्वयं कोई भिखारी नहीं। मैंने आपसे भी अधिक गरीब देखे हैं। मैंने ऐसे देखे हैं कि पुरुषों को एक लँगोटी ही मिलती है और बहनों को फटा-टूटा लहँगा मिलता है। आज हिन्दुस्तान स्वदेशी धर्म को अंगीकार कर ले, 'सुन्दर चरखा' सभी बहनें चलाने लगें, खुद कात सकें उतने ही कपड़े पहनें, तो हम आज गुलामी से छूट जायँ। पहले की स्त्रियाँ गुणों में खूबसूरती मानती थीं। विदेशी कपड़े पहननेवाली तो कुबड़ी हैं। कपड़े पहनकर सुन्दर दिखाई देने में तो वेश्या का भाव है। हम कैसी सीताजी और दमयन्ती को पूजते हैं? बारीक कपड़े पहननेवाली दमयन्ती को, बारीक कपड़े पहननेवाली सीताजी को? नहीं, आधे वस्त्रों में वन-वन घूमनेवाली दमयन्ती को, चौदह वर्ष वनवास में बितानेवाली सीताजी को हम पूजते हैं। हरिश्चन्द्र की रानी ने दासत्व किया था। सो क्या वह बारीक कपड़े पहनती होगी? उस समय तो पत्ते लाज ढँकते थे। बाहर की शोभा से सुन्दर दीखना वेश्या का भाव है। आप अपना धर्म पालना चाहती हैं, तो पहली सीढ़ी यह है कि आप स्वदेशी धर्म समझ लें। अपने ही हाथ का काता हुआ सूत और अपने ही घर के पुरुषों का गाते-गाते बुना हुआ कपड़ा काम में लेने का नाम स्वदेशी धर्म है। मैं स्वयं सच्चा खूबसूरत हूँ, क्योंकि मेरे पहने हुए कपड़ों में बहनों के हाथ का काता हुआ सूत पुरुषों ने प्रेम से बुना है। यदि तुम्हें रावण-राज्य से स्वतंत्र होकर राम-राज्य स्थापित करना है, तो तुम स्वदेशी धर्म अंगीकार करो, चरखे को घर में जारी करो। कातना सिखानेवाली अब तो तुम्हें बहुत मिल जायँगी। कम-से-कम प्रत्येक बहन ईश्वर भजन करती-करती एक घंटा तो काते ही। उस सूत से तुम कपड़ा बुनवा लेना।

विदेशी मलमल छोड़कर हाथ का बुना हुआ पहनना [illegible]

तुम्हें भारी तो अवश्य पड़ेगा। बम्बई की कुछ बहनों ने मेरे सामने शिकायत की कि हमारी साड़ी पहले चालीस तोले से कम होती थी, सो अब सत्तर तोले से बढ़ जाती है। मैंने उन्हें जरा आलंकारिक भाषा में उत्तर दिया कि कपड़ों का भार घटाकर तुमने अब तक अपना भार हल्का कर लिया है। स्त्रियाँ नौ मास तक गर्भ का भार आनन्द के साथ उठाती हैं, प्रसव-काल की भारी वेदना सहर्ष सहन करती हैं। आज तो भारतवर्ष का प्रसव-काल है। इस नव भारत के प्रसव-काल में तुम मोटे कपड़े का भार उठाने को भी तैयार नहीं होगी? यह बोझा उठा लोगी, तो ही तुम भारत को स्वतंत्र बना सकोगी। भारत को नया जन्म देना हो, तो प्रत्येक स्त्री को नौ महीने तो क्या, नौ वर्ष भी भारी खादी का भार उठाना पड़ेगा।

दूसरे, तुम जानती हो कि तुम अपने बच्चों को कहाँ पढ़ने भेजती हो? तुम उन्हें रावण-राज्य की पाठशालाओं में भेजती हो! धार्मिक वैष्णव कभी अपने बालकों को अधर्मी राज्य की पाठशालाओं में भेजेगा? मैं कभी पाखंडी से गीता या भागवत पढ़ने जाऊँगा? आजकल के स्कूल पाखंडी राज्य के हैं। ये स्कूल हमारे न हो जायँ, तब तक तुम अपने बच्चों को उनमें से निकाल लो। उन्हें रामरक्षा सिखाओ, ईश्वर के भजन सिखाओ अथवा अपने गाँव के समझदार लोगों से जाकर कहो कि 'हमारे बच्चों को पढ़ाओ', परन्तु इन स्कूलों में तो तुम अपने बच्चों को हरगिज मत भेजो।

आज एक बहन मेरे सामने पाँच रुपये रख गयी। अब तक मैंने इस ढंग से दान नहीं लिया। मुझे चाहिए उतना मित्रों से ही ले लेता हूँ। परन्तु अब तो मुझे स्वराज्य स्थापित करना है और अनेक पाठशालाएँ चलानी हैं, सो इस तरह मित्रों से रुपया लेकर नहीं चलायी जा सकतीं। तुम्हें राम का राज्य चाहिए, तो उसके लिए प्रयास करना ही चाहिए। जितनी शक्ति हो उतना दान तुम देना; उसका उपयोग मैं स्वदेशी के

लिए, तुम्हारे बच्चों के लिए पाठशालाएँ खोलने में करूँगा। इस समय तो डाकोरनाथजी के लिए हममें से पाखंडी लोग अदालतों में पहुँचे हैं! क्या देवताओं के लिए हम अपने झगड़े अदालत में ले जाते हैं? यह पाखंड है। वकीलों को घर बिठालने के लिए उन्हें थोड़ा-बहुत देना पड़ेगा। जब तक मेरी और मेरे साथियों की दलील सही है, तब तक तुम्हारे एक पैसे के तुम्हारे लिए दो पैसे होंगे। इस रुपये से तुम्हारा ही स्वदेशी, तुम्हारी ही अदालतें चलेंगी। आज देवस्थानों में हम जो रुपये देते हैं, वह पाखंडियों के हाथों लुट जाते हैं।

यदि तुम्हें सीताजी की तरह पवित्र बनना हो, मैंने समझाया वैसा अनेक प्रकार का मानसिक व्यभिचार छोड़ना हो और तुम्हारी दूसरी बहनों से छुड़वाना हो, पाखंड में से पवित्र धर्म सीखना हो, तो तुम्हें स्वराज्य के इस आन्दोलन में पूरा भाग लेना चाहिए। पाखंड क्या है और धर्म क्या है, इसकी परीक्षा तो प्रत्येक को करनी आनी ही चाहिए। तुम्हारे पास बहुत-से पाखंडी भी रुपया माँगने आयँगे। मैं यह नहीं कहता कि तुम उन सबको दो। जब मुझे विश्वास हो गया कि तुम्हें मुझ पर विश्वास है, तभी मैं आज तुम्हारे आगे हाथ पसार रहा हूँ। अपने काम में रुपये का मैला तत्त्व शामिल करने से मैं काँपता हूँ। मेरा इतना तप हो कि रुपये के बिना काम चला सकूँ, मुझमें इतनी तदबीर हो, तो मैं जरूर नहीं माँगूँ। परन्तु वैसा तप या तदबीर मुझमें नहीं है। मैं स्वयं भी कलियुग का ही आदमी हूँ, अनेक त्रुटियोंवाला हूँ। परन्तु मुझे विश्वास है कि मैं अपनी त्रुटियाँ दूर करने का सतत प्रयत्न करता रहता हूँ। इसलिए आपको विश्वास हो, तो एक पैसे से लगाकर जितना हो सके, उतना दान दो। सबका इंतजाम स्वराज-सभा करेगी।

देना। स्वदेशी धर्म से आपकी पोशाक के कुछ रुपये बचेंगे, उनसे अपने बच्चों को घी-दूध दे सकोगी। इस समय दूध-घी का रुपया आप ऐश-आराम में खर्च कर डालती हैं। और इस बचत में से मैं भी थोड़ा-सा माँगता हूँ। रुपया तो तुम्हारी खुशी हो तो ही देना। रुपया न दो, तो भी चरखे का जो धर्म मैंने आपके सामने रखा है, उसे तो स्वीकार कर ही लेना। आज ग्रहण निकालना है। अपने दिल का मैल निकाल देना ही सच्चा ग्रहण निकालना है। सब बहनें सच्चे हृदय से राम-नाम लेंगी, यह प्रार्थना करेंगी कि रावण के बजाय राम-राज्य मिले, तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि राम निर्बल का बल अवश्य बनेगा। परमेश्वर आप सबके दिलों का सरदार बने और दूसरी गुलामी से आपको छुड़ाये।

३१-१०-'२०

अहमदाबाद में कड़िया की वाड़ी में स्त्रियों की सभा में दिया गया भाषण :

"सारे भारत में जहाँ-जहाँ मैं घूम रहा हूँ, वहाँ सब जगह स्त्रियों के दर्शन से कृतार्थ होता हूँ। हर जगह हजारों स्त्रियाँ मुझसे मिलती हैं। आज मैं आपसे एक सुन्दर बात कहूँगा। अमृतसर का नाम तो अब आपमें से किसीसे भी छिपा नहीं होगा। उसी शहर में हमारे हजारों भाइयों के खून की नदी बही थी और वहाँ जनरल डायर ने हजार-पंद्रह सौ निर्दोष मनुष्यों को क़त्ल या घायल किया था। उसी अमृतसर में जब मैं कुछ दिन पहले गया, तब एक दिन सुबह साढ़े छह बजे चार बहनें मेरे पास चली आयीं। अमृतसर में तो यहाँ से ठंड बहुत ज्यादा होती है। परन्तु उन बहनों ने सोचा कि जो भाई हमारी इतनी सेवा कर रहा है, उसे चेतावनी तो जरूर दे देनी चाहिए। उनमें से एक ने मुझे कहा, 'भाई, आप काम तो अच्छा कर रहे हैं। परन्तु आपको पता नहीं कि हमारे पुरुष और किसी हद तक हम स्त्रियाँ भी आपको धोखा दे रही हैं।' मैं तो चौंक पड़ा। मैंने कहा, 'मुझे क्यों धोखा देने लगे ? इससे उन्हें क्या लाभ होगा ?' उसने कहा, 'पुरुष बदमाश हैं, वे आपके पास झूठ बोलते

हैं, हमने तो समझ ही लिया है कि आपके काम में पवित्र स्त्रियों और पवित्र पुरुषों की ही जरूरत है और इसीलिए आपकी भावनाएँ हममें पैदा हों, इसके लिए हम स्त्रियाँ आपके पीछे-पीछे फिरती हैं।' उस बहन ने फिर एक संस्कृत शब्द का उपयोग किया। पंजाब की स्त्री के मुँह से ऐसे संस्कृत शब्द की आशा नहीं रखी जा सकती। तुम भी शायद उस शब्द का अर्थ नहीं समझती हो। उसने कहा कि हमारे पुरुष 'जितेन्द्रिय' नहीं और हम स्त्रियाँ भी जितना आप चाहते और मानते हैं, उतनी 'जितेन्द्रिय' नहीं। मैंने उसका कहना इशारे में समझ लिया। जितेन्द्रिय वह है, जिसकी इन्द्रियाँ वश में हैं अर्थात् जो पुरुष या जो स्त्री कान से बुरा सुन सकती है, जीभ से बुरा बोल सकती है, उसे जितेन्द्रिय नहीं कहा जा सकता। अभी तो उसका विशेष अर्थ यह है कि जो पुरुष एक-पत्नीव्रत नहीं पालता अथवा जो स्त्री पातिव्रतधर्म नहीं पालती, वह जितेन्द्रिय नहीं। उस बहन ने कहा, 'आप हमसे चाहते हैं कि हम गुस्से को रोकें, परन्तु जो विषयों को नहीं रोक सकता, वह क्रोध को कैसे रोक सकता है? और जो क्रोध को नहीं रोक सकता, वह कुर्बानी, स्वार्थत्याग कैसे कर सकता है?' "

डाकोर की तरह अहमदाबाद की स्त्रियों से भी गांधीजी ने चार भिक्षाएँ माँगीं। पहली भिक्षा उन्होंने पवित्रता की माँगी। पवित्रता के बिना इन्द्रिय-जय प्राप्त नहीं होता और वह जिसे प्राप्त न हुई हो, उससे कुर्बानी हो ही नहीं सकती।

गांधीजी की दूसरी भिक्षा यह थी कि माताएँ अपने बच्चों को सरकारी पाठशालाओं से हटा लें। "तुलसीदासजी और गीताजी का यह कहना है कि असंत का संग त्याज्य है। और यह राज्य भी 'असंत' है, नीच है। इस राज्य की पाठशालाओं में बच्चों के पढ़ने से तो उनका पढ़ना ही हराम होना बेहतर है। यह डर रखने का कोई कारण नहीं कि लड़का नहीं पढ़ेगा, तो कमाकर कौन खिलायेगा। जिनके लड़के नहीं होते, वे कैसे पेट भरते हैं? पेट भरनेवाला तो परमेश्वर है।"

गांधीजी की तीसरी भिक्षा यह थी कि सभी बहनें स्वदेशी धर्म का पालन करें। यह कहकर कि हमारे स्वदेशी धर्म छोड़ देने से ही देश गुलाम बना। गांधीजी ने डाकोर की तरह इस शिकायत का खंडन किया कि खादी भारी लगती है। उन्होंने पूछा, "तुम्हें मोटी रोटी बनानी आती हो और दूसरी को पतली रोटी बनानी आती हो, तो तुम अपनी मोटी रोटी खाओगी या उसकी पतली माँगकर खाओगी? मिल का—देशी मिल का भी—कपड़ा पहनने से स्वदेशी-धर्म का पालन नहीं होता। इससे तो उल्टे गरीबों के काम आनेवाला माल महँगा बना दोगी।" गांधीजी ने कहा, "दुःख सहे बिना सुख नहीं। राम ने चौदह बरस वनवास भुगता, तब सीताजी को छुड़वाया; नल ने इतने दुःख उठाये, तब वह अमर हुआ; हरिश्चंद्र, तारामती और रोहित ने इतने दुःख बर्दाश्त किये, तब उनके सत्य का सूर्य बना और उसका प्रकाश संसार में फैला। इसलिए दुःख से न डरकर और मोटी साड़ी से न शरमाकर अपने हाथ से कातकर बुनवाया हुआ कपड़ा काम में लो।" गांधीजी ने यह माँग की कि "और ईश्वर का नाम भजना भी जरूरी है, परन्तु तोते की तरह राम-नाम लेने से मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। हृदय में राम हो, तो दयाधर्म रहे और दयाधर्म दिल में हो, तो हम ऐसा व्यवहार नहीं करते, जिससे दूसरों को दुःख हो। मैं कहता हूँ कि तुम हाथ से कते-बुने कपड़े नहीं पहनोगी, तो हजारों स्त्रियों को नग्न रहना पड़ेगा, चिथड़े पहनने पड़ेंगे। आज भी मैं तुम्हें देश में हजारों दमयन्तियाँ दिखा दूँ। मैंने एक स्त्री से नहाने को कहा तो वह कहती है, 'मुझे दूसरा कपड़ा पहनने को दें तो नहाऊँ!' देश की इस वक्त ऐसी कठिन दशा है।"

गांधीजी ने इसके बाद स्त्रियों को चौथा धर्म और अपनी चौथी भिक्षा बतायी। "स्वराज स्थापित करने, नयी पाठशालाएँ खोलने के लिए रुपया चाहिए। वह मैं वृक्षों से तोड़कर नहीं ला सकता। डाकोर में जब मैंने पहले-पहल यह भिक्षा शुरू की, तब एक पीसनेवाली स्त्री ने अपनी अँगूठी उतारकर दे दी, दूसरी और दो-तीन स्त्रियों ने अँगूठियाँ, कंठियाँ

वगैरह दीं।" एक भाई ने सोने की पहुँची उतारकर दी। उसने कहा कि 'मुझे उम्मीद है कि एक पैसा देनेवाले को दो पैसे वापस मिलेंगे।' गांधीजी यह वचन देने को तैयार नहीं थे, परन्तु उन्होंने कहा, "यह कलियुग है। जहाँ-तहाँ पाखंड है। रुपया माँगे विना काम चला सकूँ, तो मैं बड़ा खुश होऊँ और कदापि न माँगूँ। मैं या मेरे साथी यथासंभव बुरे काम में रुपया नहीं लगायेंगे। फिर भी तुम मेरा कहना मानती हो, तो ही देना।" बाद में दिवाली या ऐसे उत्सवों के मौके पर मिठाई न बनाकर, पटाखे न छोड़कर वह रुपया देश के लिए देने की गांधीजी ने अपील की: "दिवाली, राम सीताजी को छुड़ाकर लाये, इसकी खुशी का उत्सव है। राम ने रावण पर जैसी विजय प्राप्त की, वैसी हम फिर प्राप्त न कर सकें, तब तक हमें ऐश-आराम करने या शृंगार करने, स्वाद लेने या पटाखे छोड़ने का अधिकार नहीं है।"

इसके बाद जब चन्दा जमा करने का काम हुआ, उस समय का दृश्य तो अवर्णनीय था। कुछ लड़कियाँ और आश्रम की कुछ बहनें स्त्रियों के बीच घूमने लगीं और सभा का दृश्य देवमंदिर जैसा बन गया। छोटी-बड़ी और वृद्ध स्त्रियाँ, सबने पैसों, अठन्नियों, चवन्नियों और रुपयों की भी वर्षा कर दी। कुछ बहनें और बुजुर्ग बुढ़ियाओं ने साथ में कुछ भी या अधिक देने को न होने के कारण जी मसोसकर रह गयीं। कितनी ही बहनों ने स्वयंसेवकों और सेविकाओं को अपने घर का पता लिखवाकर वहाँ आकर अमुक रकम ले जाने की आग्रहपूर्ण सूचना की। देखते-देखते लगभग सवा सौ रुपये की रेजगारी का ढेर लग गया। इस रेजगारी में ताँबे के सिक्के-पैसे, अधन्ने ही नहीं, अधेलियाँ और पाइयाँ तक थीं! गांधीजी तो प्रेमाश्रुपूर्ण आँखों से गद्‌गद दिखाई देते थे। वे कह रहे थे कि "यह पैसा लखपतियों के लाखों रुपयों के दानों से अधिक पवित्र है। इस हरएक ताँबे के पैसे के साथ अहमदाबाद की बहनों की आत्मा जुड़ी हुई है, उनकी देशभक्ति समायी हुई है। इस पवित्र रुपये से मैं

देश के बालकों को शिक्षा दूँगा। इस पवित्र पाई-पैसों के दान पर स्वराज्य को घर लाऊँगा।" जब यह हो रहा था, तब एक लड़की ने झट अपने कान का जेवर उतारा। दूसरी ने भी उतारा। तीसरी ने भी चूड़ी निकाली। तुरंत चारों ओर गहने उतरने लगे। देखते-देखते हाथ की अंगूठियाँ, कंठियाँ, लौंगें, मालाएँ, पहुँचियाँ, लॉकेट और इसी तरह के छोटे-बड़े अलंकारों का भी एक ढेर लग गया! गांधीजी कुछ विनोद करते जाते थे, कुछ समझाते जाते थे कि जो बहनें घर जाकर नये जेवर माँगें या चाहें, उनका धन मुझे नहीं चाहिए। उसीके साथ बहुत-सी बहनों और लड़कियों ने गांधीजी को विश्वास दिलाया कि वे अलंकार-आभूषण बिलकुल नहीं पहनेंगी। गांधीजी की तरफ से इसका एक ही उत्तर मिलता था कि ऐसे आपत्काल में तुम्हें यही शोभा देता है—यही धर्म है। सभा समाप्त करके गांधीजी जब आश्रम लौटे, तब शाम हो गयी थी। आश्रम की सायंकालीन प्रार्थना में भी चंदा जारी रहा। उसमें कुछ बहनों ने चूड़ियों पर की सोने की पत्तियाँ उतारकर अर्पण की थीं।

मेहमदाबाद का भाषण

१-११-'२०

मेरी इच्छा आज आपसे खूब बातें करने की है। परन्तु मैं लम्बे समय तक कार्रवाई चलाना नहीं चाहता। आज का काल हिन्दुस्तान के लिए कठिन काल है। देश की खराब हालत मैं बयान नहीं कर सकता। मैं अभी बहनों से कह आया हूँ कि इस देश में जो राज्य हो रहा है, वह राक्षसी राज्य है, रावण-राज्य है, उसमें शैतानियत भरी है। इसके सबूत में हमारे पास दो बड़े उदाहरण हैं: पंजाब और खिलाफत। खिलाफत के मामले में दिये हुए वचन पाले नहीं गये; धोखा दिया गया। पंजाब में बिना कारण हत्याएँ की गयीं। जिसका स्वभाव राक्षसी हो, शैतानी हो, वही इसमें काम कर सकता है। ऐसे राज्य को तुलसीदासजी ने राक्षसी राज्य कहा है। उसके साथ सहयोग नहीं किया जा सकता।

इतना ही नहीं, परन्तु असहयोग करना धर्म और कर्तव्य है। ऐसी सरकार से हम सहायता लें या उसकी कृपा स्वीकार करें, तो हम उसके किये हुए अन्याय और पाप में शरीक होते हैं। जब तक उसके पाप में हमारा हिस्सा रहेगा, तब तक जनता सुखी नहीं हो सकती।

वह असहयोग कैसे हो सकता है? एक रास्ता तो यह है कि हम सबमें आपस में सहयोग होना चाहिए। देश के तमाम लोग, हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, सबमें पूरी तरह सहयोग होना चाहिए। राक्षस दूसरों को आपस में लड़ाकर ही राज्य कर सकता है। हमारी सरकार ने यही किया है। उसने हिन्दू-मुसलमानों को लड़ाया। मद्रास प्रान्त में ब्राह्मण-अब्राह्मणों को लड़ाया। उससे हो सके, तो यहाँ भी लड़ाई करायेगी। मेरे पास तो पत्र आ रहे हैं। ढेढ़ और भंगी मुझसे पूछ रहे हैं कि स्वराज्य में हमारा स्थान कहाँ होगा? मैं इसका अर्थ समझ गया हूँ। इसलिए कहता हूँ कि जब तक हममें एकदिली न हो जाय, तब तक असहयोग असंभव है। एकदिली पाखंड से नहीं हो सकती। हम एक-दूसरे के साथ न्याय करें, तभी एकदिली संभव है।

त्याग करो, पवित्र बनो

इसके लिए हममें कुर्बानी करने की ताकत चाहिए, स्वार्थ-त्याग करने की शक्ति होनी चाहिए; हमें मरना आना चाहिए। हम मार-कर, मकानों को जलाकर, रेल की पटरियाँ उखाड़कर स्वराज नहीं ले सकेंगे। स्वराज लेना हो, तो हमें पवित्र बनना चाहिए। पवित्र बनने का अर्थ है, जितेन्द्रिय बनना।

जब तक हममें से असत्य, छल-फरेब नहीं चला जाता, तब तक हम काम नहीं कर सकेंगे। अहमदाबाद में बकरों का वध रोकने के लिए किये गये प्रयत्न का उदाहरण ताजा ही है। वहाँ एक पाखंडी मौलवी ने लोगों को बहकाना शुरू किया। बारह-बारह बजे तक उसने सभाएँ कीं। यह जाहिर किया कि मैं गांधी की तरफ से आया हूँ, उनके कहने से

यहाँ ठहरा हूँ। उस आदमी ने भाषणों में भली-बुरी बातें कहकर लोगों को उकसाया और उसके साथ एक साधु मिल गया। उसने यह मान लिया कि बकरे को बचाने से उसे स्वर्ग मिल गया। साधु ने इसमें मौलवी को मिला लिया और मौलवी ने बकरा मारनेवाले को धमकाकर उसका वध नहीं होने दिया। परन्तु इस घटना से हिन्दू-मुसलमानों में झगड़े की जड़ पड़ गयी। हिन्दू मानते हैं कि माता के बकरा चढ़ाया जाय। मेरे जैसा आदमी मानता है कि न चढ़ाया जाय। चढ़ाना हो, तो मेरा शरीर चढ़ाया जाय। परन्तु हिन्दुओं के इस पारस्परिक झगड़े में मैं मौलाना शौकतअली को तो हरगिज बुलाने नहीं जाऊँगा। परन्तु नामर्द हिन्दू तो मौलवी को बुला लाये। मौलवी साहब आ गये और अपनी डोंडी पीटनेवाले मनुष्यों की सहायता से उन्होंने बकरा छुड़ा दिया। वह साधु मुझसे मिला। मैंने उससे कहा कि साधु का वेश उतार डालो। मौलवी से मैंने कहा कि अहमदाबाद से चले जाओ। तुम इस प्रकार देश की सेवा नहीं कर सकते। जब हम सरकार को ही मारकर राज्य भोगना नहीं चाहते, तो क्या अपने ही भाइयों को मारकर राज्य भोग सकेंगे? उसका परिणाम क्या होगा? परिणाम तो देखा वैसा ही आता, परन्तु अहमदाबाद के कलेक्टर अच्छे थे; उन्होंने बकरा नहीं मारने दिया। नहीं तो ऐसा होता कि सरकार अपनी पुलिस भेजकर उसीकी मदद से बकरा कटवाती, फिर हमारा असहयोग सो जाता। मैंने मौलवी को बुलवाकर यह कह दिया। ऐसा पाखंड घुस जाय, तो हमारी कुछ न चले। मैंने उससे कहा कि तुम अपना इलाका न छोड़ो, अपना काम न छोड़ो। तब वह कहता है कि हिन्दुओं ने मुझे तंग किया। दो सौ नामर्द हमें कैसे तंग कर सकते हैं? दो सौ नामर्द ऐसा कर सकते हैं, तो एक गोरा क्या नहीं कर सकता? और हुआ भी यही। कलेक्टर ने मौलवी को बुलाया, तो वह डर गया और उसने मजदूरों से मदद माँगी कि उनके फसाद के डर से सरकार उसका कुछ न करे।

मेरे या मौ० शौकतअली के पकड़े जाने पर आप दंगा करेंगे,

मकान जलायेंगे, रेल की पटरियाँ उखाड़ेंगे, तो बाजी हार जायँगे। आप अस्त्र नहीं, इसलिए आपसे ऐसा कहता हूँ। आपको तो लकड़ी मारना भी नहीं आता। गधे के लाठी जमा दी और स्त्री को लकड़ी मार दी, तो यह लकड़ी मारना आना नहीं कहलाता। जिसे लकड़ी मारना आता है, वह तो हजारों के सामने लड़ सकता है। परन्तु आप ऐसे नहीं हैं, इसलिए आपको ऐसी सलाह दी जा सकती है।

हम सिंहपना भूलकर भेड़ बन गये हैं। हम आयर्लैण्ड या मिस्र का उदाहरण लेकर वैसे बनने लगेंगे, तो दोजख में पड़ेंगे। जब सरकार अपना तेज दिखायेगी—और यह बेजा नहीं, क्योंकि मैं भी सरकार होऊँ तो लोगों को पकड़ूँ, जिसे हुकूमत करनी है, वह अपना सामना करने-वाले को पकड़ेगा ही, यह उसका धर्म है। इसलिए जब सरकार अपना तेज दिखायेगी—तब आप फसाद करेंगे, तो हार जायँगे। आप उसे इस तरह डराने लगेंगे, तो आप डरपोक हैं। हिन्दुस्तान को छुड़ाना है, तो हमें सिंह बनना है।

आप छह हजार मनुष्य इस समय खतरे में हैं। आपके लिए फिर म्युनिसिपैलिटी क्या है ? यह तो सरकार ने आपके यहाँ हाथी बाँध दिया। छह हजार आदमियों की बस्ती पर बारह हजार का खर्च ! इस म्युनिसिपैलिटी को खत्म कर दो, यह आपका कोई काम नहीं करती। वह आपको शिक्षा देती है, परन्तु उस शिक्षा से तो हमें असहयोग करना है। हम अपात्र से दान कैसे लेंगे ? मुझे विद्यापीठ के लिए रुपया चाहिए, परन्तु मैं उसके लिए वेश्या से दान लेकर काम चलाऊँगा ? शराब की दूकानों से नफा कमाकर चलाऊँगा ?

मैं कहता हूँ कि हमारी शिक्षा का रुपया शराब की दूकानों से आता है। हम आबकारी विभाग बन्द कर देने को कहें, तो वे कहेंगे कि उसके रुपये के बिना पाठशालाएँ बन्द कर देनी पड़ेंगी। शराब के रुपये से पढ़े हुए हमारे वकील, बैरिस्टर, विद्वान् देश का क्या भला करेंगे ?

मैं यहाँ के लड़कों को बधाई देता हूँ कि उन्होंने सरकारी पाठशालाओं

का त्याग कर दिया। आप आज से इन लड़के-लड़कियों को अपने हिसाब से पढ़ायें। शिक्षकों से इस्तीफे दिलाओ और आज ही मुहूर्त करो। अपने मकान में मुहूर्त करो और सरकारी मकान छोड़ दो। म्युनिसिपैलिटी की शिक्षा का तो यह फैसला हुआ। दूसरा काम पाखानों और रोशनी का है। वे बुरी हालत में हैं। म्युनिसिपैलिटी रक्षा तो करती नहीं, क्योंकि पुलिस-विभाग उसके हाथ में नहीं। म्युनिसिपैलिटी के रास्तों पर धूल उड़ती है। इस प्रकार शिक्षा के सिवा और कोई महत्त्वपूर्ण काम वह नहीं करती। दवाखाना उसका है, परन्तु उसके मुकाबले में दो-तीन दवाखाने चल रहे हैं। इसलिए वह उसे मुबारक हो। मतलब यह कि हमें म्युनिसिपैलिटी की कोई जरूरत नहीं। वह तो एक पूजने की मूर्ति हुई। आप नौ सौ करदाता मिलकर प्रस्ताव करो कि यह म्युनिसिपैलिटी उठा दी जाय। कहो कि हमें तुम्हारा 'सैनिटरी बोर्ड' नहीं चाहिए, ग्राम-पंचायत नहीं चाहिए। मेम्बरों को नोटिस दे दो कि म्युनिसिपैलिटी खाली कर दो।

हम उसका कर नहीं देंगे

सरकार को जतला दो कि हम उसका कर नहीं देंगे। इसमें कानून का भंग नहीं, बेअदबी नहीं। आपको उसकी सेवा नहीं लेनी, इसलिए सरकार से कहने की कोई बात नहीं। आप सामना कर सकते हैं। कुछ समय तक सरकार आपको धमकायेगी। सामना करोगे, तो आपके घर कुर्की लायेगी। उन्हें घर बेचने देना। छह हजार की बस्ती गाँव भी खाली कर सकती है। फिर म्युनिसिपैलिटी किसका काम करेगी? परन्तु सरकार ऐसी पागल नहीं कि यहाँ तक जायगी। मैं उसको बुरा कह रहा हूँ। परन्तु इतना जानता हूँ कि वह समझदार है। यदि वह ऐसा न करे, तो उसे आज ही चले जाना पड़े। परन्तु सरकार अपनी हुकूमत छोड़ देना नहीं चाहती।

विरोधियों से विनय करो

इस काम को पार लगाने के लिए आपमें एकदिली होनी चाहिए।

इसमें कुछ विरोधी तो निकलेंगे ही। परन्तु विरोधी से अदब के साथ नम्रतापूर्वक कहो कि तुम हमारे सिर के ताज हो। हम आपसे पंचायत का मत मान लेने को ही कहते हैं। यह न हो सके, तो भी उनसे विनय करें कि आप हमारे काम में खलल न डालो। उनका क्या लाभ होगा, यदि ऐसे दो-चार सौ आदमी छह हजार के विरुद्ध होंगे? आप हिन्दू-मुसलमान एक होकर रहो, तो आपको मेरी यह सलाह है।

मैं काम करने के लिए दो शर्तें बता चुका हूँ। एक सहिष्णुता अथवा अहिंसा-धर्म है। यह मान लें कि वह दुर्बलों का धर्म है, तो भी जब तक आपमें तलवार की शक्ति नहीं आ जाती, तब तक दूसरी ताकत दिखायी ही नहीं जा सकती। दूसरी शर्त यह है कि हिन्दू-मुसलमानों में, देश की तमाम कौमों में, एकदिली होनी चाहिए। इन शर्तों का पालन करो, तो ही आप असहयोग कर सकते हैं। धारासभाओं में प्रतिनिधि न भेजना और पाठशालाओं से लड़कों को हटा लेना असहयोग की पहली सीढ़ी है। आप इतना कर लें, तो स्वराज्य लेकर ही बैठे हो।

पुलिस का डर न रखो

सरकारी नौकरों का डर न रखो। उनके साथ हमें वैर नहीं, परन्तु उन्हें प्रेम से, मुहब्बत से वश में करना है। फिर आपको डरना नहीं होगा।

अब दो बातें करनी रही हैं। आप अहमदाबाद से कपड़ा मँगवाते हैं। मुहम्मदाबाद में पहले सुन्दर कपड़ा बनता था, परन्तु अब वह धंधा करनेवाले कोई नहीं रहे। आप छह हजार आदमी चाहो तो क्या नहीं कर सकते? आपको मिल का कपड़ा किसलिए चाहिए? आपके घर आपकी मिलें हैं। खाने को होटल से नहीं मँगवाते, तो कपड़ा क्यों बाहर से मँगवाते हो?

आप मिल का कपड़ा न लें, तो मंगलदास सेठ या टाटा की मिलें बन्द नहीं हो जायँगी, वह माल तो गरीबों के लिए है। आप उनके पेट पर पैर नहीं रख सकते। रह गया विलायती माल। उसे तो हमें हराम

कौंसिलरों से मिले। वहाँ के म्युनिसिपल बोर्ड ने सरकार की तरफ से मिलनेवाली इक्कीस हजार की सहायता अस्वीकार कर दी है और पाठ-शालाओं पर से सरकारी नियंत्रण हटा लेने की माँग की है। इसके जवाब में खेड़ा जिले के कलेक्टर की तरफ से सूचित किया गया था कि इस प्रस्ताव पर पुनर्विचार किया जाय। म्युनिसिपैलिटी की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं कि वह सरकारी सहायता लेने से इनकार कर सके और सहायता लेना अस्वीकार करने पर भी म्युनिसिपैलिटी सरकारी अंकुश से मुक्त नहीं हो सकती। गांधीजी ने तो सलाह दी कि तुम केवल शिक्षा के मामले में ही नहीं, परन्तु सभी बातों में सरकार से स्वतन्त्र हो सकते हो। म्युनिसिपैलिटी अपने हाथ में ले लो और कर तुम वसूल करो। सरकार थोड़े समय तक दबाव तो जरूर डालेगी और कर वह स्वयं वसूल करेगी, परन्तु कर-दाताओं को इसका विरोध करना चाहिए और जो सिर पर आ पड़े, उसे सहन करना चाहिए। कौंसि-लरों ने दलील दी कि यह सब व्यवस्था एक साथ शुरू करना कठिन हो सकता है। इसके जवाब में गांधीजी ने कहा कि जब हम आज ही स्वराज्य माँगते हैं, तो हमें आज ही सारी व्यवस्था करने को भी तैयार रहना चाहिए। आप करदाताओं को यह सब समझा सकते हैं और वे कर देने से इनकार करने को तैयार न हों, तो आप सरकार की तरह उनसे भी असहयोग कर सकते हैं। आप उनसे कह सकते हैं कि फिर आप अपना काम हमारे द्वारा नहीं कर सकते। नेताओं का काम लोगों का नेतृत्व करना है, लोगों के नेतृत्व में चलना नहीं है। और आपको लोगों को साफ समझाना चाहिए कि सरकार को कर न देने से हम रुपया देने से बच नहीं जाते। हमारा प्रबन्ध करने के लिए रुपया तो जेब से निकालना ही पड़ेगा। परन्तु जैसे सरकार को दस रुपये देने से एक रुपये का काम होता है, वैसे इसमें नहीं होगा। यहाँ तो आप एक पैसा देंगे, तो दो पैसे का एवज मिल जायगा। परन्तु पैसा तो देना ही पड़ेगा। इस पर कौंसिलरों ने दूसरे दिन करदाताओं की सभा

बुलाकर उन्हें इस प्रकार समझाना मंजूर किया। वहाँ से एक मस्जिद में मुसलमानों से मिलने गये। उस पाक जमीन पर बोलने के लिए बुलाने पर गांधीजी ने मुसलमानों को धन्यवाद दिया। उसके बाद यह समझाया कि किसी-किसी हिन्दू या मुसलमान के वचनों या कृत्यों से दोनों जातियों में क्षोभ हो जाता है, यह ठीक नहीं। हिन्दू-मुसलमानों में सच्ची एकता करनी हो, तो दोनों जातियों में सच्ची एकदिली की जरूरत होगी। जब तक हमारे दिलों में शक है, जब तक छुईमुईपन है, तब तक कोई काम नहीं हो सकेगा। कभी-कभी निर्मल भाववाले मनुष्य भी भूल कर बैठते हैं। उस समय उत्तेजित न होकर उन्हें उनकी भूल बता देना ही कर्तव्य है।

यह सभा खत्म होने के बाद स्त्रियों की सभा में गये। अहमदाबाद की स्त्री-सभा से लगभग ड्योढ़ी उपस्थिति थी। यह कहकर कि यह रावण-राज्य है और उसे मिटाने के लिए पवित्रता तथा स्वदेशी की आवश्यकता है, नड़ियाद की बहनों से पवित्रता, स्वदेशी-धर्म-पालन, बच्चों को स्कूलों से हटा लेने और रुपये की—इस तरह चार भिक्षाएँ माँगीं। धर्म का पालन केवल माला फेरने या देव-दर्शन करने में ही नहीं हो जाता, परन्तु स्वराज्य अर्थात् रामराज्य प्राप्त करने के लिए परिश्रम करने में है। और ऐसे धर्म का पालन इस समय असहयोग से हो सकता है, इसलिए यह समझाया कि स्त्रियों को असहयोग में भाग लेना चाहिए।

नड़ियाद-निवासियों की सार्वजनिक सभा रात के आठ बजे गाँव के एक हिस्से में बड़े मैदान में रखी गयी थी। देहात से भी लोग आये थे और उपस्थिति दस हजार से अधिक होगी, फिर भी शान्ति खूब थी। अध्यक्ष-पद वल्लभभाई को दिया गया था। अपने भाषण में गांधीजी ने बताया :

"ऐसी भारी लड़ाई में तमाम कौमों में एकदिली की जरूरत है, तब किसी गैर-जिम्मेदार अथवा पाखंडी मनुष्य के भला-बुरा बोलने से हिन्दू हिन्दू में या मुसलमान मुसलमान में झगड़ा पैदा हो, ऐसा नहीं

होना चाहिए। इसके लिए मुझे आशा है कि स्वराज्य-सभा तथा खिला-फत कमेटी की तरफ से नोटिस निकलेगी कि उनके प्रमाणपत्र के बिना कोई न बोले। कोई भी आदमी बोलने आये, तो उसे सुनने का आपको अधिकार है; परन्तु आपको पता तो चल जायगा कि यह किसी संस्था का प्रतिनिधि नहीं है। जिस हुकूमत से हमें लड़ना है, उसका बन्दोबस्त जबर्दस्त है। उनमें से कोई आदमी अफसर के हुक्म के बिना न बोलता है, न काम करता है। हममें भी यह शक्ति आनी चाहिए।

"हम स्वतंत्र होना चाहते हों, तो हिन्दू मुसलमानों में एकता और साफदिली होनी चाहिए। कोई मुसलमान गफलत से कुछ बोल दे, तो हिन्दुओं को उसे बर्दाश्त कर लेना चाहिए। इसी प्रकार कोई हिन्दू कुछ कह दे, तो मुसलमानों को सहन कर लेना चाहिए।

मुझे पकड़ें तो हड़ताल न हो

"मुझे पकड़ लें, मौ० शौकतअली को पकड़ लें, मौ० अब्दुल बारी को पकड़ लें, तो आपको चुपचाप काम करना है। आप हड़ताल भी नहीं कर सकते। ऐसा करेंगे, तो हम हारे हुए माने जायँगे। आप हमें वापस क्यों लाना चाहेंगे? जफरअली पकड़े गये, तो मैंने उनसे कहा: 'हम आपके लिए अर्जी नहीं देंगे, परन्तु स्वराज्य लेकर आपको छुड़वायेंगे। आप हम जैसों को छुड़वाना चाहते हों, तो असहयोग के चार कदम उठाने का विचार करना। मैं सरकार होऊँ और मुझे यह मालूम हो कि लोग गांधी के बल पर लड़ रहे हैं, तो गांधी को जरूर पकड़ूँ।

हिम्मत के बिना कीमत नहीं

"इसलिए आपकी अपनी हिम्मत न हो, तो आपकी कोई कीमत नहीं होगी। परन्तु जब हम न हों, तब जो बात आप आज नहीं करते, वह कल करने लग जाना।"

इसके बाद धारासभाओं में प्रतिनिधि न भेजने, स्कूल-कॉलेज खाली कर देने, वकालत और खिताब छोड़ने, मानसिक पवित्रता, स्वदेशी

तथा दीवाली कैसे मनायी जाय, इस बारे में कहकर रुपये के बारे में बोले थे।

गरीबों की लड़ाई

"स्वयंसेवकों की प्रामाणिकता का इतमीनान करके उन्हें रुपया दिया जाय। यह लड़ाई करोड़पतियों की नहीं, परन्तु गरीबों की है। तीस करोड़ लोग एक-एक पैसा दें, तो भी हमारे पास पचास लाख रुपया हो जायगा और मुफ्त शिक्षा दी जा सकेगी। मैं रुपया माँगता हूँ यानी दान नहीं माँगता। आपके स्वार्थ की बात है। आप एक पैसा देंगे, तो दो पैसे का एवज मिलेगा।"

इसके बाद अहमदाबाद की स्त्री-सभा की भव्यता के बारे में बोलते हुए उन्होंने कहा : "छोटी-छोटी सोलह और आठ वर्ष की बालिकाओं ने अपनी अँगूठियाँ और मालाएँ उतारकर मुझे दे दीं। उन्होंने फिर अपने माँ-बाप से माँगने से इनकार कर दिया, क्योंकि वे जेवर पहनकर क्या करेंगी? भारत तो विधवा हो गया है। भारत में पुरुष कहाँ हैं कि वे शृङ्गार कर सकें? जब वे बड़ी होंगी, तब भारत सौभाग्यशाली बनेगा और उसकी स्त्रियाँ गहने पहन सकेंगी।"

इसके बाद सभा में चन्दा करने का काम हुआ। गांधीजी डाक से भड़ौंच के लिए चल दिये।

नर्मदा-तट पर व्याख्यान

२-११-'२०

इस समय रावण-राज्य और राम-राज्य में युद्ध हो रहा है। राक्षसी लोगों और दैवी लोगों में झगड़ा मचा हुआ है। इस सरकार की आत्मा को मैं राक्षस के रूप में देख रहा हूँ। जिस दिन से मेरी आँखें खुल गयी हैं, तब से मैं इस विचार का प्रचार कर रहा हूँ। मेरा खयाल हो गया है कि अंग्रेजी हुकूमत शैतानियतवाली है, राक्षस स्वरूप है। सब धर्म–हिन्दू, मुसलमान, पारसी—सभी धर्म कहते हैं कि अधर्म को धर्म से हटाना

चाहिए। अर्थात् अधर्म की सहायता करना बन्द कर देना चाहिए। मुसलमान शास्त्रों में ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं। पारसी धर्म में तो अहुर मज्द और अहरिमान में सतत युद्ध होता ही रहता है। गीता में भी यही बात है। आज हमारे लिए असहयोग के सिवा और कोई धर्म नहीं है। परन्तु आपका यह खयाल हो कि अंग्रेजी हुकूमत में अब भी कोई ग्रहण करने योग्य वस्तु है, वह पापमय नहीं है, तो आप उससे जरूर चिपटे रहिये। मैं यह नहीं कहना चाहता कि अंग्रेज खराब हैं। उनकी पैदा की हुई वृत्ति, उनकी डाली हुई जड़, भारत की हानि कर रही है। लॉर्ड हार्डिंज, लॉर्ड रिपन जैसे अच्छे वाइसराय और अहमदाबाद के भले और शरीफ कलेक्टर जैसे कर्मचारी हुकूमत में जरूर हैं, फिर भी ये लोग राक्षसी काम में लगे हुए हैं और इसलिए राक्षसी प्रवृत्ति का ही पोषण करते हैं। मेरे पिताजी स्वयं एक रियासत में नौकर थे। उनके राजा अधर्मी थे। मैंने उनसे पूछा, 'ऐसे राजा की नौकरी छोड़ क्यों नहीं देते ?' वे कहते हैं, 'हमने इनका नमक खाया है।' मेरे पिता नमकहराम नहीं बने, परन्तु विषय, मांस और शराब में डूबे हुए राजा का हमारा सारा कुटुंब आश्रित रहा। मैं सारे भारत के सामने कह रहा हूँ कि हमारे पास और कोई धर्म नहीं है। कैसे ही पुण्यवान् पुरुष हों, तो भी इस प्रवृत्ति का स्पर्श होने से वे अच्छे नहीं रहते। इसलिए जिन शास्त्रीजी और मालवीयजी को मैं पूजनीय मानता हूँ, जिनका निकट सम्बन्ध मुझे प्रिय है, जिनके प्रति मुझे अब भी अत्यंत भावना है, वे ऐसे पुरुष हैं, तो भी हममें मत-भेद हो गया है। उनका खयाल है कि इस राज्य में पुण्य है, मेरा खयाल है कि इसमें पाप है। मालवीयजी मेरे बड़े भाई के समान हैं। शास्त्रीजी के लिए मुझे आदर है, तो भी मुझे उनसे लड़ाई करनी ही चाहिए। असहयोग कैसे करना है, यह तो कांग्रेस ने बता दिया है; मुसलिम लीग ने बता दिया है और सिख लीग ने भी बता दिया है।

असहयोग करने की दो शर्तें हैं। उनमें से एक हिन्दू-मुसलमानों की एकता है। हिन्दू-मुसलमान अर्थात् सब जातियों की एकता। यह

हिन्दू-मुसलमानों का तो एक जगत्प्रसिद्ध दृष्टान्त लिया है। इन दोनों में बहुत समय से अविश्वास है, इसलिए जब तक हिन्दू या मुसलमान लड़ते रहेंगे, तब तक हमें विजय प्राप्त नहीं होगी। ऐसे प्रेम से पारसी वगैरह को वश में कर लेना उचित है। उन्हें राक्षसी प्रवृत्ति अर्थात् हत्या द्वारा वश में कर सकते हैं, परन्तु हमें अस्सी हजार पारसियों का नाश करना पड़ेगा। हमें तो उन्हें प्रेम से ही वश में कर लेना उचित है। हिन्दू या मुसलमान सिखों को दबायें, तो भी हम स्वतंत्रता नहीं ले सकेंगे। अभी-अभी जैन भी कहने लगे हैं कि हम हिन्दू नहीं हैं, तो क्या हम उन्हें कुचल देंगे? सबल की सबलता प्रेम से जीत लेने में है, मद से कुचल डालने में नहीं। इसलिए सबसे पहला काम यह है कि सब धर्मों में एकता रखी जाय।

हमारा दूसरा साधन है, योजना-शक्ति। जब तक हममें योजना-शक्ति नहीं आयेगी, तब तक असहयोग असंभव है।

इनकार पर डटे रहो

दूसरी आवश्यकता है दया की। हत्या का विचार ही न आना चाहिए। दया न करके क्रूरता करेंगे, तो भी आपका काम नहीं होगा। तलवार लोगे, तो आपकी तलवार के टुकड़े हो जायँगे। देश को बचा सकते हों, तो आपको अपनी तलवार मुबारक हो; परन्तु यह असंभव है। सरकार के लिए एक भी खराब शब्द मत कहिये; गालियाँ देना छोड़ दीजिये। सहयोगवादी जो कहें उसे अदब से सुन लीजिये, परन्तु अपने इनकार पर डटे रहिये। यह नकार सौ रोगों की एक दवा है। यह असहयोग का दूसरा नाम है।

दो महान् बलिदान

असहयोग को सफल बनाने के लिए आपको दो महान् बलिदान देने हैं। पहला शिक्षा के मामले में। भारत में शिक्षा का प्रश्न आज सबसे बड़ा प्रश्न बन गया है। दूसरा बलिदान धारासभा का त्याग करना

है। असहयोग अभी तक लोग—आम जनता—ही कर रही है। विशेष वर्ग बिलकुल नहीं करता। उससे कराना हो, तो हम अपने कौशल से करा सकते हैं। हम सबके हस्ताक्षर से उन्हें एक नोटिस दे दें कि वे हमारी तरफ से धारासभा में नहीं जा सकते, तो वे नहीं जा सकते। परन्तु शिक्षा में माँ-बाप, विद्यार्थी, शिक्षक परेशान हों, तो उसका क्या हो? भावी सन्तानों को गुलामी से छूटना ही चाहिए। बुजुर्गों का यह फर्ज है कि उन्हें स्वतंत्र कर दिया जाय। यह स्वतंत्रता माँ-बाप और शिक्षक भावी पीढ़ी के लिए किसी भी तरह कर दें। रुपये की कमी के कारण आप राष्ट्रीय शिक्षा को क्षणभर भी मत रोकिये। कोई यह पूछेगा कि 'सरकार कानून बनाकर बाधा डाले तो?' इस बारे में मैं एक शब्द भी नहीं कहना चाहता, क्योंकि वह निरर्थक है। यदि आपका खयाल हो कि इस प्रकार हमारा क्षेत्र संकुचित करने में कोई समर्थ है, तो आप वीर बनकर और निडर होकर सरकारी स्कूल-कॉलेजों का त्याग कर दें। जितने बालकों, बालिकाओं और युवकों को आप पढ़ा सकते हों, उतनों को पढ़ाइये और दूसरों का लोभ छोड़ दीजिये।

अब स्वदेशी। मेरा विश्वास है कि स्वदेशी में स्वराज्य निहित है। मेरे बारे में एक बार चिन्तामणि ने लिखा था कि गांधी को स्वराज्य और खिलाफत से स्वदेशी प्रिय है। मुझे सचमुच ही स्वदेशी प्रिय है। खिलाफत का प्रश्न जीत होने के बाद थोड़े ही रहनेवाला है? स्वदेशी तो शाश्वत है। स्वदेशी शरीर के साथ लगा हुआ धर्म है। वह अटल है। तीव्र रूप में हम एक दिन भी स्वदेशी का पालन करें, तो आज ही स्वराज्य हाथ में है। बुद्धिमान् लोगों ने मुझे कहा है कि हम लंकाशायर को पेंदे बिठा दें, परन्तु यह काम कठिन है। हममें न तो बायकाट की शक्ति है और न भावना। शक्ति हो तो जैसे मैं शस्त्रों से नहीं डरता, वैसे ही बायकाट से भी नहीं डरता। बायकाट के बिना भारत का शोषण हो जाय, तो उसे भी मैं अच्छा समझता हूँ। मैं स्वयं एक बार जिसका त्याग कर देता हूँ, उसे दुबारा ग्रहण ही नहीं करता। शराबी और पापी के साथ क्षण-

भर भी सहयोग नहीं हो सकता। यह तभी संभव है, जब वह शराब छोड दे। यह अटल सिद्धान्त हिन्दुस्तान ग्रहण कर ले, तो आज ही स्वतंत्रता मिल जाय, खिलाफत के मामले में आज ही न्याय मिल जाय। मुसलमानों को मैं अभी तक खादी नहीं पहना सका। इसलिए हम अब तक खिलाफत के मामले में इन्साफ नहीं पा सके। पंजाब का इतना अधिक रुदन होने पर भी अब तक कुछ नहीं हो रहा है। हमारे मन में इतना हो जाना चाहिए कि विदेशी कपड़ा हमारे लिए हराम है। स्त्रियों से मेरी दीन वाणी में प्रार्थना है कि स्वदेशी तो आपके हाथ की बात है। कातना आपका धर्म ही है। पुरुषों के सामने आपको अपना उदाहरण रखना चाहिए। खादी में बोझा होने की शिकायत माताएँ तो कर ही नहीं सकतीं। नौ महीने सन्तान का भार आनन्द से उठानेवाली माता यह कैसे कह सकती है कि एक सेर बोझा मुझे असह्य है? वह बाँझ रहने को तैयार हो तो ही ऐसा कह सकेगी, परन्तु जब तक वह बाँझ नहीं रहना चाहती, बल्कि वीरों और वीरांगनाओं को जन्म देना चाहती है, तब तक मैं माता से ये शब्द नहीं सुनना चाहता। यह मेरी समझ के बाहर की बात है कि आपका देश यदि नग्न दशा में है, तो आप जापान, चीन, इंग्लैण्ड या फ्रांस की मिल में बनी हुई साड़ियाँ कैसे पहन सकती हैं।

त्याग-वृत्ति पैदा करो

छेड़े हुए काम के लिए रुपया चाहिए। यह देश इतना श्रद्धालु है कि रुपया तो पाखंडी भी जुटा सकते हैं। आपके मन्दिरों, मस्जिदों और धर्म-शालाओं के लिए आप रुपया पैदा कर सकते हैं, तो अपने अधिक शुद्ध मन्दिरों—शिक्षा-मन्दिरों—के लिए क्यों नहीं कर सकते? हममें तपश्चर्या चाहिए, त्याग चाहिए। हिन्दू त्याग का अर्थ अच्छी तरह समझ जायँगे। शास्त्रों में कहा है कि अपरिग्रह पालन करनेवाले के पास रत्न तो नाचते हैं। मेरा अपना ऐसा ही अनुभव है। अफ्रीका जैसे गरीब देश में रुपये के अभाव में लड़ाई कभी बन्द नहीं रही। उल्टे मुझे गोखलेजी को लिखना

पड़ा कि रुपया न भेजें। खेड़ा और चम्पारन केस मय भी लोगों ने रुपये की वर्षा की थी। मैंने उसे रोका था। अहमदाबाद के मजदूरों ने तेईस दिन प्रचंड असहयोग किया, तो भी बाहर से कोई मदद नहीं माँगी थी। त्याग-वृत्ति हो तो रुपये की बरसात आ जाय।

वैष्णवों, जैनों और स्वामीनारायण के मन्दिरों में करोड़ों रुपये के जंग लग रहा है। उसमें से थोड़ा-सा भाग मिल जाय, तो भी आपके सारे शिक्षा-विभाग का काम चल जाय। परन्तु जैसे सरकार रुपया लुटाकर आनन-फानन में सरकारी विभाग खोल देती है, वैसे हम नहीं खोलना चाहते। हमारा काम हिन्दुस्तान की गरीबी के हिसाब से ही रहेगा। जादू के आम घड़ीभर में उगाये जा सकते हैं, परन्तु उनका रस हम चख नहीं सकते। सच्चे आम को उगने में बीस वर्ष लगते हैं, इसलिए कोई आपको राष्ट्रीय शिक्षा के लिए करोड़ रुपया दे, तो मैं कहूँगा कि उसे फेंक दो। खालसा कॉलेज के प्रोफेसरों से कहा गया कि यदि गांधी एक करोड़ रुपये की ग्रांट दे दे, तो बाद में असहयोग करना। प्रोफेसरों ने कहा, 'हम सरकार के गुलाम मिटकर गांधी के गुलाम बनना नहीं चाहते। हम झोपड़ी-झोपड़ी घूमकर सिखों से भिक्षा माँगेंगे' उन्हीं प्रोफेसरों ने खालसा कॉलेज को नोटिस दे दिया है कि सरकारी अधिकार दूर नहीं होगा, तो वे फकीर बनकर देश के बच्चों को राष्ट्रीय शिक्षा देंगे।

आपमें श्रद्धा हो, तो यथाशक्ति और शरमाये बिना भरसक देना। इसका उपयोग आपके गाँव के लिए ही नहीं होगा। अहमदाबाद में गुजरात विद्यापीठ स्थापित किया गया है, उसके लिए यह रुपया काम में लिया जायगा।

अंकलेश्वर में लोकमान्य राष्ट्रीय पाठशाला खोलते समय दिया गया भाषण :

जिस पूज्य पुरुष का नाम आपने अपनी पाठशाला के साथ जोड़ा है, उसके नाम की शोभा बढ़ाइये। स्वराज्य जितना प्रिय लोकमान्य को था, उतना और किसीको नहीं होगा। इस राष्ट्रीय पाठशाला के साथ

स्व० लोकमान्य का नाम स्वराज्य को निकट लाने के उद्देश्य से ही जोड़ना उचित है। माँ-बाप, विद्यार्थी और शिक्षकों से मैं जो सरकारी पाठशालाएँ छोड़ने को कहता हूँ, वह इसलिए नहीं कि उनकी शिक्षा खराब है। जो भावना मैं आपमें पैदा करना चाहता हूँ, उसके साथ शिक्षा के प्रश्न का थोड़ा ही संबंध है। जो शिक्षा सरकारी पाठशालाओं में दी जाती है, उसमें सुधार की आवश्यकता तो जरूर है, परन्तु वह जब तक न हो, तब तक जो करने का काम है, उसे नहीं रोका जा सकता।

पचास वर्ष से हमने सरकारी स्कूलों की वर्षा की है और उनसे कुछ लाभ भी उठाया है। इस समय वे सारे स्कूल हमारे लिए हराम हैं। इसका कारण दूसरा है। वर्तमान स्कूलों पर जो झंडा फहराता है, वह राक्षसी राज्य का है। इन स्कूलों पर जिस हुकूमत का झंडा लहरा रहा है, उसने सात करोड़ मुसलमानों के दिल जख्मी किये हैं, उसने पंजाब के द्वारा भारत पर काली करतूतें की हैं। सारे धर्मशास्त्र एक स्वर से कहते हैं कि अधर्मी राजा का आश्रय पाप है, वह अधर्म की भेंट करने के बराबर है, अधर्म में भाग लेने के समान है। इस हुकूमत के स्कूल में जाने से आपको द्रव्य मिलता हो, तो उस स्कूल में आपको कुरान शरीफ़, जेंद अवस्ता या गीता पढ़ायी जाय, तो भी आप उससे भाग जाइये। वे कुरान या गीता भी पढ़ायें, तो भी उनका मकसद बुरा है। इसलिए जिस स्कूल पर राक्षसी ध्वजा फहरा रही हो, उसमें अपने बच्चों को शिक्षा देकर हम उन्हें गुलाम नहीं बनाना चाहते। जो यह चीज समझ गये हों, वे एक दिन के लिए भी अपने बच्चों को सरकारी स्कूल-कॉलेजों में नहीं रहने देंगे। पहले बच्चों को हटा लेंगे और बाद में दूसरी शिक्षा देने का प्रबंध करेंगे। हमारा मकान जलने लगा हो, तो दूसरा अच्छा मकान मिलने तक हम उस जलते हुए मकान में हरगिज नहीं रहेंगे। हम तुरंत ही नीचे छलाँग मारेंगे—फिर भले ही नीचे खाई हो। यह भाव यदि हममें पैदा न हो, तो हम शिक्षा के आन्दोलन में असफल होंगे, क्योंकि सरकारी मनुष्य-जासूस तो हमें सदा ललचाते रहेंगे और कहेंगे, 'देखो, हमारी पाठशालाओं

की शिक्षा कितनी बढ़िया है! हमारे मकान कितने बढ़िया हैं! हमारे यहाँ मुफ्त शिक्षा दी जाती है।' यह सब होने पर भी हमें उनकी शिक्षा त्याज्य है—हराम है, ऐसी भावना जब तक लोगों में पैदा न हो, तब तक आन्दोलन आगे नहीं बढ़ेगा।

माता-पिताओं से मेरी प्रार्थना है कि आप अपने बालकों को गुलामी में न रखें। आपका पहला काम यह है कि बच्चों को सरकारी स्कूल-कॉलेजों से हटा लें। हटा लेने के बाद हम बच्चों को गलियों में भटकने नहीं देंगे। इसलिए आपका दूसरा काम यह है कि राष्ट्रीय शिक्षा देने के लिए अपना सर्वस्व लगाकर प्रबंध करें। यदि इतनी शक्ति हममें न हो, तो हम स्वराज्य नहीं ले सकेंगे। स्वराज्य अर्थात् अपना राज्य चलाने के लिए शक्ति तो अवश्य चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा की सफलता के लिए दूसरी आवश्यकता है चरित्र वा शिक्षकों की। यहाँ के हाईस्कूल के मुख्य अध्यापक और दूसरे शिक्षकों को, जिन्होंने धर्म और देश के लिए त्याग किया है, मैं बधाई देता हूँ और उनसे चाहता हूँ कि जिस वृत्ति से आपने स्वार्थत्याग किया है, उसी वृत्ति से अब आगे के कार्य में काम लेना। कार्य में तन्मय हो जायँगे, तो रुपया सुलभ हो जायगा। आपका व्यवस्थापक मंडल आसानी से रुपया जुटा सकेगा। साफ जमीन पर बैठकर पढ़ते हुए भी राष्ट्रीय पाठशाला के लड़के दूसरे लड़कों से स्पर्धा कर सकेंगे और शिक्षक चरित्रवान् होंगे, तो सरकार की बड़ी-बड़ी पाठशालाओं की अपेक्षा राष्ट्रीय स्कूलों के विद्यार्थी अधिक पौरुषवान् बनेंगे। इस समय पुरुष पुरुषत्व खो बैठे हैं, स्त्रियाँ स्त्रीत्व गँवा चुकी हैं। उनमें मर्द सन्तान पैदा करने की शक्ति नहीं है। गुलाम पैदा करने से मैं उन्हें मना करता हूँ। मर्द सन्तान पैदा हो, तो जिन पाठशालाओं की शिक्षा उन्हें गुलाम बना देती है, उसकी शिक्षा लेने से वे इनकार कर देंगे। माता-पिता लड़कों को गुलामी की शिक्षा लेने न भेजें, तो दूसरी पाठशालाओं के मुकाबले में राष्ट्रीय स्कूल अवश्य सुशोभित होंगे।

व्यवस्थापक कमेटी को मेरा सुझाव है कि आप लोग बिलकुल अधीर न हों। आप माता-पिताओं से विनय करें, परन्तु कटु वचन न कहें। उन्हें समझाना कठिन कार्य है। यह नहीं मान लेना चाहिए कि हरएक की आँखें खुल जायँगी और वह हमारी तरह देखने लगेगा। यह नयी हवा अभी थोड़े ही दिन से चली है। इसलिए हम धीरज न रख सकें, तो कुछ भी काम नहीं कर सकेंगे।

मैंने सुना है कि अंकलेश्वर के धनाढ्य पारसी असहयोग के विरुद्ध हैं। भारत जितना हिन्दुओं और मुसलमानों का देश है, उतना ही पारसियों का भी है। क्या दादाभाई नौरोजी हिन्दुस्तानी नहीं थे? क्या सर फीरोजशाह भारतीय नहीं थे? पारसियों को भी देश औरों की तरह ही लगना चाहिए। पारसियों को समझाकर, पैरों पड़कर उनसे द्रव्य माँगेंगे, वे अपने बच्चों को हमारी पाठशालाओं में भेजेंगे तो उन्हें नमस्कार करेंगे, नहीं भेजेंगे तो भी नमस्कार करेंगे। ऐसा करके हम उन्हें दिखायेंगे कि भारत में जो जबर्दस्त आन्दोलन चल रहा है, उसमें उन्हें भी अपना हिस्सा देना चाहिए। आप पारसी भाइयों को प्रेम से वश में करें। उनसे कहना कि आपको अपना फर्ज समझाना हमारा धर्म है।

राष्ट्रीय पाठशाला को सफलतापूर्वक चलाने की सबसे बढ़िया कुञ्जी यह है कि बिलकुल आडम्बर न रखा जाय, विज्ञापनबाजी बिलकुल न की जाय। इससे पीछे नहीं हटना पड़ेगा। चुनाई सुन्दर ईंटों की करनी हो, तो जल्दबाजी से काम नहीं चलेगा। नाश करने के काम में उतावली हो सकती है। फसल काटने का काम एक दिन में दाँतली लेकर किया जा सकता है, परन्तु बोने का काम इस प्रकार जल्दबाजी में नहीं हो सकता। स्कूलों को खाली कराने का काम तो एक ही दिन में किया जा सकता है, परन्तु जहाँ नयी चीज बनानी है, वहाँ खूब धीरज की जरूरत है। आपको अच्छे मास्टर न मिलते हों, तो इससे घबराकर आप चरित्र-

हीन शिक्षक न ले लें। यदि हम सत्य को न छोड़ें, जल्दबाजी न करें, तो आज इस पाठशाला में जैसे १२० विद्यार्थी भरती हुए हैं, वैसे आपको १२०० विद्यार्थी मिल सकेंगे। सरकारी पाठशालाओं के तमाम विद्यार्थी आपको मिल जायँ, तो भी काफी नहीं। वहाँ सभी बालक तो जाते नहीं। गाँव में एक भी बालक या बालिका ऐसी न रहनी चाहिए, जिसे हम उत्तम चरित्र बनानेवाली शिक्षा न दे सकें।

जिस महापुरुष के नाम पर आपने यह कार्य आरंभ किया है, खिला-फत और पंजाब का न्याय प्राप्त करने, स्वराज्य प्राप्त करने आदि शुभ कार्यों के लिए जिसकी स्थापना हो रही है, जिसकी स्मृति के लिए यह पाठशाला स्थापित हो रही है, उसे आप सुशोभित करें। परमेश्वर माता-पिताओं को, विद्यार्थियों को और शिक्षकों को सद्बुद्धि दे।

जगद्गुरु का नासिक का निमंत्रण

४-११-'२० से ८-११-'२०

गांधीजी का महाराष्ट्र के दौरे का कार्यक्रम चार तारीख को निश्चित हुआ। उसमें नासिक जाने की बात नहीं थी, यद्यपि नासिक की ओर के निमंत्रण पहले आ चुके थे। इतने में नासिक से करवीर पीठ के जगद्गुरु श्रीमत् शंकराचार्यजी की तरफ से विशेष निमन्त्रण लेकर एक शिष्टमण्डल आ पहुँचा और यह कहकर कि जगद्गुरु आप ही के लिए खास तौर पर नासिक में ठहरे हुए हैं, नासिक में राष्ट्रीय शिक्षा का विद्यापीठ स्थापित करने की उनकी इच्छा है, जिसमें वे आपकी सलाह चाहते हैं। लोग तो कौवे की तरह आपकी राह देख रहे हैं। आप किसी भी प्रकार एक दिन आ ही जाइये; नहीं तो सारी बस्ती निराश होगी। इस आग्रह के साथ ५ तारीख का जो एक दिन गांधीजी कुछ आराम में बितानेवाले थे, उसे नासिकवालों ने छीन लिया।

रात की गाड़ी में बम्बई से चले, ४ तारीख को सुबह साढ़े छह बजे नासिक पहुँचकर बारह बजे तक सारा कार्यक्रम समाप्त करके दोपहर के

एक बजे पंजाब मेल से बम्बई लौट आना था, क्योंकि रात को महाराष्ट्र के सफर पर निकलना था। बम्बई से तो ठीक रवाना हो गये। पं० मोतीलाल नेहरू तथा केंद्रीय खिलाफत कमेटी की तरफ से श्री मोअज्जमअली, जो बैरिस्टर बनकर हाल ही में वकालत छोड़कर मुक्त हुए हैं, भी साथ थे। दुर्भाग्यवश गाड़ी पूरे तीन घंटे देर से आयी और हम प्रातः छह के बजाय नौ बजे नासिक पहुँचे!

परिचित अव्यवस्था

स्टेशन पर से ही लोगों की भीड़, व्यवस्था की कमी, स्वयंसेवकों की धाँधली ज्यों की त्यों देखने में आयी। कोई किसीकी सुनता नहीं था; कोई एक हुक्म देता, तो दूसरा उसके विरुद्ध देता। जिसके जैसा जी में आया, मोटरों में भरकर रवाना हुए। हमारा सामान चाहे जहाँ फेंक दिया। स्टेशन से शहर पाँच मील है। साढ़े तीन मील तो हम अच्छी तरह चले गये, परंतु मील-डेढ़ मील रह गया, तभी से लोगों की भीड़ ने मोटरों को घेर लिया और इतनी देर हो जाने पर भी वह जुलूस चींटी की चाल चलने लगा। गांधीजी ने नेताओं को खूब समझाया। कार्यक्रम पूरा न हो, तो सब कुछ छोड़कर भी वे यों ही बारह बजते ही स्टेशन के लिए रवाना हो जायेंगे। दस लगभग बजने आये थे। यह सब जोर देकर कहा; परंतु ऐसा मालूम हुआ कि नेता और स्वयंसेवक लोगों के उस समुदाय को हटाने में असमर्थ और निरुपाय थे।

आखिर ज्यों-त्यों शहर के तंग बाजारों में होकर गोदावरी तीर पर श्रीमत् शंकराचार्यजी के मठ के पास पहुँचे और कुछ मिनटों में गोदावरी के पाट में ऊँचे-नीचे पत्थरों के टीलों पर इकट्ठे हुए प्रचंड जन-समुदाय की सभा में गये। बीच में पत्थर के एक चबूतरे पर व्याख्यानदाताओं के लिए जगह रखी गयी थी। गांधीजी, पंडित मोतीलालजी वगैरह जगद्गुरु के साथ वहाँ पहुँचे। तब ग्यारह बजने को आये थे और सूर्य काफी तप रहा था। धक्कमधक्के का पार नहीं था। व्याख्याता के सिर पर

एक आच्छादन बनाया गया था, परन्तु उसकी छाया का लाभ उसे बिलकुल नहीं मिल सकता था। सभा के अध्यक्ष श्री शंकराचार्य की तरफ से तथा खिलाफत कमेटी की तरफ से मेहमानों का स्वागत होने के बाद गांधीजी ने हिन्दी में अपना भाषण शुरू किया :

"भाइयो, इस बार इस पवित्र स्थान में मैं आपसे लम्बी बात नहीं करूँगा। मुझे खेद है कि मेरे भाई के समान मौ० शौकतअली इस समय मेरे साथ नहीं। वे और उनके भाई मुहम्मदअली इस समय अलीगढ़ में काम कर रहे हैं, इसलिए इस बार उनके बहनोई मुरादाबाद-निवासी भाई मुअज्जमअली, जिन्होंने हाल में बैरिस्टरी छोड़ी है, मेरे साथ यहाँ आये हैं।

"हमारी कांग्रेस के वर्तमान अध्यक्ष पं० मोतीलालजी को नाम से तो आप सब जानते होंगे। पंजाब के मामले में उन्होंने कितनी जबर्दस्त सेवाएँ की हैं और कितना त्याग किया है, यह दुनिया जानती है। उनके और पं० मालवीयजी के भगीरथ प्रयत्न से ही पंजाब में कितने ही बेगुनाह हिंदू-मुसलमान भाइयों की जान बची है। आज भी लगभग एक लाख मासिक की आमदनी की धड़ल्ले की वकालत छोड़कर उन्होंने अपने-आपको भारत की सेवा में समर्पित कर दिया है।

"पिछले दस महीनों की घटनाओं से मुझे विश्वास हो गया है कि आजकल जो हुकूमत हम पर शासन कर रही है, वह केवल राक्षसी है। मैं उसे रावण-राज्य कहता हूँ। इसके दो बड़े सबूत लोगों के सामने मौजूद हैं। पंजाब में जो अत्याचार किये गये, वे कभी किसीने नहीं सुने होंगे। दूसरे, खिलाफत के मामले में दगा देकर भारत के सात करोड़ मुसलमानों के दिल इस सल्तनत ने जिस प्रकार जख्मी किये, वैसे कोई राजा नहीं कर सकता। ऐसी राक्षसी हुकूमत की रैयत क्या करे ? तुलसीदासजी ने कहा है कि जो असन्त हैं, जो बुरे हैं, उनकी असंगति की जाय—उनका संग छोड़ा जाय, उनकी मुहब्बत तोड़ दी जाय, उनसे असहयोग

किया जाय, उन्हें मदद देना बन्द कर दिया जाय। यह एक यज्ञ है, उसमें जब हम अपना बलिदान देंगे, तभी खुद शुद्ध होंगे और रावण-राज्य को मिटाकर राम-राज्य की स्थापना कर सकेंगे। यह राम-राज्य ही स्वराज्य है। स्वराज्य स्थापित किये बिना हम इस राक्षसी राज्य से छूट नहीं सकते।

"यह स्वराज्य किस तरह स्थापित किया जाय? हिन्दू-मुसलमानों में परस्पर प्रेम और मुहब्बत बढ़ाकर और सहयोग करके। जब तक यह सल्तनत अपने किये हुए पापों का पश्चात्ताप न करे, तोबाह न करे, तब तक उसके साथ का व्यवहार हमें हराम मानना चाहिए। अंग्रेजों को काटकर, उनके मकान जलाकर हम सल्तनत को मिटा या झुका नहीं सकेंगे, परन्तु उनसे मुहब्बत तोड़कर हम उन्हें मिटा सकते हैं। एक लाख लोग तीस करोड़ लोगों को मजबूर कर रहे हैं, इसका कारण इतना ही है कि हम स्वयं उन पर मोहित हैं। हम स्वयं मान लेते हैं कि अंग्रेज यहाँ से चले जायँगे, तो हम आपस में लड़ मरेंगे। इस भ्रम को हमें एकदम दूर कर देना चाहिए। हमें इन एक लाख अंग्रेजों के हाथों विवश होने से इनकार कर देना चाहिए। हिन्दू-मुसलमानों को मिलकर खून करने के बजाय अपना खून बहाकर ही स्वतंत्र होना चाहिए। यही एक रास्ता है, दूसरा रास्ता नहीं है, यह मैं आपको समझाना चाहता हूँ। शैतान के साथ शैतानी से नहीं, परन्तु ईश्वर की मदद लेकर ही लड़ाई जीती जा सकती है, शैतान को मजबूर किया जा सकता है; और ईश्वर की मदद उसीको मिलेगी, जिसके दिल में मुहब्बत है।

"इस प्रकार आत्मत्याग और कुर्बानी की नींव पर इमारत खड़ी करनी है—इसलिए आज हमें इस असंत राज्य का सम्बन्ध, उसका दान, उसकी कृपा सब कुछ छोड़ना चाहिए। उसकी पदवियाँ, उसकी पाठ-शालाएँ, उसकी नौकरियाँ हमें हराम समझनी चाहिए और जैसे हम जलते हुए घर को छोड़ जाते हैं, वैसे ही और कोई विचार किये बिना सब पहले हमें उसमें से निकल जाना चाहिए। इस सरकार की फौज में भी हम

भरती नहीं हो सकते। उसके हमारे लिए फैलाये हुए धारासभा के जाल में भी हमें न फँसना चाहिए। कुछ लोगों को मैं यह दलील देते देखता हूँ कि सरकार जिस रुपये से पाठशालाएँ चलाती है, वह उसका कहाँ है? वह जनता का ही रुपया है। तो, उस रुपये से चलनेवाले स्कूल हम किसलिए छोड़ें? मैं कहता हूँ कि आपका रुपया डाकू लूट ले, उसके बाद भी उसके हाथ के रुपये को आप अपना कैसे कह सकते हैं? और जो सम्पत्ति डाकुओं ने आपसे छीन ली, उसका टुकड़ा बाद में वह दान के रूप में देने को निकाले, तो वह दान आप कैसे ले सकते हैं? जिसने हमारी इज्जत ली, जिसने हमारे मजहब को खतरे में डालकर सबसे बड़ा डाकूपन किया, उसके हाथ का दान हम कैसे लें? उसका तो संग छोड़ देना ही हमारा वर्तमान धर्म है। हमारे आपस के झगड़ों के लिए उनकी अदालतों का आश्रय नहीं लेना चाहिए, और ऐसा करना चाहिए कि उनके द्वारा नयी दी जानेवाली धारासभाओं के उम्मीदवारों को एक भी मतदाता एक भी मत न दे।

[फिर स्वदेशी के बारे में कहकर प्रार्थना की :]

"मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको इस गंगा के पवित्र स्थान में भारत को स्वतंत्र करने, मुसलमान भाइयों के घाव भरने, पंजाब का न्याय प्राप्त करने के लिए सर्वस्व बलिदान करने की पवित्र प्रतिज्ञा करने का बल दे।"

पं० मोतीलाल नेहरू का भाषण

इसके बाद पंडित मोतीलालजी नेहरू उठे। उन्होंने कहा : "इस दुनिया में सभी को दो वस्तुएँ 'सबसे प्यारी' हैं; धर्म और इज्जत। उस धर्म और इज्जत पर हमला हो और जो कौम उसे सिर झुकाकर बर्दाश्त कर ले, उससे अधिक पतित कोई और कौम नहीं है। मुसलमानों के धर्म पर सीधा हमला हुआ है और हमला करनेवालों में रत्तीभर भी पश्चात्ताप नजर नहीं आता। यह लोग कल उनका फायदा होता होगा, तो आपके धर्म पर हमला करने में हिचकिचायेंगे? इस हुकूमत के

कारबार की कोई भी कार्रवाई जाँच करके देख लीजिये। उसमें अधिकारी वर्ग के लाभ के सिवा और कोई हेतु आपको नहीं मिल सकता। रैयत के लाभ को वे वहाँ तक बर्दाश्त करेंगे, जब तक उनके अपने लाभ को कोई धक्का न पहुँचता हो। पंजाब का किस्सा तो अब सर्वविदित है। जो बेगुनाह जलियावालाँ में मरे वे तो मरे, परन्तु जिन दूसरों से अंग्रेज अफसरों ने नाक घिसवायी, पेट के बल चलाया, सलामी करायी और हजार तरह से बेइज्जत किया, यह सब किसलिए? आपको बता देने के लिए कि तुम गुलाम हो और हम मालिक हैं; हमारे दिल पर यह जमा देने के लिए कि हम मनुष्य के नाम के योग्य नहीं, हम जानवरों से बेहतर नहीं। इस नौकरशाही से उसके कुकर्मों की तोबा कराने के लिए हम क्या करेंगे? इनका मुकाबला करने के तमाम साधन इस नौकरशाही ने हमसे छीन लिये हैं। उन्होंने अपने विरुद्ध होने के लायक हमें किसी तरह नहीं रहने दिया। फिर भी ईश्वर ने एक हथियार अभी तक हमारे हाथ म रखा है। वह है आत्मबल। खून बहाये बिना, क्रोध किये बगैर, दुश्मन को झुकाने का यह दैवी शस्त्र है। यह चीज महात्माजी ने आपको समझायी है। मैं उसे नहीं दोहराऊँगा। मैं इतना ही कहूँगा कि अब तक हमारे देश में जब कोई महान् संकट आ पड़ता या साधना करनी पड़ती, तब देवताओं की पूजा-आराधना होती थी। अब हिन्दू-मुसलमान की पूजा करो। इस देश की जनता को बचाने का और कोई उपाय नहीं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जिस क्षण शासक तमाम जनता में ऐसा जोश देखेंगे, उसी क्षण वे ठंडे हो जायँगे और जो माँगोगे सो देंगे। जब तक वह जोश जनता में फैल नहीं जाता, जब तक हम उनके स्कूल-कॉलेजों में, उनकी अदालत-कौंसिलों में जाना पाप नहीं मानेंगे, हराम नहीं समझेंगे, तब तक मैं यही मानूँगा कि हमारे दिलों से गुलामी नहीं निकली; तब तक विश्वास रखिये कि हमारे लिए बेइज्जती की कमी नहीं, तब तक हमारे लिए सिर ऊँचा रखकर चलने की गुंजाइश नहीं है।"

मुअज्जमअली साहब

पंडितजी के इस जोशीले भाषण के बाद ही मुअज्जमअली उठे।

उन्होंने स्थानीय मुसलमानों को ध्यान में रखकर ही अपना भाषण आरंभ किया। उन्होंने कहा : "जब मैंने सुना कि नासिक के मुसलमान खिलाफत कमेटी कायम करने में डरते हैं, तब मुझे निहायत अफसोस और ताज्जुब हुआ। मुसलमान हमेशा कुरान की आयत पढ़ते हैं कि 'दुनिया में खुदा के सिवा किसीकी ताकत नहीं, किसीसे खौफ न रखो।' यह क्या आप यों ही पढ़ते हैं ? जिन्दगी तो चार दिन की चाँदनी है, सबको एक दिन मालिक के सामने खड़े रहकर इस दुनिया का हिसाब-किताब करना पड़ेगा। मजहब के मामले में, इज्जत की बात में आप कलेक्टर-इंस्पेक्टर से डरेंगे, मिट्टी समान ऐश आराम और शारीरिक सुखों को प्यार करेंगे, तो आप अपने धर्म को, अपने देश को और अपने-आपको बट्टा लगायेंगे।

"इस सरकार के स्कूल, अदालतें, कॉलेज, धारासभाएँ—इसके एक-एक तमाशे आपको फँसाने के लिए धोखे की टट्टियाँ हैं। इनसे बच जाइये, इससे साफ हो जाइये। भाइयो, रोज प्रार्थना करो कि 'खुदा के सिवा कोई शक्तिमान् नहीं,—किसीका डर नहीं और इस प्रार्थना से अटूट आत्मबल प्राप्त करो।"

श्रीमत् शंकराचार्य का उपसंहार

श्रीमत् शंकराचार्य ने अध्यक्ष-पद से भाषण-कर्ताओं को धन्यवाद दिया और कहा कि "गांधीजी ने नासिक पधारकर हम सबको कृतार्थ किया है। जिस पुरुष ने अपने तपाचरण और सत्य-अहिंसादि पालन से अपने विरोधियों को भी निर्वैर बना दिया है, वह हमारे बीच में है।

"मैं कहता हूँ कि वही आज जनता के सच्चे गुरु हैं; वही सच्चे धर्म-संस्थापक हैं। उन्होंने इस समय लोगों को प्राचीन यज्ञ का असली रहस्य नये सिरे से समझाया है। हमारे धर्म के खातिर, हमारा चारित्र्य सार्थक कर देने के खातिर, हमारे स्वाभिमान के खातिर वे अधर्मी, अनीतिमान् और अत्याचारी शासकों के साथ नाता तोड़ने का उपदेश कर रहे हैं। मैं पूछता हूँ उनकी धारासभाओं में, उनके स्कूल-कॉलेजों में जाकर आपको पग-पग

पर अपमान के सिवा और क्या मिलता है ? इस तरह निर्लज्ज बनने से घर रहना क्या बुरा है ? आप अपने को मनुष्य कहते हैं, आपमें स्वाभिमान हो, तो आप ऐसा कर ही कैसे सकते हैं ? मैं कहता हूँ कि आप इस महात्मा का पवित्र उपदेश अंतर में भरकर सरकारी खिताबों, स्कूल-कॉलेजों, अदालतों और धारासभाओं का त्याग कर दीजिये। मेरा आशीर्वाद है कि हमारे देश के इस पवित्र पुरुष द्वारा हमारी सच्ची संस्कृति के अनुसार बताये गये मार्ग का अनुसरण करने की लोगों को सद्बुद्धि मिले और यह आन्दोलन सफल हो।"

बाद में सभा विसर्जन करके श्रीमत् शंकराचार्य मेहमानों को अपने मठ में ले गये थे। नदी के पार पंचवटी में स्त्रियों की सभा रखी गयी थी, परन्तु अब वक्त तो रह ही नहीं गया था और देर हो जाने से यह सभा भी विसर्जित हो जाने की खबर मिल गयी थी, इसलिए थोड़े मिनटों में खाने-पीने से निपटकर सब स्टेशन के लिए चल पड़े थे। श्रीमत् शंकराचार्य गांधीजी को स्टेशन पहुँचाने आये थे और स्टेशन पर उन्होंने गांधीजी से राष्ट्रीय शिक्षा और नासिक विद्यापीठ की स्थापना के बारे में लम्बी चर्चा की थी।

पूना और वाई में

साधु सन्त येती घरा तोचि दिवाळी दसरा।

—तुकाराम

जिकडे जग तिकडे जगन्नायक।

—श्री समर्थ रामदास

वीरों और साधुओं से पवित्र हुए महाराष्ट्र का दिया हुआ निमंत्रण स्वीकार करने का गांधीजी और मौलाना शौकतअली को हाल ही में मौका मिला। तुकाराम, रामदास, ज्ञानदेव की अमृतवाणी से गूँज रही पवित्र भूमि में दिवाली के दिनों में प्रवास एक अलभ्य लाभ था। श्री शिवाजी, समर्थ रामदास और तिलक महाराज के स्वतंत्रता के महामंत्र

गानेवाली जनता के लिए भी गांधीजी और शौकतअली का समागम कल्याणकर ही मालूम होता था।

साधु-सन्त आये

ता० ५ नवम्बर को सारा पूना उमंग से उछल रहा था। लोगों के झुण्ड-के-झुण्ड रास्ते रोककर खड़े थे। इसलिए बहुत व्यवस्था नजर नहीं आ रही थी, परन्तु यह स्पष्ट था कि लोगों का उत्साह हृदयों में समा नहीं रहा था। साधुओं और साधुओं के वचनों को पूजनेवाले महाराष्ट्र ने तो आज तुकाराम का प्रसिद्ध अभंग याद करके यही मान लिया था कि इस वर्ष की उनकी दिवाली सार्थक हुई, क्योंकि तुकाराम महाराज कह गये हैं कि साधु-संत घर आयें, वही दिन असली दिवाली-दशहरा कहे जा सकते हैं। भावुक स्त्रियों के मुख से तो यह वचन अनेक स्थानों पर सुना गया। यह लड़ाई शुद्ध धार्मिक युद्ध के सिवा और कुछ नहीं, यह भान जितना महाराष्ट्र में पाया गया, उतना और कहीं नहीं पाया गया।

भरपूर कार्यक्रम

हमें महाराष्ट्र में अभी चार दिन हुए हैं, परन्तु चार दिनों में बेहद काम निपट गया है। पूना में पहले दिन दक्खिन जिमखाना में एक आम सभा, दोपहर को पाँच-सात जगह पान-सुपारी करके कार्यकर्ताओं की खानगी बैठक, उसके बाद शाम को भवानीपेठ की बड़ी सार्वजनिक सभा और अन्त में रात को 'सर्वेण्ट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी' में नरम दल के नेताओं के साथ बातचीत। दूसरे दिन सुबह विद्यार्थियों और व्यापारियों की सभा, दोपहर को स्त्रियों का भव्य सम्मेलन और पूना से छप्पन मील दूर की मोटर-यात्रा। फिर रात को वाई में सभा और वहाँ से बीस मील मोटर का सफर। बाद में रात को सतारा में डेरा। दूसरे दिन सतारा में स्त्रियों की सभा, फिर सार्वजनिक सभा। वहाँ से बारह बजे निकलकर बत्तीस मील का प्रवास; फिर कराड में व्याख्यान। वहाँ से सत्तर मील दूर निपाणी रात को पहुँचे। दूसरे दिन अर्थात् आठ तारीख को सबेरे

निपाणी में सार्वजनिक सभा। वहाँ से तेरह मील चिकोड़ी में स्त्रियों की आम सभा और वहाँ से बेलगाँव के रास्ते में हुकेरी और संकेश्वर में आम सभाएँ। रात को बेलगाँव पहुँचकर स्त्रियों की सभा और जबर्दस्त आम जलसा। इन चार दिन का रोजनामचा केवल जानकारी के लिए ही दे रहा हूँ। इस प्रकार चार दिन में किसी दिन कम-से-कम चार सभाएँ तो किसी दिन सात तक भी सभाएँ करके पूना, सतारा और बेलगाँव के मुख्य स्थानों से निपट लिये हैं।

दक्खिन जिमखाने के व्याख्यान में गांधीजी के विशेषतः उल्लेखनीय उद्गार कुछ दिन पहले गवर्नर के हाथों वहाँ बाँटे गये व्यायाम और कुश्ती के खेलों के इनामों के बारे में थे। उन्होंने कहा :

"इस जिमखाने में परसों गवर्नर को बुलाया गया था और उनसे पुरस्कार-वितरण कराये गये थे। यह हाल सुनकर मुझे शर्म आयी है। मैं गवर्नर साहब को जानता हूँ। वे योग्य पुरुष हैं। पंजाब के गंभीर अत्याचारों के समय जब पंजाब का हाकिम पागल हो गया था, तब इनका दिमाग ठिकाने रहा था। उन्होंने बड़ी शान्ति रखी थी। यदि हम इस हुकूमत को रखना मंजूर करें, तो यही हाकिम चाहिए। परन्तु इस समय मैं उन्हें अस्वीकार करता हूँ। इसका कारण यह है कि उन्होंने सरकार की नौकरी नहीं छोड़ी। जिस हुकूमत में खुदा की फूँक नहीं, परन्तु शैतान की फूँक है, उसकी नौकरी में इनके जैसा पुरुष रह ही कैसे सकता है? मेरे पूज्य गुरु गोखले होते और उन्हें गवर्नर बना दिया जाता, तो भी मैं कहता कि जो गवर्नर ऐसी हुकूमत के अत्याचार सहन कर रहा है, उसके पास मैं कभी नहीं जाऊँगा। अच्छे-से-अच्छा सज्जन भी इस हुकूमत में कुछ नहीं कर सकता। तिलक महाराज, जिन्होंने स्वराज्य के लिए सारी जिन्दगी बर्बाद कर दी, वाइसराय होने के लायक थे। वे भी इस हुकूमत में, जिसने माफी नहीं माँगी, तोबाह नहीं की, वाइसराय होते, तो उन्हें भी मैं सलाम करने को तैयार न होता। मेरा झगड़ा अंग्रेज-जाति से नहीं, सल्तनत के विरुद्ध है। वह हुकूमत लम्बी-चौड़ी बातें करती है,

परन्तु एक का भी पालन नहीं करती। कॉब्डन[1] तथा ब्राइटन[2] को भुलाकर वह इस समय शैतानियत की गुलामी कर रही है। जब तक यह स्थिति बनी हुई है, तब तक उसके साथ कुछ भी सम्बन्ध हमारे लिए हराम होना चाहिए।"

भवानीपेठ की विराट् सभा

रात को भवानीपेठ में जैसी सभा हुई, वैसी पूना में शायद ही हुई हो। कोई तीस हजार मनुष्य उपस्थित होंगे। सभा में बोलनेवाले गांधीजी, पंडित मोतीलाल नेहरू, शौकतअली, हाजी सिद्दीक खत्री साहब, श्री केळकर, खाडिलकर, परांजपे वगैरह थे। आरंभ में गांधीजी ने इस राज्य का रावणराज्यपन समझाया और राक्षसों से प्रेम तोड़ने के लिए राक्षसीपन से नहीं, परन्तु देवतापन से काम लेने का सुझाव दिया। इस देवतापन का अर्थ है, ईश्वर का डर और आवेश का अभाव।

महाराष्ट्र में ब्राह्मणों और अब्राह्मणों में कटुता रही है। यह झगड़ा तीन-चार वर्ष ही पुराना है। इसके लिए अधकचरी शिक्षा पाये हुए वर्ग के लोग ही जिम्मेदार हैं। लोगों का अधिकांश भाग मराठा अब्राह्मणों का है। इनमें से बहुत-से तो अपना हित ब्राह्मणों के साथ रहकर काम करने

---

१. रिचर्ड कॉब्डन (सन् १८०४—१८६५) इंग्लैण्ड का एक महान् अर्थशास्त्री था। वह खुले व्यापार की नीति का हिमायती था। पहले इंग्लैंड अपने देश में बाहर से आनेवाले माल पर जकात लगाता था, तब अनाज पर जकात ली जाती थी। इससे इंग्लैंड में अनाज की बड़ी महँगाई रहती थी और गरीब लोगों को बहुत तकलीफ उठानी पड़ती थी। अनाज सम्बन्धी इन कानूनों के विरुद्ध सख्त आन्दोलन करके उसने सन् १८४६ में अनाज सम्बन्धी कानून (कॉर्न लॉज) रद्द कराये। तबसे वह इंग्लैण्ड में बहुत ही लोकप्रिय हो गया था।

२. जॉन ब्राइट (सन् १८११-१८८९) प्रख्यात अंग्रेज राजनीतिज्ञ। उसने इंग्लैण्ड में राजनैतिक सुधार कराने में प्रमुख भाग लिया था। अनाज सम्बन्धी कानून रद्द कराने में वह कॉब्डन का साथी था। ग्लैंडस्टन के साथ वह ब्रिटिश मंत्रिमंडल में भी था। वह विदेशों के साथ बहुत उदारतापूर्ण नीति का पक्षपाती था।

में ही समझते हैं। परन्तु मराठों में ही सत्यशोधक मंडल नाम की एक संस्था उत्पन्न हो गयी है। उसने ब्राह्मणों के विरुद्ध जबर्दस्त झंडा उठाया है। उसके उकसाने से ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर के बहुत झगड़े होते हैं। ब्राह्मणों के मवेशी उठा ले जाने, फसल और घास जला देने और स्त्रियों की लाज लूटने की घटनाएँ भी हुई हैं। यह संस्था ब्राह्मणों को अपनी जालिम सरकार कहकर परिचय देती है, उन पर झूठे, सच्चे और काल्पनिक इल्जाम लगाती है और सरकार की ओर सहायता की दृष्टि से देखती है। फिर भी जैसा मैंने पहले कहा, मतभेद ऐसा नहीं कि जो मिटाया न जा सके; और ब्राह्मण नेता इस कटुता को मिटाने के उपाय करते ही रहे हैं। महाराष्ट्र की विशेष रूप में माँग थी कि गांधीजी इस प्रश्न को किसी भी प्रकार हल करें, क्योंकि मद्रास के विद्यार्थियों के सामने दिये गये उनके एक भाषण के उद्गारों को पकड़कर उस टोलीवालों ने यह भावार्थ किया था कि गांधीजी ने ब्राह्मणों का ही कसूर बताया है। इसलिए इस प्रश्न के विषय में गांधीजी ने हर स्थान पर खूब विवेचन किया। पूना के भाषण में इस बारे में बोलते हुए उन्होंने कहा :

"हिन्दू-मुसलमान दोनों में अब तक दुश्मनी चली आ रही है। एक-दिली की हमने बातें ही की हैं, केवल राजनैतिक काम के लिए ही हमने थोड़ा प्रेम रखा है, परन्तु दिल से नहीं रखा। अब मैं चाहता हूँ कि हम अपने दिलों को साफ करके हार्दिक प्रेम बढ़ायें। परन्तु मैं देखता हूँ कि यहाँ तो ब्राह्मण-अब्राह्मणों में वह हाल हो रहा है, जिसे देखकर मुझे कँपकँपी होती है। मद्रास में मैं एक बार ब्राह्मणों के सामने बोल रहा था। सभा खानगी थी। वहाँ अब्राह्मणों का सवाल अलग है और अत्यंत तीव्र है। वहाँ एक उदाहरण देकर मैंने कहा था कि पंचमों (अछूतों) के प्रति व्यवहार में तो नौकरशाही जितनी ही शैतानियत ब्राह्मण कर रहे हैं। मैं ब्राह्मणों के सामने बात कर रहा था, इसलिए मैंने ब्राह्मणों का दोष बताया। पंचमों को अस्पृश्य मानना जरूर शैतानियत है। मैंने कहा था कि जब तक हम अपनी शैतानियत नहीं मिटा देते, तब

तक हममें दूसरों की शैतानियत मिटाने की योग्यता नहीं आती। परन्तु मेरा आरोप तो ब्राह्मणों पर नहीं, हिन्दू-जाति पर था। आजकल के ब्राह्मणों पर नहीं था। स्व० गोखलेजी ब्राह्मण थे, लोकमान्यजी ब्राह्मण थे और वे भी अस्पृश्य को स्पृश्य कहते थे और हमेशा कहते थे कि उन्हें अस्पृश्य समझेंगे, तो स्वराज्य नहीं चला सकेंगे।

"महाराष्ट्र की तो वहाँ बात ही नहीं की थी। मैंने मद्रास में मद्रास के लिए ही जो उद्‌गार प्रकट किये थे, उनमें से एक शब्द निकालकर अब्राह्मण उसका दुरुपयोग कर रहे हैं। कुछ अब्राह्मण यह भी कहते हैं कि वे हिन्दू नहीं हैं। ऐसे लोगों को तो ब्राह्मण-अब्राह्मण के झगड़े में पड़ने का कोई हक ही नहीं। परन्तु मैं अब्राह्मणों से कहता हूँ कि जैसे मुसलमान भाई हमें गालियाँ देंगे, तो भी हम भागकर फौजदारी में नहीं जायँगे, वैसे ही अब्राह्मणों को भी वैसे विचार छोड़ देने होंगे। यदि ब्राह्मणों को दबाने के लिए वे इस बुरी सल्तनत के पास जाकर उसकी सहायता माँगेंगे, तो वे याद रखें कि उन्हें उसीके गुलाम बनना पड़ेगा। अब्राह्मणों से मेरी अर्ज है कि वे मेरे नाम से कोई झूठ न फैलायें। मुझे पता नहीं कि सत्यशोधक मंडल क्या है, परन्तु वह यह जाहिर कर रहा है कि मैं वर्णाश्रम का खंडन करनेवाला हूँ। मैं कहता हूँ कि यह बुरी बात है। मेरे नाम से चाहे जैसी पोलें चली हैं। मैं कट्टर हिन्दू-वैष्णव हूँ, रामायण, महाभारत, उपनिषद् पर मेरी अटल श्रद्धा है। मैं अपने शास्त्रों की खामी समझता हूँ, परन्तु वर्णाश्रम का कट्टर माननेवाला हूँ। इस पर से मेरे नाम का लाभ उठाना चाहते हों, तो भले ही उठा लें। यदि हिन्दू ब्राह्मण-अब्राह्मण जैसे भेद करके इस शैतानी सरकार की शरण जायँगे, तो मेरा यह कहना है कि वे खता खायँगे और उन्हें वापस लौटना पड़ेगा। मुसलमानों को इसका अनुभव मिल गया है। राष्ट्रीय अन्याय दूर कराने के लिए सबको एक होना ही पड़ेगा।"

वाई में इसी प्रश्न पर बोलते हुए गांधीजी ने कहा :

"मद्रास में जो बात कही थी, उसे पलटकर अब्राह्मण उसका दुरु-

पयोग कर रहे हैं। मैं उन्हें नम्रता से कहता हूँ कि उसमें इस झगड़े को कोई स्थान नहीं। अब्राह्मण यह भी कहते हैं कि हम ब्राह्मणों को हटा देंगे। उन्हें वे कष्ट भी देते हैं, कई तरह से तंग करते हैं। परन्तु हमारी हिन्दू-संस्कृति ऐसी नहीं कि वह किसीके भी साथ ऐसा बर्ताव करने की इजाजत देती हो। इस संस्कृति में पला हुआ कोई भी मनुष्य यह कहे कि मैं हिन्दू नहीं, यह बात ही मैं नहीं समझ सकता। मुझे यह भी कल्पना नहीं हो सकती कि किसी अब्राह्मण को ब्राह्मण के लिए द्वेष होगा। मैं अब्राह्मण हूँ; मुझे किसी ब्राह्मण से द्वेष नहीं। मैं भगवद्गीता का विद्यार्थी हूँ और मेरा दावा है कि भगवद्गीता के सच्चे अभ्यासी के लिए द्वेष और घृणा छोड़ना आसान है। उसमें यह बात भी है कि किसीको जीतना हो, तो प्रेम से जीतना चाहिए। अब्राह्मणों को मैं कहूँगा कि आप हिन्दू-संस्कृति को पहचानते हों, तो झगड़े-टंटे छोड़ दीजिये। ब्राह्मणों ने अन्याय किया हो, तो उसके लिए आप न्याय माँग सकते हैं। आपका प्रथम कर्तव्य यह है कि आप यह जाँच करें कि ब्राह्मणों ने आपके साथ क्या-क्या किया और उसका ब्राह्मण नेताओं से कोई फैसला माँगें। आजकल हिन्दू-धर्म में जो अतिशयता है, जो दोष हैं, उसे सुधारने का ब्राह्मण प्रयत्न कर रहे हैं। ब्राह्मणों के जी में उस बारे में दुःख है। मैं उन ब्राह्मणों के विषय में नहीं बोल रहा हूँ, जो अंधकार में पड़े हुए हैं और शास्त्र का उच्चारण मात्र करते हैं। मैं तो उन ब्राह्मणों के लिए, जिनके विरुद्ध अब्राह्मण हमले कर रहे हैं, कहता हूँ कि यदि ब्राह्मणों से द्वेष करोगे, तो अपने ही पैरोंपर कुल्हाड़ी मारोगे।" इसके बाद उन्होंने गोखलेजी, तिलक महाराज, परांजपे वगैरह की सेवाओं का वर्णन किया था और बताया था कि "जिस जाति ने ऐसे देश-सेवक उत्पन्न किये हैं, उसका द्रोह करना आत्म-घातक है।"

सतारा में अब्राह्मणों को सम्बोधन करके यही अपील उन्होंने इस प्रकार जारी रखी :

"आप उन्हें अपूज्य मानते हों, तो भी ब्राह्मणों की तपस्या, ज्ञान, यज्ञ

और पवित्रता के कारण उनकी पूजा करनी पड़ेगी; जिन ब्राह्मणों ने उपनिषद् वगैरह ग्रंथ रचे हैं, उनकी भूलें बताते हुए मैं डरता जरूर हूँ, फिर भी मैंने यह कहा है और कहता हूँ कि उन ब्राह्मणों ने अस्पृश्यता को अनुमति देकर थोड़ी शैतानियत कर ली थी। ब्राह्मणों के मकान जलाकर, उन्हें गालियाँ देकर आप अपने धर्म का बचाव नहीं कर सकेंगे। आप हिन्दू होने का दावा करते हों, तो आप हिन्दू-धर्म के विरुद्ध आचरण कर रहे हैं। आप हिन्दू न हों, तो मैं आपसे कहता हूँ कि आपका एक और धर्म हो गया। आपको अपना अहिन्दूपन मुबारक हो। जैसे मैं जैनियों से कहूँगा कि आप अहिन्दू हों तो भले ही हों, परन्तु आप भारत को अपना देश मानते हों, तो आपका और एक धर्म हो जाता है—स्वराज-धर्म। यह स्वराज-धर्म आपको सिखाता है कि आप स्वराज चाहते हों, तो हिन्दुओं के साथ मेल कीजिये। तिलक, गोखले, रानडे, आगरकर कौन थे? ब्राह्मण होने पर भी उन्होंने अब्राह्मणों के लिए बड़ी-बड़ी तपस्याएँ कीं। तिलक महाराज की मेरे जैसे अब्राह्मण पर बहुत अधिक प्रीति थी। जिस जाति में रामदास, तुलसीदास, रानडे, तिलक आदि जनमे हैं, उससे घृणा करके आपका उद्धार होना असंभव है। आप अंग्रेजी हुकूमत से सहायता माँगकर और भी गुलामी में डूबेंगे। आप शौकतअली से पूछ लीजिये कि उन्होंने सरकार के प्रेम से क्या पाया?

असहयोग का पवित्र नाम

"आप ब्राह्मणों के साथ असहयोग करने की बात कहते हैं, परन्तु असहयोग का पवित्र नाम लेने के लिए पवित्रता चाहिए। मैं अंग्रेजी राज्य को शैतानी कहता हूँ, परन्तु मैं इसलिए कह सकता हूँ कि मुझे किसी अंग्रेज से द्वेष नहीं। लार्ड चेम्सफोर्ड, जिनके साथ आज मैं किसी भी प्रकार का सहयोग नहीं करूँगा और उनका पानी तक नहीं लूँगा, यदि बीमार पड़ जायँ, तो जैसे मैं आपकी सेवा करता हूँ, वैसे ही उनकी भी अवश्य करूँगा। आप ब्राह्मणों से न्याय चाहते हों, तो आप उनके जैसी

तपस्या कीजिये। आप तलवार उठायेंगे, तो आप ही मरेंगे। मुसलमानों को भी मैं यही कह रहा हूँ। इसलाम को वे तलवार से स्वतंत्र नहीं कर सकेंगे। मैं यह मानता हूँ कि तलवार उन्हें ज्यादा खतरे में डाल देगी। अब्राह्मणों से मैं कहता हूँ कि आप एक बार हिन्दुस्तान को आजाद कर लीजिये और फिर ब्राह्मणों का गला काटना हो, तो काट लेना। हिन्दुओं को भी यही कहता हूँ कि पहले स्वराज प्राप्त कर लो, फिर मुसलमानों से लड़ना हो तो लड़ लेना। इसी प्रकार मुसलमानों को कहता हूँ। आज तो यह सल्तनत तुम्हारे तीस करोड़ का अपमान कर रही है, उन पर अत्याचार कर रही है, उसे रोकने के लिए हुकूमत के साथ असहयोग और आपस में सहयोग के सिवा और कोई उपाय नहीं।"

परन्तु इससे भी अधिक सविस्तर विवेचन तो गांधीजी ने निपानी में एक मराठा सज्जन के सवाल करने पर किया था और उसमें ब्राह्मणों की बहुत प्रशंसा की थी। चूँकि वे विचार ब्राह्मणों के सम्बन्ध में गांधीजी का गहरा आदर प्रदर्शित करनेवाले हैं, इसलिए उन्हें ज्यों-के-त्यों दे देना अनुचित न होगा।

मारुतिराव नामक सज्जन ने आरोप लगाया कि "ब्राह्मण अब्राह्मणों को झूठ से भरे शास्त्रों द्वारा वश में रखना चाहते हैं; हमें पशुओं से भी नीच बनाकर बाहर रखा।"

गांधीजी ने उत्तर दिया : "मारुतिराव ने जो कहा सो मैंने ध्यान से सुना, सभी अब्राह्मणों से मैं कहना चाहता हूँ कि उन्होंने जो कुछ कहा, उसमें अर्द्ध सत्य है। अर्द्ध सत्य सदा भयंकर होता है। मैं यह नहीं कहता कि मारुतिराव जान-बूझकर अर्द्ध सत्य कहते हैं। कई बार हम गलतफहमी से अर्द्ध सत्य कहते हैं और तदनुसार आचरण करते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि संसार में ऐसे ब्राह्मण विद्यमान हैं, जो दूसरों से अपना चरणामृत लिवाते हैं, हिन्दू-धर्म में खपनेवाली ऐसी पुस्तकें हैं, जिनमें धूर्त-विद्या है, परन्तु हमें विवेक-बुद्धि से देखना चाहिए कि पाखंड कहाँ है और सत्य कहाँ है। थोड़े-से ब्राह्मणों ने असत्य कहा, थोड़ों ने झूठे शास्त्र

बनाये, इसीलिए सारी ब्राह्मण-जाति का द्वेष और त्याग करना आत्म-घातक है। अब्राह्मणों को मैं प्रतिज्ञापूर्वक कह देना चाहता हूँ कि मैंने कुरान, जेंद अवस्ता और बाइबिल का यथाशक्ति अध्ययन किया है। मेरे हृदय में इन सब धर्मों के प्रति सम्मान है और मैं मानता हूँ कि इन सब धर्मों में बहुत सत्य है। परन्तु मैं मानता हूँ कि इस सारे यज्ञ-धर्म के लिए, बलिदान-धर्म के लिए हम ब्राह्मणों के ही आभारी हैं। जितना बलिदान इस जगत् में ब्राह्मणों ने किया है, उतना और किसीने नहीं किया। आज भी इस दारुण समय में, इस कलिकाल में जितना बलिदान, जितनी शुद्धता उन्होंने दिखायी है, उतनी और किसी जाति ने नहीं दिखायी। इसलिए मैं मारुतिराव और अन्य अब्राह्मणों से कहना चाहता हूँ कि आपने जो दोष बताये हैं वे ठीक हैं, परन्तु इस विषय में मुझे एक उपमा याद आती है। दूध में मैल हो तो तुरन्त दीख जाता है, परन्तु मैली चीज का मैल तुरन्त दिखाई नहीं देता। अब्राह्मणों ने ब्राह्मणों के बारे में इतना ऊँचा आदर्श बना दिया कि उनके दोष फौरन नजर आ जाते हैं। मैं तो कहता हूँ कि ब्राह्मणों की जो छोटी भूल बड़ी करके बतायी जाती है, इसीमें ब्राह्मणों की परीक्षा है। ब्राह्मणों ने जितनी तपस्या की है, उतनी किसी जाति ने किसी देश में की हो, ऐसा मैंने नहीं देखा। इसलिए अब्राह्मण भाइयों से मैं कहता हूँ कि आप ब्राह्मणों के दोषों की ओर विवेक-बुद्धि से देखिये। ब्राह्मणों के साथ असहयोग करके आत्महत्या न कीजिये।

"मुझे मालूम है कि ब्राह्मणों की संख्या बहुत थोड़ी है और अब्राह्मणों की बहुत बड़ी है। और इसीलिए किसी शैतान हिन्दुस्तानी ने कहा है कि आजकल की अंग्रेजी सरकार भी एक ब्राह्मण है, क्योंकि एक लाख अंग्रेज तीस करोड़ हिन्दू, मुसलमान और सिखों जैसी शौर्यवान् वीर्यवान् जाति पर राज कर रहे हैं। परन्तु अंग्रेज सरकार तो तलवार के बल पर तीस करोड़ को अपने कब्जे में रखती है। भारत के ब्राह्मण करोड़ों अब्राह्मणों को तलवार से काबू में नहीं रखना चाहते। परन्तु ये मुट्ठी-भर ब्राह्मण केवल अपने संयम-धर्म से तीस करोड़ को दबा सकेंगे। जैसे हम

इस जालिम सरकार के साथ संयम-धर्म से लड़ना चाहते हैं, उसी तरह ब्राह्मणों ने अपनी पवित्रता से अपनी स्वतंत्रता-शुद्धि कायम रखी है। मुझे पता है कि ब्राह्मणों ने आजकल अपना धर्म छोड़ दिया है। इसलिए मैं महाराष्ट्र के ब्राह्मणों से विनती करता हूँ कि आपमें श्रद्धा और भक्ति आ जायगी, तो फिर मेरे लिए कुछ कहने को न रह जायगा। मैं अब्राह्मण भाइयों से इतना ही कहना चाहता हूँ कि वे धैर्य और शान्ति खोकर ब्राह्मणों से द्वेष करना बन्द कर दें। इससे यह न समझा जाय कि ब्राह्मणों की उपेक्षा करें। मैं किसी भी अन्याय को सहन कर लेने की सलाह नहीं देता। इस अन्यायी राज्य को हम जिस कर्तव्य-शक्ति से छकाना चाहते हैं, उसी कर्तव्य-शक्ति से किसी भी जाति से न्याय प्राप्त किया जा सकता है। ब्राह्मण-धर्म में अंग्रेज सरकार की-सी शैतानियत नहीं है, यह तो एक छोटा बच्चा भी कह सकता है। ब्राह्मणों के धर्म में यह है कि कोई छोटा बालक भी अपना मन पवित्र रखकर, संयम-धर्म का पालन करके, बादशाहों का बादशाह बन सकता है। ब्राह्मण-धर्म यह है कि अंत्यजों में जो साधु-संत हो गये हैं, उनकी वे पूजा करते हैं। ब्राह्मणों के दोष बहुत हैं, उन्हें भले ही आप देखिये। परन्तु उनका इन्साफ पंच से कराइये। उन्होंने जगत् की जो सेवा की है, उसकी कद्र करके उनके साथ सहयोग करते रहना ही हमारा धर्म है।"

इस विवेचन के बाद भाई मारुतिराव ने बताया कि उनकी जाति के नेता गांधीजी से बेलगाँव में मिलेंगे और उनसे सलाह-मशविरा करके वे समझौता करने को तैयार हैं। बेलगाँव में मराठों में जो व्यापारी दल है, वह ब्राह्मणों के साथ बड़े प्रेम से रहता है। केवल नौकरीपेशा मराठों में ही जहर भरा है। ये मराठा गांधीजी से मिलकर उनके जितने दोष बतायें और गांधीजी निर्णय करें उसके अनुसार चलने को ब्राह्मणों ने स्वीकार किया है!

आज मराठों की एक खास सभा है और संभव है, कोई सन्तोषजनक निर्णय यहीं हो जाय।

परन्तु मैंने तो यहाँ अब्राह्मणों के प्रश्नसम्बन्धी उद्‌गार सविस्तर देने में ही पत्र लगभग पूरा कर दिया। पूना की भवानीपेठवाली सभा के अधिक उल्लेखनीय उद्‌गार अभी बाकी ही हैं।

मारकाट करोगे, तो मैं जल मरूँगा

उपसंहार करते हुए गांधीजी बोले: "मैंने सुना है कि सरकार हमें पकड़ना चाहती है। हमें सरकार पकड़ना चाहती हो, तो इसमें हम उसे दोष नहीं दे सकते। हम इस हुकूमत को उखाड़ना चाहते हैं। इस हुकूमत को हमें कैद करने का हक है। आपको हड़ताल करने का हक नहीं। आप ऐसा करेंगे, तो उसका अर्थ यह होगा कि आप जेल जाना नहीं चाहते। आपमें से कोई पागल बनेंगे, मकान जलायेंगे, किसी-किसी अंग्रेज की हत्या करेंगे, तो आप मात खायँगे। हम मिस्र नहीं, रूस नहीं, आयर्लैण्ड नहीं। हमारी लड़ाई शस्त्रों की नहीं। असहयोग ही हमारा हथियार है। सरकार यह मानती है कि हमें पकड़ लेंगे, तो आप सब डरकर बैठ रहेंगे। आप सरकार को दिखा सकते हैं कि वह इस तरह बनियाई हिसाब लगाती है, परन्तु हमें पकड़ने के बाद ऐसा नहीं हो सकता। मेरा असहयोग का काम आप आसानी से उठाकर हमें मुक्त कर सकेंगे। स्वराज्य की मुहर प्राप्त करके आप हम तीनों को छुड़वा सकेंगे। हमें छुड़ाना आपके हाथ में होना चाहिए। मैं उनके हाथों नहीं छूटना चाहता, आपके ही हाथ से छूटना चाहता हूँ। परन्तु आपके भी खून से सने हुए हाथों से मैं छूटना नहीं चाहता। मेरे पकड़े जाने से किसीका खून होगा, तो यह समझ लीजिये कि मेरा भी खून गिरेगा। मैं खुदा से प्रार्थना करूँगा कि मुझे कोई ऐसी ताकत दे, जिससे मैं आपके कृत्यों की जलन की ज्वाला में भस्म हो जाऊँ। मैं विश्वास रखता हूँ कि मेरी जाति मुझे धोखा नहीं देगी। परन्तु यदि धोखा देगी, तो मैं यह चाहूँगा कि मर जाऊँ।"

इसके बाद बहुत से वक्ताओं के भाषण हुए। उनमें श्री खाडिलकर के शब्द भुलाये नहीं जा सकते :

"गांधीजी ने अपना शरीर, मन और बुद्धि तपस्या से पवित्र कर लिया है। वह शरीर किसी शैतानी कैदखाने में नहीं रहेगा, ईश्वर के ही कब्जे में रहेगा। हम उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि यदि कभी उन पर कैदखाने का अधिकार हो जायगा, तो उन्हींके तप के सामर्थ्य से हमारे दुर्बल अंगों में भी ऐसा दैवी बल आ जायगा, ऐसा सामर्थ्य पैदा हो जायगा कि हम अपने ही हाथों उन्हें छुड़वाकर घर ले आयेंगे।"

इसके बाद असहयोग के काम के लिए सदर बाजार में से १००१) रुपये की, गुजराती व्यापारियों की तरफ से १०००) रुपये की और रा० धनजी रतनजी की ओर से १०१) रुपये की थैली गांधीजी को अर्पण की गयी। दूसरे दिन ७००) रुपये जैन मंडल ने, १०१) रुपये 'केसरी' कार्यालय ने और अन्य छोटी-छोटी रकमें अन्य संस्थाओं ने भेट कीं।

पुण्यतीर्थ

पाँच तारीख को दोपहर में गांधीजी को स्व० तिलक महाराज के गायकवाड़ वाड़े में ले जाया गया। गायकवाड़ वाड़ा तो एक तीर्थ ही है। तिलक महाराज जिस भाग में उठते-बैठते थे, उसमें श्री केलकर गांधीजी को ले गये। वह भाग हमने जैसा चार महीने पहले देखा था, वैसा ही इस बार भी था। परन्तु इस बार हमें वहाँ कोई अजीब शून्यता लगी। महाराज के पुत्रों ने सबका स्वागत किया, सबको तिलक महाराज की प्रिय सुपारी दी, गांधीजी को तिलक महाराज की प्रतिमावाला चाँदी का एक पदक पहनाया और वह सुपारी चाँदी की जिस डिबिया में रहती थी, वह भी गांधीजी को प्रदान की गयी। यह सब गांधीजी को बहुत प्यारा लगा। वह पदक और डिबिया वे उस दिन से सदा अपने पास ही रखते हैं।

नेताओं की अश्रद्धा

इसके बाद दूसरे ही भाग में स्थानीय नेताओं और कार्यकर्ताओं की खानगी सभा रखी गयी थी। राष्ट्रीय दल के अधिकांश स्थानीय नेता उपस्थित थे। काम किस ढंग से किया जाय, इस बारे की बातों की अपेक्षा अधिक बातें शंकाओं और कठिनाइयों के विषय में हुईं। कुछ को पाठशाला-त्याग की आवश्यकता के बारे में शंका थी। कुछ राष्ट्रीय संस्थाएँ बनने तक प्रतीक्षा करने के पक्ष में थे। सभी को रुपये की कमी सबसे बड़ी दिक्कत मालूम होती थी। गांधीजी की सारी दलील तो यहाँ नहीं दूँगा, परन्तु उसका सार दूँगा। उन्होंने पहले कहा कि शिक्षा अच्छी है या बुरी, यह प्रश्न नहीं है; सवाल यह नहीं कि वर्तमान शिक्षा में खामी है या नहीं। बात यह है कि जिस सरकार ने हमें घायल किया है, उसकी छत्रछाया में शिक्षा पाना पाप है। दूसरी बात उन्होंने यह बतायी कि राष्ट्रीय संस्थाएँ बनने तक प्रतीक्षा उसी स्थिति में की जा सकती है, जब यह सरकार सह्य हो। यह सरकार तो सह्य नहीं और इस असह्य सरकार से कोई भी स्थिति बेहतर है। रुपया न मिल सकने की बात तो श्रद्धा की ही थी। गांधीजी ने बताया कि प्रखर बुद्धि और अप्रतिम स्वार्थ-त्याग के घर महाराष्ट्र में कोई कमी है, तो वह श्रद्धा की ही है। जिस वस्तु को तिलक महाराज ने अपना धर्म बनाया था और जिसकी रटन करते हुए उन्होंने अपना शरीर छोड़ा, उस स्वराज्य को धर्म बनाने की गांधीजी ने माँग की। श्रद्धा के बारे में कहते हुए उन्होंने लगभग यह कह दिया कि आप आँखें बन्द करके श्रद्धा रखिये–I want you to be reckless in faith–सभी लड़के एक साथ पाठशालाएँ खाली कर दें, तो फिर उनके लिए किस प्रकार व्यवस्था हो, भीख माँगकर कर सकते हैं?—इस प्रश्न का उत्तर देते हुए गांधीजी ने कहा कि सभी विद्यार्थी निकल जायँगे, तो अध्यापकों से निकले बिना रहा जायगा? और सब अध्यापक निकल आये, तो सारा देश हिल उठेगा। इस प्रकार सारा मुल्क हिल उठे, तो क्या भारत में इस सारे कार्य के लायक रुपया है?–इस प्रश्न का उत्तर देते हुए गांधीजी ने कहा, जिस दिन इतनी जाग्रति

हो जायगी, उस दिन क्या रामनाथ काली कमलीवाले अपने खजाने में एक पैसा भी दबाकर रख सकेंगे ? इससे श्री केलकर का बहुत समाधान हुआ हो, ऐसा नहीं लगा। उन्होंने कहा कि आपका तो ऐसा सीधा हिसाब है, हमारा नहीं, हमें चाहे जिस धर्मादा खातों में से रुपया निकालना आसान नहीं लगता। यह अश्रद्धा लगभग सभी नेताओं में प्रतीत होती थी। परन्तु इस अश्रद्धा के अकारण होने का प्रमाण तो पूना में ही मिल रहा था। अब हम उस ओर मुड़ेंगे।

'प्रातःस्मरणीय भगिनयाँ'

तारीख ६ को दोपहर में किर्लोस्कर नाटकशाला में स्त्रियों की सभा रखी गयी थी। नाटकशाला के नीचे की सारी जगह और ऊपर की दोनों गैलेरियाँ स्त्रियों से भरी हुई थीं। तिलभर भी जगह शायद ही खाली होगी। जैसे चन्द्रमा को देखकर समुद्र उमड़ता है, वैसे ही आज ज्वार आ गया था। हिन्दू, मुसलमान, पारसी सभी वर्गों की, सभी उम्र की स्त्रियाँ थीं। एक सुंदर पद से कार्यारंभ हुआ। उसकी कुछ कड़ियाँ उसकी सार्थकता बताने के लिए यहाँ दे देता हूँ :

दिन आले दुर्धर भारत भूला
संकटीं या तारक तुम्हीं जनतेला
प्रभु देवो यश या सत्कार्याला ॥ चाल ॥
जाऊं दे नशिबाचें हें पारतंत्र्य विलयाला ॥
मान्य असो स्वागत०

जरी आमुचा बाल तिलक आजि गेला
अवचित हा घात जनांचा झाला
तरि आतां भार तुम्हांवर आला ॥ चाल ॥
ठेउनियां विसरं आम्हीं या तिलक-निधनदुःखाला ॥
मान्य असो स्वागत०

गांधीजी ने बहनों को 'प्रातःस्मरणीय' कहकर सम्बोधन किया और लगभग पौन घंटे तक जो उद्बोधन किया, उसमें से विशिष्ट उद्गार मात्र यहाँ देता हूँ :

"मैं जानता हूँ हिन्दू, मुसलमान, पारसी और दूसरी सभी जातियों का धर्म स्त्रियों के ही हाथ में है। जिस दिन स्त्रियाँ धर्म छोड़ देंगी, उस दिन हमारा धर्म नष्ट हो जायगा। हमारे शास्त्रों में कहा है कि जहाँ राजा और स्त्रियाँ धर्म छोड़ देती हैं, वहाँ देश नष्ट हो जाता है। हमारे यहाँ स्त्रियों ने धर्म बिल्कुल नहीं छोड़ा, परन्तु राजा ने तो छोड़ दिया है। हमारे यहाँ जो राज्याधिकार है, वह रावण-राज्य जैसा है—वह राक्षसी राज्य जैसा है।" खिलाफत और पंजाब के अन्यायों का उल्लेख करके वे बोले : "यह सल्तनत मर्दों को नामर्द बना रही है। हम नामर्द न होते, स्त्रियाँ वीर पुरुष पैदा करती होतीं, तो अत्याचार असंभव हो जाते। मगर मुझे अफसोस है कि हमारे देश में आजकल हमारे मर्द नामर्द बन गये हैं। मैं हिन्दुस्तान की माताओं से अश्रुपात चाहता हूँ। जब तक वे मर्द पैदा नहीं करेंगी, तब तक देश का उद्धार असंभव है।...परन्तु मर्द पैदा कैसे किये जा सकते हैं? जब स्त्रियों के दिलों में हिम्मत आये, भक्ति आये, श्रद्धा आये, ईश्वर उनके हृदय का पति बने, वे ईश्वर से ही डरने लगें, मनुष्य से डरना छोड़ दें, तो ही हिन्दुस्तान में मर्द पैदा हों।...रावण-राज्य को बन्द करना हो, तो रामराज्य पैदा करना चाहिए। रामराज्य प्राप्त करने की शक्ति तब तक कहाँ, जब तक बहनें पार्वती-कौशल्या जितना तप नहीं करतीं, द्रौपदी-दमयंती जितना धर्म-पालन नहीं करतीं? तब तक मर्द पैदा होना असंभव है।" इसके बाद अमृतसर की जिन बहनों ने प्रभात में आकर देश को 'जितेन्द्रिय' बनाने की गांधीजी से माँग की थी, उनका किस्सा कह सुनाया और अपनी भिक्षा माँगनी शुरू की। पहली भिक्षा पवित्रता की माँगी, दूसरी भिक्षा मुसलमानों के प्रति द्वेष निकाल देने की, तीसरी भिक्षा रावण-राज्य की पाठशालाओं से बालक-बालिकाओं को हटाने की माँगी, चौथी भिक्षा

स्वदेशी धर्म के पालन की माँगी और पाँचवीं त्याग—अलंकार आभूषणादि तथा द्रव्य—की माँगी।

इस माँग के होने के साथ ही जो दृश्य बन गया, उसका वर्णन करने को कवि की कलम चाहिए। अहमदाबाद, डाकोर वगैरह स्थानों की बहनों द्वारा अपने आभूषण दिये गये देखे हैं, परन्तु पूना ने उन स्थानों को भुला दिया, ऐसा कहूँ तो अतिशयोक्ति नहीं। मंगलारंभ एक पारसी बहन ने अपनी सोने की चूड़ी देकर किया। और फिर तो एक दो तीन करके जितनी जल्दी-जल्दी चूड़ियाँ बाजीगर की जेब से निकलती हैं, वैसे निकलने लगीं। चूड़ियों के साथ गले की कंठियाँ, एरिंग, बालों के फूल और रुपये भी आ गये। स्त्रियाँ आपस में रुपया इकट्ठा करके दे रही थीं। ऊपर की गैलेरियों की बहनों ने किसी भाई का दुपट्टा लेकर उसमें चंदा करके वह दुपट्टा ऊपर से लटका दिया। इस प्रकार रुपये और गहनों की लगभग आध घंटे तक लहर आ गयी। गांधीजी ने श्री हरिभाऊ फाटक से कहा : "अब भी दक्खन में श्रद्धा नहीं आये, तो कब आयेगी?" परन्तु यह दृश्य आँखों निरखते रहना हमारे भाग्य में नहीं था। हमें तो तुरंत वाई और सतारा जाने के लिए मोटर पकड़नी थी, इसलिए श्री हरिभाऊ फाटक से यह लहर समेट लेने को कहकर हम इन 'प्रातःस्मरणीय' बहनों से विदा हुए। रास्ते में श्री केल्कर गांधीजी से मिले। गांधीजी ने उन्हें उस अलौकिक दृश्य का चित्र दिया, जो वे देखकर आये थे। श्री केल-कर मान नहीं सके। उनसे भी गांधीजी ने हँसते-हँसते कहा कि "स्त्रियों को देखकर तो आप श्रद्धावान् बनिये।"

वाई

किर्लोस्कर नाटकशाला के हृदयस्पर्शी दृश्य छोड़कर हम वाई जाने के लिए मोटर में बैठे। वाई जाने का खास कारण नहीं था। वाई केवल इस खयाल से गये थे कि वहाँ ब्राह्मणों की आबादी ज्यादा है, मुसल-मान भी हैं और वह एक पुण्यक्षेत्र माना जाता है। उसके पास ही

सतारा शहर में तो हमें जाना ही था, इसलिए रास्ते में वाई भी उतर जायँ। बहुत समय से इस स्थान को विद्या का धाम मानते आ रहे हैं और आज भी पुरानी प्रथा पर चलनेवाली 'प्राज्ञ पाठशाला' आजन्म ब्रह्मचारी और संस्कृत के प्रौढ़ पंडित पूज्य नारायणशास्त्री मराठे चला रहे हैं। चरखे वहाँ भी पहुँच गये हैं। एक युवक ने कांग्रेस से ही जाकर अपनी जानकारी के अनुसार चरखा बनाया और उस पर सूत कातकर वह दूसरों को सिखा रहा है। वह उसमें सुधार के सुझाव लेने के लिए चरखा सभा में लाया था।

सभा कृष्णा नदी के विशाल घाट पर हुई थी। यहाँ की पवित्र परिस्थिति को लेकर गांधीजी के भाषण ने विशेष धार्मिक स्वरूप ग्रहण किया। आरंभ में मुसलमानों की थोड़ी उपस्थिति के बारे में और सरकार के साथ असहयोग, आपस में सहयोग की आवश्यकता इत्यादि के विषय में बोलते हुए गांधीजी थोड़ा-सा ब्राह्मण-अब्राह्मण के झगड़े पर बोले, जो मैं महाराष्ट्र की यात्रा के अपने पहले ही पत्र में दे चुका हूँ। यहाँ उसकी पुनरुक्ति नहीं करूँगा। 'मैं असहयोग क्यों कर रहा हूँ' यह प्रश्न करके गांधीजी इस प्रकार बोले :

"मैंने तीस वर्ष सहयोग किया है, परन्तु आज असहयोग करने को प्रवृत्त हुआ हूँ, इसका क्या कारण? कारण यही है कि हमारे शास्त्र कहते हैं कि जब तक मनुष्य में कुछ भी अच्छाई रहे, तब तक उससे सहयोग किया जाय, परन्तु जब इन्सान अपनी इन्सानियत छोड़ देने का हठ पकड़ ले, तब उसे छोड़ देना मनुष्यमात्र का कर्तव्य हो जाता है। तुलसीदास, तुकाराम, रामदास सभी यह सिखा गये हैं कि देव और दानव, राम और रावण में सहयोग नहीं रह सकता। राम और लक्ष्मण तो बालक थे, फिर भी दस मस्तकवाले रावण से जूझे। हमारी सरकार ने मुसलमानों के दिलों में पैना खंजर भोंका है और इसलाम का अपमान किया है। पंजाब में स्त्री-पुरुषों और विद्यार्थियों पर अत्याचार हुए हैं। उन्हें दुबारा होने से रोकने के लिए सरकार के विरुद्ध असहयोग ही एक मार्ग है।

"गीता में जो अभेद-बुद्धि कही गयी है, उसका क्या अर्थ है? जब तक पंजाब के पुरुषों पर जो मारपीट हुई, उन्हें पेट के बल चलाया गया और उनसे नाक रगड़वायी गयी, विद्यार्थियों पर जो अत्याचार हुए, वे आपको अपने पर ही हुए ऐसा महसूस न हो, तब तक आपको अभेद बुद्धि प्राप्त नहीं हुई। श्री समर्थ रामदास स्वामी के लिए कहा जाता है कि जब उन्होंने किसीके कोड़ा लगते देखा था, तब उन्हें इतना दुःख हुआ था कि उनकी अपनी पीठ पर कोड़े के निशान दिखाई दिये। रामदास स्वामी की सिखायी हुई इस अभेद दृष्टि के कारण वे हमारे पूज्य बन गये हैं। पंजाब और मुसलमानों के साथ जो बेइन्साफी हुई है, वह हमारे साथ ही हुई न लगे, तो हम इसलाम की रक्षा कैसे कर सकेंगे? हिन्दू-धर्म की रक्षा कैसे कर सकेंगे?

सीताजी का असहयोग

"भूल तो सभी करते हैं, परन्तु भूल हुई जानकर सभी माफी माँगते हैं, तोबाह करते हैं। परन्तु इस सल्तनत ने तो घमंड में भूल करके तोबाह करने से इनकार कर दिया और हम सबसे अत्याचारों को भूल जाने को कहा। यह राक्षसी बात है। तुलसीदासजी कह गये हैं कि असंतों का त्याग किया जाय। मैं उसी उपदेश के आधार पर हुकूमत का त्याग करने की सलाह दे रहा हूँ। इस हुकूमत में रहकर हम उसकी कृपा या सहायता स्वीकार करना बन्द कर दें, तो काफी है। सीताजी रावण-राज्य में जाकर रावण के यहाँ से आनेवाली मिठाइयाँ स्वीकार नहीं कर सकती थीं, राक्षसियों का दासत्व मंजूर नहीं कर सकती थीं, इसलिए उन्होंने भारी तपस्या करके अपने सतीत्व का पालन किया। हमें अपने शील की रक्षा करनी हो, तो असहयोग के सिवा और कोई उपाय नहीं। विद्यार्थी पाठशालाएँ छोड़ने से इसी कारण झिझकते हैं कि आज पाठशाला छोड़ देंगे, तो कल हमारी शिक्षा का क्या होगा? मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जिस श्रद्धा से जानकीजी रावण का आहार तजती थीं—रामचंद्रजी

की ओर से उन्हें आहार तो पहुँचता ही था—उसी श्रद्धा से आप इस शैतानी सल्तनत की शिक्षा छोड़ेंगे, तो आपके लिए रामचन्द्रजी और श्रीकृष्ण भगवान् शिक्षा का प्रबन्ध करेंगे।

हमारी संस्कृति क्या सिखाती है ?

"मुझसे विद्यार्थी कहेंगे कि आपके रामचन्द्रजी कहाँ हैं ? अंग्रेजी ढंग की शिक्षा पाकर, उसका इतिहास पढ़कर ऐसे प्रश्न उठते हैं। हमारे विद्यार्थी पतित होते जा रहे हैं, पश्चिम की विद्या से हम पश्चिम की आदतें सीखते हैं और 'शर्म-शर्म' के नारे लगाना सीखते हैं। श्रीमती बेसेण्ट को आप न चाहते हों, तो भले ही आप उनकी पाठशालाओं में न जाइये। परन्तु उनकी सभा में जाकर झगड़ा-फसाद करना तो न हिन्दू-संस्कृति में लिखा है और न इसलामी शराफत में कहा गया है। हम तालियों की आवाज से अपना समर्थन प्रकट नहीं कर सकते; शर्म की आवाज से हम अपना विरोध प्रदर्शित नहीं कर सकते; केवल व्यवहार से ही बता सकते हैं। आपको असहयोग करना हो, तो यह समझना चाहिए कि आपके शास्त्र क्या कहते हैं। यह धार्मिक युद्ध है। हम अधम को धर्म से हटा सकते हैं और धर्माचरण से अधर्माचरण को रोक सकते हैं।"

वकीलों को सम्बोधन करके गांधीजी बोले : "आप केवल भारत के सेवक बन जायँगे, तब आप आज जितनी सेवा कर रहे हैं, उससे चौगुनी कर सकेंगे। जैसे हमारे संन्यासी आहार लेकर सन्तोष मानते थे, वैसे ही आप भी देश के लिए एक वर्ष का संन्यास लीजिये और स्वराज्य प्राप्त कीजिये।"

आगे चलकर गांधीजी ने अमृतसर की बहन और 'जितेन्द्रिय' बनने के उपदेश का किस्सा कह सुनाया और कहा कि "जब तक हमारा यज्ञ पवित्र नहीं हो, तब तक उस यज्ञ का मूल्य नहीं।"

उपसंहार करते हुए उन्होंने बताया कि "हिन्दू-धर्म में सबसे बड़ी

संस्कृति है और उसमें कहा है कि सच्चा क्षत्रिय वह है, जो मारना नहीं, परन्तु मरना जानता है। गीताजी में मुझे सबसे बड़ा शब्द 'अपलायनम्' मिला है। जो तलवार से काम लेता है, उसका किसी समय भी पीछे हटना संभव है। वह ईश्वर पर श्रद्धा छोड़कर बाहुओं पर विश्वास रखता है, इसलिए 'अपलायन' का धर्म पालन नहीं करता। प्रह्लाद आदि अपलायन का धर्म पालन करके शुद्ध क्षत्रिय हो गये, मैं तो यही कहूँगा।"

शिपाई बना रे। स्वातंत्र्य-विजय मिलवा रे।
असहकारिता - शस्त्र घेवोनी।
अढल धैर्य ढाल करीं धरोंनी।
देश-भक्ति चिलखत चढवोनी।
युद्ध करा रे॥ स्वातंत्र्य०
स्वार्थ-त्याग शिस्त हे दोन्हीं।
राइट - लेफ्ट असें पदचि टाकुनि।
परसंस्कृतिचा हॉल्ट म्हणोनी।
कूच करा रे॥ स्वातंत्र्य०
स्वावलंबनी ट्रेंच खोदोनी।
सहनशीलता मशीन्गन् धरूनि।
गोळि विदेशी वस्तु भरोनी।
वार करा रे॥ स्वातंत्र्य०

सतारा और कराड़

वाई में दादासाहब करंदीकर गांधीजी और शौकतअली को सतारा की तरफ से आमंत्रण देने आये थे। उनके आग्रहानुसार वाई से रात को ही सतारा जाने के लिए मोटर ली। सतारा में सुबह स्त्रियों की सभा और पुरुषों की सभा रखी गयी थी। सतारा छोड़ने और उसके बाद दूसरी जगह जाने का समय ऐसा बेढंगा रखा गया था कि सतारा में स्त्रियों और

पुरुषों के सम्मुख भाषण के सिवा कुछ भी नहीं हुआ। गांधीजी को तो खास तौर पर स्थानीय कार्यकर्ताओं से मिलना था, परन्तु मालूम होता है, दादासाहब ने इस सम्बन्ध में व्यवस्था नहीं की थी। अन्त में गांधीजी दादासाहब से मिले। उनकी बातचीत से उनका मन असहयोग के सम्पूर्ण कार्यक्रम में दिखाई नहीं दिया। गांधीजी ने उनसे कहा, 'तब तो मुझे यहाँ बुलाने का प्रयोजन ही नहीं था।' दादासाहब ने कहा कि 'मैं भले ही तैयार न होऊँ, तो भी लोग तो तैयार हो सकते हैं और लोग आपका उपदेश सुनें, इसलिए आपको बुलाया था।' लोगों का उत्साह तो अच्छा था। स्त्रियों की सभा में खूब स्त्रियाँ आयी थीं और द्रव्य तथा गहनों की भिक्षा का अच्छा जवाब दिया था। पुरुषों की सभा में स्वराज्य फंड के लिए गांधीजी को १०००) रुपये की थैली दी गयी थी। वहाँ से कराड़ गये। कराड़ में अच्छी सभा हुई। आसपास के गाँवों से बहुत लोग आये थे। लोगों ने ४००) रुपये की थैली दी और सार्वजनिक सभा में लगभग २००) रुपये चंदा हुआ। कराड़ और आसपास के विद्यार्थियों ने छोटी-छोटी रकमें करके २५) रुपये स्वराज्य-कोष के लिए जमा किये थे, यह यहाँ उल्लेखनीय है।

निपानी और चिकोड़ी

सतारा में हुई थोड़ी-सी निराशा बेलगाँव जिले में आने पर उड़ गयी। श्री गंगाधरराव देशपांडे अपने जीवन का क्षण-क्षण आज असहयोग के लिए व्यतीत कर रहे हैं। उनकी व्यवस्था की छाप जहाँ जाइये, वहीं दिखाई देती थी। निपानी में ब्राह्मणेतरों की अधिक बस्ती है और बुनाई के काम का यह बड़ा क्षेत्र है। गुजराती व्यापारियों की भी अच्छी आबादी है। प्रातःकाल जो सभा हुई, उसमें ब्राह्मणेतरों को सम्बोधन करके गांधीजी कुछ बोले। इस पर भाई मारुतिराव रावण नामक सज्जन ब्राह्मणेतरों की तरफ से बोलने उठे। इसके बाद जो हाल हुआ, वह तो मैं पहले पत्र में ही दे चुका हूँ। ब्राह्मणों और ब्राह्मणेतरों के बारे में गांधीजी के प्रकट किये

हुए उद्‌गार मैं पहले दे चुका हूँ। उनका कितना असर हुआ है, उसका पता यहाँ कुछ ही दिन पहले हुई एक घटना से लग जायगा। श्री लट्ठे, जो ब्राह्मणेतर-आंदोलन के जनक और नेता हैं, कुछ ही रोज पहले निपानी गये थे। वहाँ उन्होंने ब्राह्मणेतरों के सामने 'महात्मा गांधी और ब्राह्मणेतर' विषय पर एक भाषण रखा था। सभा में केवल ब्राह्मणेतर ही थे। उन्होंने श्री लट्ठे से प्रार्थना की कि वे भाषण न दें, क्योंकि उन्हें पता लग गया था कि वे क्या कहनेवाले हैं। उन्होंने यह भी बताया कि गांधीजी स्वयं ब्राह्मणेतर हैं, इसलिए वे ब्राह्मणेतरों का हित समझते हैं और जैसा वे कह रहे हैं, तदनुसार ब्राह्मणेतरों को धारासभाओं में नहीं जाना चाहिए। उन्होंने श्री लट्ठे से भी धारासभा में न जाने का अनुरोध किया। मुझे पता नहीं, श्री लट्ठे ने उनकी यह विनती सुनी या नहीं। परन्तु भाषण तो उन्होंने छोड़ दिया; इतना ही नहीं, वे इसी विषय पर बोलने चिकोड़ी जानेवाले थे, यह विचार भी छोड़ दिया।

निपानी में ७००) रुपये की थैली मिली और सभा में ३००) रुपये तक चंदा हुआ।

चिकोड़ी निपानी से चौदह मील पड़ती है। यह भी जुलाहों का केन्द्र है। आजकल तो श्री गंगाधरराव के प्रयत्नों के कारण निपानी और चिकोड़ी दोनों जगह चरखे का सूत खूब कत रहा है और उससे अच्छी मात्रा में खादी तैयार होती है। चिकोड़ी में तो बहनों ने खास तौर पर सूत और खादी का प्रदर्शन किया था। उसमें संकेश्वर के सूत का नमूना आश्चर्यजनक था। बहुत सी स्त्रियाँ सूत कातने लगी हैं। ऐसे देहाती गाँवों में भी स्त्रियों में जो उच्च संस्कृति देखी, उससे खयाल हुआ कि सारे भारत की स्त्रियों में महाराष्ट्र की स्त्रियों का सहज ही पहला नम्बर आयेगा। चिकोड़ी की सभा में भी गांधीजी को पाँच सौ रुपये की थैली दी गयी और सभा में अच्छा चंदा हुआ।

बेलगाँव की सुन्दर व्यवस्था

निपानी और चिकोड़ी की सुव्यवस्था ने हमें बेलगाँव की सुन्दर

व्यवस्था की आशा दिला दी थी और वह फलीभूत हुई। आठ तारीख की शाम को हम बेलगाँव पहुँचे। शुद्ध खादी की पोशाकवाले स्वयंसेवकों के नेतृत्व में लोगों के झुंड दो गाड़ियों के साथ चल सकें, इतना चौड़ा रास्ता बीच में खुला छोड़कर व्यवस्थित खड़े थे। गांधीजी और शौकतअली आये, तब भी उस भीड़ में खलबली नहीं हुई, शोर नहीं हुआ। उन्होंने सम्पूर्ण शान्ति से अपने नेताओं का स्वागत किया। उतनी ही शान्ति से उन्होंने सभा की कार्रवाई होने दी। परन्तु उस सभा के बारे में कहने से पहले बेलगाँव की बहनों के बारे में दो शब्द कह देना जरूरी है।

स्त्रियों का उमंगभरा जवाब

सायंकाल सात बजे मारुति के मन्दिर में स्त्रियों की सभा रखी गयी थी। मंदिर के भीतर का भाग और विशाल आँगन स्त्रियों से उमड़ रहा था। मंदिर जैसे पवित्र स्थान में बहनों ने मौलाना शौकतअली को बुलाने का आग्रह किया था और वे गांधीजी के साथ सटे हुए बैठे थे। एक बहन के मधुर गान के बाद गांधीजी से बोलने की प्रार्थना हुई। गांधीजी का हृदय आनंद से छलक रहा था। बहनों के आगे दिया हुआ उनका भाषण मैंने ज्यों-का-त्यों इस पत्र के अंत में दे दिया है। द्रव्य की भिक्षा का सुन्दर जवाब मिला। पूना के दृश्य यहाँ दुबारा देखने में आये। परन्तु पूना में हम जो दृश्य देखने को छोड़ आये थे, वे भी यहाँ देखने को मिल गये। एक मैले-कुचैले कपड़ोंवाली विधवा बहन ने गांधीजी के बोलना पूरा करने से पहले यह कहकर कि 'एक दरिद्र विधवा की भेंट लीजिये' गांधीजी के पैरों में दस रुपये रख दिये। गांधीजी का भाषण पूरा होने के बाद बेलगाँव में भी गहनों की वैसी ही वर्षा हुई, जैसी पूना में हुई थी। इस सभा से पुरुषों की आम सभा में जाना था, इसलिए हम वहाँ गये। दूसरे दिन बेलगाँव रहे, उस बीच बहनें तो अपनी-अपनी भेंट लेकर गांधीजी के निवास-स्थान पर आती ही रहीं। इस भक्ति में कितना विवेक भरा था, इसका कभी न भूलने जैसा एक उदाहरण यहाँ दे देता

हूँ। गांधीजी गहनों की माँग करते समय बहनों से हमेशा कहते हैं कि 'जो चीज आइंदा न पहननी हो, वही दीजिये।' अर्थात् जो चीज दें, उसका सच्चा त्याग करें। एक बहन ने शाम को आकर अपने शरीर पर की तीन वस्तुएँ निकालकर दे दीं। गांधीजी ने उन्हें अपनी शर्त सुनायी। एक आभूषण का त्याग सदा के लिए करने को वह बहन तैयार नहीं थीं। उन्होंने वह चीज तुरंत वापस उठा ली। कितनी ज्यादा ईमानदारी थी!

परन्तु बहनों की बात पूरी कहने लगूँ, तो पन्ने-के-पन्ने भर जायँ। दो दिन बाद बेलगाँव स्टेशन से गुजरकर बंबई जाना था। बेलगाँव स्टेशन पर उस दिन भी बहनें भेंट लिये खड़ी ही थीं। निरर्गल बहते हुए प्रेमाश्रुओं से भीगी हुई मूल्यवान् भेंट जिस समय दी गयी, वह प्रसंग कभी स्मृति से दूर नहीं हो सकता।

बेलगाँव की आम सभा

सार्वजनिक सभा किसी परिषद् जैसी लगती थी। जैसी शान्ति परिषदों में भी न मिले, वैसी इस सभा में छायी हुई थी। इस पत्र के आरंभ में दी हुई कड़ियों के अनुसार स्वराज्य के सिपाही बनने के पात्र बेलगाँव के स्वयंसेवक तो हैं, यह उन्होंने साबित कर दिया। पहले गांधीजी और मौ० शौकतअली को चाँदी के चौखटों में मान-पत्र दिये गये। प्रथम मान-पत्र अंग्रेजी में था, इसलिए वह गांधीजी द्वारा थोड़ी-सी मीठी आलोचना का पात्र बना और चौखटे छोटे-बड़े थे, यह बात भी गांधीजी की नुकताचीनी का विषय बनी। श्री गंगाधरराव ने सफाई दी कि बराबर के कद के चौखटे मिल नहीं सके, तब गांधीजी ने पलटकर उत्तर दिया कि "शौकतअली को बड़ा चौखटा देना था!"

व्याख्यान में गांधीजी ने बहनों की जो प्रशंसा की, वह उल्लेखनीय है:

"मारुति के मन्दिर में मैं जो दृश्य देख आया हूँ, उसका मुझ पर जो असर हुआ, उसका वर्णन नहीं कर सकता। ऐसी ही बात पूना में देखी। हम पर उन्होंने प्रेम और आभूषण बरसाये हैं और यह समझकर कि वे

स्वराज्य के लिए, रामराज्य प्राप्त करने के लिए माँगे गये हैं। इतना दान हमारे करोड़पतियों ने नहीं दिया। हम उनसे दान लेने के लिए उनके पैर चूमते हैं, आजिजी करते हैं, तब वे कुछ पिघलते हैं। बहनों से मुझे कुछ भी अनुनय-विनय नहीं करना पड़ा। उन्होंने तो केवल उमंग से, भावना से ही जो देना था, दिया। और उन्होंने भावना से जो दिया, वह करोड़ों से भी अधिक है।"

वर्तमान परिस्थिति सम्बन्धी उद्‌गार, ब्राह्मणेतरों के प्रश्नसंबंधी उद्‌गार अन्यत्र प्रकट किये गये उद्‌गारों जैसे ही हैं, इसलिए उन्हें यहाँ उद्धृत नहीं कर रहा हूँ। सभा के अन्त में स्वराज्य-कोष के लिए ३२००) रुपये की थैली भेंट की गयी तथा सभा हो रही थी, उस बीच दूसरे स्थानों की तरह यहाँ भी चंदा हुआ। उसकी रकम भी बहुत अच्छी थी। दूसरे दिन 'कास्केट' (चौखटों) का नीलाम हुआ। एक 'कास्केट' ११००) रुपये में और दूसरा ८००) में बिका।

इस प्रकार बेलगाँव के कार्यकर्ताओं की कारगुजारी की कुछ कल्पना ऊपर हो जाती है। बेलगाँव के कार्यकर्ताओं का परिचय देना बहुत जरूरी है, परन्तु वह अगले पत्र में दूँगा।

बेलगाँव में मारुति के मंदिर में स्त्रियों के सम्मुख दिया गया भाषण:
प्रातःस्मरणीय भगिनियो,

इस पवित्र मंदिर में आप सब बहनों के दर्शनों से मैं कृतार्थ हुआ हूँ। मुझे अधिक आनंद तो इससे हो रहा है कि आपने मेरे भाई शौकतअली से भी मिलने की उत्सुकता बतायी है। हम सब थके हुए थे और जरा आराम ले रहे थे, परन्तु जब मैंने सुना कि आपकी इच्छा है कि शौकतअली को भी लाया जाय, तब मैंने उन्हें बुलाया। इस सद्‌भाव में भारत की सिद्धि पाता हूँ। क्योंकि मुझे मालूम है कि जब तक हमारी हिन्दू महिलाएँ मुसलमानों को भाई के समान नहीं समझेंगी, तब तक भारत के बुरे दिन नहीं मिटेंगे। मैं इस मन्दिर में बैठकर आपकी धार्मिक कल्पना को

कोई धक्का नहीं पहुँचाना चाहता। मैं सनातनी हिन्दू-धर्मवाला हूँ। परन्तु मैंने हिन्दू-धर्म से सीखा है कि किसी भी धर्म से घृणा या तिरस्कार नहीं करना चाहिए। मैंने यह भी देखा है कि जब तक हम सब पर-धर्मवालों और पड़ोसियों के साथ प्रेम नहीं रखेंगे, तब तक देश की कल्याण-साधना असंभव है। मैं आपसे यह कहने नहीं आया कि आप मुसलमानों या अन्य धर्मवालों के साथ खाने-पीने या बेटी-व्यवहार का सम्बन्ध शुरू कर दें। परन्तु मैं यह कहने जरूर आया हूँ कि हमें प्रत्येक मनुष्य के साथ प्रेम रखना चाहिए। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि अपने बाल-बच्चों को परधर्मियों से प्रेम रखना सिखाइये।

मैं आपसे यह भी माँगता हूँ कि आप भारत की राष्ट्रीय स्थिति समझ लें। यह ज्ञान प्राप्त करने के लिए भारी शिक्षा पाने या बड़े-बड़े ग्रंथ पढ़ने की जरूरत नहीं। मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि हमारी सरकार राक्षसी सरकार है। पहले जैसा रावण-राज्य था, वैसी ही स्थिति इस वक्त है; क्योंकि हमारी सरकार ने मुसलमान भाइयों की भावनाओं को बड़ा धक्का पहुँचाया है, पंजाब के स्त्री-पुरुष और बच्चों पर भयंकर अत्याचार किये हैं और इतना करके भी सरकार अपनी भूल स्वीकार नहीं करती, पश्चात्ताप नहीं करती; उल्टे हमसे अत्याचारों को भूल जाने को कहती है। इसलिए मैं इस सरकार को राक्षसी कहता हूँ। और सीताजी ने जैसा असहयोग रावण के साथ किया, रामचन्द्रजी ने जैसा असहयोग रावण से किया, वैसा ही असहयोग हमारे स्त्री-पुरुषों को सरकार के विरुद्ध करना है। रावण ने सीताजी को लालच दिये, नाना प्रकार के पकवान भेजे, परन्तु सीताजी ने उनकी उपेक्षा की और रावण के पंजे से छूटने के लिए भारी तपस्या की। जब तक सीताजी रावण के हाथों में से छूटी नहीं, तब तक उन्होंने किसी वस्त्राभूषण या अलंकार से अपने शरीर का सिंगार नहीं किया। रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी ने बड़ा इंद्रिय-दमन किया, फल-फूल, कंद-मूल खाकर संयम में दिन बिताये। दोनों भाइयों ने कठिन ब्रह्मचर्य-व्रत पालन किया। आपसे मैं कहना चाहता

हूँ कि जब तक यह जालिम सल्तनत हमारी छाती पर बैठी है, तब तक आप सब भाइयों और बहनों को कोई शृङ्गार करने का अधिकार नहीं। जब तक भारत स्वतंत्र नहीं, मुसलमानों के घाव भरे नहीं, तब तक हमारे लिए फकीरी आवश्यक है। हमें अपने ऐश-आराम को अपनी शोकाग्नि में जलाकर भस्म कर देना चाहिए। मैं आपसे दीन वाणी में माँगता हूँ कि भोग-विलास तजकर कठिन तपश्चर्या कीजिये और हृदय तथा मन को पवित्र रखिये।

पचास वर्ष पहले हमारी सब बहनों–हिन्दू-मुसलमान तमाम स्त्रियों–के घरों में पवित्र चरखा चलता था और प्रत्येक स्त्री हाथ के बने सूत का कपड़ा काम में लेती थी। मैं आप बहनों से कहना चाहता हूँ कि हमने जब से स्वदेशी धर्म छोड़ा, तब से हमारा अधःपतन शुरू हुआ, हम पर गुलामी थोपना आरंभ हुआ। हमारे देश में जगह-जगह लोग भूखों मर रहे हैं, वस्त्रों के बिना नग्न फिर रहे हैं। ऐसी स्थिति में आप प्रत्येक बहन कम-से-कम एक घंटे भी भारत के नाम पर सूत कातिये और देश को वह सूत अर्पण कीजिये। आपको फिलहाल बारीक कपड़ा मिलना कठिन है। परन्तु आप बारीक सूत कातने लगेंगी, तो महीन कपड़ा भी मिलेगा। परन्तु जब तक देश परतंत्र दशा में है, तब तक बारीक कपड़ा हमारे लिए हराम होना चाहिए, क्योंकि महीन सूत कातने में बहुत समय लगता है और भारत में आज एक मिनट का भी मूल्य है।

[इसके बाद सरकारी स्कूलों से बालक-बालिकाओं को हटा लेने की माँग करके स्कूल-कॉलेज खोलने के लिए गांधीजी ने द्रव्य की इस प्रकार माँग की :]

मैं डाकोर-अहमदाबाद में रुपये की माँग कर चुका हूँ। पूना में भी परसों ही माँगकर आया हूँ। कुछ बहनों ने, छोटी-छोटी लड़कियों ने अँगूठियाँ, चूड़ियाँ, नाक की नथें, गले के हार उतारकर दे दिये। मैं आपके दिलों में जो फकीरी जाग्रत करने आया हूँ, वह जाग्रत कर सका हूँ, तो आपको अपने सारे आभूषण देश के लिए उतार देने में संकोच न

होना चाहिए। इससे मिलनेवाले रुपये का उपयोग श्री गंगाधरराव शिक्षा और स्वदेशी के लिए करेंगे। आप बहनें जो भी नकद रुपया अथवा द्रव्य देना चाहती हैं, तो जिस भाव से आप इस मंदिर में रुपया चढ़ाती हैं, उसी भाव से देश-कार्य के लिए दीजिये। भारत इस समय कसाई के हाथों में गरीब गाय की तरह है और इस भारतरूपी गरीब गाय को छुड़वाना मेरा और आपका काम है और गाय को छुड़वाने के लिए दान करने में देव-मंदिर में दान करने के बराबर ही पुण्य है।

आखिरी भीख आपसे यह माँगता हूँ कि जो काम मैं, शौकतअली और गंगाधरराव कर रहे हैं, उस काम के सफल होने के लिए आशीर्वाद दीजिये। मैं यह भी कह दूँ कि मैं यह नहीं चाहता कि कोई बहन शर्म के मारे जेवर उतारकर दे दे। आपके दिल में यह बात पैदा हो जाय कि यह दान करना आपका कर्तव्य है, यह एक पुण्य-कार्य है, तो ही दान दीजिये। ईश्वर आपको पवित्रता, साहस और देश के लिए यज्ञ करने की भावना प्रदान करे।

१५-११-'२०

अहमदाबाद के गुजरात महाविद्यालय की स्थापना करते समय कुलपति-पद से दिया हुआ भाषण :

भाइयो और बहनो,

आत्मकथन

अपनी जिन्दगी में मैंने बहुत से काम किये हैं। उनमें से अधिकांश के लिए मैं अपने मन में गर्व भी मानता हूँ। कुछ के लिए पश्चात्ताप भी होता है। उनमें से बहुत से बड़ी जिम्मेदारी के थे। परन्तु इस समय जरा भी अतिशयोक्ति के बिना कहना चाहता हूँ कि मैंने एक भी काम ऐसा नहीं किया कि जिसके साथ मौजूदा काम की तुलना हो सके। इस कार्य में मुझे बड़ा

खतरा लग रहा है। वह इस कारण नहीं कि इसमें लोगों की हानि है, परन्तु मुझे जिस बात का दुःख हुआ करता है अथवा मैं अपने मन में मुकाबला कर रहा हूँ वह एक ही है कि मैं जो काम करने चला हूँ, उसके लिए मुझमें योग्यता नहीं है। यह मैं शिष्टाचार के लिए नहीं कह रहा हूँ, परन्तु मेरी आत्मा जो कहती है, वही आपके सामने बता रहा हूँ। मुझे यह पता होता कि इस समय जो काम करना है, वह शिक्षा का जो सही अर्थ है, उस पर अवलंबित होकर करना है, तो मुझे यह प्रस्तावना न करनी पड़ती। इस महाविद्यालय की प्रतिष्ठा करने का उद्देश्य केवल विद्या-दान देना नहीं, परन्तु आजीविका की प्राप्ति के लिए साधन कर देना है और इसके लिए जब इस विद्यालय की तुलना गुजरात कॉलेज आदि से करता हूँ, तब मुझे चक्कर आने लगते हैं।

ईंट-चूने से तुलना

इसमें भी अतिशयोक्ति नहीं। कहाँ गुजरात कॉलेज और वैसे ही दूसरे कॉलेज और कहाँ हमारा यह छोटा-सा महाविद्यालय ? मेरे खयाल से तो यह महान् ही है। परन्तु मुझे डर है कि भारत में विद्यमान कॉलेजों के सामने इस विद्यालय का विचार करते समय आपकी दृष्टि से यह महा-विद्यालय अणु विद्यालय लगता होगा; मन में ईंटों और चूने की तुलना होती होगी। ईंट-चूना तो मैं गुजरात कॉलेज में अधिक पाता हूँ। रेल से आ रहा था, तब यही विचार कर रहा था कि तुम्हारे सामने आज मैं कौन सा विचार रखूँ, जिससे तुम्हारे दिल से यह ईंट-चूने की तुलना निकाल सकूँ। मुझे यह खटकता है कि अभी तक वैसा विचार मुझे नहीं सूझा। ऐसा कठिन प्रसंग मैंने अपने लिए पहले कभी पैदा नहीं किया। अब अनायास इसमें आ फँसा हूँ। मेरे हृदय के भीतर जो वस्तु सिद्ध है, वह तुम्हारे सामने उसी प्रकार सिद्ध नहीं कर सकता। जिसे तुम त्रुटियाँ समझोगे, उसे मैं कैसे बता सकता हूँ कि त्रुटियाँ नहीं। वे त्रुटियाँ सरल भाव से बताकर भाई किशोरलाल (महामात्र) ने मेरा काम सरल कर दिया है। इन त्रुटियों के

होते हुए भी तुम यह समझ लो कि कार्य महान् है। मुझे इसके लिए जैसी श्रद्धा है, वैसी ही श्रद्धा ईश्वर तुममें पैदा करे। मैं स्वयं तुममें वह श्रद्धा आरोपित नहीं कर सकता, मुझमें उतनी तपश्चर्या नहीं है। मुझे अपनी असमर्थता स्वीकार करनी चाहिए। मैंने शिक्षा का ऐसा काम नहीं किया कि तुम्हें बता सकूँ कि यह कार्य महान्-से-महान् है। भारत की वर्तमान परिस्थिति में हम जो काम कर रहे हैं, वह शोभा देता है। मकानों की क्या तुलना?

आज तो जमीन का एक इंच टुकड़ा भी हमारा नहीं है। सब सरकारी है। यह जमीन, ये पेड़, सब कुछ सरकारी हैं, शरीर भी सरकारी है, और हमारी आत्मा भी अपनी है या नहीं, इस बारे में मुझे शंका हो रही है। ऐसी दयाजनक स्थिति में हम महाविद्यालय के लिए अच्छे-अच्छे मकान क्या ढूँढ़ें? विद्वानों को खोजते रहें, तो कैसे काम चले! कोई अज्ञान-से-अज्ञान अनाड़ी आदमी आकर कहे और समझा सके कि हमारी आत्मा शुष्क हो गयी है, यह देश तेजोहीन, ज्ञानहीन हो गया है, तो उस आदमी को मैं आचार्य की पदवी दूँगा। मुझे विश्वास नहीं कि तुम किसी चरवाहे को आचार्य की पदवी देने को तैयार हो। इसलिए हमें भाई गिडवानी को ढूँढ़ना पड़ा है। मैं इनकी पदवी पर मुग्ध नहीं हूँ। तुम इन्हें इनकी पदवी के अलावा और किसी तरह जानते नहीं होगे। परन्तु इस विद्यालय की कसौटी के लिए दूसरा ही पैमाना रखना, इसकी परीक्षा करने के लिए मैं चाहता हूँ तुम दूसरा ही पत्थर रखना। मामूली कसौटी पर कसोगे तो पीतल का आभास होगा, परन्तु चरित्र की कसौटी पर जाँच करोगे तो तुम्हें पीतल नहीं, किन्तु सोना मालूम होगा।

यहाँ इस विद्या के कार्य के लिए जो संगम हुआ है, वह तीर्थरूप है। यहाँ चरित्रवान् पुरुष जमा हुए हैं। सुन्दर सिन्धी, सुन्दर महाराष्ट्री, सुन्दर गुजराती लोगों का संगम हुआ है। ऐसा संगम हम कहाँ से प्राप्त कर सकते हैं?

यहाँ जो भाई-बहन आये हुए हैं, उनसे मैं पहले प्रार्थना करूँगा।

इस महाविद्यालय की प्रतिष्ठा में आप साक्षीभूत हैं। आपमें से किसीको यह प्रतिष्ठा करना तमाशा लगता हो, तो मैं उनके अन्तःकरणों को रोकना चाहता हूँ और उनसे कहना चाहता हूँ कि आप इस प्रतिष्ठा में न बैठिये। आप यहाँ अपना आशीर्वाद देने के लिए ही बैठिये। आपका आशीर्वाद मिलने से महाविद्यालय महान् समझा जायगा। परन्तु वह मुख का ही आशीर्वाद न होना चाहिए, हृदय का दीजिये। हृदय का आशीर्वाद तो आप अपने लड़के-लड़कियों को महाविद्यालय में भेजकर ही दे सकेंगे। भारत में रुपया देने की शक्ति तो बहुत है। रुपये के अभाव में कोई प्रगति नहीं रुकती। प्रगति रुकती है, तो मनुष्य के अभाव में—अध्यापक या मुखिया के अभाव में या मुखिया हो, तो उसके शिष्यों के अर्थात् सिपाहियों के अभाव में। मैं मानता हूँ कि जहाँ नेता योग्य हों, वहाँ सिपाही मिल ही जाते हैं। अपने औजार कितने ही भोथरे हों, परन्तु बढ़ई उनके साथ झगड़ा नहीं करता। वह तो भोथरे-से-भोथरे औजारों को अपने हाथों में खिलायेगा। उसी प्रकार मुखिया भी सचमुच कारीगर होगा, तो जैसी चीज मिल जायगी उसीसे, देश की मिट्टी से सोना पैदा कर लेगा। आचार्य के प्रति मेरी यह प्रार्थना है।

चरित्र का चमत्कार

आचार्य और अध्यापकों की यहाँ भरती होने में एक ही भावना है। विद्या का नहीं, चरित्र का चमत्कार बताकर आप स्वातंत्र्य दिलायेंगे। सरकार की तेज तलवार के साथ तलवार का मुकाबला करके नहीं, परन्तु सरकार की अशान्तिकारक राक्षसी प्रवृत्ति के साथ हमारी शान्तिमय दैवी प्रवृत्ति का—भले ही वह अपूर्ण हो तो भी—मुकाबला करके। इस समय हमें स्वतंत्रता का बीजारोपण करके उसे पानी पिलाकर उससे स्वराज्य का सुन्दर वृक्ष उगाना है। वह चरित्र से, शुद्ध दैवी बल से ही पलेगा। जब तक आचार्य और अध्यापक यह एक ही दृष्टि रखकर कार्य करते रहेंगे, तब तक हमें जरा भी आँच नहीं आयेगी। जो मेरा अपना विश्वास है,

उसे ईश्वर आप आचार्य और अध्यापकों के बारे में सही साबित करे। मुझमें यह अटल श्रद्धा न होती, तो मैं निरक्षर कुलपति के इस पवित्र स्थान को मंजूर ही न करता। मैं इसी काम में जीने और मरने के लिए तैयार हूँ। जैसे मैं इसके लिए मरने को ही जीना समझता हूँ, वैसे ही आप समझते हैं, यह जानकर ही मैं आपके साथ रह रहा हूँ और इसी-लिए मैंने यह महान् पद धारण किया है।

यदि आचार्य और अध्यापक अपना धर्म पालन करें, तो विद्यार्थियों से तो मुझे कहना ही क्या है ? मैं विद्यार्थियों पर आक्षेप लगाने का अधम कार्य नहीं करूँगा। विद्यार्थी तो परिस्थिति के दर्पण हैं। उनमें दंभ नहीं, द्वेष नहीं, ढोंग नहीं। जैसे हैं वैसे ही अपने को दिखाते हैं। यदि उनमें पुरुषार्थ नहीं, सत्य नहीं, ब्रह्मचर्य नहीं, अस्तेय नहीं, अपरिग्रह नहीं, अहिंसा नहीं, तो यह दोष उनका नहीं। दोष माँ-बाप का है, अध्यापकों का है, आचार्य का है, राजा का है। परन्तु इसमें राजा का भी क्या दोष बताऊँ ? कल ही मैंने बम्बई में विद्यार्थियों से कहा था कि जैसे 'यथा राजा तथा प्रजा' सही है, वैसे ही 'यथा प्रजा तथा राजा' भी सच है। बल्कि यही सच कहलाता है। पहले प्रजा का दोष है। प्रजा का दोष विद्यार्थी-वर्ग में आ गया है और इसलिए वह विद्यार्थियों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। तो हमें, माँ-बाप को, आचार्य को, अध्यापक को उन दोषों को दूर करने के लिए जो कुछ करना उचित हो, वह करना चाहिए।

भारत का प्रत्येक घर विद्यापीठ है—महाविद्यालय है, माता-पिता आचार्य हैं; माता-पिताओं ने यह आचार्य का कार्य छोड़कर अपना धर्म छोड़ दिया है। बाहर की संस्कृति को हम जान न सके, उसके गुण-दोषों का हम माप नहीं ले सके। हमने बाहर की संस्कृति को किराये पर ले लिया, परन्तु किराया तो हम कुछ देते नहीं, इसलिए हमने उसे चुरा लिया है। ऐसी चुरायी हुई संस्कृति से भारत कैसे ऊँचा उठ सकता है ?

हम इस विद्यालय की प्रतिष्ठा विद्या की दृष्टि से नहीं, परन्तु राष्ट्रीय दृष्टि से कर रहे हैं। विद्यार्थियों को बलवान् और चरित्रवान् बनाने के

लिए मैं चौतरफ कह रहा हूँ कि हम जितनी सफलता विद्यार्थियों में हासिल कर लेंगे, उसी हद तक हम भारत के स्वराज्य के लिए योग्य बन सकेंगे। स्वराज्य की स्थापना और किसी तरह नहीं हो सकती। ऐसे विद्यालयों को कामयाब बनाने के लिए हम अपना रुपया, अपना चरित्र जितना खर्च कर सकें, उतना थोड़ा है।

यह बोलने का समय नहीं है, करने का है। मेरे उद्‌गार जैसे आये, वैसे मैंने आप पर व्यक्त कर दिये हैं। आपसे माँगने का मैंने माँग लिया। अब अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों से भी माँगता हूँ। उनके पास साहस है, इसमें तो शक ही नहीं। उन्हें—जो भरती हो चुके हैं उन्हें—मैं विद्यार्थी नहीं समझूँगा, इसलिए उन्हें मैं जिम्मेदारी से मुक्त नहीं मानूँगा। जिन विद्यार्थियों ने यहाँ नाम लिखवा दिये हैं, वे तो आधे शिक्षक माने जायँगे। उन्होंने महाविद्यालय की नींव डाली है। उन्हीं पर महाविद्यालय की रचना हुई है। वे भरती न हुए होते, तो यह महाविद्यालय खड़ा ही नहीं हो सकता था। इसलिए उनकी भी पूरी तरह जिम्मेदारी है। तुम इसमें पूरी तरह हिस्सेदार हो। तुम अपना हिस्सा पूरी तरह नहीं दोगे, तो शिक्षक कितना ही प्रयत्न करें, तो भी सफल नहीं होंगे, अथवा पूरे सफल तो हरगिज नहीं होंगे। जिन विद्यार्थियों ने पाठशाला छोड़ दी है, उन्हें यह जान लेना है कि वे क्या समझकर यहाँ आये हैं, उन्हें यहाँ क्या मिलेगा? कितने ही समय तक यह दारुण युद्ध जारी रहे, तो भी उसके दौरान वे अपना कार्य करते रहें, ईश्वर उनमें ऐसी शक्ति भर दे। ऐसा हो, तो मुझे विश्वास है कि मुट्‌ठीभर विद्यार्थियों से भी यह महाविद्यालय सुशोभित होगा और सारे भारत में आदर्श विद्यालय होगा।

इसका कारण न गुजरात का धन होगा, न गुजरात की विद्या, परन्तु इसका कारण यह होगा कि असहयोग की उत्पत्ति का स्थान गुजरात है, असहयोग की जड़ गुजरात में लगी है। उसका सिंचन गुजरात में हुआ है। इसके लिए तपस्या गुजरात में हुई है। इस पर से यह न मान लेना कि यह मिथ्याभिमानी मनुष्य बोल रहा है। यह न समझ लेना कि वह

सारी तपस्या मैंने ही की है या वह जड़ मैंने ही लगायी है। मैंने तो केवल मंत्र दिया है। एक वणिक्पुत्र यदि ऋषि का काम कर सकता हो, तो यह मैंने किया है।

साथियों ने श्रद्धा भरी है

इससे अधिक मैंने कुछ नहीं किया। उसकी जड़ तो मेरे साथियों ने लगायी है। उनकी श्रद्धा मुझसे भी अधिक थी, तब काम हुआ। मेरा दावा है कि मुझे अनुभव-ज्ञान है। देवता आकर समझायें, तो भी मेरी श्रद्धा विचलित नहीं होगी। जैसे मैं निरी आँखों से सामने के पेड़ देख रहा हूँ, वैसे ही मेरा खयाल है कि भारत की उन्नति शान्त असहयोग से ही होगी। परन्तु मेरे साथियों ने तर्क से, न्याय से, श्रद्धा से माना है कि इस शान्तिमय असहयोग से ही उन्नति हो सकेगी।

भारत में या पृथ्वी पर कहीं भी कोई अपने ही अनुभव से कार्य नहीं करता। कुछ को अनुभव होता है, तब दूसरे उस कार्य को श्रद्धा से करते हैं।

मेरे साथियों ने नींव डाली है। उनमें से बहुत-से गुजराती हैं; महाराष्ट्री भी हैं। परन्तु ये महाराष्ट्री तो गुजरात में आकर आधे या पौने अथवा सवाये गुजराती ही बन गये हैं। उनके द्वारा यह शस्त्र उज्ज्वल बन गया है। इसका पूरा चमत्कार हमने अभी तक नहीं देखा। जिस कार्य के लिए बालिकाओं ने अपनी चूड़ियाँ निकालकर मुझे दी हैं, उसका चमत्कार आप छह महीने के भीतर अधिक देखेंगे। परन्तु इस सबकी जड़—उसकी दृश्य प्रतिमा यह महाविद्यालय है। हिन्दू मूर्तिपूजक हैं और इसके लिए हमें अभिमान है। इस मूर्ति के अलग-अलग अंग हैं। उनमें कुलपति तो मैं स्वयं हूँ; अध्यापक, आचार्य, विद्यार्थी उसके दूसरे अंग हैं। मैं खुद तो बुड्ढा हूँ, पका हुआ पत्ता हूँ, दूसरे कामों में लगा हुआ हूँ। मुझ जैसा पका हुआ पत्ता झड़ जाय, तो पेड़ को कोई आँच नहीं आयेगी। आचार्य और अध्यापक भी पत्ते ही हैं, यद्यपि वे अभी कोमल पत्तियाँ हैं। थोड़े समय में वे भी पके हुए पत्ते बनकर झड़ जायँगे। परन्तु विद्यार्थी इस

सुन्दर वृक्ष की डालियाँ हैं और इन डालियों में से आचार्यों और अध्यापकोंरूपी पत्तियाँ फूटेंगी।

प्रह्लाद जैसी अग्नि पैदा करो

विद्यार्थियों से मेरा अनुरोध है कि मुझ पर तुम्हारी जितनी श्रद्धा है, उतनी ही श्रद्धा अपने अध्यापकों पर रखना। परन्तु यदि तुम अपने आचार्य या अध्यापकों को बलहीन पाओ, तो उस समय तुम प्रह्लाद जैसी अग्नि से उस आचार्य को और उन अध्यापकों को भस्म कर डालना और अपना काम आगे बढ़ाना। यही ईश्वर से मेरी प्रार्थना है और यही विद्यार्थियों को मेरा आशीर्वाद है।

अन्त में मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ और इस प्रार्थना में आप सबकी सम्मति चाहता हूँ। मेरी प्रार्थना में आप सब निर्मल हृदय से शामिल होइये। हे ईश्वर! इस महाविद्यालय को ऐसा बना कि उसके भीतर से वह स्वतंत्रता मिले, जिसका जप हम रात-दिन कर रहे हैं और उस स्वतंत्रता से अकेला भारत ही नहीं, परन्तु सारा संसार, जिसमें भारत एक बिन्दुमात्र है, सुखी हो।

१५-११-'२०

अहमदाबाद के विद्यार्थियों के सम्मुख दिया हुआ भाषण :

अध्यक्ष महोदय, विद्यार्थीगण, भाइयो और बहनो,

हमें आचार्य महाराज ने याद दिलायी है कि कांग्रेस ने लोगों से जो प्रतिज्ञा करायी है, उसका पालन करना चाहिए। इस प्रतिज्ञा के स्मरण के साथ मैं आपको एक और स्मरण दिलाना चाहता हूँ। मेरे खयाल से यह प्रतिज्ञा कांग्रेस द्वारा की गयी प्रतिज्ञा से अधिक महत्त्व की है। मैं कल पंजाब गया था, जहाँ हम सबने एकमत से हंटर कमेटी के बहिष्कार का विचार किया था। उस निश्चय पर पहुँचने से पहले हमने कई दिन चर्चा में बिताये थे। पंडित मालवीयजी ने बहुत-सी दलीलें दी थीं, हममें कितनी

कचाई है यह याद दिलाया था, हम कितने आरंभशूर हैं, इसका भी उस समय विचार हुआ था, नेताओं को जेल में डाल दिया जायगा, यह सब विचार हुआ था। इतने पर भी वहाँ आये हुए सभी ने—जिनमें पहला मैं, दूसरे पं० मालवीयजी, तीसरे पं० मोतीलालजी और चौथे मि० एण्ड्रूज और कुछ अन्य लोग भी थे, उन सबने मिलकर निश्चय किया कि हंटर कमेटी का बहिष्कार किया जाय। इस प्रतिज्ञा का स्मरण मैं आपको पहले कराता हूँ। मैंने उसी समय चेतावनी दी थी कि यह प्रतिज्ञा करेंगे, तो आपको अपनी रिपोर्ट प्रकाशित करनी होगी और जाँच करने पर सब जुल्म साबित हो जायँगे, तो न्याय प्राप्त करने के लिए मरना भी पड़ेगा। इसके लिए देश का बलिदान देना पड़े, तो हमें वह भी देना ही होगा। मेरी चेतावनी के बावजूद उस समय वह प्रतिज्ञा सबको प्यारी थी। यह स्मरण कांग्रेस की प्रतिज्ञा के स्मरण से भी अधिक है, क्योंकि कांग्रेस की प्रतिज्ञा पर तो ऐसा एक आरोप है कि उस वक्त लोगों को विचार करने का समय नहीं मिला था। दूसरा आरोप यह है कि पहली ही बार मुसलमान बड़ी संख्या में कांग्रेस में गये और उनके संख्या-बल से प्रस्ताव को बहुमत मिल गया। असली बात यह हरगिज नहीं थी। असली बात यह थी कि प्रान्तवार मतगणना हुई थी और उसमें दो प्रान्तों को छोड़कर बाकी सबने अधिक मतों से एक ही प्रस्ताव किया था। फिर भी यह सच है कि उस प्रस्ताव पर सभी आदमियों ने विचार न किया हो और इसलिए उस प्रतिज्ञा को भले ही महत्त्व न दीजिये। अलबत्ता जिसे कांग्रेस के प्रति आदर है, जिसे कांग्रेस के प्रस्ताव पर अमल करने में अंतःकरण की आवाज की बाधा नहीं आती, उसे तो इस प्रतिज्ञा का भी निश्चयपूर्वक पालन करना ही चाहिए। परन्तु पंजाब की प्रतिज्ञा तो जान-बूझकर की गयी है। ठंडे दिल से, जिस समय आवेश जरा भी नहीं रह गया था उस समय, विचार करने के बाद की गयी है। संकट का पूरा भान था, तब की गयी है। जिनके लिए आपको इज्जत है, जो आपके नेता हैं, उन्होंने जिस पंजाब के लिए हम लड़ रहे हैं, उस पंजाब की नाक

रखने के लिए यह निश्चय किया है। मुझे आपको वह प्रतिज्ञा याद दिलानी थी।

सोने की बेड़ियाँ

अब जो विद्यार्थी इस राष्ट्रीय विद्यालय में भरती नहीं हुए हैं, उनसे मैं पूछता हूँ कि तुम क्या चाहते हो? तुम भारत के लिए स्वतंत्रता-स्वराज्य चाहते हो? तुम अपनी खुद की संस्कृति चाहते हो या पराधीनता चाहते हो? पराधीनता को सह लेने को तैयार हो, तो तुम्हें कहने के लिए मेरे पास एक शब्द भी नहीं है। गुजरात कॉलेज में तुम्हारे लिए बड़े-बड़े खेल के मैदान हैं, वहाँ खेल-कूद कर सकते हो। वहाँ तुम्हारे लिए बड़े-बड़े प्रोफेसर हैं। वहाँ जैसी लेबोरेटरी है, वैसी तुम्हें यह विद्यालय दे सके, इससे पहले बहुत समय बीतेगा। वैसी सुविधाएँ तुम्हें यहाँ नहीं मिलेंगी। परन्तु कैदी को सोने की और रत्नजटित बेड़ियाँ पहना देने से उसका कैदीपन कम हो जाता हो, तो तुम गुजरात कॉलेज में कैदी नहीं हो। परन्तु यदि तुम मानते हो कि जहाँ हमारी स्वतंत्रता हो, वहीं हमारा तेज रह सकता है, तो तुम गुजरात कॉलेज का, वहाँ कितनी ही सुविधाएँ मिलती हों, तो भी त्याग कर दो और अड़चन उठाकर भी महाविद्यालय में भरती हो जाओ। मैं तुम्हें उभाड़ना नहीं चाहता, परन्तु तुम्हारी बुद्धि को जाग्रत करना चाहता हूँ। तुम्हें अपने कर्तव्य का भान कराना चाहता हूँ, तुम्हारी अक्ल का अपनी अक्ल के साथ योग करा देना चाहता हूँ। फिर भी तुम्हें यह सूझता हो कि जब तक सरकारी स्कूल-कॉलेज में पढ़ेंगे, तब तक हम स्वतंत्रता का विचार ही नहीं कर सकते, यह विचार करने में तुम्हें बेवफाई लगती हो, तो तुम सरकारी स्कूल-कॉलेज भले ही न छोड़ो। जब तक सरकार द्वारा शिक्षा पाते हैं, तब तक सरकार के लिए अच्छा कहना चाहिए। परन्तु यह सरकार तो उद्धत बन गयी है, उसने हम पर अत्याचार किये हैं, उसने लोगों का तेज छीन लिया है, उसने हमारे धर्म पर वार किया है, इतने पर भी क्या हम सरकार का

भला चाह सकते हैं ? और यह सल्तनत इतनी न्यायपरायण है कि सूर्य उस पर कभी छिपता नहीं ? और ऐसा नहीं चाह सकते, तो फिर सरकार से दूर भागना चाहिए। प्रत्येक धर्म सिखाता है कि धर्म के प्रति बेवफा होने जैसा और कोई पाप नहीं है। इसीलिए मैंने लिखा है कि इस सरकार के विद्यालय में रहकर शिक्षा पाना जिस डाली पर बैठे हों, उसीको काटने के बराबर है। इसलिए जिन लड़कों ने अभी तक सरकारी स्कूल या कॉलेज नहीं छोड़ा, उन्हें मैं कहता हूँ कि तुम बार-बार अपने हृदय को टटोलो। तुम्हें लगे कि इस सरकार का अन्त करना ही चाहिए, तो हमारा सत्त्व, हमारी बहादुरी इसीमें है कि सरकार के स्कूल-कॉलेजों से तुरंत निकल जायँ।

आचार्य महाराज ने तुम्हें बताया कि कुछ सहयोग तो अनिवार्य है, जब कि कुछ ऐसा है, जिसे हम तुरन्त हटा ले सकते हैं। कुछ प्रकार की वस्तुओं का त्याग करने के लिए तो हमें सारे देश का त्याग करना चाहिए। ऐसा देश-त्याग करने का समय आयेगा या नहीं, यह मैं नहीं कहता। परन्तु आज वह समय नहीं आया, इसलिए हम इस पर विचार नहीं करते। हम जो तपश्चर्या करें, वह अपने काम के लायक ही करनी चाहिए। हमें जितनी चित्त-शुद्धि करनी हो, अथवा जितने रोग से मुक्ति प्राप्त करनी हो, उतनी यदि एक दिन के उपवास से हो सकती हो, तो जो दो दिन का उपवास करे, वह बेवकूफ कहलाता है। जितनी तपस्या हमने तय की है, उतनी से हमारा काम हो जाता हो, तो अधिक नहीं करनी चाहिए। यही जवाब तार, रेल वगैरह के सहयोग के विषय में है। जिस सहयोग से हमारे तेज का हनन होता है, जिस सहयोग से हम सरकार से इच्छापूर्वक दान लेते हैं, उसका त्याग तुरन्त कर देना चाहिए। सरकारी पाठशालाओं में जाना ऐसा ही सहयोग है। अब सौभाग्य से राष्ट्रीय महाविद्यालय बन गया है। हमारे आचार्य और अध्यापकों जैसे सभी जगह नहीं होते। मैं इनकी तुलना यहाँ के गुजरात कॉलेज के प्रोफेसरों के साथ नहीं करना चाहता। वह तो थोड़े समय में अपने-आप हो जायगी। राष्ट्रीय पाठशाला न खुलने से अभी तक कॉलेज न छोड़नेवाले

विद्यार्थियों को अब से पहले जितना डर था, उतना नहीं रहा। अब वे यह नहीं कह सकते कि नया विद्यालय न खुले तो क्या होगा? उन्हें तो तुरन्त ही इस महाविद्यालय में भरती हो जाना चाहिए।

बंधनवाले विद्यार्थी

मेडिकल कॉलेज के एक विद्यार्थी ने मुझे पूछा कि हमें असहयोग करना हो, तो क्या करें? मेडिकल कालेज के विद्यार्थी दो प्रकार के हैं। उनमें जो फीस देकर पढ़नेवाले हैं, वे तो कल ही हट जायँ। परन्तु जो सरकार से छात्र-वृत्ति लेकर पढ़ते हों और एक खास मियाद में वह रकम लौटा देने या कुछ वर्ष सरकारी नौकरी करने का बंधन किया हो, उन्हें मैं आज ही कॉलेज छोड़ देने की सलाह नहीं देता। लोगों से हम जो रुपया इकट्ठा करते हैं, उसमें से मैं उन्हें रुपया नहीं दे सकता। वे और कहीं से उतनी रकम जुटाकर सरकार को चुकाकर अपने-आप मुक्ति प्राप्त कर सकें, तो कर लेना उनका कर्तव्य है। परन्तु अपनी जेब से रुपया चुकानेवाले विद्यार्थियों का प्रश्न मेरे सामने बलपूर्वक आ गया है। हमें वैद्यक सीखने की दूसरी सुविधा मिले या न मिले, तो भी जिस विद्या के लेने से हमारी स्वतंत्रता दूर जाती दिखाई दे, उस विद्या का त्याग करना चाहिए और जब तक ऐसी सुविधा न मिले, तब तक उस विद्या का मोह छोड़ दिया जाय और किसी दूसरे धंधे में लग जाना चाहिए। यह पीढ़ी यदि बेशऊर बन जायगी, तो विद्या प्राप्त करके भी क्या कर लेगी? विद्या के मोह की मैं निन्दा नहीं कर रहा हूँ। मुझे स्वीकार है कि विद्या का मोह होना युवकों का धर्म है। परन्तु उस मोह की खातिर अपने देश को—अपने धर्म को होम नहीं देना चाहिए।

सा विद्या या विमुक्तये

जिस विद्या से धर्म की रक्षा हो सके, वही विद्या है। इस विद्यापीठ में यही सूत्र स्वीकार किया गया है। वह सूत्र मुझे बहुत बढ़िया लगा है।

सा विद्या या विमुक्तये—जिससे मुक्ति मिले, वही विद्या है। मुक्ति दो प्रकार की है। एक मुक्ति वह, जो देश को पराधीनता से छुड़ाये। वह थोड़े समय के लिए होती है। दूसरी मुक्ति सदा के लिए है। मोक्ष, जिसे परम धर्म कहते हैं, प्राप्त करना हो तो सांसारिक मुक्ति भी अवश्य होनी चाहिए। अनेक भयों में रहनेवाला मनुष्य निरंतर का मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। निरंतर का मोक्ष प्राप्त करना हो, तो निकटवाला मोक्ष प्राप्त करना ही पड़ेगा। जिस विद्या से हमारी मुक्ति दूर जाती है, वह विद्या त्याज्य है, वह विद्या राक्षसी है, वह विद्या अधर्म्य है। सरकारी विद्यालय में मिलनेवाली विद्या कैसी भी हो, तो भी त्याज्य एवं राक्षसी सरकार द्वारा मिलने के कारण त्याज्य है।

आज्ञा-पालन में विवेक

अब मैं विद्यार्थियों को इस बारे में कहूँगा कि विद्यार्थी माँ-बाप के साथ कैसा बर्ताव करें। उनकी आज्ञा का उल्लंघन करें या नहीं। तुम्हारा परम धर्म है कि उनकी आज्ञा का सुन्दर रूप में पालन करें। परन्तु माता-पिता की आज्ञा से भी तुम्हारा अन्तर्नाद बढ़कर है। तुम्हारा अन्तर्नाद तुमसे यह कहे कि माँ-बाप के वचन केवल दुर्बलता के ही हैं, सरकारी पाठ-शाला छोड़ने में तुम्हारा पुरुषार्थ है, तो माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन करके भी तुम सरकारी पाठशाला छोड़ दो। परन्तु यह अन्तर्नाद किसे हो सकता है? मैंने पहले कई बार कहा है, वही फिर कहता हूँ कि जिस मनुष्य में विनय भरा हो, जो सदा आज्ञा-पालन करता रहा हो, जिसने नीति-नियमों को समझ लिया हो और पाला हो, वही आज्ञा का उल्लंघन कर सकता है। जो दया-धर्म को अपने जीवन में प्रधानता देता है, जिसने ब्रह्मचर्य का पालन करके अपनी इंद्रियों पर काबू पा लिया हो, जिसने न अपने हाथ-पैर मैले किये, न मन मैला किया हो, जिसने अस्तेय-व्रत का पालन किया हो, जिसने अनेक प्रकार के छल-कपट करके परिग्रह न बढ़ाया हो, वही कह सकता है कि मेरे अन्तःकरण की यह

आवाज है। तुम गांधी की आवाज लेकर अपने माँ-बाप के पास न जाना। तुम अपनी ही आवाज लेकर अपने माता-पिता के पास जाना और उनसे दण्डवत-प्रणाम करके कहना कि हम आपकी आज्ञा का पालन नहीं कर सकते।

एक विद्यार्थी ने मुझसे कहा कि मैंने माँ-बाप की आज्ञा का उल्लंघन करके सरकारी पाठशाला तो छोड़ दी, परन्तु अब वे कहते हैं कि मैं राष्ट्रीय महाविद्यालय में न जाऊँ। मैंने उससे कहा कि उनकी इस आज्ञा का तुम जरूर पालन करो। माँ-बाप का खयाल है कि नये विद्यालय में मिलनेवाली विद्या से नुकसान होगा और इसलिए वे उस विद्या को रोकना चाहें, तो ऐसा चाहने का उन्हें हक है और ऐसी आज्ञा मानना पुत्र का धर्म है। जो नयी चीज माँ-बाप को बुरी लगे, उससे वे बच्चों को रोक सकते हैं। वे मैला उठाने को मजबूर नहीं कर सकते। हरएक विद्यार्थी यह देख ले कि इस मामले में उसका फर्ज क्या है और उसके बाद जो अपना कर्तव्य लगे, उसका पालन माँ-बाप या सरकार के विरोध के बावजूद करे। ऐसा किये बिना देश ऊपर नहीं उठ सकता।

अब मैं तुमसे बम्बई में हुई एक घटना के बारे में कहता हूँ। वह कुछ विद्यार्थियों ने शर्म-शर्म के नारे लगाये। उन आवाज लगानेवालों में भाई निमकर भी थे। बम्बई की सभा में श्रीमती बेसेंट के अपमान पर जोर दिया गया था। जिस किसी विद्यार्थी ने असहयोग करना अंगीकार किया हो, उसके हाथों शान्ति-भंग होना मैं नहीं चाहूँगा। असहयोग करनेवाले को उसके तीन पद स्वीकार करने चाहिए। उनमें से पहला पद यह है कि तुम शांति को अपने हृदय में लिखकर रखना कि न तो तुम शान्ति का भंग करो, न किसीको गाली दो, न गुस्सा करो, न किसीके तमाचा मारो और न शर्म-शर्म की आवाजें लगाओ। जब तक ऐसा होगा, तब तक कोई इस लड़ाई में शरीक नहीं हो सकता। मैंने भाई निमकर से कहा कि तुमने शान्ति का भंग किया है। तुम्हें श्रीमती बेसेंट या भाई पुरुषोत्तमदास या भाई सेतलवाड़ ने कितना ही

आघात पहुँचाया हो, तो भी 'शेम-शेम' करना तुम्हारा धर्म नहीं था। तुम्हारा धर्म तो यह था कि शान्त रहते अथवा शान्तिपूर्वक सभा से चले जाते। भाई निमकर मेरी बात समझ गये और उन्होंने भरी सभा में इसके लिए पश्चात्ताप किया और अपनी बहादुरी दिखा दी। जो अपनी भूल स्वीकार कर ले और उसके लिए पश्चात्ताप करे, वह सच्चा बहादुर है। ऐसा करके भाई निमकर आगे बढ़े हैं।

असहयोग के तीन पद

इसी प्रकार तुमसे—जो गुजरात कॉलेज में जाते हैं उनसे तथा जो इस महाविद्यालय में भरती हो गये हैं उनसे—मैं चाहता हूँ कि अपना धर्म न छोड़ो। असहयोग की प्रतिज्ञा के तीन पद हैं। पहला पद है शांति। असहयोग शान्तिमय, तलवार के बिना होना चाहिए। जबान भी तलवार है, हाथ भी तलवार है और लोहे की धारवाला टुकड़ा भी तलवार है। दूसरा पद अनुशासन या संयम है। और तीसरा यज्ञ है। हम शुद्ध हों, तब यज्ञ—बलिदान कर सकते हैं। बलिदान दिये बिना कोई पवित्र—शुद्ध नहीं बन सकता और विशुद्ध हुए बिना तुम अपनी पाठशाला न छोड़ना। यहाँ इस वक्त लगभग साठ विद्यार्थी हैं। इनमें से पाँच ही विद्यार्थी हों, तो इतने से भी विद्यापीठ अपना काम-काज चलायेगा। उसकी जड़ पवित्र होगी, तो उस पर स्वराज्य की स्थापना होगी। जिसने अपनी शुद्धि नहीं की, वह पवित्र नींव की विशुद्धता में वृद्धि नहीं करेगा। परन्तु उसकी बदनामी करायेगा। इसलिए इस विद्यालय में दाखिल होनेवाले विद्यार्थी से मैं कहता हूँ कि तुम इस सहयोग के तीनों पदों का पालन करना। न चाहते हो, तो तुम इसे छोड़ दो।

माता-पिताओं से

इस सभा में आये हुए माता-पिताओं को मैं कहता हूँ कि आप राष्ट्रीय परिषद् में उपस्थित थे। उसके प्रस्ताव आपने हाथ उठाकर पास

किये हैं, आप कांग्रेस के भी माननेवाले हैं, आप अपनी जिम्मेदारी पूरी तरह समझ लीजिये। आप अब अपने बच्चों पर आघात न कीजिये। आप हिन्दुस्तान पर आघात न कीजिये, आपके लड़के यज्ञ करना चाहें, तो उन्हें ऐसा करने से न रोकिये, बल्कि उन्हें आशीर्वाद दीजिये और इस राष्ट्रीय विद्यालय में अपने आशीर्वाद सहित भेजिये। ऐसा नहीं करेंगे तो आप अपने को लजायेंगे, गुजरात को लजायेंगे और यह साबित करेंगे कि गुजरात और इसलिए भारत कमजोर है।

उपसंहार

गुजरात ने अब तक राजनैतिक मामलों में कभी इतना प्रमुख भाग नहीं लिया। अब गुजरात ने आगे से राजनीति में पड़ने का निश्चय किया है। उसका वह निश्चय बना रहे और उससे गुजरात व गुजराती लोग समस्त भारत में उज्ज्वल हों। आपमें सचाई अथवा वीरता आयी हो, तो उसे आप अवश्य पोषित कीजिये। ईश्वर आपको इतनी शक्ति दे, यह प्रार्थना करके मैं विराम लेता हूँ।

२६-११-'२०

काशीक्षेत्र में

गांधीजी की काशी-यात्रा पर सबका ध्यान लगा हुआ था। 'हिन्दू विश्वविद्यालय में क्या होगा? पंडितजी को गांधीजी के आगमन से आघात तो नहीं पहुँचेगा? उनकी अस्वस्थ प्रकृति और भी कमजोर तो नहीं होगी?' इस प्रकार के प्रश्न बहुतों के सामने उठते रहते थे। कुछ मित्रों की तरफ से गांधीजी को सुझाया भी गया कि पंडितजी की तन्दुरुस्ती को देखते हुए वे वहाँ जाने का विचार छोड़ दें। परन्तु गांधीजी ने तार देकर तीन-चार जगह से समाचार मँगा लिये थे और जब स्वयं पंडितजी का तार आया कि 'जब आयें तभी स्वागत है', तब गांधीजी ने जाने

का निश्चय किया। गांधीजी बनारस हो भी आये। जैसे दो भाई-भाई मिलें-जुलें, अपने मतभेदों के लिए आँसू गिरायें और प्रेमपूर्वक अलग हो जायँ, वैसा ही गांधीजी और पूज्य पंडित मदनमोहन मालवीयजी के बीच हुआ। काशीजी में जिस शान्ति और प्रसन्नता से काम निपटा, उसका एकमात्र कारण पू० पंडितजी, पू० आनंदशंकरभाई तथा गांधीजी तीनों के बीच का प्रेम ही कहा जा सकता है। विद्यार्थी वहाँ क्या करेंगे, कितने विद्यार्थी पाठशाला छोड़ेंगे, यह अभी नहीं कहा जा सकता, परन्तु काशीजी में विद्यार्थी, अध्यापक और पंडितजी के बीच जिस खुले दिल से चर्चा हुई, उसका परिणाम वातावरण को विशेष स्वच्छ करनेवाला ही हुआ है, यह कहने में हर्ज नहीं है।

परन्तु यह साधारण विवेचन छोड़कर अब गांधीजी के विद्यार्थियों के लिए हुए भाषणों की तरफ मुड़ें:

एक स्वर

जिन्होंने गांधीजी के दो दिन के भाषण सुने हैं और पंडितजी का भाषण सुना है, उन्होंने एक स्वर से तीनों भाषणों को अलौकिक बताया है। गांधीजी और पंडितजी के भाषण की खूबी तो यह कही जायगी कि इन दोनों में विवाद के बजाय बड़ा संवाद था, दो स्वर सुनने के बजाय दोनों से एक ही स्वर पैदा होता था, एक-दूसरे का पूरक था।

पहले दिन विद्यालय के पास की 'नानकोआपरेशन ग्राउण्ड्स पर गांधीजी सुबह के समय लगभग सवा घंटे तक विद्यार्थियों के लिए बोले। उसका पूरा विवरण देना कठिन है। उसे गांधीजी को बताने का मुझे समय नहीं रहा। फिर भी मैंने यह बताकर कि मैंने नोट लिये हैं, जितना दिया जा सके, उतना हाल दिये देता हूँ।

बहकाने नहीं आया

कुछ मास पूर्व मैंने तुमसे संयम के बारे में कुछ कहा था, आज भी

तुम्हारे सामने, अपने हिसाब से, मैं संयम की ही बात करने आया हूँ। आजकल यह कहा जाता है कि मैं विद्यार्थियों को बहका रहा हूँ। मैं अपनी जिम्मेदारी समझते हुए भी कहता हूँ कि मैं किसीको बहकाना नहीं चाहता। मैं विद्यार्थियों को बहका ही नहीं सकता। मैं भी एक विद्यार्थी था, और विद्यार्थी अवस्था में जो काम करता था, वह अदब से करता था। मैं चार पुत्रों का पिता हूँ और सैकड़ों लड़के मेरे पास आ चुके हैं, जिनके पितास्वरूप होने का मैं आज भी दावा कर रहा हूँ। जब मैं ऐसा हूँ, तो मेरे मुँह से बहकाने की बात निकल ही नहीं सकती।

मेरे वचनों में अविवेक नहीं

परन्तु अब तो जमाना ऐसा है कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ, उसमें बुजुर्ग लोग मानते हैं कि मैं उनके साथ अन्याय कर रहा हूँ; उनका खयाल है कि जिस सत्य के आग्रह का मैं दावा करता हूँ, उसमें भी जरा विचलित हो गया हूँ; और जिस विवेक का दावा करता रहा हूँ, वह भी मेरी आजकल की भाषा में नहीं रह गया। इन सब बातों का मैं विचार कर रहा हूँ, परन्तु मेरी आत्मा साक्षी देती है कि मैं अविवेकी भाषा इस्तेमाल नहीं करता। मैं जो कहता हूँ वह शांति से, खूब विचारपूर्वक कहता हूँ। बात यह है कि मैं पिछले दिसम्बर में जिस भ्रम में था, वह भंग हो गया है और इस कारण आज मेरे मुँह से पहले से दूसरी भाषा निकलती है। परन्तु जो वस्तु जैसी है, उसे वैसी ही मैं बता रहा हूँ। जिस वस्तु को गंदी पाऊँ उसे गंदी न कहूँ, तो सत्य का भंग होता है, अविवेक होता है। जो चीज जैसी है वैसी बताने में विवेक का भंग नहीं, सत्य का पालन है। यद्यपि एकान्तिक सत्य तो मौन में ही है, फिर भी भाषा का प्रयोग करना पड़ता है, वहाँ उसमें सम्पूर्ण सत्य तभी आता है, जब मैं स्थिति को जैसी पाता हूँ, वैसी ही तुम्हारे सामने बताऊँ।

पंडितजी मेरे बड़े भाई हैं

पंडितजी का एक व्याख्यान 'लीडर' में आया है। मैं देखता हूँ कि वह उनकी अनुमति के बाद छपा है। उसके एक वाक्य की ओर मैं तुम्हारा ध्यान दिलाना चाहता हूँ। वह यह है कि 'सब कुछ सोच-समझकर जो तुम्हारी अन्तरात्मा कहे, सो करो।' मैं भी यही बात कहना चाहता हूँ। और तुम्हें अन्तरात्मा की आवाज के बारे में कुछ भी सन्देह हो, तुम अपने दिल में निर्णय न कर सकते हो, तो तुम मेरी न मानना, और किसीकी न मानना, केवल अपने पूज्य भाई साहब पंडितजी की ही मानना। मालवीयजी से बड़े धर्मात्मा मैंने नहीं देखे। उनसे ज्यादा भारत की सेवा करनेवाला कोई जीवित भारतीय मुझे दिखाई नहीं देता। पंडितजी में और मुझमें—हम दोनों में कैसा सम्बन्ध है? मैं तो दक्षिणी अफ्रीका से आया, तभी से उनका पुजारी हूँ। मैंने अपने दुःख अनेक बार उनके आगे सुनाये हैं और उनसे आश्वासन प्राप्त किया है। वे तो मेरे बड़े भाई के समान हैं।

अन्देशा हो तो पण्डितजी का ही कहा मानना

मेरा ऐसा सम्बन्ध है। इसलिए मैं तो तुमसे यह कह सकता हूँ कि यदि तुम्हारे दिल से यही आवाज निकले कि जो गांधी कहता है, वही सत्य बात है, तो ही जो मैं कहता हूँ वह करो। परन्तु तुम्हें यह लगे कि दोनों हमारे नेता हैं, दोनों में से एक को चुनना है, तो तुम पण्डितजी का ही कहना मानना। तुम्हें जरा भी अन्देशा हो, तो तुम मेरी बात न करना, बल्कि वैसा करने में तुम्हारा बुरा है। पण्डितजी विश्व-विद्यालय के गुरुवर्य हैं; पंडितजी ने उसकी स्थापना की है; पंडितजी उसकी आत्मा हैं; और उनका आदर करना हमारा धर्म है। इस मामले में मैं पण्डितजी की भूल पाता हूँ। इस बारे में तुम्हें लेशमात्र भी शंका हो, तो तुम मेरी बात न मानना। मेरे पास एक सज्जन आये। उन्होंने कहा कि 'आप काशी जायेंगे, परन्तु पंडितजी की तंदुरुस्ती ऐसी है कि आपके

जाने से उन्हें सख्त आघात पहुँचेगा और पंडितजी को गँवा बैठने की नौबत आ जायगी। आपका जाना पंडितजी का नाश तो नहीं कर देगा ?' पंडितजी का नाश करनेवाला मैं कौन हूँ ? पंडितजी की आत्मा का हनन करने से मतलब हो, तो वह असम्भव है। परन्तु उन सज्जन को मेरे काशी जाने में पण्डितजी की मृत्यु दिखाई दी। उन्होंने कहा, 'लड़के आपका कहना मानेंगे; विश्वविद्यालय से निकल जायँगे, पण्डितजी को अपना जीवन-कार्य नष्ट हुआ दिखाई देगा और इससे उनका शरीर नष्ट हो जायगा।' मुझे इस पर कुछ हँसी आयी। मुझे ऐसा लगा कि ये सज्जन पंडितजी को नहीं जानते। पण्डितजी कोई नामर्द नहीं कि ऐसी बात से प्राण छोड़ दें।

विद्यालय से भारत अधिक प्राण है

यह सही है कि विद्यालय पण्डितजी का प्राण है। परन्तु मुझे उनका प्राण भारत अधिक प्रतीत होता है। पण्डितजी ठहरे आशावादी। पण्डितजी का सचमुच मानना है कि भारत का बुरा किसीसे नहीं हो सकेगा, भारत की लगाम किसीके हाथ में नहीं, परन्तु ईश्वर के हाथ में है और उसका भला करनेवाला ईश्वर विद्यमान है। फिर भी मैंने पंडितजी को तार दिया और पण्डितजी ने मीठे शब्दों में मुझे काशी बुलानेवाला जवाब दिया।

पण्डितजी का यह खयाल हो गया है कि तुममें से कुछ बिना विचारे कदम उठा रहे हैं और बिना विचारे तुम कुछ भी करोगे, तो स्थान-भ्रष्ट हो जाओगे। परन्तु तुम्हें यह लगे कि इस संस्था में पढ़ाई करना पाप है, तो तुम इसे तुरंत छोड़ दो और पण्डितजी तुम्हें आशीर्वाद देंगे। परन्तु तुम्हारी आत्मा प्रज्वलित न हो, तो तुम पण्डितजी की हरगिज न सुनना।

अन्तरात्मा की आवाज किसे कहें ?

जब तुम्हारा काम स्वच्छ हो, उसका हेतु स्वच्छ हो, उसका परि-

णाम स्वच्छ हो, तभी वह अन्तरात्मा से प्रेरित हो सकता है। परन्तु उस पर दूसरा निर्बन्ध शास्त्रों ने रख दिया है। जो संयमी है, जो अहिंसा, सत्य एवं अपरिग्रह का पालन करनेवाला है, वही कह सकता है कि मुझे अन्तरात्मा का आदेश हुआ है। तुम ब्रह्मचारी न हो, तुम्हारे दिल में दया न हो, मर्यादा न हो, सत्य न हो, तो तुम किसी काम को अन्तरात्मा से प्रेरित नहीं कह सकते। परन्तु मैंने वर्णन किया वैसा तुम्हारा दिल हो, तुमने पश्चिम के ढंग का त्याग कर दिया हो, तुम्हारे स्वच्छ हृदय-मंदिर में प्रभु का निवास हो, तो तुम अपने माँ-बाप का भी सविनय अनादर कर सकते हो। उस स्थिति में तुम स्वतंत्र हो, इसलिए कदम उठा सकते हो। मुझे मालूम है कि पश्चिम में स्वेच्छाचार की हवा बह रही है। परन्तु भारतीय विद्यार्थियों को मैं स्वच्छन्द नहीं बनाना चाहता। इस पवित्र काशीक्षेत्र में, इस पवित्र स्थान में, मैं आपको स्वेच्छाचारी बनाना चाहता हूँ, तो मैं अपने कार्य के योग्य नहीं।

पाठशालाएँ क्यों छोड़ें ?

मैं लड़कों को क्यों समझा रहा हूँ कि पाठशाला छोड़ना तुम्हारा धर्म है ? क्या मैं तुम्हारा विद्यार्थी-जीवन नष्ट करना चाहता हूँ ? नहीं। मैं अभी तक विद्यार्थी-जीवन बिता रहा हूँ, विद्यार्थी हूँ। परन्तु मैं कहना चाहता हूँ कि जिसे स्वतंत्रता की शिक्षा नहीं मिली—वह निश्चित ही मिल कृत 'Liberty' के अध्ययन से नहीं मिलती—वह स्वतंत्र नहीं कहलाता। तुम्हारी तालीम अरबस्तान के लड़कों से भी खराब है। उधर से आये हुए एक आदमी ने मुझे कहा था कि वहाँ के विद्यार्थियों की शिक्षा से हमारे विद्यार्थियों की शिक्षा चौथाई भी नहीं। अरबस्तान का एक भी विद्यार्थी ऐसा नहीं, जो इस हुकूमत को स्वीकार कर सके। वहाँ उनके लिए डाक, तार और ट्राम आदि जारी किये गये, हवाई जहाज जारी करने का लालच दिया और यह भी कहा गया था कि जिस रेत पर घड़ी-भर में खिचड़ी पक जाती है, उसे ठंडा कर देंगे। तालीम देने के लिए

बड़ी शिक्षा-संस्थाएँ खोलने का प्रलोभन दिया गया। परन्तु वहाँ के लड़के कहते हैं कि हमें यह नहीं चाहिए। वहाँ के छात्रों में बड़ी धार्मिक शिक्षा है। तुम्हें वैसी धार्मिक शिक्षा की जरूरत है। तुम जिन हालात में पढ़ते हो, उनमें ऐसी ही शिक्षा मिलती है कि मनुष्य का डर रखना पड़े। परंतु मैं तो उसे सच्चा एम० ए० कहूँगा, जिसने मनुष्य का डर छोड़कर ईश्वर का डर रखना सीखा हो। तुममें इतना बल आ जाय कि आजीविका के लिए किसीके सामने हाथ न फैलाना पड़े, तब तुम्हारी शिक्षा ठीक कहलाये। जब तुममें यह चीज पैदा हो जाय कि जब तक इस संसार में मेरे हाथ-पैर साबित हैं, तब तक आजीविका प्राप्त करने के लिए मुझे कहीं भी नीचा मुँह नहीं करना है, तब तुम्हारी शिक्षा ठीक कहलाये।

जनक की पुण्यभूमि में सत्तू

अंग्रेज इतिहासकार कहते हैं कि भारत में तीन करोड़ लोगों को दिनभर में पेटभर खाने को नहीं मिलता। बिहार में अधिकांश लोग सत्तू नामक निःसत्त्व खुराक खाकर रहते हैं। यह सत्तू मक्की का आटा, पानी और लाल मिरचों के साथ गले में उतारते हुए जब मैंने लोगों को देखा है, उस समय मेरी आँखों से आग बरसी है। तुम्हें वैसा खाने को मिले, तब भला तुम कितने दिन गुजार सकते हो? उस रामचन्द्रजी की भूमि में—जनक राजा की पुण्यभूमि में लोगों को आज खाने को घी नहीं मिलता—दूध तक नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में तुम आराम से कैसे बैठ सकते हो? हमें ऐसी शिक्षा न मिले कि प्रत्येक मनुष्य मैकस्विनी बन सके, तो उस शिक्षा का कोई अर्थ नहीं। तुम्हें आजादी से खाने को न मिले, तो भूखों मरकर आजाद रहने की ताकत आ जाय।

मैं सुनता हूँ कि अरब और मेसोपोटेमिया के लड़कों में यह तालीम है। वे अंग्रेजों से दो-दो हाथ करनेवाले हैं। वहाँ तो शस्त्र-बल मौजूद है। हमारे यहाँ वह नहीं है। परन्तु भारत की सत्यवृत्ति में जबर्दस्त आत्मिक शक्ति विद्यमान है, इसीलिए हम अत्याचार को हटा सकते

हैं। असंतों का त्याग करने का तुलसीदासजी का उपदेश है। मैं कहता हूँ कि यह हुकूमत राक्षसी है, इसलिए उसका त्याग हमारा धर्म है। त्याग करने का अर्थ हिजरत करना ही होता है। परन्तु वह अर्थ करने को मैं नहीं कहता। त्याग करके हम कहाँ जायँ? हिन्द महासागर अथवा बंगाल की खाड़ी के पेट के सिवा तो मैं कहीं भी आसरा नहीं पाता। परन्तु तुलसीदासजी ने कहा है कि असंतों का सर्वथा त्याग न कर सको, तो उनसे थोड़े दूर रहो। रावण के पकवानों और दासियों का त्याग करके अशोक वाटिका में केवल फल-फूल पर निर्वाह करनेवाली सीताजी जैसा शान्तिमय असहयोग करने की ताकत तुममें न आये, तो भारत फना हो जायगा और गुलामी में सड़ता ही रहेगा, इस बारे में मुझे जरा भी शक नहीं।

हुकूमत वर्षों से भारत का सर्वनाश कर रही है

यह हुकूमत राक्षसी क्यों है, इसके कारणों में मैं जाना नहीं चाहता। परन्तु पंजाब के अत्याचार करनेवाली, छह-छह सात-सात वर्ष के बालकों को धूप में चलानेवाली, स्त्रियों की लाज लूटनेवाली और जिन कर्मचारियों ने ये अत्याचार किये, उनके लिए यह कहनेवाली कि उन्होंने कोई अपराध नहीं किया, उन्होंने तो हुकूमत को बचाया—ऐसी हुकूमत के अधीन पाठशालाओं में पढ़ना मेरे खयाल से बड़े-से-बड़ा अधर्म है। मेरे बुजुर्ग पंडितजी को यह धर्म मालूम होता है। मुझे अपने शास्त्र ऐसा नहीं सिखाते। रावण के हाथों मैं गीता नहीं पढ़ सकता, कुरान नहीं पढ़ सकता, बाइबिल नहीं पढ़ सकता। जिसने गीता का धार्मिक दृष्टि से अध्ययन किया हो, उससे सीखूँगा। शराब पीनेवाले से कैसे सीख सकता हूँ? मेरी आत्मा कितनी जल रही है, उसका तुम्हें अंदाज नहीं करा सकता। इस सल्तनत की मैंने तीस वर्ष सेवा की। मैं यह नहीं कहना चाहता कि इसमें मैंने कुछ बुरा किया। सिर्फ अब मैं उसकी सेवा नहीं कर सकता, क्योंकि मैंने पंजाब के अत्याचार देखे हैं। इतना

ही नहीं, परन्तु मैं यह भी देख सकता हूँ कि यह हुकूमत कितने ही वर्ष से भारत का ऐसा सर्वनाश कर रही है कि उसके मुकाबले में पंजाब के अत्याचार कुछ भी नहीं। जब मैं तुम्हारे बराबर था, तब मैंने दादाभाई नौरोजी का Poverty and Un-British Rule in India पढ़ा था। उसमें जो Progressive drain—उत्तरोत्तर बढ़नेवाला द्रव्य-शोषण साबित किया गया है, क्या वह अब कम हो गया है ? सैनिक खर्च बढ़ता गया है या नहीं ? पेंशनों में बहा ले जानेवाला रुपया बढ़ा है या नहीं ? यदि इसका उत्तर 'हाँ' हो, तो मैं कहता हूँ कि लॉर्ड सिंह जैसे भले ही गवर्नर बन जायँ—अरे पंडितजी जैसों को वाइसराय बना दिया जाय, तो भी मैं उन्हें सलाम करने हरगिज नहीं जाऊँगा। असली स्थिति यह है कि इस राज-प्रथा में हमारी गुलामी बढ़ती ही रही है। और गुलाम जब गुलामी की जंजीर की चमक देखकर मुग्ध हो जाय, तब उसकी गुलामी सम्पूर्ण हुई कहलाती है। मैं कहता हूँ कि पैंतीस वर्ष पहले जो गुलामी थी, उससे हममें अब अधिक गुलामी है। हम अधिक हताश होते जा रहे हैं। हममें नामर्दी बढ़ती जा रही है। इसलिए मैं तात्त्विक दृष्टि से कहूँ, तो अवश्य कहूँगा कि हममें गुलामी बढ़ती जा रही है।

हुकूमत ने हिन्द को नापाक बना दिया है

बाबू भगवानदास के विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान का एक भाग मुझे याद आता ही रहता है। उन्होंने कहा है कि जब हमारे राज्यकर्ता वणिक् बनकर राज्य करें और वणिक् बनकर ही नहीं, बल्कि भाँग-गाँजे जैसे नशे के साधनों का व्यापार करें, तब वे अधम बन जाते हैं। उनका त्याग करना चाहिए। इस हुकूमत ने हिन्दुस्तान को नापाक कर दिया है। आबकारी-विभाग बढ़ता ही जा रहा है। गोखलेजी जैसे ने पाठशालाएँ बढ़ाने की आवाज उठायी थी। परन्तु स्थिति यह है कि जब सन् १८५७ में पंजाब में ३०००० पाठशालाएँ थीं, तब आज वहाँ ५००० हैं। सरकार ने उन

पाठशालाओं को उठा दिया। सरकार में योजना-शक्ति है। हममें भी है। परन्तु हमें उसने भ्रम में रखा है। ये लोग स्वराज का क्या पाठ पढ़ायेंगे? धारासभा में जाकर क्या हम स्वराज का सबक सीखेंगे? स्वराज-शक्ति सीखना चाहते हों, तो अरबों के पास जाओ, बोअरों के पास चले जाओ। मैं तो कहता हूँ कि हममें स्वराज-शक्ति आज भी है, परन्तु हम सिंह होते हुए भी अपने को बकरी मान बैठे हैं। जिनमें आत्मा है, उन्हें कौन डरा सकता है? तुममें यह भावना उत्पन्न हो जाय, तब तुम्हें सच्ची शिक्षा मिली। यह तालीम पहले लेने के बाद ही तुम दूसरी साधारण शिक्षा प्राप्त कर सकते हो। आज तो तुम ऐसी शिक्षा पा रहे हो, जिससे तुम्हारी बेड़ियाँ अधिक जकड़ी जायँ। डिग्रियों पर मुग्ध होने के कारण हम आज कह रहे हैं कि हमें चार्टर चाहिए। इन पेड़ों के नीचे हम नहीं पढ़ते, इसका कारण क्या? ऐसे शानदार मकान हमें क्यों चाहिए? देश में जहाँ कितने ही मनुष्यों को पूरा खाने को नहीं मिलता, जहाँ की स्त्रियाँ बदलने को दूसरे कपड़े न होने के कारण दिनों तक स्नान नहीं कर सकतीं, वहाँ तुम्हें ज्ञान प्राप्त करने के लिए बड़े-बड़े महल चाहिए? ऐसा हो, तो तुम असहयोग को भूल जाओ। तुम्हें देश के लिए दर्द हो, मेरे अन्दर जो आग जल रही है, वही तुममें जल रही हो, तो मकान-वकान की बात भूल जाओ और मैं कहता हूँ, वह असहयोग करो। यदि तुम ऐसा करोगे, तो जो प्रतिज्ञा मैंने अन्यत्र की है, वह इस पवित्र स्थान में फिर करता हूँ कि हमें एक वर्ष में स्वराज मिल जायगा।

इस भभकती आग से हट जाओ

परन्तु मैं बार-बार कहता हूँ कि तुम अपने धर्म को पहचानोगे, तो ही वह मिलेगा। हर्षनाद करने से वह नहीं मिल सकता। मैं ये बातें क्यों कर रहा हूँ? मुझे धन-दौलत नहीं चाहिए, मान-सम्मान नहीं चाहिए; भारत का राज्य नहीं चाहिए; मुझे तो भारत की आजादी चाहिए। मुझे सब कहते हैं कि आप दूसरों से मिल जाइये। परन्तु मैं मिल नहीं सकता;

अपने हृदय का मत छोड़कर मैं एक नहीं हो सकता; अन्तरात्मा की आवाज को धोखा देकर मैं एक नहीं हो सकता; सिद्धान्त की बात को छोड़कर मिलना नहीं चाहता। सिद्धान्त की बात यह है कि स्वराज्य लेना हो, तो प्रत्येक आदमी को आजाद होना चाहिए। तुम जैसे सामने के पेड़ों को देख रहे हो, वैसे तुम्हारी अन्तरात्मा प्रत्यक्ष अनुभव करे कि यह सल्तनत राक्षसी है, यहाँ पढ़ना पाप है, लेफ्टिनेंट गवर्नर कितना ही कहें कि 'हमारा कोई कब्जा नहीं', परन्तु गुप्त रूप में वे अपना असर डाल सकते हैं। यदि तुम्हें यह खयाल हो जाय कि इस हुकूमत के पास बेवफाई है, तो तुम एक क्षण भी इस विद्यालय में न रहो, इसकी गंध तक न लो।

मैं तुमसे कहता हूँ कि इस धधकती आग से हट जाओ और अन्य सारी जोखिम उठा लो। मुझे दूसरा प्रश्न मत पूछना। यह न पूछना कि विद्यार्थी क्या करें। यह न पूछना कि प्रोफेसर नहीं, मकान नहीं, कहाँ पढ़ेंगे। तुममें ताकत हो, तो अपने घर चले जाओ। घर तुम्हारा विश्वविद्यालय है। तुम विजयी बन जाओ, सत्यशील बन जाओ, तो तुम्हारा घर तुम्हारा विश्वविद्यालय है। परन्तु इन मन्दिरों (विद्यालय के मकानों की ओर इशारा करके) के साथ तुलना करना चाहोगे, तो तुम सबका पतन होगा। इन मंदिरों के प्रति तुम्हें आसक्ति होगी, तो तुम भ्रष्ट हो गये। इन मंदिरों में और हमारे घरों में साम्य है? विलायत में तो कुछ-कुछ है, परन्तु यहाँ वह भी नहीं। यहाँ तो ये मकान केवल लूट के पैसे से बने हैं। जो स्वतंत्र नहीं, वह ईश्वर की प्रार्थना भी आराम से नहीं कर सकता। तुम आज ही अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हो। इस विद्यालय से निकलकर नारायण का नाम जपेंगे, राम-नाम भजेंगे, तो भी वह बड़ी शिक्षा है, ऐसा विश्वास जिसे हो जाय, वह उपर्युक्त स्वतंत्रता प्राप्त कर चुका। भारत के विद्यार्थियों में ऐसी रूह फूँक सकूँ, तो मैं उनमें से स्वराज की सेना बना सकता हूँ। मैं कहता हूँ कि इस सल्तनत की हवा जब तक इन पाठशालाओं में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में असर कर रही है, तब तक

तुम्हें इन पाठशालाओं को छोड़ना पड़ेगा। परन्तु तुममें आत्मविश्वास न आया हो, तो तुम जहाँ हो, वहीं रहना।

बिना शर्त विद्यालय छोड़ो

यहाँ दो सौ विद्यार्थियों ने विद्यालय छोड़ने की प्रतिज्ञा ली है। इससे मुझे दुःख हुआ। दुःख प्रतिज्ञा से नहीं हुआ। दुःख इस बात से हुआ कि कहीं उन विद्यार्थियों में अविश्वास न हो। तुम यह मानते हो कि गांधी जादूगर है, वह आते ही विद्यालय बना देगा, तो यह तुम्हारी भूल है। तब तो मैं तुमसे कहता हूँ कि अनारंभ प्रथम बुद्धि-लक्षण है। तुम इतना सोचे बिना विद्यालय छोड़ोगे, तो मैं पापी बनूँगा। मैं तो कहता हूँ कि तुम विद्यालय छोड़कर घर में बैठो, इस आग से बच जाओ। तुममें आत्म-विश्वास होगा, तो आज ही विद्यालय बना सकोगे। परन्तु जैसा पंडित जवाहरलाल ने और अलीगढ़ में मुहम्मदअली ने कहा है, शर्त किये बिना छोड़ो। सात हजार बार गरज हो, तो छोड़ो, नहीं तो वापस चले जाओ। और छोड़कर वापस जाना हो, तो छोड़ो ही मत। अपने धर्म का पालन न करें, तो हमारा देश अपना नहीं है। तुमसे— तुम्हारी प्राचीन संस्कृति और पवित्रता से—मैं जो कह रहा हूँ, उसका खयाल करो। मैं बार-बार कहता हूँ कि तुम्हें जरा भी अंदेशा हो, तो तुम मालवीयजी की ही मानना। उन्होंने यह विश्वविद्यालय बनाने में अपनी उम्र खपा दी है। पर अन्तरात्मा में जैसे सामने की वस्तु साफ देखती है, वैसे ही तुम्हें स्पष्ट प्रतीत हो जाय कि यहाँ रहना पाप है, तो तुम छोड़ना। 'प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्।' हमारा शास्त्र-वचन है और चूँकि तुम सोलह वर्ष से ऊपर हो गये, इसलिए जो मैंने आज तुमसे कहा, उसके कहने का मुझे अधिकार है। यही तालीम मैंने अपने पुत्रों को दी है और उनका कुछ नहीं बिगाड़ा। अंत में तुमसे कहता हूँ कि काशी विश्वनाथ तुम्हें पवित्रता दें, धैर्य दें, तपश्चर्या दें और अन्य आवश्यक सामग्री दें।

यह भाषण तो विद्यार्थियों की ही जमीन पर हुआ था, परन्तु पंडितजी

की खास तौर पर माँग थी कि उन्होंने स्वयं विद्यार्थियों को जहाँ उपदेश दिया है, वहीं गांधीजी भी उन्हें उपदेश दें; इसलिए दूसरे दिन विद्यालय के विशाल खंड में गांधीजी ने बोलना स्वीकार किया। पंडितजी और अध्यापक भी सब मौजूद थे। इस भाषण के वृत्तान्त में मैं पिछले भाषण में आयी हुई बातों की पुनरुक्ति नहीं करूँगा। आरंभ में अलीगढ और काशीजी में अपने सामने आ पड़नेवाले कार्य की गांधीजी ने तुलना की :

यहाँ बैठकर जो दृश्य अलीगढ़ में देखा था, उसका स्मरण कर रहा हूँ। अलीगढ़ में गया और विद्यार्थियों के साथ बातें कीं, तब वहाँ के हॉल में मुझे जो कहना था, सो मैंने कहा था। उस अवसर पर मुझे मालूम था कि मेरी जिम्मेदारी बड़ी है। मुझे इस बात का भी भान था कि वह संस्था इस संस्था से ज्यादा पुरानी है। मुझे यह भी पता था कि उस संस्था के प्रति विद्यार्थियों का प्रेम भी बहुत अधिक है। मुझे यह भी मालूम था कि वह संस्था एक महान् मुसल्मान ने कायम की है। फिर भी मुझे वहाँ के विद्यार्थियों से जो कहना था, मैंने निडर होकर कहा। मेरा दिल रो रहा था कि मैं यह क्या काम कर रहा हूँ? अपने आसपास की इमारतें देखकर आज भी मेरा दिल रो रहा है। आज अधिक रुदन कर रहा हूँ, क्योंकि इनके प्राण मेरे पूज्य बन्धु हैं, जिन्हें मैं बड़ा भाई समझता हूँ। उनकी सलाह लिये बिना मैं कुछ नहीं करता। मेरी यह अभिलाषा थी कि भारत में अपना जीवन इनके साथ रहकर व्यतीत करूँगा। इनके साथ मेरा ऐसा सम्बन्ध है। अलीगढ़ में ऐसी स्थिति नहीं थी। मुझे पता नहीं कि अलीगढ़ की संस्था का प्राण कौन है। और मैं इस डर से काँप रहा हूँ कि कहीं इस विश्वविद्यालय में बैठकर मेरे द्वारा कोई ऐसी बात न कही जाय, जिससे मेरे बड़े भाई को कोई दुःख हो। परन्तु मेरा धर्म मुझे समझाता है कि अपने दिल में मुझे जो धर्म मालूम हो, उसकी बात आ जाय, तब मुझे अपनी प्रिय-से-प्रिय वस्तु को भी छोड़ देना चाहिए। आज मैं वही चीज कर रहा हूँ। परन्तु तुमसे कहना चाहता हूँ कि हमारे

तीव्र मतभेद होते हुए भी मेरे पूज्य भाव में कुछ भी कमी नहीं होगी। इसी तरह तुम मेरा कहा करोगे, तो भी मैं आशा रखता हूँ कि पंडितजी के प्रति तुम अपना पूज्य भाव पहले जितना ही कायम रखोगे।

प्रमादी बनने को पाठशाला न छोड़ो

मेरा दिल विश्वास दिलाता है कि पंडितजी जो काम कर रहे हैं, वह अपना धर्म समझकर कर रहे हैं। इसलिए हमारी मित्रता में कोई कमी हो ही नहीं सकती। मैं चाहता हूँ कि पंडितजी और अध्यापकों के लिए तुम्हारी पूज्य भावना इसी तरह कायम रहे। यह भी मत मानो कि तुम्हारी बुद्धि अथवा देश-भक्ति उनसे अधिक है। केवल विचार-भेद है। आज सारे भारत के प्रत्येक पुरुष और स्त्री की एक भावना हो सके, तो भारत आज ही स्वतंत्र हो सकता है। परन्तु जिन-जिन मुल्कों ने ऐसी लड़ाई छेड़ी है, उनमें भी मतभेद तो रहे ही थे। उन सबमें से गुजरकर वे स्वतंत्र हुए थे। उन्होंने जो कष्ट सहे थे, उन्हें सहन किये बिना हमारा देश भी स्वतंत्र नहीं हो सकता। तुम अपनी सभ्यता न छोड़ना, विनय न छोड़ना, नम्रता न छोड़ना, तुम्हारे साथ न चलनेवाले विद्यार्थियों से घृणा न करना, उन्हें सताना मत। तुम ऐसे काम करना, जिससे तुम्हारे प्रति हमारे माननीय भाइयों में जो अविश्वास रहा है, वह दूर हो जाय। तुम विद्यालय से बाहर निकलकर अपना धर्माचरण बढ़ाओगे, तो उनका आशीर्वाद मिलेगा। तुम अविचारपूर्वक विद्यालय छोड़कर अपना स्वार्थ साधोगे, दंभी बनोगे, व्यसनी बनोगे, सेवा-धर्म छोड़ोगे, तो उनकी और मेरी आत्मा को दुःख होगा। तुम किसीकी सलाह मानते हो, तो पंडितजी की ही मानना। परन्तु तुम्हें किसीकी सलाह की जरूरत न रही हो और तुमने निश्चय कर लिया हो, तुम्हारा दिल पुकारकर कहता हो कि असहयोग तुम्हारा धर्म है, तो तुम बेशक निकल जाना और पंडितजी का आशीर्वाद लेकर निकलना। वे तुम्हें एक क्षण भी नहीं रोकेंगे।

मैं एकान्तिक असहयोग क्यों नहीं करता ?

आगे चलकर गांधीजी यह बताकर कि वे विद्यालय का त्याग करने को इसलिए नहीं समझा रहे हैं कि वर्तमान शिक्षा दोषयुक्त है, परन्तु इसलिए कि 'अधर्मी के हाथ का सुवर्ण-दान भी नहीं लिया जा सकता, अधर्मी के हाथ से विद्या का दान भी नहीं लिया जा सकता।' गांधीजी बोले:

"मैं इस हुकूमत का अवश्य त्याग करूँ, परन्तु ऐसा करूँ, तो भारत को जो सन्देश देना चाहता हूँ, वह मेरे खयाल से नहीं दे सकता। इसी-लिए मैं अपना जीवन इस असह्य स्थिति में व्यतीत कर रहा हूँ। जैसे तुलसीदासजी ने रावण-राज्य के बारे में कहा है, वैसे ही मैं कह रहा हूँ कि हमारे लिए यह रावण-राज्य है। मैं घड़ी के प्रत्येक पल यही जप कर रहा हूँ कि इस हुकूमत को कैसे हटा सकता हूँ या सुधार सकता हूँ। मैं इसी इरादे से इस देश में रहा हूँ।"

देश की खातिर उच्च शिक्षा का भी बलिदान दो

दूसरी विद्या मिले या न मिले, परन्तु इस विद्या को छोड़ो, यह कहकर फिर उन्होंने कहा कि "वर्तमान स्थिति के लिए सच्चा वैराग्य—मेरे जैसा वैराग्य—पैदा हुआ हो तो ही, यह लगता हो कि स्वतंत्रता के लिए कुछ भी विचार किये बिना देह-त्याग करना भी धर्म है, तो ही विद्यालय छोड़ना। इस विद्यालय में बड़ी-से-बड़ी शिक्षा मिलती हो, सुविधाएँ मिलती हों, तो उनका भी भारत के लाभ के लिए बलिदान करने की जरूरत है।

संयम और विनय

असहयोग परम संयम-धर्म है। तुममें असहिष्णुता हो, तो तुम असह-योगी नहीं हो सकते। माता-पिता के प्रति धर्म के बारे में इतना ही कहता हूँ कि तुमने निश्चय कर लिया हो, तो अदब से, विनयपूर्वक उनके पास

चले जाना, उनसे बहस करना, और तुम्हारा यह खयाल हो कि उनकी बातों से तुम्हारा दिल हिलता है, तो अवश्य उन्हींकी आज्ञा का पालन करना। मैं तुम्हारे प्रत्येक कार्य में विनय चाहता हूँ, धर्म चाहता हूँ। जो प्रतिज्ञा लेकर तुम पाठशाला छोड़ोगे, वही प्रतिज्ञा तुम भंग करोगे, यदि धर्म-पालन को धक्का पहुँचाओगे। इसलिए तुम्हें विनय की शिक्षा पहले लेनी पड़ेगी। तुम्हें भारी बलिदान देने पड़ेंगे। 'भारी' इसलिए कहता हूँ कि आज की दीन दशा में हम नामर्द हो गये हैं और रोटी का साधन छोड़ना भी एक बड़ा बलिदान है।

अंत में बार बार कहता हूँ कि तुम्हें जिन पर विश्वास हो, उन अध्यापकों और मालवीयजी से मिलकर निश्चय करके पाठशाला छोड़ना और उनका आशीर्वाद लेना।

बाद में पंडितजी उठे। उन्होंने कहा :

"तुमने जो गंभीर भावपूर्ण उपदेश सुना है, उसके बारे में मुझे आशा है कि तुम अक्षर-अक्षर का श्रद्धा और भक्तिपूर्वक विचार करके निर्णय करोगे। तुम्हारे सामने प्रश्न यह है कि यदि तुम्हें अंग्रेजी सरकार के बर्ताव से ऐसा लगा हो कि जिस भूमि या संस्था से सरकार का सम्बन्ध हो, उसमें रहना दुःखदायक है, तो उसका संपर्क छोड़ दो। मनुष्य के लिए आत्मा कहे, उसके अनुसार चलने से अधिक बड़ा और कोई धर्म नहीं। परन्तु शीघ्रता या उत्ताप से बिना विचारे कुछ न करो। तुम्हारी आत्मा आकुल हो रही हो, तो जरूर तुम आत्मा का अनुसरण करना। परन्तु यहाँ तुम्हें जो पवित्र उपदेश मिला है, उस पर और उनकी कठिन कसौटी पर विचार करके तुम्हें जो जँचे सो करना। इस हुकूमत में बेशुमार ऐब हैं। उस दिन कई घंटे तक मैंने तुम्हारे सामने भाषण दिया, तब मैंने यही बात कही थी कि इन दोषों के बारे में सब एकमत हैं। मैं तुमसे कहता हूँ कि यदि यह शिक्षा पाकर या उसे छोड़ते समय ऐसी भावना न उठे कि देश की सेवा के लिए प्राण तजने को भी तैयार होना चाहिए, तो यह समझना कि तुम कुछ नहीं पढ़े। मैं चाहता हूँ कि

विद्यार्थी इसी भाव से प्रतिदिन पढ़े कि देश में हमारा ही राज्य स्थापित करना है और उसकी सेवा के लिए तन, मन, धन अर्पण करना चाहिए। परन्तु तुम्हारे दिल में यह प्रतीति हो जाय कि इस विद्यालय में पढ़ना धर्म नहीं रहा, तो तुम माता-पिता को यह बात जाकर कह देना और उनसे तुम न समझो, तो उन्हें प्रणाम करके उनसे छुट्टी ले लेना। हिरण्यकश्यपु जैसे पिता हों, तो तुम प्रह्लाद जैसा ही काम करना। प्रह्लाद में जिस ज्योति का प्रकाश हुआ था, वह तुममें हो, तो तुम भी अपने माता-पिता के मना करने के बावजूद विवेक से उनकी सलाह का अनादर कर देना। यह पाप हो, तो मैं हिस्सेदार बनूँगा। सिर्फ इतना ही कहता हूँ कि हृदय को कठोर करके तुम संकल्प कर सको कि निकल जाना है, तो ही निकलना। वापस न आने के विचार से ही निकलना। कच्चे संन्यासियों की भाँति अपरिपक्व विचार से विद्यालय मत छोड़ना। यदि तुम देश की सेवा करने के विचार से ही विद्यालय छोड़ोगे, तो मैं तुम्हें आशीर्वाद दूँगा। परमेश्वर तुम्हें देश के लिए बुद्धि, साहस और दृढ़ता प्रदान करे।"

यह भव्य उपदेश भारत का प्रत्येक विद्यार्थी संग्रह करे, ऐसी इच्छा प्रकट करके मैं इस पत्र को समाप्त करूँगा। काशी के विद्यार्थी विचार कर रहे हैं। प्रोफेसर कृपालानी, जिन्होंने विद्यालय छोड़ दिया है, उनके सलाहकार हैं। पंडित शिवप्रसाद और बाबू भगवानदास भी मदद कर रहे हैं। इसमें शंका नहीं कि जो फल आयेगा, वह शुभ होगा।

अध्यापकों के साथ वार्तालाप

हिन्दू युनिवर्सिटी के अध्यापकों ने बापूजी से मिलने के लिए सेंट्रल हिन्दू कॉलेज में एक सम्मेलन रखा था। प्रस्तावना करते हुए बापू ने कहा, "मैं चाहता हूँ कि यहाँ हम दिल खोलकर बातें करें। मैं जानता हूँ कि कॉलेजों का त्याग करने की सलाह विद्यार्थियों को देने के मामले में बहुत तीव्र मतभेद है। मुझ पर यह आक्षेप किया जाता है कि देश के

सुशिक्षित और बुद्धिमान् मनुष्यों को मैं नहीं समझा सकता, इसलिए विद्यार्थियों को हाथ में लेने की कोशिश कर रहा हूँ। मुझ पर दूसरा आक्षेप यह है कि मेरा स्वभाव इतना अधिक आग्रही है कि किसी बात पर कोई निर्णय कर लेने के बाद उसमें सुधार करने की गुंजाइश मेरे लिए नहीं रहती। इसके जवाब में मुझे इतना ही कहना है कि मैंने यह कार्य-क्रम उतावली में, क्रोध में या जिसे पुण्य-प्रकोप कहा जाता है, उस वृत्ति से भी शुरू नहीं किया है। मुसलमानों को दिये गये वचनों का भंग करने के लिए वाइसराय को खुली चिट्ठी लिखकर मैंने चेतावनी दी। मैंने यह भी चेतावनी दी कि इस मामले में आपका अफसोस जाहिर करना ही काफी नहीं है। अपनी खुली चिट्ठी में मैंने वाइसराय को यह भी बताया कि यह ऐसा भयंकर अन्याय हुआ है, जिसके विरुद्ध लोग तलवार उठायें, तो भी उनके लिए इसे बेजा नहीं कहा जा सकता। परन्तु भारत इस समय तलवार उठाने में असमर्थ है। इसलिए लोगों के पास एकमात्र विकल्प असहयोग का ही रह जाता है। उसका विस्तृत कार्यक्रम मैंने देश के सामने पेश किया है।

"विद्यार्थियों का प्रश्न अधिक आगे आ गया है। शिक्षकों और प्रोफेसरों की तरफ से मुझे जो कमजोर जवाब मिला है, उससे मेरी आँखें खुली हैं। हम ऐसे वातावरण में पले हैं और हमें ऐसी शिक्षा मिली है कि देश के लिए कुछ भी त्याग करने में हम अशक्त हो गये हैं। पढ़े-लिखों की ओर से दुर्बल उत्तर मिलने का इसके सिवा और कोई कारण नहीं। मुझे लोगों के विचारों में क्रान्ति लानी है।

"हमारी मानसिक रचना में ऐसी कोई खामी नहीं, जिससे आज ही हम स्वराज्य का उपभोग न कर सकें। कोई जाति दूसरी जाति के चरणों में बैठकर स्वराज्य का उपभोग करना नहीं सीख सकती। जातियों के तलवार से स्वराज्य लेने के भी उदाहरण हैं। जैसे दक्षिण अफ्रीका में बोअर-युद्ध द्वारा वहाँ के लोगों ने लिया। भारत में राज्य-क्रान्ति करनी हो, तो या तो तलवार से की जा सकती है या असहयोग से की जा सकती

है, और किसी तरह से नहीं। यहाँ मैं तुमसे खुले दिल से चर्चा करने आया हूँ। तुम मुझ पर हमले करने में जरा भी दया मत करना। शिक्षा के मामले में असहयोग करने के बारे में मैं अब और कोई बहस नहीं करूँगा।"

[इसके बाद अंग्रेजी में ये प्रश्नोत्तर हुए।]

प्र०—आप यह चाहते हैं कि विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए हम दूसरा कोई प्रबन्ध न कर सकें, तो भी विद्यार्थी असहयोग करके स्कूल-कॉलेज छोड़ दें ?

उ०—प्रबंध करना अनिवार्य नहीं। अनिवार्य तो आत्मत्याग करके छोड़ना ही है। इस वक्त विद्यार्थियों को जो साक्षरी शिक्षा मिल रही है, उसकी अपेक्षा देश का और कोई भी काम करना अनंतगुना अधिक पसन्द करने योग्य है। ऐसा करके ही ऊपर से खर्चीली मौजूदा शिक्षा के बजाय हमारे देश की आवश्यकता के अनुकूल होनेवाली शिक्षा की कोई कम खर्चीली पद्धति हम ढूँढ़ सकेंगे। परंतु इस समय तो यही संभावना है कि हमें घोर दमननीति का सामना करना पड़ेगा। उस दमन का देश ठीक जवाब दे, तो हम एक महीने में स्वराज्य ले सकते हैं।

आनंदशंकर ध्रुव—यह आत्मत्याग स्वराज्य को बनाये रखने में भी सहायक होगा ?

उ०—स्वराज्य लेने में तो वह जरूर मददगार साबित होगा। हमने एक बहादुर जाति के साथ लड़ाई छेड़ी है। अंग्रेज जाति कुल मिलाकर बहुत सयानी जाति है, इसलिए भविष्य के बारे में मेरा खयाल यह है कि वे हमारा सहयोग चाहेंगे। मैं क्षणभर के लिए भी नहीं मानता कि वे हमसे बिलकुल अलग हो जाने की हद तक जायँगे।

प्र०—परन्तु शिक्षा के बिना बौद्धिक विकास रुक जायगा, तो क्या होगा ?

उ०—यह कार्यक्रम ऐसा है कि एक-दो वर्ष से अधिक नहीं लगेंगे।

मेरे हृदय की मान्यता तो यह है कि लोग मेरे कार्यक्रम पर अच्छी तरह अमल करें, तो एक वर्ष के भीतर स्वराज्य हमारा द्वार खटखटाता हुआ घर आ जाय।

आनंदशंकर—इस भविष्यवाणी के बारे में हमारा मतभेद है। लड़ाई बहुत लम्बी होने की संभावना है।

उ०—तब तो हमें इससे भी ज्यादा कुर्बानियाँ देने को तैयार होना पड़ेगा। परन्तु शिक्षित वर्ग मेरी बात मान ले, तो मुझे तो आशा की किरण दिखाई देती है। शिक्षित लोग ही रुकावट डाल रहे हैं।

आनंदशंकर—हम इस समय शिक्षा का जो काम कर रहे हैं, ऐसा लगता है कि उसे जारी रखने से ही अधिक सेवा हो सकेगी?

छबलानी—हममें साथ मिलकर काम न करने की आदत बहुत पुरानी है। इसीके कारण हम विदेशियों के शिकार हो गये हैं। फिर भी अंग्रेजों के इस अत्याचारी शासन से इतना तो भला हुआ है कि हममें एक राष्ट्र होने की भावना पैदा हो गयी। एक सभापति का हुक्म सब समझ सकें, इसके लिए भी शिक्षा के मूल तत्व लोगों को मिलने जरूरी हैं।

बापूजी—और किसी भी देश से हमारे देश का प्रश्न अधिक विकट हो, यह संभव है। इस समय तो सवाल यह है कि हमारे देश में राष्ट्रीय जाग्रति की बाढ़ आयी है या नहीं? मेरे खयाल से हममें अद्भुत जाग्रति प्रकट हो रही है। सारे देश में जो जोश फैल गया है, वह कोई मेरे कारण नहीं है। मान लीजिये कि मैं इस समय चेचक के टीके लगवाने के विरुद्ध प्रचार शुरू करूँ, तो क्या आपके खयाल से मुझे श्रोता मिलेंगे? परन्तु आज मेरे पास लोगों की भीड़ उलट आती है। इसका कारण यह है कि वे अपने साथ हुए अन्याय के बारे में जाग्रत हो गये हैं और उनमें नयी आशा का संचार हुआ है। यदि हम यह मानते हों कि जब तक हम सारे देश को लिखना-पढ़ना न सिखा सकें, तब तक स्वराज्य की कल्पना भी करना फिजूल है, तो मेरा खयाल है कि यह गंभीर भूल है। लोगों को अपनी दशा का भान कराने के लिए प्रारंभिक शिक्षा जरा भी अनिवार्य

नहीं है। थोड़े से और जलियाँवाले बाग हो जायँ, तो आप देखेंगे कि देश मुक्त हो जायगा। यह कहना भी कि असहयोग का कार्यक्रम खंडनात्मक है, उसकी विडंबना है। राष्ट्रीय जाग्रति के लिए अथवा पार्लमेण्टरी ढंग के शासन के लिए भी अक्षर-ज्ञान अनिवार्य नहीं।

छबलानी—हमारी मनोवृत्ति बिलकुल अन-पार्लमेण्टरी है।

बापूजी—जहाँ तक आम लोगों को मैं जानता हूँ, हम पढ़े-लिखे पार्लमेण्टेरियन हैं। सर हेनरी मेई ने इसकी गवाही दी है। मेरा अपना अनुभव भी यही है। कोई वस्तु अपने कल्याण की हो और उसमें उसे खूब दिलचस्पी हो, तो आप देखेंगे कि इंग्लैण्ड के लोग जैसा रस मुक्केबाजी के खेल में लेते हैं, वैसा ही रस हमारे लोग अपने काम-काज में लेते हैं।

शेषाद्रि—अंतरात्मा की आवाज को कसौटी मानना मुझे तो बड़ा खतरनाक मालूम होता है। रस्किन ने तो कहा है कि किसी मनुष्य की अन्तरात्मा गधे जैसी भी हो सकती है। ऐसे लोग अपनी अन्तरात्मा के अनुसार क्या चलेंगे ? स्पेन के अत्याचारी शासक अथवा हमारा औरंगजेब यही कहता था कि हम अपने अन्तःकरण की आवाज के अनुसार चलते हैं। विद्यार्थियों से ऐसी अन्तरात्मा की अपेक्षा नहीं रखी जा सकती, जिससे वे भले-बुरे का विवेक कर सकें।

बापूजी—अन्तरात्मा को अपील करने में जो जोखिम है, उसके बारे में आपकी भावना से मैं पूरी तरह सहमत हूँ। आपने मुझे जो चेतावनी दी है, उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। जब मैं अन्तरात्मा की आवाज की बात करता हूँ, तब मुझे पूरी तरह भान है कि मैं अपने पर कितनी जिम्मेदारी लेता हूँ। परन्तु इस वक्त हमारे सामने जो बड़ा खतरा आ गया है, उसका उपाय मुझे ढूँढ़ना है। हम ऐसे वातावरण में पले हैं कि उससे अलग होना हमें कठिन लगता है। अंतरात्मा की आवाज के आपने जो भयंकर उदाहरण दिये, उनके मुकाबिले में उतनी ही अच्छी मिसालें भी हैं। कितने ही इतने अच्छे लड़कों के उदाहरण हैं, जिन्होंने अपनी अन्तरात्मा, की आवाज का उपयोग मानव-जाति के कल्याण के लिए किया

है। मैं एक हजार भूलोंवाले उदाहरण सह लूँ, यदि मुझे एक लड़के की ऐसी साफ मिसाल मिल जाय, जहाँ उसने अपनी अन्तरात्मा की आवाज का उपयोग ठीक ढंग से किया हो। ऐसा न करें, तो धर्माचार्य और सरकारी कर्मचारियों द्वारा भेड़ों की तरह हाँके जानेवाले इस देश में कुछ भी नहीं किया जा सकता। मैं देश के नौजवानों को यह क्यों नहीं सिखाऊँ कि किसीको अछूत मानना पाप है? मैं देश के नवयुवकों को ऐसा क्यों न सिखाऊँ कि तुम्हारा बाप शराबी हो और तुम्हारे सामने शराब की प्याली रख दे, तो ऐसे बाप की आज्ञा या सत्ता का विरोध करो? मैं जब अन्तरात्मा की बात करता हूँ, तब गधे की अन्तरात्मा की बात नहीं करता, परन्तु संयमी और विवेकी मनुष्य की अन्तरात्मा की बात करता हूँ। मैं विद्यार्थी के सामने अमिश्र सत्य पेश करने का प्रयत्न करता हूँ। और वहीं मेरा कर्तव्य पूरा हो जाता है। किसी आवारा लड़के को न पढ़ना हो, इसलिए पाठशाला छोड़ने की बात उसे अच्छी भी लगे, तो इसमें मेरा दोष नहीं है। युवकों के उमड़ते हुए उत्साह को दबाकर कुचल डालने की अपेक्षा कुछ युवा विद्यार्थियों के हाथों कोई पागलपन हो जाने की जोखिम उठाने को मैं तैयार हो जाऊँगा।

आनंदशंकर—तब तो अन्तरात्मा के बजाय संयम और विवेक की बात हुई।

बापूजी—हाँ।

शेषाद्रि—राम राम राम—मैं आशा रखता हूँ कि आप जो कहते हैं, सो अक्षरशः नहीं मानते होंगे। धर्म की बातें करना छोड़कर हम जितने जल्दी अधिक भौतिकवादी बनेंगे, उतनी ही हमारी मुक्ति की आशा अधिक है।

बापूजी—एक बार खूब उत्साह और आवेश से तिलमिलाते हुए कुछ युवकों से बातें करने का मुझे साबिका पड़ा था। वे देश की धार्मिक संस्कारिता को तिलांजलि देकर नास्तिक और ठठोले बन गये थे। उनकी धार्मिक वृत्ति बहुत सूख गयी थी। यह देखकर मैंने उन्हें कहा कि तुम्हारे

पास कोई काम न हो, तो हृदयपूर्वक इतने-से शब्द कहो : 'प्रभु के दरबार की खोज में लगो और तमाम चीजें तुम्हें अपने-आप मिल जायँगी।'

शेषाद्रि—सरकार के साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध रखना खराब हो, तो आप लोगों से यह क्यों नहीं कहते कि इस देश का ही त्याग कर दो ? आप स्वयं तार, डाक, रुपये-पैसे के सिक्के वगैरह सब क्यों काम में लेते हैं ? आप जो इस प्रकार का फर्क करते हैं, उसकी जड़ में क्या सिद्धान्त छिपा हुआ है ? आप इस मामले में शुद्ध तर्क के अनुसार क्यों नहीं चलते ?

बापूजी—मेरी तर्क-बुद्धि दिये हुए उदाहरण की कड़ी तर्क-परायणता को स्वीकार करती है; परन्तु उसके साथ मैं मनुष्य-स्वभाव की मर्यादा का भी खयाल रखता हूँ। मेरा खयाल है कि हमारा देश इस हद तक जाने को तैयार नहीं है। हमें इस हद तक जाने की जरूरत भी नहीं। जो तमाम चीजें गिनायी गयीं, वे हमारे बंधन के दृश्य चिह्न होने पर भी देश आज इन वस्तुओं के बिना काम नहीं चला सकता। शैतान का फंदा हमारे आसपास इतना लिपट गया है कि उससे आज पूरी तरह छूट सकना असंभव है।

अधिकारी—आप अनुशासनहीन मनुष्यों से किसी भी किस्म का काम कैसे ले सकते हैं ? आप गलत सिरे से शुरुआत कर रहे हैं। मैं तो यहाँ चौबीस साल से पढ़ा रहा हूँ। किसी दिन आपको भी फाँसी देने के लिए तख्ता खड़ा कर दें, ऐसे ये लोग हैं।

बापूजी—यदि विद्यार्थी-वर्ग ऐसा ही अनुशासनहीन झुंड है, जैसा बयान किया जाता है, तो यह तो इस शिक्षा-प्रणाली का निराशाजनक प्रमाण कहलायेगा। मैं जानता हूँ कि मैं भारी जोखिम उठा रहा हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि केवल ऐसी जोखिम उठाने से बड़ा युद्ध नहीं जीता जा सकता। फिर भी आज की असह्य स्थिति से ऐसे खतरे उठाने की हालत कहीं ज्यादा अच्छी है। शायद मुझमें अधीरता आ गयी हो। परन्तु इस दोष से बचने के लिए ही तो इस समय कम-से-कम जोखिमवाले

रास्ते अपनाये हैं। कुल मिलाकर हमारे विद्यार्थियों के दिल साबित हैं। अनुशासन सीख लेने में उन्हें थोड़ी देर लगेगी, इतनी ही बात है।

आनंदशंकर—आप यह क्यों मानते हैं कि यह शिक्षा असफल हुई है?

बापू—इस समय मेरी लड़ाई शिक्षा-पद्धति के विरुद्ध नहीं है। मेरी लड़ाई उसके खिलाफ है, जिसकी छत्रछाया इस शिक्षा पर है। सरकार के आधिपत्यवाली इस शिक्षा ने हमारी बुद्धि को परतंत्र बना दिया है। अभी तो यह शिक्षा सरकारी नौकर ही पैदा कर रही है। मैं इस बात से इनकार नहीं करता कि हमारे कॉलेजों से मालवीयजी और नेहरू जैसे पैदा हुए हैं। परन्तु वे इस शिक्षा के कारण पैदा नहीं हुए, इस शिक्षा के बावजूद पैदा हुए हैं। शिक्षा अच्छी होती तो कितने ही अधिक अच्छे आदमी पैदा हुए होते। दुनिया के किसी देश में ऐसा शिक्षित वर्ग मैंने नहीं देखा, जो हमारे शिक्षित वर्ग की तरह शक्तिहीन और रंक हो गया हो। यह शिक्षा तो नागपाश की तरह है। इसके कारण हममें से सारा जीवन-रस चूस लिया जाता है।

आनंदशंकर—आप जिस आधिपत्य की बात कहते हैं, वह बौद्धिक आधिपत्य है या शासनिक आधिपत्य? शिक्षित लोग रंक दिखाई देते हैं, सो शिक्षा-प्रणाली के कारण हैं या हमारे लोगों के बौद्धिक दारिद्र्य के कारण?

बापूजी—विदेशी भाषा द्वारा दूषित शिक्षा दी जाने के कारण बौद्धिक दारिद्र्य उत्पन्न हो गया है। हमारे पढ़े-लिखे लोग यूरोपियन संस्कृति के स्याहीचट कागज जैसे बन गये हैं।

आनंदशंकर—तो शिक्षा के माध्यम में परिवर्तन कीजिये।

बापूजी—वह तो मैं करूँगा ही। मैंने तो आपसे मुख्य कारण कहा है। हम बौद्धिक दारिद्र्य से ही पीड़ित नहीं हैं, आज हमें जो शिक्षा दी जाती है और जिस शिक्षा की देश को जरूरत है, इन दोनों में कोई

मेल नहीं। देश के अस्सी फीसदी लोग खेती करते हैं और करेंगे। फिर भी हमारी पाठशालाओं और कॉलेजों के पाठ्यक्रम में यह विषय रहता ही नहीं। लोगों को सच्ची धार्मिक शिक्षा कहाँ दी जाती है? जहाँ आत्मा को भूखों मारा जाता हो, वहाँ क्या शिक्षा हो सकती है? इसीलिए मैं कहता हूँ कि इस आधिपत्य से छूटिये। जो आधिपत्य हमें पशु बना रहा है, उससे छूटिये।

आनंदशंकर—यह सब तो आप असहयोगी के रूप में नहीं, किन्तु शिक्षा-सुधारक के रूप में बोल रहे हैं।

बापूजी—परन्तु इस समय मेरा उद्देश्य शिक्षा-सुधार से कहीं ऊँचा है। मुझे तो अपनी जनता को इस गुलामी के वातावरण से मुक्त करना है।

तेलंग—आप जब दास-मनोवृत्ति की बात कहते हैं, तब मौजूदा हालत पर ही जरूरत से ज्यादा जोर देते हैं। आप ऐतिहासिक दृष्टि से नहीं देखते। आप जब भारत की पार्लमेण्टरी संस्थाओं की बात कहते हैं, तब भूल जाते हैं कि ऐसी संस्थाएँ कभी समस्त राष्ट्र के लिए नहीं थीं। 'राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक सरकार' की कल्पना तो पश्चिम से ही आयी है। आज जब हमने पश्चिम से सीखना शुरू किया है, तब पश्चिम के साथ सम्बन्ध तोड़ डालेंगे तो हम, शायद कल्याणकारी ही सही, निरंकुश शासन-प्रणाली के जमाने में वापस चले जायँगे। इसलिए शिक्षा में ही सुधार करने की जरूरत है। मेरा तो खयाल है कि हिन्दू विश्वविद्यालय और अलीगढ़ युनिवर्सिटी, भले ही उनमें कितने ही दोष बताये जायँ, तो भी ऐसी संस्थाएँ हैं, जिनकी हमें खूब जरूरत है।

बापूजी—आज तो ये संस्थाएँ राष्ट्र की प्रगति को रोक रही हैं। मैं चाहता हूँ कि ये दोनों संस्थाएँ अधिक विशुद्ध हों। मेरा पश्चिम के साथ कोई झगड़ा नहीं। मैं पश्चिम की संस्कृति को तो धिक्कारता हूँ, परन्तु इससे यह बात नहीं है कि पश्चिम की तमाम वस्तुओं को ही धिक्कारता हूँ। पश्चिम की वैज्ञानिक वृत्ति को, उसकी निश्चितता को, सत्य की खोज में अखंड रूप में लगे रहने के उसके जोश को मैं काफी

मानता हूँ। मेरा झगड़ा तो वर्तमान शासन-प्रणाली के विरुद्ध है। इस शासन-प्रणाली का मुझे नाश करना है। पश्चिम से हमें कितने ही सबक सीखने की जरूरत है, इस बात से मुझे इनकार नहीं। मैं तो पूर्व और पश्चिम का मिलन चाहता हूँ। मेरा झगड़ा तो किप्लिग* के मत से है। फिर भी आज दोनों के मिलन के लिए समान भूमिका नहीं है। पूर्व और पश्चिम में स्थायी झगड़ा है या रखना है, यह मेरे मन में है ही नहीं। किसी भी बात से इन दोनों का मिलन हो सकता है, तो वह मौजूदा असहयोग से ही होगा। असहयोग तत्त्वतः विशुद्धीकरण की क्रिया है। मैं चाहता हूँ कि मेरा जो ध्येय है और मुझ पर जो आरोप लगाया जाता है, इन दोनों का भेद आप अच्छी तरह समझ लें। लोगों के दिलों में द्वेष भरने का काम मेरे हाथों कभी हो ही नहीं सकता। हाँ, लोगों के हृदयों में अव्यक्त रूप में मौजूद बुरी भावनाओं को आज मैं सतह पर जरूर ला रहा हूँ। परन्तु यह उन्हें शुद्ध करने के लिए है। मैं आपसे कहूँगा कि बहुत-से अंग्रेज इस बात की गवाही देते हैं कि मैं इस समय सचमुच विशुद्धि का काम कर रहा हूँ। इस वक्त मैं देश का ध्यान अधिक-से-अधिक शुद्ध साधन काम में लेने पर और अपने-आपकी शुद्धि करने पर एकाग्र कर रहा हूँ। असहयोग की इस योजना में अनेक अपने-आप काम करनेवाले अंकुश विद्यमान हैं। कई सलामती के द्वार (सेफ्टी वाल्व) मौजूद हैं, जिनके कारण धड़ाका होने से रुकता है। मुझे अफसोस है कि जिन्हें मैं पूजता हूँ, उनका मुझे विरोध करना पड़ रहा है। यदि मैं पंडितजी को होनेवाली हृदय-व्यथा से बचा सकूँ, तो मुझ जैसा आनंद किसीको नहीं होगा। परन्तु मैं ऐसा कर नहीं सकता। आप कुछ भी कहिये, आप भले ही मानिये कि आपको सब स्वतंत्रता है, परन्तु जो हाथ आप पर अंकुश रख रहा है, वह छिपा हुआ है। मलमल

---

* रुडियार्ड किप्लिग बहुत समय भारत में रहा हुआ एक अंग्रेज कवि और लेखक था। उसकी यह उक्ति : 'पूर्व पूर्व ही है और पश्चिम पश्चिम ही है। दोनों का कभी मेल नहीं होगा', बहुत प्रसिद्ध हो गयी है।

के दस्ताने के कारण वह हाथ दिखाई नहीं देता। इस आधिपत्य का हमें कुचल डालनेवाला भार मुझसे सहा नहीं जाता।*

२८-११-'२०

काशीजी में गुजरातियों से मिले।

सतीश मुकरजी महाशय से मेरा अमूल्य मिलन।

रात को अलाहाबाद के लिए चल दिये।

रेल में मुकरजी की बातें कीं। बापू ने देवदास, दीपक, सरलादेवी, हरकिशनलाल और मगनलाल को पत्र लिखे। अपने माने हुए वैष्णवजन भजन का भाषान्तर तैयार कर दिया।

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड़ पराई जाणे रे,
परदुःखे उपकार करे तोये, उर अभिमान न आणे रे। वैष्णव०
सकळ लोकमां सहुने वंदे निंदा न करे केनी रे,
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन-धन जननी तेनी रे। वैष्णव०
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे,
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे। वैष्णव०
मोह माया व्यापे नहीं जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे,
रामनाम शुं ताळी लागी, सकळ तीरथ तेना तनमाँ रे। वैष्णव०
वणलोभी ने कपट-रहित छे, काम-क्रोध निवार्या रे,
कहे नरसैंयो तेनुं दर्शन करतां, कुळ एकोतेर तार्यां रे। वैष्णव०

वैष्णव के जो लक्षण नरसिंह मेहता ने बताये हैं, उनसे हम देख सकते हैं कि वह

---

* इस संवाद के महादेवभाई के नोट बहुत जल्दी में लिये गये होने के कारण बहुत खंडित हैं। इसलिए संभव है, उपर्युक्त लिखावट में किसी व्यक्ति की दलील ठीक तरह पेश न हुई हो। इसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ। जैसा उपस्थित किया जा सका है, वैसा भी यह संवाद रसप्रद और बोधक है, इसलिए मैंने यहाँ देने की धृष्टता की है।

१. परदुःखभंजक हो,
२. ऐसा करते हुए निरभिमानी हो,
३. सबकी वंदना करे,
४. किसीकी निन्दा न करे,
५. वचन दृढ़ रखे,
६. लँगोट का पक्का हो,
७. मन दृढ़ रखे,
८. समदृष्टि हो,
९. इसलिए तृष्णा-रहित हो,
१०. एकपत्नीव्रत पालन करे,
११. सत्यव्रत पालन करे,
१२. अस्तेय पालन करे,
१३. मायातीत हो,
१४. इसलिए वीतरागी हो,
१५. राम-नाम में तल्लीन हो,
१६. इसलिए पवित्र हो,
१७. लोभ-रहित हो,
१८. कपट-रहित हो,
१९. काम-रहित हो,
२०. क्रोध-रहित हो।

लाला हरकिशनलाल को पत्र :

¶ "आपका पत्र सफर में मेरे पीछे-पीछे यहाँ आया है। आपकी भविष्यवाणी सच्ची निकले, तो उसमें कुछ-न-कुछ दोष आपका भी तो है। आप चुपचाप बैठे रहें, हिंसा की जड़ों को पनपने दें और फिर कहें 'देखो, मैं कहता था सो सच हो गया न ?' ऐसी ही बात आपकी है। परन्तु आपकी भविष्यवाणी सही निकले या गलत, असहयोग तो तब तक आगे बढ़ेगा ही, जब तक वह अपनी ही हिंसा के भार से न रुक जाय। आपको तो अपनी भविष्यवाणी गलत साबित करने को जी-तोड़ कोशिश करनी है।

"खिलाफत के मामले में हमारी माँग इतनी ही है : युद्ध शुरू हुआ, तब तुर्की के पास जितना इलाका था, वह सब उसे लौटा दिया जाय, इस शर्त पर कि अरबों और आर्मीनियनों का आत्मनिर्णय का अधिकार सुरक्षित कर दिया जाय। पंजाब के मामले में पंजाबियों की माँग के अनुसार पूरी तरह राहत मिलनी चाहिए। हमारी तीसरी माँग यह है कि लोगों के चुने हुए नेताओं की इच्छानुसार हमारा पूरा स्वराज्य होना चाहिए। आप देखेंगे कि मैंने 'प्रत्येक अंग्रेज के नाम' जो खुली चिट्ठी लिखी है, उसमें ये चीजें आ जाती हैं।"

सरलादेवी को जो पत्र लिखा, उसका कुछ भाग :

¶ "दीपक मुझे लिखता है कि कुछ समय के लिए अंग्रेजी की पढ़ाई से मुझे मुक्ति दीजिये। लड़के की इस माँग से मुझे उसके लिए आदर पैदा होता है। इस मामले में आप दिल के भीतर से भी विरोध न करती हों, तो मैं तो चाहता हूँ कि दीपक को उसकी मरजी के मुताबिक करने दिया जाय। उसे आगे चलकर अंग्रेजी पढ़ने का पूरा मौका मिले, यह मैं देख लूँगा। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि वह थोड़े समय के लिए अंग्रेजी छोड़ देगा, तो इससे कुछ खोयेगा नहीं। आप जानती हैं कि विद्यार्थी में जब भाषा को पकड़ लेने की शक्ति का उदय हो जाता है, और वह भाषा-शास्त्र में पारंगत हो जाता है, उसके बाद कोई भी नयी भाषा सीख लेना उसके लिए आसान हो जाता है। मैक्समूलर ने इस प्रकार सोलह भाषाएँ सीखी थीं। एक बार सामान्य भाषाशास्त्र पर काबू पा लेने के बाद आपको कुछ सैकड़े शब्द याद कर लेने होते हैं और वह भाषा आपको आ जाती है। इसलिए मेरा सुझाव है कि आप खुशी से अनुमति दे द। दीपक बड़ा जबर्दस्त और सुन्दर लड़का है। पढ़ने के मामले या और किसी मामले में भी मैं उस पर दबाव डालना नहीं चाहता। यदि वह किसी-न-किसी तरह उद्योग में लगा रहे और प्रत्येक वस्तु का विचार कर लेने की आदत डाल ले, तो उसकी कुशल ही है। इस पर खूब विचार कीजिये और अपना सच्चा निर्णय मुझे बताइये। इतना याद [illegible]ें कि हमारे लिए बच्चों के शिक्षकों पर विश्वास रखने में सलामती है। [illegible]क्षकों के चुनाव के समय जितनी सावधानी रखी जा सके, उतनी रखें, परन्तु एक बार शिक्षक का चुनाव कर लिया, फिर बालक की शिक्षा उसे सौंप दें।

"बनारस में काफी काम हुआ। परिणाम क्या होगा, यह मैं नहीं जानता। वातावरण जरूर साफ हुआ है और मालवीयजी पूरी तरह नहीं, तो भी पहले से अधिक शान्त हो गये हैं।"

दीपक को पत्र :

"अब तो तुम्हें गुजराती में ही लिखूँगा। तुम्हारा पत्र मिला। तुम अब अंग्रेजी छोड़ो या नहीं, इस बारे में माताजी की राय पुछवायी है। तुम अध्ययनशील बन जाओ, तो अंग्रेजी अभी छोड़ देने में कोई अड़चन न होगी। तुम अपने शरीर, अपने मन और अपनी आत्मा को सँभालो। शरीर के लिए कसरत, खेल-कूद, अच्छा भोजन और प्रसन्न-चित्त, मन के लिए वाचन और मनन। आत्मा के लिए अन्तर शुद्ध और उसके लिए जल्दी उठना, ध्यानपूर्वक प्रार्थना में तल्लीन होना और गीताध्ययन। हमेशा इतना पाठ पढ़ लेना : मैं सच ही बोलूँगा, सोचूँगा और करूँगा, मैं सब पर प्रेम रखूँगा, मैं अपनी सब इन्द्रियों पर काबू करूँगा, दूसरे की चीज पर बुरी नजर नहीं रखूँगा। मैं कुछ भी अपना नहीं मानूँगा, परन्तु सब कुछ ईश्वरार्पण करूँगा। ऐसे चिन्तन से हृदय-शुद्धि होगी।"

देवदास को लिखा, उसका कुछ भाग :

"काशी में दो दिन बिताये। काफी अनुभव हुआ। पंडितजी के साथ कटुता आने का जरा भी भय नहीं था। दूसरों को जो अंदेशा था, वह भी मिट गया होगा। विद्यार्थियों से खूब बातें हुईं। अब यह देखना है कि परिणाम क्या होता है। देश में कमजोरी बेहद है। यह असहयोग ही देश को सबल बनायेगा।"

२९-३०-११-'२०
१-१२-'२०

दोपहर को ग्यारह बजे अलहाबाद पहुँचे। पं० मोतीलालजी और जवाहरलालजी मिले। शंख और घंटध्वनि। पंडितजी ने बापू को अक्षत और कुंकुम चढ़ाये। अलाहाबाद का सब ब्योरा नीचे के पत्र में है।

काशी छोड़कर गांधीजी अलाहाबाद आये। जगह-जगह विद्यार्थियों की पाठशालाएँ छोड़ने की खबरें आ रही थीं, इसलिए गांधीजी ने सावधानी और दृढ़ता पर जोर दिया था, यह हम देख चुके हैं। अलाहाबाद में आने

ही पंडित मोतीलालजी ने झाँसी से उनके नाम आया हुआ एक पत्र गांधीजी के सामने रखा, जिसमें यह खबर दी गयी थी कि जिन विद्यार्थियों ने गीताजी और कुरान शरीफ की कसमें खाकर पाठशालाएँ छोड़ी थीं, उनमें से अनेक गांधीजी के जाने के बाद दो-तीन दिन में ही वापस पाठशालाओं में चले गये हैं। इसलिए ३० तारीख को अलाहाबाद में विद्यार्थियों के सामने जो भाषण दिया, उसके लिए यह कहा जा सकता है कि उसका अधिकांश प्रतिज्ञा के महत्त्व के विषय में ही था। उसमें के विचार नये नहीं; यही विचार गांधीजी अनेक बार अहमदाबाद में सन् १९१७ में मजदूरों की तरफ से बड़ी लड़ाई लड़ते समय प्रकट कर चुके हैं। फिर भी वे ही विचार दूसरे रूप में रखे जाने के कारण वे आज केवल विद्यार्थियों के लिए ही नहीं, परन्तु सबके लिए प्रियकर और हितकर दोनों हो सकते हैं और किसी भी विद्यामंदिर में नीति के प्रथम पाठ के रूप में सदा के लिए कायम रह सकते हैं।

प्रतिज्ञाधर्म

झाँसी का किस्सा सुनाकर उन्होंने कहा: "मुझे यह समाचार सुनकर अत्यंत दुःख हुआ। यहाँ भी भाई जवाहरलाल के साथ बहुत विद्यार्थियों से मुलाकात हुई थी। उन्हें जवाहरलाल ने साफ-साफ कह दिया था कि तुम्हें पाठशाला छोड़ना धर्म मालूम होता हो, तो ही छोड़ो; इस आशा से न छोड़ना कि हम कोई व्यवस्था करेंगे। वे कैसी भी व्यवस्था स्वीकार करने को रजामंद हो गये; भाई जवाहरलाल ने उनके लिए मकान भी ले लिया, परन्तु वह एक हफ्ते से खाली पड़ा है। इन समाचारों से मुझे कितना दुःख हुआ है, यह मैं प्रकट नहीं कर सकता। ये घटनाएँ मुझे हमारी गुलामी के स्पष्ट चिह्न प्रतीत होती हैं। प्रतिज्ञा लेकर तोड़नेवाला हैवान बन जाता है, नामर्द बन जाता है। लॉर्ड विलिंग्डन विलायत से आने के बाद बम्बई में कुछ समय व्यतीत करने के पश्चात् अपना अनुभव सुनाते हुए कहते थे कि भारत में आकर

मैंने किसी हिन्दू-मुसलमान को इनकार करने की हिम्मतवाला नहीं पाया। यह आक्षेप अब भी सही है। हमारे दिल में 'नहीं' होने पर भी हम 'नहीं' नहीं कह सकते। सामनेवाले का मुँह देखकर उसे 'हाँ' चाहिए या 'ना', यह सोचकर हम तदनुसार बात करते हैं। यहाँ पंडितजी के यहाँ तीन-चार वर्ष की लड़की से भी मैं उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं करा सकता। मैं उसे कहता हूँ कि तू मेरी गोद में बैठ, तो वह कहती है, 'नहीं'। उससे कहता हूँ कि 'तू खादी के कपड़े पहनेगी?' तो कहती है 'नहीं'। हममें इस बच्ची की-सी ताकत भी नहीं है। एक महापुरुष ने कहा है कि हमें स्वर्ग में जाना हो, तो बालक जैसा बनना होगा। बालक जैसे बनने का अर्थ यह है कि बालक की-सी निर्दोषता और हिम्मत चाहिए। एडविन आर्नाल्ड* ने बालक की निर्दोषता का बढ़िया ढंग से वर्णन किया है। बच्चा बिच्छू को पकड़ लेता है, साँप को भी पकड़ लेता है, आग में हाथ डाल देता है, उसे डर का जरा भी भान नहीं होता। तुम इसी तरह की निर्भयता पैदा करो। तुम्हें ईश्वर का भरोसा नहीं रहा, इसलिए तुम डर के वश में होते हो।

"मुझे अक्सर खयाल आता है कि भारत से कब भाग निकलूँ या भारत को स्वतंत्र करूँ? स्वतंत्रता का इतना ही अर्थ है कि हम किसीसे भी न डरकर जो हमारे दिल में हो, वही कह सकें, वही कर सकें। जो लड़का करोड़ों मनुष्यों के सामने सीधा खड़ा रहकर अपनी बात कह सके, वह सच्चा साहसी है। इसलिए तुम्हारे लिए पहला पाठ तो 'ना' कहना सीखना है। प्रतिज्ञा तुम लो ही नहीं, यह बेहतर है; प्रतिज्ञा लेकर तोड़ना, मैं कहूँगा कि, बड़ा अपराध करने के बराबर है। तुमने भारी शिक्षा पायी होगी, बड़ी डिग्री प्राप्त की होगी, तो भी तुम झटपट प्रतिज्ञा तोड़

दो, तो तुमसे जरूर कहूँगा कि तुम जमना में जाकर क्यों नहीं डूब मरते? तुम्हारा दिल एक बार कुछ कहे, इसलिए वैसा करो और फिर दूसरी बात कहे, तो दूसरा व्यवहार कर सकते हो, शायद तुम यह सफाई दोगे। परन्तु इसका जवाब यह है कि तुम्हें प्रतिज्ञा लेनी ही न चाहिए। शास्त्रों में कहा है कि प्रतिज्ञा लो, तो उसके लिए मरो। और ये वचन सच्चे साबित करनेवाले थे हमारे हरिश्चन्द्र और रोहिदास, जिन्होंने भंगी के यहाँ सेवा की थी; हम उन धर्मवीरों की सन्तान हैं, यह आप कैसे भूल जायँगे? हाँ; व्यभिचार करने की, झूठ बोलने की प्रतिज्ञा ली हो, तो वह जरूर तोड़ी जा सकती है, क्योंकि इससे मनुष्य अपनी उन्नति करता है। त्याग करने की प्रतिज्ञा कभी बदली नहीं जा सकती। हिन्दू गोमांस न खाने की प्रतिज्ञा अथवा मुसलमान शराब न पीने और सूअर का मांस न खाने की प्रतिज्ञा करे, तो वह बीमार हो, मरने की तैयारी में हो, डॉक्टर आग्रह करते हों कि जरा-सा अभक्ष्य ले लो, तो इससे भी उसे इनकार करना लाजिमी है। इस प्रकार जिन्दगी कुर्बान करके अभक्ष्य छोड़कर अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहनेवाले मनुष्य को ही जब वह जन्नत में जायगा, तब खुदा कहेगा कि 'तू शेर का बच्चा है।'

"दुनिया के तमाम धर्मों में प्रतिज्ञा के बारे में ऐसी कठोर सख्ती है। सत्य की प्रतिज्ञा ली हो, तो गाँव को बचाने के लिए या किसी मनुष्य को बचाने की खातिर तुम असत्य नहीं बोल सकते। प्रतिज्ञा-भंग से हुआ दुःख मुझे किसी भी तरह कह देना ही था। कोई बूढ़ा खूसट आदमी अपनी प्रतिज्ञा तोड़े, तो कुछ-कुछ समझ में आ सकता है; मैं स्वयं बूढ़ा ठहरा, इसलिए कोई भूल कर सकता हूँ। परन्तु तुम तो नौजवान हो, तुममें ताजा खून दौड़ता है, तुम्हें मैं कैसे माफी दूँ? इस अवसर पर कुछ विषयान्तर का खतरा उठाकर भी मैं अपना अनुभव सुनाये बिना नहीं रह सकता। अहमदाबाद में दो वर्ष पूर्व हजारों मजदूरों ने साबरमती के किनारे एक पेड़ के नीचे खुदा को हाजिर मानकर प्रतिज्ञा ली कि जब तक उनकी माँग मंजूर न हो, तब तक वे काम पर

नहीं जायँगे। बीस दिन तक वे टिके रहे। परन्तु बाद में मुझे महसूस हुआ कि वे गिरने की तैयारी में हैं; इसलिए मैंने उन्हें कहा कि 'तुम गिरोगे, तो मैं भी अन्न न लेकर शरीर को छोड़ दूँगा। तुम प्रतिज्ञा न लेते तो हर्ज नहीं था, परन्तु लेकर तोड़ो, यह मुझे असह्य है।' मजदूर रोने लगे, पैरों पड़ने लगे, 'मजदूरी करके पेट भरेंगे, परन्तु काम पर नहीं जायँगे' यों कहकर मुझे अपनी प्रतिज्ञा छोड़ देने को कहने लगे। इस प्रकार उन्हें गिरने से रोकने के लिए मुझे निराहार-व्रत लेना पड़ा था। तुम मजदूरों से ज्यादा तो बेतालीम न बनो; उनसे अधिक नास्तिक तो मत बनो। तुम इन्सान की गुलामी छोड़कर खुदा की गुलामी करो। इस हुकूमत को मिटाना हो, तो गुलामी छोड़नी पड़ेगी। तुम प्रतिज्ञा नहीं लोगे तो स्वराज्य नहीं मिलेगा, सो बात नहीं, परन्तु तुम प्रतिज्ञा तोड़ोगे, तो स्वराज्य जरूर पीछे हटेगा। ऐसे कसम तोड़नेवाले विद्यार्थियों की मदद से मुसलमान मुसलमानों की मदद नहीं कर सकेंगे। इसलिए मैं तुमसे विनयपूर्वक कहता हूँ कि तुम कसम न लो और कसम लो, तो उसे पृथ्वी रसातल में चली जाय, तो भी न छोड़ना। तुममें से इने-गिने ही कसम लेंगे, तो उनसे भी स्वराज्य मिल जायगा। मुसलमान विद्यार्थियों के सामने इमाम हसन और हुसेन के उदाहरण मौजूद हैं। इसलाम को कायम रखनेवाली तलवार नहीं, परन्तु ऐसी अटल टेकवाले जो जबरदस्त फकीर हो गये हैं, उन्हींके कारण वह कायम रहा है। एम० ए० हो जाने से या सेवा-समिति के स्वयंसेवक बनने से या कांग्रेस में जाकर भाषण देने की शक्ति प्राप्त कर लेने से तुम देश को स्वतन्त्र नहीं कर सकते— जितना तुम प्रतिज्ञा का आदर करके और उसका पालन करके कर सकोगे।"

यह सरकार और रावण

इस प्रकार प्रतिज्ञाधर्म पर विस्तार से बोलकर गांधीजी प्रस्तुत विषय पर आये। ऐसा करते हुए उन्होंने सरकार की रावण-राज्य के

साथ उपमा में जरा-सा सुधार किया : "इस राज्य और रावण-राज्य में फर्क नहीं है। कुछ फर्क हो तो भी वह इतना ही है कि रावण के हृदय में कुछ दया होगी, कुछ कम दगा होगा। उसने तो मन्दोदरी से कहा था कि 'दस शिरवाला मैं राम का क्या मुकाबला कर सकता हूँ? तू तो पागल हो गयी है। मैं जानता हूँ कि वे अवतारी पुरुष हैं। मुझे मालूम है कि मैं इतना बुरा हो गया हूँ कि उनके हाथ से मारा जाऊँ, तो भी बुरा नहीं।' परन्तु हमारी हुकूमत को तो खुदा का डर रहा ही नहीं। यह खयाल नहीं कि खुदा के हाथों मरेंगे। वह तो खुदा को घोलकर पी गयी है। उसका खुदा तो उसका तकब्बुर, उसकी दौलत और उसका दगा है। यूरोपियन संस्कृति शैतानियत से भरी है। परन्तु अंग्रेजी हुकूमत सबसे अधिक शैतानियत से भरी है। अब तक यूरोप में मैं अंग्रेजी सल्तनत को कम-से-कम खराब मानता था; अब मुझे इतमीनान हो गया है कि इसके जैसी खुदा को भूली हुई कोई और हुकूमत नहीं है। इस हुकूमत की सेवा मैं नहीं करना चाहता। मैं इसके आश्रय में एक क्षण भी नहीं रहना चाहता।

और गुलाम न बनो

"तुमको मेरे वचनों के बारे में सन्देह हो, तुम्हें मेरी जैसी बुराई उसमें न लगती हो, तो तुम बेशक अपनी पाठशाला में पढ़ते रहो। परन्तु तुम मेरे विचार के हो, तो इस हुकूमत की पाठशाला में गीता पढ़ना भी व्यर्थ है। हमें गुलाम बनाकर रखनेवाली सरकार हमें महल बना दे और उनमें गीता पढ़ाये, डॉक्टरी, साइंस, इंजीनियरी सिखाये, तो क्या वह सीखी जा सकती है? मैं कहता हूँ 'नहीं', क्योंकि सारी शिक्षा में जहर है, सारी तालीम हमें अधिक गुलाम बनाने के लिए है। हमारी लड़ाई धर्म की है, सरकार की अधर्म की है। जो सरकार माइकल ओडायर जैसे कर्मचारी के अपराध जानकर भी उसका बचाव करती है, डायर की हैवानियत जानकर भी उसे केवल विचार-दोष मानती है, उस सर-

कार की मदद कैसे ली जाय अथवा उसके साथ सम्बन्ध कैसे रखा जाय ? उसके साथ सम्बन्ध रखना अधिक हैवान बनने के बराबर, ज्यादा गुलाम बनने के बराबर है।

'हमारे लिए क्या करेंगे ?'

"यह प्रश्न मुझसे करना ही मत। मैं तुम्हें सरकार की गुलामी छोड़कर अपना गुलाम बनने को नहीं कहता। मेरे गुलाम बनना चाहते हो, तो मुझे तुमसे कोई काम नहीं। तुममें इतनी ताकत न हो कि किसी भी तरह अपना पेट भर लोगे, कोई भी परिश्रम करके अपने माता-पिता का पोषण कर लोगे, तो तुम स्कूल-कॉलेज हरगिज न छोड़ो। तुम्हारे लिए व्यवस्था करना हमारा काम है; और हम यथासंभव व्यवस्था जरूर करेंगे। भारत का वातावरण इतना बिगड़ा हुआ है कि शिक्षक, अध्यापक मुझे पागल भी मानते होंगे और उनकी मदद भी न मिले। ऐसे लोगों की मदद मैं नहीं चाहता। परन्तु शिक्षक-अध्यापक न मिलें, तो तुम अपने अध्यापक बन जाओ और अपने ही पैरों पर खड़े हो जाओ। मेरी, मोतीलालजी की या शौकतअली की ताकत पर खड़े रहने की आशा से आते हो, तो जहाँ हो, वहीं खड़े रहना।"

'आज प्रह्लाद कहाँ से लायें ?' इस प्रश्न की कल्पना करके उन्होंने यह कहा कि 'प्रह्लाद इस जमाने में भी हैं।' स्वामी दयानन्द सरस्वती का वृत्तान्त कह सुनाया। किसीने कहा कि आप युद्ध की स्थिति बताकर उसके योग्य काम लेना चाहते हों, तो कोई Excitement—कोई नशा देना चाहिए। गांधीजी ने कहा, "मैं कोई नशा नहीं देना चाहता। तुम्हारी तालीम का नशा तुम्हारे लिए काफी है। मैं तुम्हें ठंडी हिम्मत दिलाना चाहता हूँ। मैं यह चाहता हूँ कि कुर्बानी के लिए—तपश्चर्या के लिए तुम्हारा दिल पाक हो।" 'माँ-बाप की मंजूरी नहीं मिल सकती', इस शिकायत के जवाब में उन्होंने बताया कि "बड़ी बात यह है कि

माँ-बाप बच्चों को नहीं रोक रहे हैं, बच्चे ही माँ-बाप के कहने पर भी पाठशाला छोड़ने को तैयार नहीं हैं। हिन्दू यूनिवर्सिटी में मैंने सौ-डेढ़ सौ लड़कों से पूछा था। उन्होंने कहा था कि हमारे माँ-बाप की हमें इजाजत ही नहीं है, बल्कि वे हमें खर्च देने को भी तैयार हैं; कुछ भी हो। कोई कुछ भी कहे, सरकार द्वारा चलनेवाले स्कूल-कॉलेजों में पढ़ते रहना पाप है, ऐसा तुम्हारी आत्मा कहती हो तो ही तुम उन्हें छोड़ो; कुछ भी अन्देशा हो, तो तुम मालवीयजी की सलाह मानो। मैं तो भारत में पाँच वर्ष से आया हूँ; मालवीयजी ने तो सारी जिन्दगी देश की सेवा में अर्पित की है। इसलिए कहता हूँ कि मेरी आवाज ही तुम्हारी आत्मा की आवाज न हो, तो मालवीयजी की मानो। मेरी आवाज ही तुम्हारी आवाज हो, तो मालवीयजी की सलाह को भी हरगिज न मानो।"

मौलाना आजाद साहब ने अपने छोटे, किन्तु सुन्दर भाषण में दो बातें ये बतायीं कि वे अपनी शिक्षा पर बड़े मुग्ध हैं। राँची में नजरबन्द रहते हुए भी उन्होंने शिक्षा फैलाने के प्रयत्न किये थे और एक स्वतंत्र पाठशाला चलाने के लिए फंड जमा किया था। इसलिए यह तो कोई नहीं मानेगा कि वे शिक्षा के विरुद्ध हैं। दूसरी बात यह बतायी कि किसीके हाथ में देश का अधिक-से-अधिक भला है, तो वह विद्यार्थियों के हाथ में है। और विद्यार्थी आज की अमूल्य घड़ी में अपना भाग अदा न करें, तो देश अपनी वर्तमान स्थिति से नहीं निकलेगा।

इसके बाद उन विद्यार्थियों को अलग हो जाने को कहा गया, जो निश्चयपूर्वक छोड़ना चाहते हों। ७५ कॉलेज के विद्यार्थियों ने और ३५ हाईस्कूल के विद्यार्थियों ने अपना निश्चय प्रकट किया। इन सब भाई-बहनों के साथ गांधीजी ने इस सभा के दूसरे दिन खूब बातें कीं। जिनके अपने भरण-पोषण का साधन न हो, उनकी व्यवस्था करने के लिए नाम लिख लिये गये। दूसरे दिन स्कूल के विद्यार्थियों के लिए गांधीजी ने 'तिलक विद्यालय' खोला। जिन विद्यार्थियों ने स्कूल छोड़ा है, उनसे यह विद्यालय शुरू हो जायगा। पाठशाला के विद्यार्थियों के लिए उन्होंने

समझाया कि अभी तो धैर्य की, रोज नियत समय पर आश्रम में हाजिरी देने की और कातना अच्छी तरह सीख लेने की तालीम जरूरी है। इन विद्यार्थियों के लिए भाई जवाहरलाल नेहरू मकान लेने की तजवीज में थे; वह ले लिया गया होगा। उन्हें सलाह देने और उनके लिए दूसरी व्यवस्था करने का भार भी भाई जवाहरलाल ने ले लिया है।

पहली दिसम्बर को पटना के लिए रवाना हुए। मैं अलाहाबाद में थोड़ा ठहर गया। बापू से अलग होते समय मैं रो पड़ा। श्रीमती जोसफ के साथ मिलन। बापू रात को पटना पहुँचे। मैं दो तारीख को प्रातः पहुँचा।

२-१२-'२० से १३-१२-'२०

[इस बारे में महादेवभाई का 'नवजीवन' वाला पत्र पहले दे देता हूँ।]

रात के नौ बजे हैं। भागलपुर से कलकत्ते जानेवाली गाड़ी में बैठ कर यह पत्र लिख रहा हूँ। यही समय कुछ शान्ति का है। दिन में अनेक सभाएँ, अनेक मनुष्यों की आवाज। रात को प्रत्येक स्टेशन पर सैकड़ों-हजारों मनुष्य दर्शनातुर खड़े ही होते हैं। इसलिए पहली रात तो मजबूरन् जागना ही पड़ता है। रात को दो, तीन और चार बजे लोग न आते हों, सो बात नहीं, परन्तु अन्त में थककर ऊँघ तो आने ही लगती है, इसलिए मनुष्यों के हमले होने पर भी अर्धसुप्त दशा में रहते हैं। परन्तु मेरी पहली रात तो जागरण की ही होती है—गाड़ी चल रही हो, उस समय शान्ति अर्थात् काम के लिए उपयोग होता है।

आज हमारा बिहार का सफर पूरा होता है। बिहार-गांधीजी का माना हुआ बिहार कितने ही महीनों से गांधीजी के दर्शनों के लिए तड़प रहा था। मजहरुल हक साहब के तार तो दो महीने पहले से ही शुरू हो गये थे। अन्त में पिछले मास के आखिर में तंग आकर उन्होंने अन्तिम तार दिया था कि 'आपका वचन फिर टूट गया। अब नहीं आयेंगे, तो

हमें सार्वजनिक जीवन छोड़कर कहीं-न-कहीं भाग जाना पड़ेगा।' गांधीजी काशी में थे, तभी इक साहब ठीक ग्यारह दिन का प्रवास-क्रम तैयार करके वहाँ लाये थे। वह प्रवास उन्होंने जैसा रखा था, उसीके अनुसार आज पूरा हो गया। पहले आरा, पटना, छपरा और दक्षिण में गया जाकर उत्तर की ओर चले: वहाँ से मुजफ्फरपुर, वहाँ से उत्तर में गांधीजी को जिस चंपारण के कारण देश ने पहचाना, वहाँ अर्थात् बेतिया और मोतीहारी; वहाँ से पूर्व में दरभंगा और समस्तीपुर होकर वापस दक्षिण में गंगा के किनारे उतर गये—मुँगेर, जमालपुर, भागलपुर; इस प्रकार ग्यारह दिन में बिहार पूरा हुआ। ग्यारह दिन में तो कोई इलाका पूरा नहीं होता। परन्तु कितनी जल्दी से काम लिया गया, इसकी कल्पना हो सकती है। लोग भी यह समझ गये हैं और हर केंद्र में चालीस-चालीस, पचास-पचास कोस से लोग आ जाते थे।

निरवधि प्रेम

बिहार में गांधीजी और शौकतअली को जिस प्रेम के दर्शन हुए, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। हमारे सफर में एक भी दिन ऐसा नहीं हुआ कि हर जगह खड़ी रहनेवाली गाड़ी का बी० एन० डब्ल्यू० रेलवे का एक भी स्टेशन सैकड़ों मनुष्यों से भरा हुआ न हो। कभी घर से बाहर न निकलनेवाली बहनें गांधीजी को सुनने के लिए जहाँ-तहाँ आये बिना नहीं रहीं। झुंड-के-झुंड विद्यार्थियों ने हर जगह अपने उत्साह से गांधीजी को गद्गद कर दिया है। किसी जगह कोई बहन अपना मूँगे का हार निकालकर गांधीजी से कहती है कि 'यह आपके गले में पहनने को ही देती हूँ', तो कहीं साधुबाबा अपनी मालाएँ गोद में डाल जाते हैं। कहीं सुन्दर हाथ-कताई और हाथ-बुनाई के थान रखे जाते हैं, तो कहीं दूर जंगल से आकर यह कहनेवाले प्रेमी ग्रामीण मिल जाते हैं कि 'महाराज, अपने बाहुबल से हमारी बस्ती को तकलीफ देनेवाले बाघ को मारकर यह चमड़ा आपके लिए लाया हूँ।' किसी जगह 'फॉग

सिग्नलों' से तोप की सलामी देनेवाले और कहीं अपनी हुकूमत के भीतर का सिग्नल न देकर दर्शनों के लिए गाड़ी रोक देनेवाले रेल्वे के नौकर मिलते। अनेक स्टेशनों को छोड़कर चली जानेवाली 'स्पेशल' की परवाह न करके इस श्रद्धा से खड़ी हुई भीड़ दिखाई देती कि 'शायद दर्शन तो हो ही जायँगे और दर्शन नहीं हुए, तो 'गांधी शौकतअली की जय' की आवाज तो अन्त में पहुँचा ही देंगे।' कहीं-कहीं साहस करके सलाम करनेवाले अथवा हाथ छूने के लिए आनेवाले पुलिस के आदमी मिलते, तो कहीं-कहीं 'इस पापी पेट की खातिर इसमें पड़े हैं, फिर भी स्वराज के लिए ये पाँच रुपये तो ले जाइये', ऐसे दीन वचन कहनेवाले खुफिया पुलिस के नौकर भी मिले हैं।

फकीर साथी

बिहार के अनुभवों में दूसरा उल्लेखनीय अनुभव गांधीजी और मौलाना शौकतअली के फकीर साथियों का था। बिहार की देहलीज पर कदम रखने पर दर्शन होते हैं, इसलाम और स्वराज्य के लिए फकीर बने हुए मजहरुल हक साहब के। कहाँ उनकी एकाध वर्ष पहले की नवाबी और शान-शौकत और कहाँ उनकी आज की किसी औलिया को शोभा देनेवाली सादगी! बिहार में बढ़िया-से-बढ़िया बैरिस्टरों में माने जाने-वाले वे आज अपनी कानून की किताबें नीलाम करके यह निश्चय करके बैठे हैं कि 'अब इस जिन्दगी में यह जहर हरगिज नहीं चाहिए।' पटना की सुन्दर-से-सुन्दर मोटरकार में चलनेवाले आज किसी मित्र की गाड़ी मँगा लेते हैं अथवा पैदल चलते हैं; शानदार पोशाक में सल की लामी भी न आने देने की सावधानी रखनेवाले हक साहब आज सिर से पैर तक हाथ-कते, हाथ-बुने लिबास में और कई दिन तक अचकन-पाजामा बदले बिना फिरते हैं; रोज दाढ़ी-मूँछ साफ मूँड़े बिना जिन्हें नींद नहीं आती थी, वे आज यह कहकर कि 'दाढ़ी के बिना मुसलमान कैसा!' चाँदी की तरह चमकती हुई दाढ़ी बढ़ा रहे हैं; रेशमी छींट की गादी पर सोने

और सुबह देर तक उसीमें रहनेवाले हक साहब आज जमीन पर गद्दा बिछाकर सोते हैं और तड़के ही उठकर बन्दगी करते हैं; अगली पहली तारीख से आलीशान 'सिकन्दर मंजिल' उनके बिना सूना हो जायगा; गंगातट पर स्थापित 'सदाकत आश्रम' में अपने चुने हुए विद्यार्थियों को तालीम देंगे और उनकी पत्नी (जो अब्बास तैयबजी साहब के खानदान से हैं) सत्तर रुपये मासिक खर्च से संतोष करके अपने दो पुत्रों सहित देहात में स्थित अपने एक घर में रहने चली जायँगी।

असहयोग के परिणामस्वरूप ऐसे एक ही फकीर हुए हों, तो भी असहयोग असफल नहीं कहलायेगा। परन्तु फकीरों की भूमि भारत को तो बहुत से फकीर यावच्चंद्र दिवाकरौ पवित्र रखनेवाले होंगे। आगे चलकर मुजफ्फरपुर जा रहे हैं, तो वहाँ भी मौलवी मुहम्मद शफीसाहब अपनी धड़ल्ले की कमाई छोड़कर बैरिस्टर न रहकर फकीर बन गये हैं। उनका 'मोती मंजिल' सार्वजनिक कार्य के लिए सौंप दिया गया है और वे एक छोटे-से मकान में रहकर गुजर करेंगे। मुंगेर में गये, तो वहाँ भी बैरिस्टर जुबेर साहब गत पहली अगस्त से अपनी दूकान उठा चुके हैं! हिन्दू भाइयों में पटनावाले बाबू राजेन्द्रप्रसाद, दरभंगावाले ब्रजकिशोरप्रसाद और समस्तीपुरवाले बाबू धरणीधरप्रसाद वगैरह प्रसिद्ध ही हैं।

बहनों का साहस

तीसरी उल्लेखनीय बात है, प्रत्येक स्थान पर हुई स्त्रियों की सभाएँ। हक साहब कह रहे थे कि पटने में स्त्रियों की सभा कितने ही वर्षों में कभी नहीं हुई थी, सो आज होने का अवसर आया। सब स्त्रियाँ हक साहब के घर में ही आयी थीं। घर में भी पर्दा तो रखा ही था। परन्तु गांधीजी और शौकतअली के दर्शन तो हो सकते थे, इसलिए बहनें पर्दे के भीतर से भी इन दो भाइयों के दर्शन कर रही थीं! और द्रव्य की माँग का कैसा जवाब मिला? हक साहब की पत्नी ने अपनी भारी-से-भारी

मोती और माणिक के जड़ाव की चार चूड़ियाँ उतारकर दे दीं। हक साहब को इस बात का पता चला, तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा। उन्होंने कहा, 'इससे ज्यादा कीमती चूड़ियाँ इनके पास नहीं हैं।' किसीने कहा, 'ये हजार-डेढ़ हजार की चूड़ियाँ उतारते उन्हें संकोच नहीं हुआ ?' शौकतअली साहब ने तुरन्त उत्तर दिया, 'उन्होंने अपना मालिक दे दिया है, तो इन चूड़ियों की क्या बिसात ?' शायद ही सौ एक स्त्रियाँ होंगी, फिर भी पहले ही दिन डेढ़ सौ से अधिक रुपयों का वहीं का वहीं चंदा हो गया और बाद में तो बेलगाँव की तरह तीन दिन तक स्त्रियों की तरफ से जेवर आते ही रहे। स्व० बाबू परमेश्वरलाल का पिछले साल अवसान हुआ, उसके बाद गांधीजी पहली बार पटना आये थे, इसलिए उनकी विधवा पत्नी से मिलने गये। केवल बैठने और दिलासा देने गये थे; वहाँ तो घर में से बहुओं और बेटियों के हार गांधीजी के सामने आ पड़े ! और सब जगह भी बहनों ने ठीक-ठीक जवाब दिया ही है। परंतु आज भागलपुर में तो हद हो गयी। उत्साही और गर्भश्रीमंत देशभक्त बाबू दीपनारायण सिंह और उनकी विदुषी पत्नी ने दरभंगा में जो प्रबन्ध किया था, उसमें कोई कसर नहीं रखी थी। उसमें स्त्रियों की सभा का तो वर्णन किया ही नहीं जा सकता। बेशुमार जवाहरात की वर्षा हुई ! हीरे की अँगूठियाँ, मोती और माणिक की चूड़ियाँ, सोने के हार और चाँदी के गहनों का ढेर ! हजारों स्त्रियाँ उपस्थित होंगी। नकद चंदा साढे छह सौ रुपया हुआ। दिल्ली, अलाहाबाद, पटना, भागलपुर की बहनें श्रद्धाहीनों में श्रद्धा नहीं भरेंगी ?

विद्यार्थियों का जोश

लगभग हर जगह विद्यार्थियों की भी सभा तो हुई ही है। प्रेमोन्मत्त विद्यार्थियों के झुण्ड देखकर गांधीजी—अपने समय का हिसाब कभी न भूलनेवाले गांधीजी भी—वक्त भूल जाते हैं, खाना-पीना भूल जाते हैं और केवल विद्यार्थीमय बन जाते हैं और विद्यार्थियों ने जितना ध्यान जन्मभर

किसी शिक्षक की ओर नहीं दिया होगा, उतना इस महाशिक्षक की ओर देते हैं। आजकल के भाषणों में तड़ाक-फड़ाक बातें ही होती हैं। 'मैंने बहुत भाषण किये। तुम यह मानते हो कि गुलामों के मालिक कभी स्वतंत्रता की शिक्षा दे सकते हैं, उनकी पाठशाला में तुम स्वतंत्रता सीख सकते हो, तो पाठशाला मत छोड़ो', 'तुम्हारे बिस्तर में साँप हो, तो तुम्हें दूसरा बिछौना मिले या न मिले, तथापि वह बिछौना तो तुम्हें छोड़ना ही पड़ता है', 'हिन्दुस्तान को स्वतंत्र करने के बाद इंजीनियर, डॉक्टर और वैज्ञानिक बनना', 'दो वर्ष पढ़ने को न मिले, तो खेत बिना जुते रहकर अधिक फसल के लिए तैयार हो जायगा और इस बीच में हाथ-कताई और हाथ-बुनाई तो सीखनी ही है', 'कुछ पढ़ने को न मिले तो रामायण—असहयोग का सबसे बड़ा ग्रंथ—पढ़ो, उसका रटन करो', 'तुम फुटबॉल का मोह छोड़कर अपने खेतों में मिट्टी के ढेलों से खेलो', इस प्रकार की अनेक हृदयंगम गोष्ठियों से विद्यार्थियों का चित्त उन्होंने हर लिया है। उसके परिणाम इस समय मालूम हो रहे हैं। पटना में इंजीनियरी कॉलेज के १३० विद्यार्थी निकल गये। बाकी के जो पाँच-सात रह गये हैं, वे माता-पिता की अनुमति के लिए रुके हुए हैं। विद्यार्थी भवन में से अपने सामान की आठ-दस गाड़ियाँ भरकर निकालीं, उनका जुलूस निकाला और 'सरकारी पाठशालाओं को सलाम' वाले झंडे फहराते हुए दूसरे कॉलेजों के सामने से गुजरे! हक साहब उन्हें सलाह वगैरह देने को तैयार ही हैं। अनेक 'नजरबंद' विद्यार्थियों का किला—मुजफ्फरपुर कॉलेज भी खाली हो रहा है। गांधीजी के जाने के बाद ९ तारीख को ८५ विद्यार्थी निकले, उससे पहले १०-१५ विद्यार्थी निकले थे। पहले जो दस-पंद्रह छात्र निकले थे, वे अच्छा सार्वजनिक कार्य कर रहे हैं। उनमें से एक भाई मनरंजनप्रसाद के गीत—कॉलेज छोड़ने के बाद बनाये हुए गीत अनेकों को गद्‌गद करते हैं! यहाँ की स्थिति शफीसाहब, बाबू ब्रजकिशोर और धरणीधरप्रसाद सँभाल रहे हैं। धैर्य से विद्यार्थी काम करते रहें, तो वे बिहार के दूसरे विद्यार्थियों पर भी अच्छा असर डालेंगे।

अच्छा-अच्छा कह दिया। अब फिर जिस भूमि पर वर्षों से दुःख और अत्याचार निवास कर रहे हैं, उस चंपारण की तरफ चले। डेढ़ वर्ष तक निलहों (प्लांटर्स) के साथ लड़ते-लड़ते गांधीजी ने रैयत को उनके पंजे से मुक्ति दिलायी। उस लड़ाई से उनमें कुछ जोर भी आया जान पड़ता था। परन्तु अभी तक चंपारण के कुछ भागों में तो घोर अत्याचार हो रहे हैं, यह उस दिन बेतिया से चौदह मील दूर स्थित देहात में आँखों देख आये। एक तुच्छ-सी लड़ाई से यह कहर उत्पन्न हो गया! एक सुनार के यहाँ एक आदमी ने चीज बड़ने को दी थी; उस सुनार ने कई महीनों तक वादा पूरा नहीं किया, तो आदमी ने जाकर अड़ंगा डाला। दोनों में लाठी चल गयी और कुछ खून भी बहा। एक ने शिकायत कर दी। पुलिस ने मुकदमों में दूसरे का नाम जोड़ दिया; उस आदमी को पकड़ने आये, उसे गाँववालों ने भगा दिया और कुछ अन्य लोग कांस्टेबलों के आसपास लौट आये। पुलिस का मिज़ाज बिगड़ा और हाथी-घोड़ों पर सवार होकर देहात पर चढ़ाई कर दी। देहाती बेचारे उन्हें देखकर जान बचाकर भाग गये। बाल-बच्चों को घरों में छोड़कर भी भाग गये। पुलिस और उसके साथ आये हुए बाहर के भड़ैतियों ने गरीब ग्रामीणों के भण्डार तोड़ डाले, पेटी-पिटारे तोड़ दिये, जो कुछ दिखाई दिया, ले लिया, तोड़-फोड़ डाला, बखेर दिया और सर्वस्व बर्बाद करके गाँव से जान लेकर भागती हुई स्त्रियों के भी पीछे पड़े। उनमें से एक की साड़ी उतार ली, उस पर धूल डाली, दूसरी शौच गयी थी वहाँ उसे मारा, परेशान किया! रावण की सेना के कृत्यों का यह संक्षिप्त वर्णन तो मैं गांधीजी और शौकतअली के साथ कुलबनिया, सीसबनिया और सेढ़ा ये तीन गाँव देखने गया था, तब उनकी खूब जिरह करने के बाद ली गयी शहादत पर से दे रहा हूँ। हक साहब अलग जाँच की रिपोर्ट तैयार कर रहे हैं। सरकार भी यह साबित करने की तैयारी कर रही है कि यह सारा हाल झूठा है। जिन्होंने इन सर्वनाश हुए गाँवों के चौधारे आँसू देखे हों, वे मनुष्य होकर यह कैसे

कह सकते हैं कि यह सारी लूट की निशानी, जो इस समय मौजूद है, कृत्रिम है ? परन्तु डायर भी तो मानव-जाति में ही पैदा हुआ था न !

इन लोगों को आश्वासन दिया और लौटकर गांधीजी ने उसी शाम को बेतिया में जो भाषण दिया, वह अक्षरशः लेने लायक होने के कारण उसे दिये देता हूँ। (कुछ भाग तो मैंने संक्षिप्त कर ही दिये हैं, परन्तु सारा गांधीजी को बता दिया है।)

बेतिया का भाषण

"चम्पारन मेरे लिए नया नहीं है। मैं जब-जब चम्पारन आता हूँ, तभी मुझे ऐसा लगता है कि भारत में चम्पारन मेरी जन्मभूमि है। मैं चम्पारन के भाइयों के दुःख से दुःखी रहता हूँ। आज जब मैं दो साल बाद यहाँ वापस आया हूँ, तो भी आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपके दुःख को मैं कभी नहीं भूला। चम्पारन जिले को होनेवाला अर्थात् मुझे होनेवाला दुःख मैं हमेशा याद करता ही रहा हूँ और उसके लिए कुछ-न-कुछ करता भी रहा हूँ। परन्तु उसके लिए आप जितना कर सकते हैं, उससे तो वह कम ही होगा। इसलिए आज तो यह कहना चाहता हूँ कि आप अपने को किस तरह बचा सकते हैं।

"मैं आज देहात में होकर आया हूँ। उस बारे में जो सुना था, उससे दुःखी तो हो ही रहा था, परन्तु वहाँ जो कुछ हुआ, उसे आँखों देखकर तो मेरे दुःख का पार नहीं रहा। वहाँ जो अत्याचार हुए हैं, उनमें मुझे इस बार सरकार की भूल दिखाई नहीं देती। मैं जो देखता हूँ, उसमें निलहों की भूल भी नहीं जान पड़ती। हमारे पुलिस अफसरों, उनके मातहत लोगों और देहातियों की ही भूल पाता हूँ। परन्तु हमें इन लोगों के विरुद्ध अदालतों से इन्साफ नहीं लेना है। हम इसका न्याय उन्हीं लोगों से लेना चाहते हैं। पुलिसवाले हमारे भाई हैं, उनका फर्ज है कि वे रैयत का रक्षण करें, भक्षण न करें। मैंने जब सुना कि यहाँ के दारोगा और दूसरे पुलिसवाले भाई वहाँ जाकर अत्याचार कर आये, तब मुझे

अत्यंत दुःख हुआ । वे शायद यह स्वीकार न करें कि उन्होंने ऐसा किया है, परन्तु मेरा खयाल है कि ग्रामीणों ने मुझे जो कुछ सुनाया है, वह सब गलत नहीं होगा । हमारा सबसे बड़ा कर्तव्य यह है कि उन पुलिसवालों को समझायें । मैं यहाँ आये हुए सब पुलिसवालों से कहना चाहता हूँ कि तुम मेरे भाई हो, तुम देहातियों के भी भाई हो, तो मैं तुमसे कहता हूँ कि सरकार तुम्हें गंदा काम सौंपे, तो वह तुम हरगिज नहीं कर सकते । हमें भी तुम अपना भाई समझते हो, तो हमारा काम तुम करो, परन्तु सताओ मत । सरकार के तुम नौकर हो, तो सरकार हमारी नौकर है और इसलिए तुम्हारा फर्ज नहीं कि सरकार तुम्हें कोई गंदा काम करने को कहे, तो तुम करो । परन्तु मौजूदा मामले में तो सरकार का पुलिस को घर लूटने का कोई हुक्म न था, दूसरे देहातियों से लूट कराने का हुक्म नहीं था, स्त्रियों पर जुल्म करने का भी हुक्म नहीं था । इसलिए पुलिस ने जो कुछ किया, उसमें सरकार की कोई तकसीर नहीं, परन्तु पुलिस ने अपनी मरजी से ही सीनाजोरी की है । इसका उपाय यह है कि अच्छे-अच्छे आदमी पुलिस को जाकर समझायें कि तुम्हारी लाल पगड़ी रैयत की रक्षा के लिए है, भक्षण के लिए नहीं, तुमने जो लूटा हो, वह वापस दे दो और यह समझकर कि देहात के लोग भी तुम्हारे हैं, उन्हें अपना बना लो ।

"परन्तु ये अत्याचार रोकने का रास्ता सुझाते हुए पुलिस को समझाने के सिवा दूसरा रास्ता भी है । मैं कह रहा हूँ कि सब दुःखों का निवारण सत्याग्रह है । इस हुकूमत को मिटाने का होने पर भी शान्ति का उपाय बता रहा हूँ । परन्तु शान्ति का उपाय करते हुए भी मैं यह नहीं चाहता कि भारत की रैयत नामर्द बन जाय, पराधीन बन जाय और स्त्रियों की रक्षा के लिए भी असमर्थ रहे । मुझे देहातियों ने क्या बताया, क्या सुनाया ? [यहाँ-वहाँ जो देखा, उसका बयान आता है, जो मैं ऊपर दे चुका हूँ ।] उन्होंने डाकुओं के विरुद्ध क्या किया ? केवल भगदड़ ! मुझे खयाल हुआ कि क्या भारत के लोग इतने नामर्द बन गये हैं कि अपने माल और स्त्रियों की भी रक्षा नहीं कर सकते ? क्या चोरों से रक्षा

करने की भी हममें ताकत नहीं ? चोर लूट ले जायँ और हम भाग जायँ, यह क्या सत्याग्रह है ? तुम अपना धन चोर को लुटा दो, यह दूसरी बात है। तुम्हें न देना हो, तो उसे समझा सकते हो, न समझे, तो उसे मार भी सकते हो। पुलिस अत्याचार करने को तैयार हो जाय और तुम सामने मरने को तैयार हो जाओ, तो मैं कहूँगा कि तुम सत्याग्रही हो, बहादुर हो। परन्तु तुम खड़े-खड़े बेइज्जती होने दो, इससे तो उन्हें मार भगाना अच्छा है। सत्याग्रह का यह अर्थ नहीं है कि स्त्रियों को छोड़कर भाग जायँ, स्त्रियों को अपने सामने नंगी करते देखें। तुम जो लम्बी-लम्बी लाठियाँ लेकर यहाँ आये हो, उनसे मैं पूछता हूँ कि क्या तुम इसे सत्याग्रह समझते हो ? हमारा धर्म नहीं सिखाता कि नामर्द बनें, अत्याचार सहन करते रहें। धर्म सिखाता है कि अत्याचारी का खून लेने से उसे खून देने को तैयार होना अच्छा है। हम इस प्रकार रक्त देने को तैयार हो जायँ, तब तो हम देवता बन गये; परन्तु अन्याय देखकर पलायन करें, तब तो हम पशु से भी बदतर हो गये। हम पशु से मनुष्य हुए हैं। पशु के धर्म करता हुआ तो मनुष्य जनमता ही है; ज्यों-ज्यों समझ आती है, त्यों-त्यों उसमें मनुष्यत्व आता-जाता है। मनुष्यत्व आता-जाता, तब हम पशु-बल का आश्रय छोड़कर आत्मबल पर आधार रखना सीखते हैं। परन्तु कोई हमारे विरुद्ध पशु-बल इस्तेमाल करने आये, उसके विरुद्ध आत्म-बल से खड़ा रहना तो दूर रहा, हम उससे भाग जायँ, तब तो न हम पशु रहे और न मनुष्य ही। हम नपुंसक—नामर्द बन गये। कुत्ते को देखो, वह सत्याग्रह नहीं करता, परन्तु भागता भी नहीं; तंग करनेवाले पर भौंकता है, लड़ लेता है। भारत मनुष्यत्व न दिखा सके, तो अपना पशु-बल तो जरूर दिखा सकता है। आइंदा मैं कभी यह नहीं सुनना चाहता कि सौ आदमी जवान पट्ठे खड़े थे और सिपाही आते देखकर ही भाग गये! मैं यह सुनकर तुम्हें शाबाश कहूँगा कि तुम उनके सामने खड़े रहकर मारे गये। मैं यह सुनकर भी तुम्हें शाबाश कहूँगा कि उनके विरुद्ध अच्छी तरह लड़े। परन्तु कोई मुझसे

कहेगा कि 'हम क्या करें, पुलिस हमें पकड़ ले जाय तो ?' मैं कहता हूँ कि इस प्रकार बचकर जीने से मरना अच्छा। सरकार ने भी तुम्हें अपने जान-माल के लिए लड़ लेने की छुट्टी दी है। कानून में साफ छूट है। कोई भी चंपारनी आइंदा ऐसे मौके पर युद्ध करेगा और मारेगा या मरेगा। मुझसे जैसी शिकायत आज सुनी, वैसी सुनी नहीं जा सकती।

"परन्तु आप मुझे अच्छी तरह समझ लीजिये। मैं आपको सभी समय मारने को तैयार होना नहीं सिखाता। पुलिस वारंट लेकर आये, तब तुम लड़ने निकलो, तो तुम्हारी नामर्दी जाहिर होगी। हम पचास आदमी खड़े हों और एक सिपाही हुक्म देने आया हो, तो उसे मार सकने में आश्चर्य क्या ? तो भी उस हुक्म को मानने में ही हमारी मर्दानगी है। पुलिस का काम तो पकड़ना है। उसका वारंट अनुचित हो, तो भी पुलिस के हाथों में से किसीको छुड़वा नहीं सकते। पुलिस पकड़ते वक्त तुम्हें मारे, गालियाँ दे, तो वह भी तुम्हें सह लेना चाहिए। परन्तु पुलिस तुम्हारे घर में आये, तुम्हारे ढोर-डंगर लूटने आये, तुम्हारा धन लूटने आये, तो तुम जरूर उसका सामना करो और लाठी काम में लो--यदि तुम अपने प्राण देने को तैयार न हो तो। परन्तु एक और शर्त करूँगा। तुम्हें ऐसे मौके पर मारने को कहता हूँ, तो यह नहीं कहता कि कोई चोर आये, तो तुम उसे जान से मार डालो। लड़ाई का भी तो कोई नियम होता है ? लाठी के सामने तलवार उठाना धर्म नहीं, लाठी के सामने मुक्का मारना धर्म है। एक आदमी के विरुद्ध पचास की सेना लेकर जाना धर्म नहीं, नामर्दी है। लाठी के सामने तलवार उठाने से, एक के सामने पचास जाने से, हम नामर्द बन गये हैं।

"मुझे यह डर रहता है कि तुम मेरी इस शिक्षा का कहीं दुरुपयोग न करो। परन्तु मैं चाहता हूँ कि यहाँ बैठे हुए समझदार भाई तुम्हें यह बार-बार समझायें। आज मैं जो देख आया हूँ, उसके बाद मुझे जो महसूस हुआ, वह मैं तुम्हें न सुनाऊँ, तो मैं अधर्म करूँगा, अपना कर्तव्य किये बिना चला गया समझा जाऊँगा, ऐसा मेरा खयाल हुआ। तुम डरपोक

न बनो; नामर्द कभी न बनो; फिर भी मैं चाहता हूँ कि किसीकी हत्या न करो।

"सरकार ने एक भूल जरूर की। स्वयंसेवक वहाँ जाँच के लिए गये, उन्हें धमकाने का प्रयत्न किया गया, फुसलाने की कोशिश की गयी। परन्तु इन धमकियों से तुम डरना मत। स्वयंसेवकों के सिर पर भी बड़ा फर्ज आ पड़ा है। उन्हें निडर होकर, शांति रखकर काम करते रहना पड़ेगा।"

इस भाग का असहयोग सम्बन्धी विवेचन के भाग के साथ मेल अब मैं नहीं दूँगा। असहयोग करते हुए तो जरा भी जब्र काम में न लेने की तीसरी शर्त गांधीजी ने बल-प्रयोग के बारे में कहते हुए रखी, इतना ही यहाँ कह देता हूँ।

[अब महादेवभाई की डायरी से बिहार-यात्रा सम्बन्धी निम्नलिखित हाल दिया जाता है :]

तारीख ४ को किसी मि० गुड फेलो को लिखा :

¶ "आपके पत्र के लिए कृतज्ञ हूँ। आपको यह मालूम है कि हमारी यह सरकार जान-बूझकर शराब की बुराई को बढ़ा रही है? जब तक इस सरकार का नाश न कर दिया जाय अथवा उसमें जड़-मूल से परिवर्तन न कर दिया जाय, तब तक इन लोगों की स्थिति सुधारने के हमारे तमाम उपाय व्यर्थ होंगे। मैं जब कलकत्ते में रहूँ, तब आपसे सहर्ष मिलूँगा।"

उसी दिन रात को आरा जाते हुए रेल से मि० हैदरी को पत्र लिखते हुए श्रीमती हक की दी हुई चूड़ियों की बात लिखी :

¶ "हमने अभी पटना छोड़ा। जनाब मजहरुल हक हमारे साथ हैं। यह पत्र मैं आपको यह बताने के लिए लिख रहा हूँ कि कल रात को बहनों की सभा में दान की माँग की गयी, तब हक साहब की पत्नी ने मोती और माणिक से जड़ी हुई अपनी बडी पसन्द की चार चूडियाँ मुझे

दे दीं। जो अपनी सबसे अधिक पसन्द की चीज अपने देश के लिए और अपने दीन के लिए दे दे, ऐसी उनकी बहन हैं, इसके लिए श्रीमती हैदरी को मेरी ओर से बधाई दीजिये। मुझे तो जिस वक्त उन्होंने अपनी चूड़ियाँ दीं, तब बहुत आनंद हुआ और तैयबजी परिवार के साथ मुझे संसर्ग में लाने के लिए मैंने परमेश्वर का उपकार माना।"

सरलादेवी को लिखे गये पत्र में से :

"यह नहीं हो सकता कि मैं आपको जान-बूझकर न लिखूँ। आपको मुझे संत कहकर नीचे नहीं गिराना चाहिए और अपने-आपको पापी कहकर गौरव नहीं लेना चाहिए। प्रत्येक को अपनी मर्यादाएँ समझ लेनी चाहिए। मित्रों में और प्रेमियों में पापी और महात्मा का भेद नहीं होता। हम सब समान हैं। परन्तु ऐसे समान स्त्री-पुरुषों में कुछ समझदार होते हैं और कुछ मूर्ख होते हैं। कौन समझदार है और कौन मूर्ख, यह किसे मालूम है? परन्तु मुझे इस मान्यता का आनंद लेने दीजिये कि मैं आपसे ज्यादा समझदार हूँ और इसलिए आपको सीख देने और शिक्षित बनाने के योग्य हूँ। परन्तु अक्सर ऐसा हुआ है कि गुरु से चेला बढ़ जाता है। गोरख मछंदर का चेला था, परन्तु गुरु बन गया। आपको सिखाने का प्रयत्न करते हुए आपसे सीखने की समझदारी ईश्वर मुझे दे। आपके गुरुपन से मैं झगड़ा नहीं करूँगा। यदि आप मुझसे बढ़ गयीं, तो मैं तो आपको दी हुई अपनी सारी शिक्षा को सफल मानूँगा। इस विश्वास से ही मैं आपसे चिपटा हुआ हूँ और इसीलिए प्रार्थना करता हूँ कि आपमें नम्रता और पश्चात्ताप आये।"

'नवजीवन' के बारे में उन्हें पूरी तरह निश्चिन्त कर देने के लिए स्वामी आनंद को मुक्तकण्ठ से बधाई देनेवाला पत्र लिखा।

गयाजी की सभा हो जाने के बाद बोधगया के दर्शनों के लिए गये। मोटर में बापू, बा, अबुल कलाम आजाद और मैं थे। रास्ते में आजाद के जीवन-सम्बन्धी कुछ बातें हुईं। आजाद की पैदाइश अरबी है। इनके

पिता और पितामह गदर के समय हिन्दुस्तान में थे। बाद में वे मक्का चले गये थे। वहाँ उनके पिता ने एक अरब औरत से शादी की थी। उसीके ये पुत्र हैं। उन्होंने दस वर्ष मक्का में ही बिताये थे। बाद में उनके पिता अपनी तबीयत अच्छी न रहने के कारण तबीबी सलाह के लिए कलकत्ते चले आये थे। वहाँ उनके बहुत से मुरीद (चेले) हैं। वहाँ अबुल कलाम ने एक बढ़िया आलिम से फारसी पढ़ी। बाद में बगदाद, दमिश्क, काहिरा वगैरह स्थानों पर जाकर अरबी की ऊँची-से-ऊँची तालीम हासिल की। वे अरबी और फारसी में सुन्दर भाषण दे सकते हैं। सन् १९१० में अर्थात् अपनी २१ वर्ष की उम्र में उन्होंने 'अल हिलाल' पत्र निकाला (हिलाल अर्थात् दूज का चाँद)। उस पत्र में हिन्दू-मुसलिम एकता के बारे में जो लेख रहते थे, उनसे उस वक्त मुहम्मद अली जैसे भी विरुद्ध थे। युद्ध के दिनों में युद्ध के बारे में कड़े लेख लिखने के कारण 'अल हिलाल' से दो हजार रुपये की जमानत माँगी गयी। वह जब्त हो गयी। बाद में पाँच हजार की माँगी गयी। वह भी जब्त हो गयी और छापाखाना भी जब्त हो गया। छह महीने बाद वही पत्र 'अल बलाल' नाम से निकाला गया। वह छह महीने चला। मौलाना ने उस वक्त एक पाठशाला खोली। यह गुप्त राजद्रोही मंडली है, इस बहाने उन्हें पाँच साल राँची में नजरबन्द रखा गया। 'अल हिलाल' में पाँच-छह सहायक होने पर भी मौलाना अपने पर ही अधिक-से-अधिक भार रखते थे। जुलाई १९१४ में 'तर्के मवालात' नामक लेख लिखा था। उसमें बताया था कि हमारी लड़ाई तो अंग्रेजों के साथ हो सकती है, हिन्दुओं के साथ नहीं। उन्होंने 'अल हिलाल' में यह राय भी जाहिर की थी कि मुसलिम युनिवर्सिटी में अंग्रेजों का जरा भी सम्बन्ध न होना चाहिए। इसके विरुद्ध मुहम्मद अली ने 'कॉमरेड' में लेख लिखा था। नजरबन्दी के दौरान में राँची में आठेक हजार रुपया जमा करके एक पाठशाला स्थापित की थी। आजकल वे कुरान का उर्दू अनुवाद तैयार कर रहे हैं। राँची की गिरफ्तारी के जमाने में उन्होंने और भी कई पुस्तकें लिखी थीं।

तारीख ८ को शाम के चार बजे बेतिया में बापू अपनी ही सन् १९१७ में स्थापित की हुई गोशाला देखने गये। वहाँ उनके प्रकट किये हुए सुन्दर उद्‌गार उल्लेखनीय हैं :

"हिन्दू-धर्म का बाह्य स्वरूप गोरक्षा है। और जो हिन्दू इस काम के लिए प्राण देने को तैयार न हो, उसे मैं हिन्दू नहीं मानता। मुझे यह काम प्राणों से भी प्यारा है। जैसे नमाज पढ़ना मुसलमान का फर्ज है, वैसे गाय को मारना उसके लिए फर्ज होता, तो मैं मुसलमानों से कहता कि मुझे तुमसे भी लड़ना पड़ेगा। परन्तु यह उनका फर्ज नहीं। हमने उनके विरुद्ध अपने बर्ताव से उनके लिए यह फर्ज बना दिया है।

"सच बात यह है कि गाय को बचाने के लिए हिन्दू खुद उसकी रक्षा करने लगें। कारण, हिन्दू भी गाय की हत्या कर रहे हैं। गाय पर फूँके की क्रिया करके उसका दूध खींच लेना, गाय की सन्तान बैलों को आर भोंककर कष्ट देना, उनसे बूते से अधिक बोझा खिंचवाना—ये सब गाय की हत्या करने के बराबर हैं। गो-रक्षा करने के लिए हमें अपना घर पहले सुधारना चाहिए।

"मुसलमान तो कभी-कभी ही खाने के लिए गाय का वध करते हैं, परन्तु अंग्रेजों का काम तो रोज गो-मांस के बिना नहीं चलता। उनके हम तावेदार हो रहे हैं। जो सरकार धर्म की रक्षा नहीं करती, उसकी पाठशाला, अदालत हमें अच्छी लगती है। यह बात मुझे आज ही मालूम हुई हो सो बात नहीं, परन्तु पहले मैं हुकूमत का गो-भक्षण बर्दाश्त कर लेता था, क्योंकि मैं उम्मीद रखता था कि उससे मैं कुछ-न-कुछ काम ले सकूँगा। परन्तु अब तो वह उम्मीद रही नहीं। इसलिए मैंने उसके विरुद्ध असहयोग घोषित कर दिया है। ऐसे समय गो-रक्षा करना चाहते हों, तो हमें मुसलमानों की बिला शर्त मदद करनी चाहिए। मैं शौकतअली के साथ रात-दिन घूमता हूँ, तो भी उनके सामने गो-रक्षा के बारे में एक हर्फ भी नहीं निकालता, क्योंकि आज तो मुसलमानों की सेवा करना ही मेरा धर्म है। इसके लिए मैं इस

समय अपने पुत्र, स्त्री, मित्र अर्पण करने को तैयार हूँ। हम सरकार पर मुग्ध रहकर गाय की रक्षा नहीं कर सकते। परन्तु सरकार का त्याग करके आप मुसलमानों का हृदय भी पिघला सकते हैं।

"और ऐसी गोशालाओं से गो-रक्षा नहीं हो सकती। गोशाला को तो शहर के लिए सुन्दर दूध मुहैया करना चाहिए। यह तब हो सकता है, जब उनमें हजारों दुधारू गायें हों और गोशाला के पास हजारों बीघे जमीन हो। हम गाय की संपूर्ण रक्षा कर सकेंगे, तभी उनमें से कामधेनु उत्पन्न होंगी। तभी भारत का दुःख, भूख, वस्त्र-हीनता, मानसिक दीनता आदि सब कुछ नष्ट होंगी। ये उद्‌गार अनायास ही मेरे मुँह से निकल गये हैं। ऐसे गंभीर उद्‌गार गो-रक्षा पर मैंने कभी कहीं प्रकट नहीं किये हैं। गोमाता की रक्षा करो और गोमाता तुम्हारी रक्षा करेगी।"

तारीख ९ को सुबह पाँच बजे उठकर 'चंपारन में डायरशाही' शीर्षक लेख लिखा। उसमें सत्याग्रह के रहस्य के बारे में निम्न उद्‌गार प्रकट किये :

"जब भी लूटपाट की घटनाएँ हों, तभी लोगों को अपनी रक्षा करने को तैयार रहना चाहिए। अपनी जान-माल का बचाव करने के लिए सामनेवाले को मारने के बजाय इन्सान अपने-आपको लुटने दे और बहादुरी से मार खा ले, यह ज्यादा अच्छा है। इसमें सचमुच ज्वलंत विजय है। परन्तु ऐसी क्षमा बलवान् दे सकता है, निर्बल कभी नहीं दे सकता। इसलिए जब तक हममें आत्मबल न आ जाय, तब तक अत्याचार करनेवाले का शरीर-बल से सामना करने को तैयार रहना चाहिए। इसमें भी अवसर के लिए आवश्यक से अधिक शारीरिक चोट पहुँचाने का मनुष्य को अधिकार नहीं है। अत्यधिक बल-प्रयोग करना हमेशा कायरता और पागलपन का चिह्न होता है। बहादुर आदमी चोर को मार नहीं डालता, परन्तु उसे पकड़ लेता है और पुलिस के हवाले कर देता है। मनुष्य अधिक बहादुर हो, तो उसे भगा देने के लिए आवश्यक बल-प्रयोग ही करता है और फिर उसका विचार तक नहीं करता। परन्तु

सबसे वीर तो वह है, जो मानता है कि चोर बेचारा पामर है। इसलिए वह उसे समझाने का प्रयत्न करता है। ऐसा करते समय यदि वह मार मारे, तो मार सहन कर लेता है। प्राण चले जायँ, तो भी वह बदले में मारने का विचार नहीं करता। हम इतना तो जरूर करें कि कायर और नामर्द न बनें।"

तारीख ११ को रात को भागलपुर जाते हुए गाड़ी में एक घंटा मिला। उतने में बापूजी ने दो पत्र लिखे। एक बड़ोदादा को और दूसरा सरलादेवी को। बड़ोदादा ने अपने पिछले पत्र में रचनात्मक कार्य का आरंभ करने के लिए कुछ खंडन-कार्य जरूरी है, इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करके बापू के शिक्षा में असहयोग का जोरदार समर्थन किया था। उसके जवाब में लिखा :

॥ "आपके पत्र से मुझे बड़ा आश्वासन मिला है। आपकी सम्मति को मैं आशीर्वाद मानता हूँ। मैं १३ तारीख को कलकत्ते में हूँगा और १४ तारीख को ढाके में। भारत में स्वराज्य स्थापित हुआ देखने को आप दीर्घजीवी हों।"

सरलादेवी को :

॥ "आपके दो पत्र मिले। एक तो परचा था, दूसरा पत्र जरा लंबा था। उनसे जान पड़ता है कि आप मेरी भाषा अर्थात् मेरे विचार समझ नहीं सकतीं। अपने पत्रों में मैंने आपके अटपटे स्वभाव के बारे में अपनी उकताहट नहीं बतायी, परन्तु उस पर मैंने आलोचना की है। कोई मनुष्य जन्म से कुरूप हो, तो उसके लिए वह कुदरत के साथ झगड़ा नहीं करता, परन्तु उसे समझ लेता है और उसे सुधारने की चेष्टा करता है। यह वस्तु क्षम्य है और यही वस्तु मैंने की है। अवर्णनीय जटिलता को मैं कलाकृति नहीं मानता। किसी भी कला का शान्तिपूर्वक पृथक्करण हो सकता है और कॅन्वास पर की विविधता में भी योजना की एकता दिखाई दे सकती है। आपको अपना मित्र आपकी खामियाँ मित्रभाव से बताये, तो भी आप तो उनसे चिपटे रहना चाहती हैं। इससे मैं चिढ़ता नहीं,

परन्तु उसकी सहायता करने का मेरा काम मुश्किल जरूर हो जाता है। मनुष्य चंचल हो और मिजाज करता रहे, इसमें क्या कला होगी? एक अर्थ में तो सरल-से-सरल स्वभाव अवश्य अधिक जटिल होता है। परन्तु उसका पृथक्करण आसानी से हो सकता है। वह सरल इसीलिए कहलाता है कि उसे आसानी से समझा जा सकता है और उसका तुरंत उपाय हो सकता है। परन्तु मुझे आपसे झगड़ा नहीं करना है। आप मेरे लिए एक पहेली हैं। मैं अधीर नहीं होऊँगा। केवल आपसे इतना ही कहता हूँ कि मुझे आपकी जो निश्चित त्रुटियाँ दिखाई दें, उन्हें मैं आपको बता दूँ, तो मुझ पर नाराज न हुआ करें। हम सब कमियों से भरे हैं। मित्र का यह हक है कि हमारा कमजोर पक्ष प्रेम से बतायें। मित्र को जब हम सीख देते हैं अथवा सुधारने का प्रयत्न करते हैं, तभी मित्रता एक दिव्य वस्तु बनी रहती है। हम दोनों एक-दूसरे को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करें।

"शुद्धि पर आपके पत्र की मैं आतुरतापूर्वक राह देखता हूँ।"

१३-१२-'२०

कलकत्ता :

सबेरे कलकत्ता पहुँचे।

ट्रेन में अन्त्यजों पर दूसरा लेख। उसमें के जबर्दस्त उद्‌गार : "मेरी ऐसी भावना है कि धर्म-यज्ञ में मैं देश को भी होमने को तैयार हो जाऊँगा। मेरा स्वदेशाभिमान धर्माभिमान से मर्यादित है। इसलिए यदि देश-हित धर्म-हित का विरोधी हो, तो मैं देशहित को छोड़ देने को तैयार हो जाऊँगा। अंत्यजों को अस्पृश्य मानना अधर्म समझता हूँ। मेरा पक्का विश्वास है कि देश में जब सच्ची धर्म-जाग्रति होगी, तभी स्वराज्य मिलेगा। ऐसी जाग्रति का समय आ ही गया है। इसीलिए मैंने एक वर्ष में स्वराज्य-प्राप्ति संभव मानी है। आकाश में धूल उड़ाने से हमारी ही आँख में पड़ती है, इसमें क्या दलील है? जिसे इस

प्रकार धूल उड़ाने में मजा आता हो, वह उड़ाकर ही सारासार का अनुभव करेगा। अस्पृश्यता के पाप का मैल जमा करके स्वराज्य प्राप्त करने का प्रयत्न आकाश में धूल उछालने के समान है।"

कलकत्ते में दिया गया भाषण :

आपमें से इतने सारे लोग उस हिन्दी भाषा से अनभिज्ञ हैं, जो राष्ट्रभाषा बनने के लिए निर्मित हुई है और इसलिए अलग-अलग प्रान्तों के लोगों की बनी हुई कोई भी सभा या परिषद् भविष्य में अपनी कार्रवाई उस भाषा में करने को बँधी हुई है—यही बता देता है कि हमारी अधोगति कहाँ तक पहुँच गयी है। यह एक ही बात इस अधोगति से हमें निकालकर बाहर लानेवाले असहयोग-आन्दोलन की सर्वोपरि आवश्यकता सिद्ध करने के लिए काफी है। यह सरकार भारत की इस महान् जनता को कई तरह से इस अधोगति तक पहुँचाने का कारण बनी है और आज आपस में एक हुए बिना और एक होने के लिए राष्ट्रीय भाषा के रूप में परस्पर विचार-विनिमय का एक समान माध्यम प्राप्त किये बिना इस अधोगति से बचने का हमारे लिए और कोई मार्ग नहीं।

परन्तु आज मैं यहाँ आपके सामने ऐसे राष्ट्रीय भाषा के माध्यम की हिमायत करने के लिए खड़ा नहीं हुआ हूँ। मैं तो आज राष्ट्र को 'अहिंसात्मक और क्रमशः आगे बढ़नेवाला असहयोग' अख्तियार करने की प्रार्थना करने खड़ा हूँ। इसमें मैंने जितने शब्दों की योजना की है, वे सभी समान महत्त्व के और आवश्यक हैं। 'अहिंसात्मक' और 'क्रमशः आगे बढ़ानेवाला' ये दोनों ही विशेषण सारी वस्तु के हाथ-पैर के समान हैं। मेरे खयाल में तो अहिंसा-धर्म का ही एक अंग है-स्वधर्म है। परन्तु बहुत से मुसलमानों के लिए वह केवल एक साधन है। परन्तु स्वधर्म हो या साधनमात्र हो, कुछ भी हो, तो भी अहिंसा और रक्तपात के अभाव की सर्वोपरि आवश्यकता को पहचाने बिना करोड़ों भारतवासियों के छुटकारे का कार्यक्रम पूरा करने की बात सर्वथा असंभव है। मारकाट

कदाचित् घड़ीभर के लिए सफलता प्राप्त करने में उपयोगी होती जान पड़े, तो भी सब बातें लम्बी दृष्टि से देखने पर अन्त में वह अपने पक्ष में कुछ भी लाभ नहीं दिखा सकती। उल्टे, ऐसी मारकाट से राष्ट्र के स्वाभिमान और शराफत दोनों को भारी धक्का पहुँचता है। सरकारी रिपोर्टों से हम देख सकते हैं कि जिस हद तक हमने रक्तपात का परिचय दिया है, उस हद तक हम पर सैनिक खर्च का भार एकगुना नहीं, दसगुना बढ़ गया है। हमारे कसूर के कारण हमारी गुलामी की बेड़ियाँ और भी मजबूत बना दी गयी हैं। भारत में ब्रिटिश हुकूमत का इतिहास ही इस बात का सबूत है कि हम रक्तपात से कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सके। इसलिए जब मैं यह कहता हूँ कि हमें इस हद तक नामर्द बना देनेवाली सरकार का जुआ गर्दन पर रहने देने के बजाय थोड़ी देर मारकाट का होना भी बर्दाश्त कर लेने को तैयार हूँ, तब साथ-साथ उतने ही आग्रहपूर्वक यह भी लोगों के मन पर जमा देना चाहता हूँ कि रक्तपात करके भारत कभी भी अपनी विरासत वापस नहीं ले सकेगा।

मेरा आदर्श स्वराज्य

लॉर्ड रोनाल्डशे ने मेरा 'हिन्द स्वराज' पढ़कर मेरे देशबन्धुओं को चेतावनी देना शुरू किया है कि मेरे आदर्श के अनुसार स्वराज्य की प्राप्ति के लिए लड़ाई में कूदने से पहले विचार कर लें। यद्यपि मैं आज भी उस पुस्तक में से एक शब्द तक वापस लेने को तैयार नहीं हूँ, फिर भी मुझे कहना चाहिए कि इस समय मैं भारतवासियों को उस पुस्तक में निरूपित स्वराज्य प्राप्त करने के पीछे नहीं लगा रहा हूँ, उसमें बतायी गयी पद्धति स्वीकार करने के लिए मैं इस समय लोगों को नहीं समझा रहा हूँ। मुझे इस बारे में तिलभर भी शंका नहीं कि लोग उस मार्ग को अपना सकें तो एक बरस में नहीं, बल्कि एक ही दिन में स्वराज्य को घर ले आयें। इतना ही नहीं, वह आदर्श प्राप्त करके तो भारत सारी दुनिया में सर्वोपरि बन जाय। परन्तु अभी तुरंत के लिए तो उस आदर्श

की बात एक मनोराज्य मात्र है। अभी तो मैं लोगों के सामने ऐसा ही कार्यक्रम अमल करने के लिए रख रहा हूँ, जो उन्हें पच जाय, उनके गले उतर जाय। अदालतों, डाक, तार और रेलवे के नाशवाला नहीं, परन्तु केवल पार्लमेण्टरी ढंग का स्वराज्य लेने के लिए ही लोगों को समझा रहा हूँ। जब तक हम इस सरकार के साथ सारा सम्बन्ध तोड़ डालने को तैयार नहीं हो जाते, जब तक हम पाठशालाओं द्वारा, अदालतों द्वारा, धारासभाओं द्वारा, प्रबंध और सेना-विभाग में उनकी नौकरी करके, कर देकर और विदेशी माल ले-देकर उनके साथ सहयोग कर रहे हैं, तब तक मैं आपको इतना ही स्वराज्य लेने के लिए कह रहा हूँ।

'बढ़ती के क्रमवाला' क्यों?

जिस क्षण लोगों को यह बात जँच जायगी और असहयोग जम जायगा, उसी क्षण इस सरकार का टूट जाना निश्चित है। यदि मैं यह देखता कि आम लोग ऐसे असहयोग के सारे कार्यक्रम के लिए तैयार हैं, तो मैं उसे तत्काल अमल में लाने के लिए देश को कहने में न हिचकिचाता। परन्तु अभी कानून का अमल कराने आनेवाले सरकारी कर्मचारियों पर गुस्से के मारे टूट पड़ने से आम लोगों को रोका नहीं जा सकता, अभी सेना में हमारे भाई किसी भी प्रकार का दंगा-फसाद किये बिना अपने हथियार रख नहीं देंगे। यदि संभव होता, तो मैं आज ही—इसी क्षण असहयोग का सारा कार्यक्रम एक ही बार में अमल में लाने की लोगों को सलाह देता। परन्तु अभी तक हमने आम लोगों पर इतना काबू नहीं पाया है। हमने राष्ट्र के जीवन के कीमती वर्ष व्यर्थ अंग्रेजी भाषा पढ़ने में बर्बाद किये हैं। उस भाषा के ज्ञान की स्वतंत्रता प्राप्त करने के काम में हमें जरा भी जरूरत नहीं। ये तमाम वर्ष हमने शेक्सपीयर और मिल्टन से स्वतंत्रता को जानना सीखने में बिताये। यह चीज हम घर में बैठकर भी सीख सकते थे। इस प्रकार हम आम लोगों से अलग पढ़कर अलग जाति बना बैठे हैं। हम पश्चिम

के पुजारी बन गये हैं। हमने पिछले ३५ वर्ष शिक्षा पाकर भी शिक्षा का उपयोग जन-समाज में घुल-मिल जाने में करना नहीं सीखा। उच्चासन पर बैठकर हम उनकी समझ में न आनेवाली भाषा में केवल बुद्धिमत्ता बघारते रहे हैं। आज हम देखते हैं कि बड़े जन-समूहों और सम्मेलनों को हम व्यवस्था कायम करके हाथ में नहीं रख सकते। व्यवस्था और अनुशासन तो सफलता के प्राण हैं। अब आप देख सकेंगे कि किन कारणों से मैंने असहयोग के प्रस्ताव में आगे 'क्रमशः वृद्धिंगत' शब्द जोड़ दिये हैं। कोई अविनय न करते हुए मैं आपके सामने कहना चाहता हूँ कि आजकल के किसी भी शिक्षित भारतीय की अपेक्षा जनता की नब्ज मैं अधिक पहचानता हूँ। लोग अभी तक कर देना बंद करने की हद तक जाने को तैयार नहीं हुए हैं। उनमें उस स्थिति के लिए काफी होनेवाला संयम नहीं आया। यदि उनके हाथों कोई मारकाट न होने का मुझे विश्वास हो जाय, तो मैं आज ही आपको कर देना बन्द कर देने की सलाह दे दूँ और लोगों के समय का एक क्षण भी बेकार न जाने दूँ। मेरे लिए तो भारत की स्वतंत्रता ही आज सब कुछ हो गयी है। इस लाभ की आजादी मुझे उतनी ही प्यारी है। इसलिए यदि मुझे यह दिखाई दे कि सारा कार्यक्रम आज ही अमल में लाने में दिक्कत नहीं है, तो मैं एक क्षण का भी विलंब न करूँ।

'अहिंसात्मक' क्यों ?

इस सभा में कितने ही प्यारे और पूज्य नेताओं को अनुपस्थित देखकर दुःख हो रहा है। यहाँ इस समय देश की अमूल्य सेवा करनेवाले सुरेन्द्रनाथ बॅनरजी गरज नहीं रहे हैं। और यद्यपि इस समय हम एक-दूसरे से उत्तर और दक्षिण की तरह दूर हैं, हमारे बीच तीव्र मतभेद फैला हुआ है, तो भी हमें अपने मतभेदों को उचित संयमपूर्वक ही प्रकट करना चाहिए। मैं उन्हें सिद्धान्तों के बारे में रत्तीभर भी रिआयत करने को नहीं कहता; मैं तो केवल वाणी और व्यवहार में संपूर्ण अहिंसा का पालन करने

को कह रहा हूँ। यदि सरकार के साथ हमारे व्यवहार में अहिंसा आवश्यक है, तो वह हमारे नेताओं के प्रति हमारे व्यवहार में तो अवश्य ही अनेक गुनी अधिक जरूरी है। और इसीलिए थोड़े दिन पहले पूर्व बंगाल में हमारे ही लोगों को कुछ लोगों द्वारा सताये जाने का हाल सुनकर मुझे बेहद दुःख हुआ। चुनावों के समय मत देने के लिए गये हुए एक मनुष्य के वहाँ कान काट लिये गये और दूसरे एक चुनाव में खड़े होनेवाले के बिस्तर में मैला डाल दिया गया! इस प्रकार असहयोग की कभी विजय नहीं होगी। जब तक हम सर्वत्र सम्पूर्ण स्वतंत्रता का वातावरण पैदा नहीं करेंगे, अपनी स्वतंत्रता के बराबर ही कीमत अपने विरोधियों की स्वतंत्रता की भी मानना नहीं सीखेंगे, तब तक वह विजय हरगिज प्राप्त नहीं होगी। विश्वास की, अन्तर के नाद की, विचार की और व्यवहार की जो स्वतंत्रता हम माँगते हैं, वह हमें अपने विरोधियों को भी देने को तैयार रहना चाहिए। असहयोग आत्मशुद्धि का मार्ग है; और हमें अपने से अलग हो जानेवालों के अंतःकरण और भावनाओं को जगाने का सतत प्रयत्न करते रहकर भी उनका बाल बाँका नहीं करना चाहिए। अनुशासन और संयम हमारे व्यवहार के मौलिक सिद्धांत हैं और इसलिए मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप किसीके विरुद्ध किसी भी प्रकार का अत्याचारी सामाजिक बहिष्कार करने की ओर प्रेरित न हों। इसी कारण दिल्ली में एक मैयत की पायदस्त के बारे में भी अपमान हुआ सुनकर मुझे अत्यंत दुःख हुआ और ऐसा लगा कि यदि यह अपमान करनेवाले असहयोगी हों, तो उन्होंने अपने व्यवहार से अपने को और अपने पंथ को कलंक लगाया है। मैं बार-बार कहता हूँ कि हम जुल्म या मारकाट से अपने देश की मुक्ति हरगिज नहीं करा सकेंगे।

एक वर्ष में स्वराज्य

मैंने कांग्रेस के व्यासपीठ से यह मजाक में नहीं कहा था कि लोगों की तरफ से पर्याप्त उत्तर मिले, तो एक ही वर्ष में स्वराज्य प्राप्त किया जा

सकता है। इस वर्ष में से तीन मास बीत चुके हैं। यदि हम सचाई पर कुर्बान हों, टेक के पक्के हों, राष्ट्र के वफादार हों, रोज देश-भक्ति के ही जो गीत गाते हैं वे सच्चे दिल से गाते हों, गीताजी और कुरान शरीफ को प्राणों से प्यारे मानते हों, तो बाकी के नौ महीनों में अपना कार्यक्रम पूरा करके दिखा देंगे और इसलाम को, पंजाब को और भारत को स्वतंत्र कर देंगे।

शिक्षित वर्ग की स्थिति को ध्यान में रखकर ही मैंने एक वर्ष में पूरा कर सकने योग्य मर्यादित कार्यक्रम लोगों के सामने रखा है। हम किसी ऐसे भ्रम में पड़े हुए दिखाई देते हैं, मानो धारासभाओं के बिना हमारा काम ही नहीं चल सकता। जिस क्षण हम इस भ्रम से बच जायँगे, उसी क्षण हमें स्वराज्य मिल गया समझ लीजिये। एक लाख विदेशी अंग्रेज तीस करोड़ लोगों से मनचाहा करा सकें, यह सरकार और जनता दोनों को समान रूप में गिरानेवाली बात है। और वे इस प्रकार अपना मनचाहा करा सकते हैं, इसका रहस्य यही है कि उन्होंने आपस में भेद और फूट फैलाकर राज्य किया है। 'फूट डालो और राज्य करो' इस भेदनीति के आधार पर इस देश में ब्रिटिश सत्ता कायम रही है, ह्यूम की यह शुद्ध स्वीकारोक्ति मैं कभी भूल नहीं सकता।

इसीलिए असहयोग की सफलता के लिए मैंने हिन्दू-मुसलिम एकता को सबसे अधिक महत्त्व की चीज माना है। यह भी याद रखना चाहिए कि वह एकता केवल जबानी या सिर्फ बनियाई ढंग के जमा-खर्च पर आधार रखनेवाली हरगिज नहीं होनी चाहिए। वह तो हृदय की विशालता पर, एकदिली पर आधारित होनी चाहिए। अगर हम हिन्दू-धर्म की रक्षा चाहते हों, तो खुदा के लिए मुसलमानों के साथ ऐसे बनियाई हिसाब लगाने के खयाल को दिल में जगह न दीजिये। इतने महीने हो गये, मैं मौलाना शौकतअली के साथ भ्रमण कर रहा हूँ, परन्तु गोरक्षा के लिए एक शब्द भी उनके आगे नहीं बोला हूँगा। अलीभाइयों के साथ मेरा केवल शराफत

का सम्बन्ध है। मैं अपनी शराफत की तरफ देखता हूँ। हिन्दू-धर्म अपनी शराफत की ओर देखे और यदि उसकी शराफत उसे कहे, तो वह मुसल्मानों के प्रति अपना कर्तव्य निष्काम भाव से पालन करे। इसमें किसी भी तरह का बदला देखना हमारे लिए पतनकारी है। विश्वास रखना कि उजाला अपने पीछे उजाला ही लायेगा अँधेरा नहीं; उच्च और निर्मल हेतु से प्रेरित होकर दिखायी गयी शराफत दुगुना उमदा फल देगी; गाय की रक्षा करनेवाला तो एक परमेश्वर ही है। आज 'गाय की रक्षा का क्या होगा', यह मुझसे न पूछिये। एक बार भारत के आत्मबल से इसलाम की रक्षा होने दीजिये; बाद में यह सवाल पूछना। हमारे देशी राजाओं से पूछिये कि वे अपने अंग्रेज मेहमानों के आतिथ्य के लिए क्या-क्या करते हैं? क्या वे उनके लिए गो-मांस और शराब लाकर नहीं रखवाते! पहले उन्हें गोवध करने से रोकिये; बाद में मुसल्मानों के साथ बदला करने का विचार कीजिये। और हमारा अपना गाय और उसके वंश के प्रति कैसा बरताव है? हम अपना घर व्यवस्थित न करें और अंग्रेजों के हाथ से गाय को न बचायें, तब तक मुसलमानों के सामने गाय की वकालत करने का हमें हक प्राप्त नहीं होता। उनके हाथ से गाय को बचाने का राजमार्ग यही है कि इस समय उनके संकट-काल में उन्हें बिना शर्त मदद दें।

इसी प्रकार पंजाब के किस्से से हमने क्या सीखा? हमारे एक पंजाबी भाई को जिस दिन अमृतसर की उस गंदी गली में पेट के बल चलना पड़ा, उस दिन सारा भारत पेट के बल चला; जिस दिन मियाँवाला की एक निर्दोष स्त्री का घूँघट एक उद्धत अंग्रेज अफसर के हाथों उठाया गया, उसी दिन भारत की तमाम स्त्रियों की इज्जत पर हाथ डाला गया; और नाजुक उम्र के कोमल बालकों को पंजाब में मार्शल लॉ के मातहत जब दिन में चार-चार बार भर दुपहरी में यूनियन जैक को सलामी देने के लिए पैदल चलने को विवश किया गया और जिसके परिणामस्वरूप सात-सात वर्ष के दो बच्चों ने प्राण छोड़े, उसी दिन समस्त हिन्दुस्तान के बच्चों

पर सितम गुजरा। मेरे लिए तो जब तक सरकार इन सब पापों का प्रायश्चित्त न करे, तब तक उसके आश्रय में चलनेवाले स्कूल-कॉलेजों में पढ़ना नरक-यातनाएँ भोगने के समान है। हममें स्वाभिमान जैसी कोई चीज हो, तो जिन सरकारी अदालतों में जाब के सैकड़ों निर्दोष मनुष्यों को कैद और फाँसी की सजाएँ हुईं, उनका हम मुँह न देखें। ऐसी सरकार को स्वेच्छा से सहायता देने या उसकी तरफ की मदद स्वीकार करने में हम उसके अपराधों और पापों में हिस्सेदार बनते हैं।

भारत की स्त्रियों ने इस लड़ाई का आध्यात्मिक स्वरूप आंतरिक दृष्टि से ही पहचान लिया है। हजारों बहन जगह-जगह अहिंसात्मक असहयोग का सन्देशा सुनने को चली आयी हैं और स्वराज्य की प्राप्ति के लिए अपने शरीर के जर-जेवर मुझे सौंपकर चली गयी हैं। ये तमाम अलौकिक दृश्य देखने के बाद एक वर्ष में स्वराज्य मिलने की मुझे संभावना दिखाई दे, तो इसमें क्या आश्चर्य? भारत की स्त्रियों की तरफ से मिले हुए इस अलौकिक उत्तर की मैं कम कीमत लगाऊँ, तो ईश्वर का चोर बनूँ, श्रद्धा-हीन पामर कहलाऊँ। मुझे पूरा विश्वास है कि विद्यार्थी अपना कर्तव्य पालन करेंगे। और लोग यह आशा तो रखेंगे ही कि अब तक सार्वजनिक जीवन में आगे रहनेवाला हमारा वकील-वर्ग भी इस नयी जाग्रति को पहचानकर उचित उत्तर देगा।

उपसंहार

मैंने कड़े शब्द कहे हैं, परन्तु बहुत विचारपूर्वक ही कहे हैं। मैं घृणा या द्वेष की भावना से नहीं उबला हूँ। अंग्रेजों को मैं अपना दुश्मन नहीं मानता। बहुत से अंग्रेज मेरे परम मित्र हैं। परन्तु मैं इस समय जिस ढंग की अंग्रेजी हुकूमत बनी हुई है, उसका कट्टर दुश्मन जरूर हूँ। और यदि एक मनुष्य की शक्ति, एक मनुष्य की तपस्या इस हुकूमत का नाश करने में समर्थ हो, तो मैं अवश्य उसका यदि वह न सुधरे, तो नाश करना चाहता हूँ।

जो हुकूमत अन्याय और विश्वासघात को धर्म मान रही है, वह यदि उसके रखवाले तोबाह न करें, तो दुनिया में रहने लायक नहीं। और ऐसी हुकूमत को न्याय करने के लिए विवश करने का लोगों को सामर्थ्य जुटा देनेवाले दिव्य अस्त्र के रूप में ही असहयोग की उत्पत्ति हुई है।

मुझे तो पूरी उम्मीद है कि बंगाल आत्मशुद्धि के आन्दोलन में पूरी तरह भाग लेगा। जब सारा भारत सो रहा था, तब बंगाल ने स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा का सिंहनाद किया था। आज आत्मशुद्धि और आत्म-बलिदान देकर स्वराज्य प्राप्त करने और खिलाफत और पंजाब के मामलों में न्याय प्राप्त करने की इस लड़ाई में भी, मुझे पूरी आशा है कि, वही बंगाल अपनी अग्रगण्यता नहीं छोड़ेगा।

१४-१२-'२०

सवेरे असहयोगी बंगाली आये। उनमें से एक श्यामसुन्दर चक्रवर्ती भी थे। उनके 'सर्वेण्ट' के बारे में बात। 'सर्वेण्ट' के एक संवाददाता ने एक विचित्र सुझाव यह दिया कि 'यंग इंडिया' में राजद्रोह से मुक्त कुछ लेख रहा करें, तो उनमें से 'सर्वेण्ट' में नकल किये जा सकते हैं। नहीं तो उसकी जमानत जब्त न हो जाय! इसी कारण बापू के भाषण में से ब्रिटिश साम्राज्य के नाश-संबंधी उद्‌गार 'सर्वेण्ट' में रिपोर्ट नहीं हुए।

सरलादेवी को रात को पत्र लिखा, जिसका अंश :

"आपके प्रति मेरा प्रेम मेरे लिए भार नहीं है। वह तो मेरे जीवन का एक बड़े-से-बड़ा आनंद है। इसका आधार आपमें अर्थात् आपकी भलमनसाहत में विश्वास पर है। वह तभी मिटेगा, यदि मुझे यह प्रतीत हो जाय कि आप खराब हैं। मेरे प्रेम का कोई मूल्य नहीं, यदि वह आपके भीतर के उत्तम तत्त्व बाहर न ला सके, आप जैसी अब हैं, उससे आपको ज्यादा अच्छी और शुद्ध न बनाये। परन्तु आपको सहायता देने में कभी-कभी मैं आपको बुरा लगने की बात कर बैठूँ, तो उसके लिए

आप मुझे क्षमा कीजिये। मैं इस समय आपका अध्ययन कर रहा हूँ। कोशिश करूँगा कि आपको बुरा न लगे।"

१५-१२-'२०

कलकत्ते से ढाका :

गोलन्दो से नारायणगंज की यात्रा पद्मा नदी में की। बड़े सुन्दर दृश्य देखने में आये। दुर्गा को गोस्वामी में से उद्धरण भेजने शुरू किये। बापू ने 'कर्स ऑफ सीक्रसी' (गुप्तता की बुराई) पर एक लेख लिखा।

ढाका में स्वागत जुलूस में और सभा में भी व्यवस्था जैसी चीज ही नहीं थी, इसलिए बापू ने इस बारे में अपने भाषण में कहा :

"हमने यह माना है कि जलसे करने, चर्चाएँ करने और हाथ उठा देने से ही काम हो जायगा। परन्तु अमली काम इस तरह नहीं होता। अमली काम के लिए भाषणों की जरूरत नहीं होती। आप मुझे राहत देना चाहते हों, मेरी आवाज को बचाना चाहते हों, तो अच्छा इंतजाम करने की शक्ति आपको प्राप्त करनी चाहिए, धूल कम खिलानी चाहिए। मैं बहुत बार कह चुका हूँ कि हमें जुलूस को छोड़ देना चाहिए। जुलूस से काम बिगड़ता है। मैं धूल से अपने-आपको सँभाल लेता हूँ और अपनी आवाज की रक्षा कर लेता हूँ, क्योंकि मैं कुदरत के कुछ कानूनों का पालन करता हूँ। परन्तु आप मुझे पालन न करने दें, तो मैं स्वास्थ्य की रक्षा नहीं कर सकता। हम जय के नारे लगाते हैं, परन्तु इन नारों में संगीत नहीं होता, कला नहीं होती। बंगाल में तो कला-कौशल और संगीत-शक्ति बहुत है। यहाँ मैंने पहले बड़ा मधुर संगीत सुना है।

"हमें अपने संगीत का उपयोग करके सभा व जुलूस व्यवस्थित करने चाहिए। हमारे दीवानखानों अथवा अंग्रेजी शिक्षा पाये हुओं के घरों में ही गाया जानेवाला संगीत भारत का संगीत नहीं कहलाता। साधारण जन-समाज में संगीत का प्रचार करने की जरूरत है।"

× × ×

[आगे चलकर वे बोले :]

"मैं अंग्रेजों का दुश्मन नहीं हूँ। परन्तु मैं मानता हूँ कि इस हुकूमत में शैतानी हवा फैली हुई है। मैं यकीन रखता हूँ कि मुझे खुदा ताकत देगा, तो इस सल्तनत को मैं मिटाऊँगा या सुधारूँगा। यह मेरा परम धर्म है। इस सल्तनत को मिटाये बिना न मैं चैन से बैठ सकता हूँ और न आपको बैठने दूँगा। मैं राजद्रोह का कानून तोड़कर फेंक देने को तैयार हो गया हूँ, क्योंकि मैं शुद्ध हूँ, मेरे दिल में जो है वही कहता हूँ। मैं अंग्रेजों की रैयत नहीं, परन्तु उनका शरीफ वफादार मित्र हूँ। इसीलिए उन्हें इस प्रकार सुना रहा हूँ।"

ढाका की वकील-मंडली के आगे प्रकट किये गये उद्गार उल्लेखनीय हैं :

"केवल कुतूहल से सभाओं में जाना हमें बन्द कर देना चाहिए। मैं आशा रखता हूँ कि जो वकील नहीं हैं, वे यहाँ से चले जायेंगे।

"मैंने यहाँ छोटी-सी मंडली की आशा रखी थी, ताकि हम दिल खोलकर बातें कर सकें। अपना-अपना मत आजादी से प्रकट करें, तो हम एक-दूसरे को अधिक समझ सकते हैं। जिसने बीस वर्ष तक लगातार वकालत की है, ऐसे वकील की हैसियत से मैं आपके सामने बोलना चाहता हूँ। मेरी प्रेक्टिस भी जबर्दस्त थी। यद्यपि मुझे वहाँ बड़े विरोधी वातावरण में रहना था, फिर भी वह भारत के वकील-बैरिस्टरों से कम-नहीं थी। मैंने बिना मुकदमे के बैरिस्टर की हैसियत से बम्बई हाई-कोर्ट में भी वकालत की है। काठियावाड़ में भी वकालत की है। वहाँ मेरी वकालत अच्छी चलती थी। इसलिए मैं आपके सामने बहुत अनुभवी के रूप में बोल रहा हूँ। जिसने शिकार में काफी भाग लूटा है, ऐसे बैरिस्टर के रूप में आपके सामने बोल रहा हूँ। जिस समय मेरी वकालत बहुत धड़ल्ले से चलती थी, उस समय मैंने उसे छोड़ दिया। अपनी प्रेक्टिस में मैंने कभी बुरा पैसा नहीं लिया। फिर भी मुझे वकालत के काम से तिरस्कार पैदा हो गया, क्योंकि वह काम देश

के काम में बाधक होने लगा। मुझे जान पड़ा कि मैं लोगों की अच्छी तरह सेवा कर सकूँ और अपने मुवक्किलों के साथ पूरा न्याय कर सकूँ, इन दो कामों के लिए मैं समय नहीं निकाल सकूँगा। मैंने मुवक्किलों को इकट्ठा करके कहा कि पहले जितना समय देता था, उतने की वे मुझसे अपेक्षा न रखें। 'फुर्सत के समय राजनैतिक काम करनेवाले' ये गोखलेजी के शब्द मेरे कानों में गूँज रहे थे। परन्तु आज मैं आपको इन कारणों से वकालत छोड़ देने को नहीं कहता। आज तो कारण यह है कि जब तक हम उनकी अदालतों में वकालत करते हैं, तब तक इस अन्यायी सरकार का समर्थन कर रहे हैं। यह सरकार हमारी वफादारी और प्रीति का तमाम हक खो बैठी है। हम अदालतों के अफसर कहलाते हैं। मैंने बहुत से निर्दोष लोगों को कानून के चंगुल से छुड़ाने में काफी भाग लिया है। मैं यह भी जानता हूँ कि यह भी हो सकता है कि अच्छे वकील की सहायता के अभाव में मुवक्किल को कष्ट सहना पड़े। फिर भी हम सभी वकालत छोड़ दें और किसी निर्दोष मनुष्य को फाँसी पर लटकना पड़े, यह क्या आदर्श स्थिति नहीं है? ऐसा हो, तो कानून की अदालतें सड़ उठेंगी। यहाँ के प्रख्यात वकील श्री मनमोहन घोष ने कहा है कि कानूनी अदालतें कई बार अन्याय के साधन बन जाती हैं। जब न्याय प्राप्त किया जा सकता है, तब भी उसे प्राप्त करने में कितनी देर लगती है और कितना खर्च होता है? न्याय महँगा हो गया है, क्योंकि हमारे यहाँ मनमोहन घोष जैसे वकील बहुत विरले होते हैं। वे कितने ही दीवानी और फौजदारी मुकदमे मुफ्त लेते थे। परन्तु यह कार्यक्रम तो अक्षरशः एक ही वर्ष का है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप सब वकालत छोड़ दें। मुझे आप पर विश्वास है, क्योंकि मैं भी उसी परंपरा में पला हूँ और जानता हूँ कि देश-सेवा के नशे के बिना आप जी नहीं सकते। मैं तो चाहता हूँ कि अदालत में प्रेक्टिस करनेवाले किसी भी वकील के लिए सम्मान और गौरव के साथ सार्वजनिक मंच पर खड़ा रहना असंभव हो जाय। मैं आपको अधिक उच्चकोटि के मंच पर लाना चाहता हूँ। अब तक

आप गरीबों के बेली बनने के बजाय अमीरों के मददगार हुए हैं। अब मैं चाहता हूँ कि आप यह छोड़कर राष्ट्र की सेवा में भाग लें। परन्तु जब तक आप अपना हजारों रुपया कमाना जारी रखेंगे, तब तक आपसे ऐसा नहीं हो सकेगा। मुझे कहा जाता है कि सच्चा बंग देश तो पूर्व बंगाल है। आप यह दिखा दीजिये कि आप बंगाल का जो सर्वोत्तम है, उसके प्रतिनिधि हैं। मैं बंगाल के किसानों और आम लोगों के सम्पर्क में आना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि ऐसा समय आये, जब लोग पदवीधारियों की, वकालत न छोड़नेवाले वकीलों की, स्कूल-कॉलेज न छोड़नेवाले विद्यार्थियों की और स्वेच्छापूर्वक सरकार का समर्थन करनेवालों में से किसीकी भी बात सुनने से इनकार कर द। यह शैतानी पाश मेरे ऐसा लिपटा है कि मुझमें से भी गुलामी पूरी गयी नहीं है, क्योंकि इस सरकार की रेलगाड़ी में सफर किये बिना, उसके तार-डाक का उपयोग किये बिना मैं भी काम नहीं चला सकता। परन्तु मैं व्यवहार-कुशल आदमी हूँ। जो तर्कयुक्त हो उस पर अमल न कर सकूँ, तब मैं स्वीकार कर लेता हूँ कि यह मेरी कमजोरी है। इन रेलवे वगैरह से मुझे इतनी अरुचि है कि संभव हो तो मैं पैदल चलकर या नदी में तैर ढाका आऊँ। परन्तु ऐसा करूँ, तो आपके गवर्नर रोनाल्डशे साहब कहेंगे कि गांधी तो पागल है। इसलिए जो कार्यक्रम मैं आपके सामने रख रहा हूँ, वह तो अभी तक बहुत पश्चिमी ढंग का है। अभी मैं जिस स्वराज्य के लिए लड़ाई लड़ रहा हूँ, वह तो देशबन्धु दास और दूसरे राजनैतिक पुरुषों की आकांक्षा का स्वराज्य है। कांग्रेस जिस स्वराज के लिए लड़ रही है, वह विदेशियों के नियंत्रण से सर्वथा मुक्त पूरी तरह पार्लमेण्टरी ढंग का स्वराज है। स्वराज्य का अपना आदर्श तो मैंने 'हिन्द स्वराज्य' में बताया है। उसके एक शब्द में भी फेर-बदल करने को मैं तैयार नहीं हूँ। आज हमें लोगों की माँग के अनुसार स्वराज्य चाहिए। यह व्यावहारिक स्वराज्य है। उसमें हम बड़ा सैनिक खर्च करने, लंकाशायर की मिलों की मदद करने और चेम्सफोर्डों और डायरों को रखने से इनकार कर सकेंगे।

"हम जब कमर टेढ़ी करके काम करने को तैयार होंगे, किसीके भी सामने लाचार बनकर खड़े नहीं रहेंगे, तब वकालत छोड़ देने के बाद हमारा कुटुम्ब बीस आदमियों का होगा, तो उसका भी इज्जत के साथ गुजर चलाने की हममें शक्ति आ जायगी। मैं इसका विश्वास दिलाता हूँ कि पश्चिम के आदर्शों के अनुसार नहीं, परन्तु हमारी सादा जरूरतों के योग्य गुजारा आपको मिल जायगा। इस वक्त स्वदेशी के काम में बुद्धि और हृदय पूर्वक ईमानदारी से काम करनेवाले हजारों आदमियों की जरूरत है। स्वदेशी में तो मैं स्वराज्य के, स्वधर्म के और स्त्रियों के पावित्र्य के दर्शन कर रहा हूँ। जैसे बालक माता के स्तनों से चिपटा रहता है, वैसे ही मैं स्वदेशी से चिपटा हुआ हूँ।"

[इसके बाद वकीलों के साथ कुछ प्रश्नोत्तर हुए, जो ऐसे ही थे जैसे अन्यत्र होते हैं।]

१६-१२-'२०

गेण्डारिया आश्रम गये। बड़ी सादगी और शान्ति। सुबह ग्यारह बजे नारायणगंज से चले। रास्ते में बापू खूब सोये। पद्मा नदी में नौ घंटे का सफर, फिर क्या पूछना? 'गुप्तता का पाप' वाला लेख सुधारा। 'यंग इंडिया' के लिए टिप्पणियाँ लिखीं। कलकत्ते के भाषणों का मेरा विवरण सुधारा। शाम को कलकत्ते के दो बैरिस्टर श्री मित्र और मि० मेयर के साथ बातें हुईं। [वह वार्तालाप नीचे दिया गया है।]

रात को देश के साधारण शिक्षकों पर बात निकली। बापू ने कहा: मैंने ऐसे शिक्षक देखे हैं, जिन्होंने पुस्तक के बाहर सिर ही न निकाला हो। शिक्षकों को एक सुन्दर पदवी दी। हमारे शिक्षक 'पंचांग भट्ट' जैसे होते हैं।

सरलादेवी को पत्र लिखा। ब्रुक्स के पत्र के उत्तर में छोटा-सा पत्र लिखा और उसकी 'यंग इंडिया' में चर्चा की। 'मॉरल वेल्यूज' नाम का अत्यंत उदात्त कोटि का छोटा लेख लिखा।

'गुरखा' स्टीमर पर बातचीत

हमारी यात्रा में सदा कष्ट ही वर्णन करने को नहीं होते। ढाका जाते हुए गोलंदो से नारायणगंज और नारायणगंज से गोलन्दो तक के पद्मा नदी के सफर ने हमारे सारे सफर का श्रम भुला दिया। नौ घंटे की यात्रा में केवल दो-तीन जगह स्टीमर रुके, इसलिए अक्सर घंटेभर में सात-आठ बार खड़ी होनेवाली और कभी-कभी कम-से-कम घंटेभर में एक बार खड़ी होनेवाली रेलगाड़ी की तुलना में स्टीमर पर की शान्ति का पार ही क्या ? रेल के सफर की-सी अशान्ति नहीं, बेसुरा गड़गड़ाहट नहीं, आकुलता नहीं। स्टीमर का सफर होने पर भी स्टीमर को ऊँची-नीची उछलनेवाली लहरें नहीं लग रही थीं। समुद्र की तरह विशाल होते हुए भी सरोवर जैसी शान्त पद्मा पर स्टीमर रेशम की डोरी पर मोती की तरह सरकता जा रहा था। और आसपास के दृश्य–जिनमें प्रभात का अवर्णनीय सूर्योदय कुछ और ही खूबी भर रहा था–यह रेल के सफर में कहाँ ?

परन्तु मैं इस सफर की लज्जत बयान करने नहीं बैठा हूँ। स्टीमर 'गुरखा' पर हुई एक सुन्दर बातचीत का सार देना ही इस पत्र का उद्देश्य है। लगभग ७ बजे शाम को नारायणगंज से हम वापस लौट रहे थे, तब स्टीमर में गांधीजी की शान्ति का दो अपरिचित मित्रों ने भंग–मधुर, मनोनुकूल भंग–किया। दोनों सज्जन बैरिस्टर थे; एक अंग्रेज थे और दोनों का पेशा धड़ल्ले से चलता होगा, ऐसा उनकी बातचीत से लगता था। दोनों की बातों में विनय की कमी नहीं थी और वे केवल जिज्ञासा से ही प्रेरित होकर गांधीजी से बातें करने आये थे। असहयोग के बारे में कुछ बातें पूछीं।

भारतीय भाई ने पूछा–तो असहयोग का तात्कालिक हेतु तो अन्याय का विरोध करना ही है न ?

गांधीजी—नहीं, विरोध नहीं, शुद्धीकरण। हमारे अपने शुद्धीकरण द्वारा विरोधी का शुद्धीकरण।

अंग्रेज भाई—और पाप का संग-त्याग ?

गांधीजी—ठीक, पाप का संग-त्याग।

अंग्रेज भाई—तो क्या आपका यह खयाल है कि आप यह शुद्धीकरण कुछ उत्पन्न कर सके हैं ?

गांधीजी—मैं इस वक्त देश का जो पर्यटन कर रहा हूँ, उसमें लोगों को निग्रह, स्वावलम्बन सीखते देखकर तो आश्चर्यचकित हो रहा हूँ। किसान-वर्ग में भी ये दोनों चीजें विकसित हो रही हैं और ब्रिटिश अफसर भी इसके असर से अछूते हों, ऐसा मुझे नहीं लगा। उनके मन भी स्वच्छ होते जा रहे हैं।

अंग्रेज भाई—यह शुद्धीकरण उत्पन्न करके आप अंग्रेजों से क्या कराना चाहते हैं ? अंग्रेजों के व्यवहार में क्या परिवर्तन चाहते हैं ?

गांधीजी—मैं ऐसी स्थिति उत्पन्न करना चाहता हूँ कि प्रत्येक अंग्रेज हरएक हिन्दुस्तानी को अपने जैसा समझने लग जाय। अंग्रेज अभिमान के शिखर पर बैठकर बात करते हैं। उन्हें मैं नीचे उतारकर मामूली-से-मामूली मजदूर को अपने जैसे माननेवाला बना देना चाहता हूँ। मैं ऐसी स्थिति पैदा करना चाहता हूँ कि वे किसी भी व्यवहार में भारतीयों की अवहेलना न करें, व्यवहार में वे उन्हें अपना बराबरी का हिस्सेदार समझें। और किसी भी शर्त पर उन्हें भारत में स्थान नहीं। अंग्रेज और भारतवासी दोनों में इस समानता के भाव का अनुभव हो, साक्षात्कार हो, तो समझ लेना चाहिए कि हमारे देश को तुरन्त ही स्वराज्य मिल गया। और यह परिणाम लाने के लिए प्रतिष्ठा और इज्जत की जो झूठी मूर्तिपूजा प्रचलित है, उसका नाश हो जाय, तो काफी है। आज जहाँ देखिये, वहाँ क्या पाया जाता है ? अंग्रेजों से डरनेवाले हिन्दुस्तानी—अपने विचारों को दूसरों से छिपानेवाले भारतीय, इससे अधिक अवनतिकर और क्या हो सकता है ?

अंग्रेज भाई—आप कहते हैं कि प्रत्येक अंग्रेज भारतीय मजदूरों को अपने जैसा समझें, क्या यह बहुत अधिक नहीं है ? क्या प्रत्येक भारतीय

सज्जन मजदूरों को अपने जैसा ही समझता है? आप इतना चाहें, तब तो उचित है कि प्रत्येक अंग्रेज जैसा बर्ताव अंग्रेजों के प्रति रखता है, वैसा ही भारतीयों के साथ रखे। कोई अंग्रेज 'स्क्वायर' (जमींदार) अपने किसानों से जो सलूक करे, वैसा ही अंग्रेज भारतीय मजदूरों के साथ भी करें।

गांधीजी—वाह, यह तो आपने मुझसे भी सुन्दर भाषा काम में ली। मेरे कहने का तात्पर्य यही है।

अपराधियों के लिए क्या चाहते हैं ?

भारतीय भाई—तो अत्याचारी सरकार के साथ असहयोग का तात्कालिक हेतु भी शुद्धीकरण ही कहते हैं? फिर शुद्धीकरण से दूसरे ऐहिक लाभ प्राप्त हों या न हों, इसकी चिन्ता नहीं?

गांधीजी—हमारी तपस्या शुद्ध और पूर्ण होगी, तो ऐहिक लाभ तो अपने-आप ही भीतर से फलित होंगे। उदाहरणार्थ, पंजाब के अत्याचारों के बारे में कुछ भी करने को नहीं रह जायगा, पंजाब के एक भी अपराधी को फिर भारत में खड़े रहने को स्थान नहीं मिल सकता। इतना ही नहीं, किसी भी अपराधी को हमारे खजाने से वेतन या पेंशन नहीं दी जा सकेगी।

अंग्रेज भाई—तो क्या सजा आपने अंग्रेजों के लिए ही रखी है! भारतीयों ने—साधारण वर्ग के भारतीयों ने भी अपराध तो किये थे। उनका क्या होगा?

गांधीजी—यह प्रश्न आश्चर्यजनक है। हमारे अपराधों की अपेक्षा हमें हजार दर्जे अधिक सजा मिल चुकी है। मैं विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि जिन्होंने अपराध किये थे, वे तो सजा पा गये। इतना ही नहीं, निरपराध भी सैकड़ों मारे गये। निर्दोष मनुष्यों को जेल जाना पड़ा है। बच्चों को भी कष्ट भोगने पड़े हैं। निर्दोष स्त्रियों का अपमान हुआ है। जलियाँवाला का कत्ल भी निरपराधों का ही था। इससे अधिक सजा क्या

हो सकती है ? परन्तु मैंने अंग्रेज अफसरों को सजा देने की तो बात ही नहीं की। इतनी ही बात कही है कि उन्हें अब हिन्दुस्तान से रुपया न मिलता रहे, वे पदवियाँ न रखें, पद न रखें। उनकी सजा तो उनमें से कुछ के लिए फाँसी ही हो सकती है। इसे मेरे धर्म में स्थान नहीं। मैं नहीं जानता कि भारत क्या चाहेगा।

[इसी अवसर पर मुझे (महादेवभाई को) एक बात याद आ रही है। मि० एण्ड्रूज ने जलियाँवाला बाग की कत्ल की 'ग्लांको की कत्ल' के साथ तुलना की, तब मैंने तुरत ही 'यंग इंडिया' में ग्लांको के कत्ल का वर्णन प्रकाशित किया। मि० एण्ड्रूज के मन में जलियाँवाला की निर्दयता के बारे में कितनी घृणा होगी, यह प्रकट करने के लिए ही मैंने यह छापा था। परन्तु मुझे फिर पढ़ने के बाद ऐसा लगा कि एण्ड्रूज ने कुछ अन्याय किया है और मुझे इसके लिए बड़ा दुःख हुआ। मैं प्रिंसिपल रुद्र से मिला, उनसे बातचीत हुई। उनका विचार भी मेरे जैसा ही था। परन्तु अब मुझे मि० एण्ड्रूज की तुलना की यथार्थता का ख़याल आ रहा है। अब मेरा ख़याल है कि ग्लांको के कत्ल* से भी जलियाँवाला की कत्ल अधिक बुरी, अधिक निन्द्य थी, क्योंकि ग्लांको के समय और आज के समय के सुधार में जमीन-आसमान का फर्क है।]

---

*इंग्लैण्ड के राजा दूसरे जेम्स को गद्दी से हटाकर उसकी लड़की मेरी और जँवाई प्रिंस ऑफ ऑरेंज को (तीसरे विलियम के रूप में) सिंहासन पर बिठा दिया गया। स्कॉटलैण्ड के पहाड़ी प्रदेश के कुछ ठाकुर दूसरे जेम्स के प्रति सहानुभूति रखनेवाले थे। स्कॉटलैण्ड के सपाट प्रदेश के कुछ नेता तीसरे विलियम के सहायक बने थे। उन्होंने उन पहाड़ी ठाकुरों को झुकाने के लिए विलियम से यह हुक्म निकलवाया कि १ जनवरी १६९२ से पहले तमाम ठाकुर राजा के प्रति वफादारी की शपथ लें। जो न लेंगे, उन्हें मौत की सजा दी जायगी। वे सहायक नेता—ग्लांको के गर्वीले और बहादुर मैक्डोनाल्ड गोत्र के प्रति बहुत कटुता रखते थे। गोत्र के मुखिया मॅक इयान को बरफ के तूफान के कारण सौगंद लेने जाने में जरा देर हो गयी और उसने निश्चित अवधि के बाद सौगंध ली। परन्तु उसके सौगंध लेने की बात दबी रखकर उन स्कॉट नेताओं

भारतीय भाई—आप यह कैसे कहते हैं कि सरकार ने धर्म पर आक्रमण किया है ? सरकार तो विजयी मित्रराज्यों की बड़ी मंडली में एक हिस्सेदार ही है।

गांधीजी—आप जैसे के मुँह से ठेठ आज की घड़ी ऐसा सवाल निकलता देखकर मैं चकित रह जाता हूँ। तुर्की का नाश करने में इंग्लैण्ड का मुख्य भाग है। प्रधानमंत्री का किया दिल में चुभ रहा है। उसे वचन-भंग करना पड़ा है और इससे उसने मुसलमानों के दिलों में घाव कर दिया है।

भारतीय भाई—खैर, दूसरी तरफ मुड़िये। आप पाठशालाएँ खाली करा रहे हैं, परन्तु शिक्षा की कोई और व्यवस्था भी करते हैं ?

[गांधीजी ने इसके उत्तर में गुजरात में हो रहे शिक्षा-कार्य का विस्तृत वर्णन किया।]

भारतीय भाई—तो क्या प्रचलित शिक्षा-प्रणाली बुरी है ?

ने राजा विलियम के कान भरे। उससे मॅक इयान और उन 'डाकुओं' को मार डालने का हुक्म जारी करा दिया। सारे मैक्डोनाल्ड गोत्र का सफाया कर देने के लिए उन्होंने कॅम्पबेल गोत्र के आदमियों को बनाया, जिनका मैक्डोनाल्डों के साथ पुश्तैनी वैर था। उस गोत्र के एक आदमी कॅप्टन कॅम्पबेल के साथ मॅक इयान का अच्छा संबंध था। उसका अनुचित लाभ उठाकर उसने यह अधम कृत्य करने का भार उठाया। १ फरवरी को वह अपने कुछ आदमियों के साथ मॅक इयान के यहाँ जाकर मेहमान रहा। इस बीच उसने ग्लांको की घाटी के सब नाकों पर अपने आदमियों को रखने का बन्दोबस्त कर दिया, जिससे ग्लांको से कोई भागकर न निकल सके। सब व्यवस्था हो जाने के बाद अर्थात् १३ फरवरी को सुबह पाँच बजे जिस समय मैक्डोनाल्ड सो रहे थे, तब पहले से रचे गये षड्यंत्र के अनुसार कॅम्पबेल उन पर टूट पड़े और निर्दयता से उनका वध कर दिया। इसमें स्त्रियों और बच्चों को भी नहीं छोड़ा गया। जो आसपास के पहाड़ों में भाग गये, वे वहाँ की कड़ाके की बर्फ जैसी ठंड में जाड़े और भूख से मर गये। इतिहासकार ग्रीन लिखता है कि इस हत्याकाण्ड की बात सुनकर उन षड्यंत्रकारी नेताओं में से एक बोला : 'मुझे अफसोस इतना ही है कि शायद कोई बच गया होगा।'

गांधीजी—यह प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। फिर भी उसका जवाब देने में मुझे बाधा नहीं है। मैं कहता हूँ कि हाँ, वह बुरी है। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने के कारण विद्यार्थी के दिमाग पर दोहरा बोझा डाल दिया गया है। मैं अपने विचार तो आपसे क्या कहूँ? प्रोफेसर जदुनाथ सरकार जैसे कहते हैं कि इस विदेशी माध्यम की प्रथा द्वारा शिक्षित वर्ग के मस्तिष्क निर्वीर्य हो गये हैं, सारी कल्पकशक्ति या सर्जन-शक्ति ही हममें नष्ट हो गयी है। हमारा सारा समय परायी भाषा के उच्चारण और रूढ़ि-प्रयोग याद रखने में व्यतीत होता है। यह काम ही एक बेगार जैसा है। और परिणाम यह हुआ कि हम युरोपियन सुधार के स्याही-चट बन गये। दूसरा फल यह निकला कि हमारे और आम लोगों के बीच में समुद्र जैसा बड़ा अन्तर पड़ गया। हम उन्हें उनकी समझ में आने योग्य भाषा में राजनैतिक विषय तो क्या, शरीर-स्वास्थ्य और सफाई के तत्त्व भी नहीं समझा सकते। इस जमाने में हम पुराने ब्राह्मणों जैसे बुरे बन गये हैं। बल्कि उनसे भी अधिक खराब। कारण, उनके अन्तर मलिन नहीं थे; वे राष्ट्र की सभ्यता के 'ट्रस्टी' थे। हम तो वे भी नहीं रहे। हम तो अपनी शिक्षा का अनुचित उपयोग कर रहे हैं। और आम लोगों के प्रति तो हम ऐसा बर्ताव कर रहे हैं, मानो हम उनके संरक्षक हों। मैं चाहता हूँ कि आप इस मामले में मेरे विरुद्ध जिरह करें। परन्तु इतना कह दूँ कि ये विचार मेरे आज के नहीं, अनेक वर्षों के अनुभव के फलस्वरूप हैं।

अंग्रेज भाई—इस दिशा में हमने विचार ही नहीं किया, इसलिए इतना ही कह सकते हैं कि इस पर विचार करेंगे।

गांधीजी—यह ठीक है। एक बात कहना भूल गया। यह तो मैंने कहा ही नहीं कि इस प्रणाली से हमारी आत्मा का हनन हो गया है। आप धर्म-निरपेक्ष शिक्षा की ही पूजा करते आये हैं, इसलिए हिन्दुओं को कोई धार्मिक शिक्षा नहीं मिल सकी। इंग्लैण्ड में तो यह

दुष्परिणाम बिलकुल नहीं आया। वहाँ धर्मगुरु कुछ-न-कुछ धर्म-शिक्षा देने का प्रबंध कर लेते हैं।

भारतीय भाई—सच बात तो यह है कि लूट के धन से आप अपने बच्चों को शिक्षा नहीं देना चाहते; नहीं ?

गांधीजी—हाँ, लूट के धन से ही नहीं, परन्तु लूट करनेवालों के झंडे तले भी नहीं। मैंने कहा कि जिस सरकार के प्रति हमें बिलकुल निष्ठा नहीं रही, प्रेम नहीं रहा, उसके मातहत पाठशालाओं के साथ हमारा वास्ता न होना चाहिए। मैं आपसे एक सादी बात कहूँ। एक समय ऐसा था कि मैं स्वयं 'गॉड सेव दि किंग' (रक्ष देव तू महाराजा) अत्यंत उमंग से गाता था। इतना ही नहीं, अपने अंग्रेजी न जाननेवाले लड़कों को भी मैंने यह गीत कण्ठस्थ करा दिया था। जब मैं अफ्रीका से राजकोट आया, तब मैंने ट्रेनिंग कॉलेज के विद्यार्थियों को भी यह गीत सिखाया, क्योंकि मैं समझता था कि सच्चे राजनिष्ठ मनुष्य को तो यह गीत आना ही चाहिए। मगर आज क्या हालत है ? आज मैं अपने हृदय पर हाथ रखकर न गा सकता हूँ और न किसीसे गवा ही सकता हूँ। मैं यह कहूँगा कि राजा जॉर्ज एक सज्जन के नाते बहुत जियें, परन्तु यह मैं नहीं गा सकता कि मनुष्य और देव के सामने अधम बना हुआ साम्राज्य क्षणभर भी जिये।

भारतीय भाई—आप कह चुके हैं कि पढ़ाने की पद्धति कैसी है, इसकी आपको परवाह नहीं।

गांधीजी—हाँ, सच है।

भारतीय भाई—हमारे विश्वविद्यालय तो भारतवासी ही चलाते हैं; उनकी नीति निर्माण करनेवाले भी भारतवासी ही होते हैं।

गांधीजी—हाँ, सच बात है। विश्वविद्यालयवाले मेरी सुनें, तो उनसे मैं यही कहूँ कि आप अपने 'चार्टर' फाड़ डालिये; और फिर मैं यह कहूँ कि वह मेरा ही है। वे यह कहें कि सरकार से मिलनेवाला रुपया बन्द हो

जायगा, तो मैं उन्हें आश्वासन देने को तैयार हूँ कि रुपया मैं ला दूँगा। मैं केवल इतना ही कह रहा हूँ कि अपने विश्वविद्यालयों को राष्ट्रीय बनाइये। पंडितजी को भी मैंने क्या कहा? 'वाइसराय को 'चार्टर' लौटा दीजिये और महाराजों को रुपया वापस चाहिए, तो उन्हें भी लौटा दीजिये। रुपया चाहिए, सो उसकी भीख माँग लेंगे। आप महाराजों से भीख माँगने की अननुकरणीय शक्ति रखते हैं, तो मैं आम लोगों से भिक्षा माँगने की थोड़ी शक्ति रखता हूँ।'

भारतीय भाई—परन्तु 'चार्टर' ने क्या बिगाड़ा है?

गांधीजी—अरे 'चार्टर' आया, उसके साथ सरकार का सब कुछ आ गया। 'चार्टर' के लिए ही हिन्दू विश्वविद्यालय ड्यूक ऑफ कॅनॉट का सम्मान करेगा। मैं यह कैसे सहन कर सकता हूँ? नहीं, मैं सच कहता हूँ कि श्रीमती बेसेंट एक बार कहती थीं कि 'आप तो राज्य-विप्लव—बलवा करना चाहते हैं' सो सच बात है। केवल यह विप्लव विकास-क्रम का अनुसरण करनेवाला (evolutionary revolution) होना चाहिए। वैसे मेरे खयाल से विप्लव तो होना ही चाहिए। इसके बिना छुटकारा नहीं है। देखिये, सरकार का दिमाग फिर गया है। वह आखिरी निर्लज्ज सार्वजनिक घोषणा प्रकाशित की गयी, सो देखिये। उसमें बड़े-बड़े वाग्जाल रचकर कहते हैं कि अभी तो हमने अखबारों को आजादी दी है, हम किसीकी जबान बन्द नहीं करेंगे। फिर भी वे कर क्या रहे हैं? पंजाब के शान्त कार्यकर्ता आगा सफदर के मुँह पर ताला क्यों लगाया गया? उनमें धर्मान्धता जैसी चीज नहीं, उनके जैसा शान्त काम करनेवाला मैंने पंजाब में देखा नहीं। और उस दिन ही तो 'सर्वेण्ट' पत्र के बाबू श्यामसुन्दर चक्रवर्ती ने मुझसे कहा कि उन्हें सरकार की तरफ से एक 'चेतावनी' मिली है। किसलिए? इसलिए कि उन्होंने 'यंग इंडिया' में प्रकाशित श्री राजगोपालाचार्य का 'मतदाताओं को सूचना' नामक एक लेख छाप दिया! यह स्थिति असह्य है।

भारतीय भाई—अब अदालतों की तरफ मुड़ें। अदालतें छुड़वाकर, वकीलों की वकालत बंद कराकर आप क्या करना चाहते हैं ?

गांधीजी—सरकार की प्रतिष्ठा मिटाना चाहता हूँ। ये अदालतें और स्कूल-कॉलेज सरकार की प्रतिष्ठा की जड़ मजबूत करनेवाली वस्तुएँ हैं। सरकार ने इन्हींके द्वारा मोहजाल में फँसा रखा है।

भारतीय भाई—तब झगड़े कैसे निपटेंगे ?

गांधीजी—मेरा अनुभव आपसे कहूँ ? मेरी वकालत के दिनों में ७५ फीसदी मुकदमे मैंने घर में निपटाये थे। और घर में निपटाने में मैं निष्णात माना जाता था। निष्पक्षता के लिए मैं वहाँ प्रख्यात हो गया था। इसलिए मेरी तरफ से किसी दूसरे फरीक को नोटिस मिलते ही वह मेरे पास आता और निपटारा कर लेने की माँग करता। इसलिए बहुत लोगों को दो सॉलिसिटर रखने पड़ते। मुझसे न पटती, तो वे लड़ने के लिए दूसरे सॉलिसिटर के पास जाते। मैं तो केवल स्वच्छ मामले ही लेता था।

अंग्रेज भाई—क्या आपका खयाल है कि इस प्रकार विश्वास से काम करनेवाले पक्षकार बहुत आयेंगे ?

गांधीजी—५० प्रतिशत पक्षकार अदालतें छोड़ देंगे, इसलिए ५० प्रति सैकड़ा मामले कम हो जायँगे। मैंने सुना है कि ५० फी सदी केस तो अदालती दलाल ही उत्पन्न कर रहे हैं। श्री दास कहते थे कि कलकत्ते में ऐसा नहीं है, परन्तु दूसरों ने कहा कि श्री दास को इस बारे में अनुभव नहीं है।

कलकत्ते के एक वकील खिड़की में से यह बात सुन रहे थे। वे बोल उठे : मुफस्सिल तो 'टाउटों' (अदालती दलालों) से भरा पड़ा है। मैं साक्षी देता हूँ कि वहाँ के ५० फी सदी मुकदमे उन्हींके बनाये हुए होते हैं।

भारतीय भाई—होंगे, परन्तु मैं शहर की बात कर रहा हूँ। बंगाल चेम्बर ऑफ कॉमर्स ने एक 'आर्बिट्रेशन ट्रीब्युनल' स्थापित की है। चेम्बर

प्रतिष्ठावान् कहलाता है, फिर भी व्यापारियों के झगड़ों का अदालतों में जाना कम नहीं हुआ।

गांधीजी—शायद, क्योंकि वकील कम नहीं हुए।

भारतीय भाई—एकाध आदमी वकालत छोड़ देगा, तो उसका क्या असर होगा ?

गांधीजी—अनुपात में तो असर होगा ही। पंडित मोतीलाल नेहरू के वकालत छोड़ने से सरकार की प्रतिष्ठा की टूटती हुई इमारत को एक और धक्का लगा है, यह मैं जरूर कहूँगा। सर हारकोर्ट बटलर से पूछिये।

अंग्रेज भाई—आप फरीकों को भी अदालतों में जाने से जरूर रोक रहे हैं न ?

गांधीजी—हाँ।

अंग्रेज भाई—मगर यह कैसे होगा ? आप पर तो उन्हें विश्वास था। आप तो जो आपके पास साफ दिल और पाक हाथ से आते थे, उन्हींका काम कर सकते थे। जो नापाक हाथों आते, उनका तो आप भाव भी नहीं पूछते थे। ऐसे नापाक हाथोंवालों का आप क्या करेंगे ? ऐसे मामले तो शायद ही आयेंगे, जिनमें दोनों पक्षकार साफ दिल और पाक हाथोंवाले हों।

गांधीजी—मैं बेधड़क तमाम नापाकों को सरकार के भेंट कर दूँगा।

दोनों की तरफ से भारतीय भाई—हम आपसे लड़ने नहीं आये, समझने ही आये हैं। यह तो आप जानते हैं न ? अब एक ही प्रश्न पूछते हैं। आपके जो अनुयायी हैं, उनका असहयोग तो वैर और तिरस्कार के आधार पर ही है, यह सच है या नहीं ?

गांधीजी—हाँ, मुझे मद्रास से एक अंग्रेज भाई ने भी इस बारे में लिखा है।

अंग्रेज भाई—मैं आपका सिद्धान्त समझता हूँ, परन्तु आपके अनुयायियों की जबान से तो निरा जहर बरसता है।

गांधीजी—हाँ, हाँ, परन्तु मेरा कहना तो यह है कि कोई उदात्त कार्य प्रीति से कीजिये या अप्रीति से कीजिये, उसका फल निकले बिना नहीं रहता। सत्य डर से बोला जाय या समझकर बोला जाय, तो भी उससे सत्य का फल निकले बिना रहता है?

भारतीय भाई—आपका सिद्धान्त 'पाप का तिरस्कार करो, परन्तु पापी का नहीं' है। उधर आपके अनुयायियों का उसूल उल्टा मालूम होता है—'पापी का तिरस्कार करो, पाप का तिरस्कार करने की जरूरत नहीं।'

गांधीजी—आप अन्याय नहीं कर रहे हैं? कुछ लोग पाप और पापी दोनों का तिरस्कार करते हैं। पाप का तिरस्कार करते हैं, इसीलिए वे इतना त्याग कर रहे हैं, बड़ी-बड़ी कुर्बानियाँ देने को तैयार हुए हैं। केवल पापी का तिरस्कार करनेवाले से इतनी कुर्बानियाँ हो सकती हैं? कभी नहीं।

अंग्रेज भाई—आपका मूल सिद्धान्त तो पापियों के साथ न मिलने का है। तो फिर आप नापाक साथियों के साथ कैसे काम कर सकते हैं? आपके जैसे ऊँचे दर्जे पर खड़े रहकर काम करनेवाला पुरुष मलिन हथियारों से कैसे काम ले सकता है?

गांधीजी—आप सरकार के नापाकपन की और मेरे साथियों की अपूर्णता की तुलना करेंगे? आप जरा अधिक विचार करके देखें, तो समझ जायँगे। कोई भी सुधारक—मैं सुधारक हूँ-उसे मिलनेवाले हथियारों से काम लेने को बँधा हुआ है—मलिन हथियार न कहिये, अधूरे हथियार कहिये।

भारतीय भाई (उठते-उठते)—आज आपको बड़ा कष्ट दिया, माफ कीजियेगा। मैं अब तक 'असहयोग' के साथ लड़ता रहा हूँ, परन्तु आज समझा हूँ कि जिस असहयोग के साथ मैं लड़ रहा हूँ, वह वह 'असहयोग' नहीं है, जिसे मैंने आज आपसे समझा है। हम दोनों आपके आभारी हैं।

१७-१२-'२०

कलकत्ते से रवाना हुए। रास्ते में खूब डाक निपटायी। कलकत्ते का भाषण देख दिया। सरलादेवी ने पत्र में लिखा था : असहयोग की रचना तिरस्कार पर होती है, इसलिए बापू पर उतना कम प्रेम है। यह कहा कि तिरस्कार-मुक्त बापू पर उनका अधिक प्रेम होगा। असहयोग जैसा काम तो दूसरे नेता भी कर सकते हैं। उन्हें उत्तर दिया :

¶ "आपने मुझमें कोई तिरस्कार देखा हो और इसलिए आप मुझे कम चाहती हों, तो इसके लिए मैं आपको अधिक चाहता हूँ। आपको इस पर अफसोस है कि मैं असहयोग में पड़ा हुआ हूँ। आपको सचमुच अफसोस होने का कारण तब हो, जब असहयोग मेरे लिए एक राजनैतिक वस्तु हो। परन्तु मेरे लिए तो वह धार्मिक चीज है। द्वेष के तमाम बलों को एकत्र करके उचित–शुद्ध दिशा में लगा रहा हूँ। द्वेष तो दुर्बलता का चिह्न है, जैसे तिरस्कार उद्धत सत्ता की निशानी है। मैं अपने देश-बन्धुओं को इतना बता सकूँ कि उन्हें अंग्रेजों का डर रखने की जरूरत नहीं, तो वे उनसे द्वेष रखना बन्द कर देंगे। बहादुर पुरुष या स्त्री कभी द्वेष नहीं करते। द्वेष तो तत्त्वतः कायर लोगों का दुर्गुण है, असहयोग आत्मशुद्धि की क्रिया है। हम जब शकर को शुद्ध करते हैं, तब जैसे मैल ऊपर नितर आ जाता है, वैसे ही जब हम अपने-आपका शुद्धीकरण करते हैं, तब हमारी कमजोरियाँ नितरकर ऊपर आ जाती हैं। आपके पत्र में मुझे जो चीज बहुत अच्छी लगती है, वह यह है कि आपने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी। मेरे प्रति आपके प्रेम का आधार मेरी शुद्धता और मेरी नम्रता के बारे में आपके विश्वास पर है। ये चीजें मुझमें न हों, तो मैं कौड़ी कीमत का नहीं। पहले पत्र में आपने अपने त्याग का जो वर्णन किया है, उसके लिए भी इसके बिना मैं अयोग्य माना जाऊँगा।"

●

[असहयोग की लड़ाई के दौरान में बापूजी ने कुछ खुली चिट्ठियाँ लिखी थीं। उनमें से दो महत्त्वपूर्ण चिट्ठियाँ इस परिशिष्ट में दी जाती हैं। शेष चिट्ठियाँ तृतीय खण्ड में दी जायंगी।]

१

अलीगढ़ कॉलेज के ट्रस्टियों से

सज्जनो,

आप भारत के सभी मुसलमान विश्व के एक अत्यंत नाजुक विषय पर अपना निर्णय देने के लिए इकट्ठा होने की तैयारी कर रहे हैं। मैं सुनता हूँ कि आप अपनी बैठक के समय के लिए सरकार और पुलिस की मदद माँग रहे हैं। यह अफवाह सच हो, तो आप निश्चित समझिये कि ऐसा करने में आपके हाथों बड़ी भूल होगी। घर में बैठकर निपटाने की बात में सरकार का हस्तक्षेप या पुलिस का संरक्षण चाहिए ही क्यों? अलीभाई या मैं दोनों में से कोई भी पशु-बल की लड़ाई में थोड़े ही लगे हैं! हमारी छेड़ी हुई लड़ाई में हमारा पूरा हथियार लोकमत है और उस जनता को हम अपने पक्ष में न रख सकें, तो हमारी निश्चित हार है। हमारे बीच के झगड़े में भी लोकमत की परीक्षा आपको बहुमत मिलने से ही होगी। इसीलिए इस मामले की पूरी चर्चा कर लेने के बाद यदि आप बहुमत से इस नतीजे पर पहुँचें कि यदि कॉलेज या स्कूल के छात्र संस्थाओं को सरकार से अलग कराने और सरकारी सहायता छुड़वा देने के विषय में अपना आग्रह छोड़ न दें, तो विद्यार्थी या बोर्डर के रूप में भी वे कॉलेज की सीमा में न रहें, तो वे शान्तिपूर्वक कॉलेज खाली कर देंगे। ऐसा हो तो जहाँ तक हो सकेगा, अलीगढ़ में ही नहीं, बल्कि किसी और जगह भी हमने उनकी शिक्षा जारी रखने का विचार किया

है। हमारी इच्छा है कि उनकी शिक्षा जरूरत के बिना एक दिन भी न रुके। परन्तु यह शिक्षा इसलाम के कानून और भारत की इज्जत के अनुसार देने की हमारी दिली ख्वाहिश है। मैंने मशहूर उलेमाओं की राय इस बारे में पूछ ली है और उनका यह मत है कि जिस सरकार ने पवित्र खिलाफत को नष्ट करने या जजीरतुल अरब के इसलामी अधिकार में हस्तक्षेप करने के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रयत्न किये हैं, उससे कोई धर्म-निष्ठ मुसलमान सहायता नहीं ले सकता। यह तो आप भी हमारे जितना ही जानते हैं कि इस हुकूमत ने भारत की इज्जत को किस प्रकार इरादा-पूर्वक मिट्टी में मिलाया है। इन कारणों से लोगों का जोश काबू में रह सकने की सावधानी के साथ जनता सरकार के साथ का सारा स्वेच्छापूर्ण सम्बन्ध तोड़ रही है। ऐसे हालात में मेरा खयाल है कि आपको कम-से-कम इतना तो करना ही चाहिए कि आइंदा सरकारी मदद लेने से इनकार करके अपनी महान् संस्था को सरकार से स्वतंत्र बना लें और मुसलिम विश्वविद्यालय के लिए मिला हुआ चार्टर (प्रमाण-पत्र) लौटा दें। यदि आप इसलाम और भारत की ओर न देखें, तो अलीगढ़ संस्था के छात्रों को सरकार की छत्रछाया स्वीकार करनेवाली आपकी संस्था की परछाईं तक छोड़ देनी चाहिए। ऐसी संस्था इसलाम और भारत की ओर से आदर प्राप्त करने का सारा हक गँवा देती है। इस अलीगढ़ के स्थान पर अधिक विशाल, अधिक उदात्त और अधिक निर्मल अलीगढ़—उसके महान् संस्थापक सर सैयद अहमद के सच्चे हृदय की आकांक्षाओं को पूरा करनेवाला अलीगढ़—खड़ा करना चाहिए। मेरी तो कल्पना में भी नहीं आ सकता कि प्रातःस्मरणीय स्वर्गवासी सर सैयद अहमद अपनी महान् संस्था को मौजूदा सरकार के अधिकार या प्रभाव में एक क्षण भी रहने देने का विचार तक कैसे कर सकते थे !

चूँकि मैं अलीगढ़ संस्था को सरकारी नियंत्रण और सरकारी सहा-यता से अलग कराने के विचार का जन्मदाता हूँ, इसलिए मेरा खयाल है कि आपकी चर्चाओं के समय यदि मैं आपकी बैठक में उपस्थित रहूँ, तो

शायद सहायक सिद्ध हो सकता हूँ। इसलिए यदि मुझे उपस्थित रहने की आज्ञा देंगे, तो मैं आनंद से अपनी सेवाएँ अर्पण करने को तैयार हूँ। इस समय मैं बम्बई जा रहा हूँ और वहाँ आपके उत्तर की प्रतीक्षा करूँगा।

परन्तु आप मुझे सभा में बुलायें या न बुलायें, फिर भी कृपा करके इस साफ घरेलू मामले के बीच सरकार को तो हरगिज निमंत्रण न दीजिये।

और इस सरकार को भी आपके द्वारा मुझे थोड़ा-सा कह लेने दीजिये। आजकल मेरे और अलीभाइयों के बारे में सरकार के इरादों के लिए कई अफवाहें उड़ती रहती हैं। मैं आशा रखता हूँ कि सरकार इस लड़ाई को शांति में बढ़ने देने के लिए हमारी स्वतंत्रता पर अंकुश नहीं लगायेगी। हम अपनी लड़ाई अत्यन्त सीधे ढंग से चलाने की कोशिश कर रहे हैं। हम प्रयत्न कर रहे हैं कि सरकार को लोगों की इच्छा के सामने झुकायें और ऐसा करने को वह तैयार न हो, तो पशु-बल का आश्रय लेकर नहीं, परन्तु शुद्ध लोकमत के जोर से उसे उलट दें। हम मानते हैं कि सरकार की शैतानियत का पर्दाफाश करके लोगों को शिक्षित करना और लोगों की बुद्धि तथा भावनाओं को जगाकर उनके भीतर के शारीरिक पशुत्व के कभी अधीन न बनना और मौखिक शब्दों से नहीं, किन्तु प्रत्यक्ष आचरण करके अर्थात् सरकार के साथ का यथासंभव सारा सम्बन्ध तोड़ दिखाकर असहयोग करने के लिए लोगों से कहना बिलकुल वैध, न्यायपूर्ण और शरीफ काम है। परन्तु यदि सरकार का इरादा विचार-स्वातंत्र्य और शान्तिपूर्ण कार्य तक को दबा देने का हो, तो मैं आशा रखूँगा कि वह हमारे विरुद्ध नजरबन्दी या किसी खास प्रान्त में ही रहने या किसी विशेष स्थान पर न जाने आदि के कोई हुक्म जारी न करके हमें सीधा कैद ही कर दे। कारण, हमारी सच्चे अन्तःकरण से यही इच्छा है कि इस घड़ी हमारे अपने ही हाथों कानून का सविनय भंग न हो। परन्तु

हमें आजाद रहने देकर भी हमारी घूमने-फिरने की स्वतंत्रता पर अंकुश रखने का कोई हुक्म हम पर लगाया जायगा, तो लाचार होकर उसका सविनय अनादर करना हमारा फर्ज हो जायगा; क्योंकि जब तक हमारे शरीरों को प्रत्यक्ष बन्धन न लगा दिये जायँ, तब तक हमें अपने कार्य के लिए जहाँ-जहाँ आने-जाने की जरूरत मालूम होगी, वहाँ इन शरीरों का यह उपयोग हमें करना ही है।

कष्ट के लिए सविनय क्षमाप्रार्थी।

आपका सच्चा सेवक

'नवजीवन',
३१-१०-'२०

मोहनदास करमचंद गांधी

२

प्रत्येक अंग्रेज से

प्रिय मित्र,

मैं चाहता हूँ कि भारत में प्रत्येक अंग्रेज इस पत्र को देखे और उस पर विचार करे।

सबसे पहले तो मैं आपको अपना परिचय दे दूँ। मेरी नम्र राय के अनुसार ब्रिटिश सरकार के साथ अब तक जितना सहयोग मैंने किया है, उतना और किसी भारतीय ने नहीं किया होगा। किसी भी मनुष्य को विद्रोह या बगावत करने की प्रेरणा देनेवाली कठिन परिस्थितियों में रह-कर मैंने २९ साल तक आपके साम्राज्य की सेवा की है। यह विश्वास रखिये कि वह सेवा मैंने आपके कानूनों द्वारा नियोजित सजाओं के डर से या और किसी भी स्वार्थी हेतु से नहीं की। वह सहयोग स्वतंत्र, स्वेच्छापूर्ण और इस विश्वास से ही प्रेरित होकर किया गया था कि

ब्रिटिश-सरकार का काम-काज कुल मिलाकर भारत के हित में ही है। इसी विश्वास के कारण मैंने चार वार अपने-आपको जोखिम में डाला : (१) बोअर-युद्ध के समय; उस समय मेरे अधीन एक एम्बुलेन्स (घायलों को सहायता पहुँचानेवाली) टोली थी, जिसकी सेवाओं के बारे में जनरल बुलर ने अपने खरीते में विशेष उल्लेख किया था। (२) नेटाल में उठे जुलू-विद्रोह के समय; उस समय भी मेरे पास वैसी ही एम्बुलेन्स टोली थी। (३) पिछले महायुद्ध के प्रारंभ में; उस वक्त भी मैंने ऐसा ही दल खड़ा किया था, जिसकी अत्यंत श्रमपूर्ण तालीम के परिणामस्वरूप मुझे सख्त प्लुरिसी का रोग हो गया था। अन्त में (४) दिल्ली में हुई युद्ध-परिषद् के समय मैंने लार्ड चेम्सफर्ड को सैनिक भरती में मदद देने के बारे में दिये गये वचन का जी-जान से पालन करके। इस काम के लिए खेड़ा जिले में रहकर और लंबी-लंबी यात्राएँ करके मैंने इतना परिश्रम किया कि उससे मुझे घातक पेचिश हो गयी और मैं मरते-मरते मुश्किल से बचा।

ये सारी सेवाएँ मैंने इसी विश्वास के बल पर की थीं कि मेरे इन कामों से साम्राज्य में मेरे देश को समान पद मिलेगा। अभी पिछले दिसम्बर तक सरकार पर भरोसा रखकर सहयोग करने के लिए मैंने अपने देशबन्धुओं से अनुरोध किया। मुझे तब तक यह आशा थी कि मि० लॉइड जॉर्ज मुसलमानों को दिये अपने वचनों का पालन करेंगे और पंजाब के अत्याचारों के जो हॉल जाहिर हुए हैं, उनके अनुसार पंजाबियों पर गुजरे सितम के लिए पूरा पश्चात्ताप किया जायगा। परन्तु मि० लॉइड जॉर्ज द्वारा किये गये विश्वासघात से, आपने जिस ढंग से उनके व्यवहार की सराहना की, उससे और पंजाब के अपराधों पर आपने जिस तरह पर्दा डालने की कोशिश की, उससे सरकार की नेकनीयती पर से और जो जनता ऐसी सरकार का समर्थन कर रही है, उस जनता पर से मेरा सारा एतबार उठ गया है।

परन्तु आपके शुभ हेतुओं पर से मेरा विश्वास उठ गया हो, तो भी

२८

आपकी बहादुरी को मैं पहचानता हूँ और जानता हूँ कि आप जो चीज न्याय और तर्क के सामने झुककर देने को तैयार नहीं होते, उसे वीरता के आगे झुककर देने को रजामंद हो जायँगे।

साम्राज्य का अर्थ भारत के लिए क्या है, सो देखिये :

१. ग्रेटब्रिटेन के लाभ के लिए भारत की सम्पत्ति का शोषण।

२. रोज बढ़ रहा सैनिक खर्च और संसार में किसी भी देश की अपेक्षा अधिक खर्चीले अधिकारियों का शासन।

३. भारत की दरिद्रता का रत्तीभर खयाल न कर अपव्ययी ढंग से संचालित सारे सरकारी विभाग।

४. हम लोगों में रहनेवाले मुट्ठीभर अंग्रेजों की जान कहीं जोखिम में न पड़े, इस डर से सभी लोगों के हथियार छीन लेना और उसके परिणामस्वरूप लोगों में उत्पन्न नपुंसकत्व।

५. ऐसी अत्यंत खर्चीली सरकार को चलाने के लिए शराब, अफीम और ऐसे ही अन्य मादक पदार्थों का किया जानेवाला व्यापार।

६. जनता के उद्वेग को प्रकट करने के लिए रोज-ब-रोज बढ़ते हुए आंदोलन को दबा देने की खातिर नित-नये तैयार होनेवाले दमन और सख्ती के कानून।

७. आपके उपनिवेशों में रहनेवाले भारतीयों के प्रति किया जानेवाला शर्मनाक बर्ताव; पंजाब के शासन को दिया गया प्रशंसा का प्रमाण-पत्र और मुसलमानों की भावनाओं का तिरस्कार करके आपके द्वारा हमारी भावनाओं की की गयी उपेक्षा।

मैं जानता हूँ कि यदि हम लड़कर आपके हाथों से अपना राज्य छीन सके, तो आप इस पर एतराज नहीं करेंगे। आप जानते हैं कि ऐसा करने की हममें ताकत नहीं है, क्योंकि आपने ऐसी खुली और शराफत-भरी लड़ाई लड़ने की हमारी स्थिति रहने नहीं दी। इस प्रकार लड़ाई के मैदान में अपनी वीरता साबित करने के द्वार हमारे लिए बन्द हैं। आत्मा का शौर्य दिखाने का मार्ग अब भी हमारे लिए खुला है। मैं जानता हूँ

कि आप इस शौर्य के आगे भी झुकेंगे। मैं इस समय उसी शौर्य को अपने लोगों में जगाने का काम कर रहा हूँ। असहयोग का अर्थ है, त्याग की शिक्षा। जब हमने देख लिया कि इस देश के आपके शासन में हम दिन-दिन अधिक गुलामी में फँसते जा रहे हैं, तब हम आपके साथ और सहयोग किसलिए करें ?

आज लोग मेरी सलाह मान रहे हैं, सो मेरे नाम के कारण नहीं। मेरे या अलीभाइयों के नाम को आप इस मामले का विचार करते समय अलग रखें। मैं यदि आज लोगों को मुसलमानों का विरोध करने की सलाह देने की मूर्खता करूँ या अलीभाई उस प्रकार मुसलमानों को हिन्दुओं के विरुद्ध भड़काने में अपने जादू का बल काम में लें, तो मुझे और उन्हें दोनों को जनता तुरंत ठुकरा दे। आज लोगों की भीड़ हमें सुनने को इसलिए चली आती है कि हम आपके जुल्म से थर्राते हुए लोगों की आंतरिक भावनाओं को कहकर बताते हैं। अलीभाई भी कल तक आपके मित्र थे, जैसा कि मैं था और अब भी हूँ। मेरा धर्म आपके प्रति मेरे अन्तर में किसी भी प्रकार की कटुता रखने की मनाही करता है। मेरी कलाई में जोर हो, तो भी मैं अपना हाथ आपके खिलाफ नहीं उठाऊँगा। मैं अपने कष्ट-सहन से ही आपको जीतने की आकांक्षा रखता हूँ। अलीभाई जरूर उनसे हो सके, तो अपने दीन और देश के खातिर तलवार उठा लेंगे। परन्तु लोगों की भावनाएँ प्रकट करने और उनके दुःखों का इलाज ढूँढ़ने के काम में उन्होंने और मैंने लोगों के साथ साझा किया है।

आप लोक-भावना के इस चढ़ते हुए ज्वार को दबा देने के उपाय की तलाश में हैं। मैं आपको बता दूँ कि इसका उपाय एक ही है और वह यह है कि रोग के कारण ही ढूँढ़कर दूर किये जायँ। अब भी बाजी आपके हाथ में है। भारत के साथ किये गये घोर अन्यायों के लिए आप प्रायश्चित्त कर सकते हैं। आप मि० लॉइड जॉर्ज से उनका वचन पालन करा सकते हैं। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि उन्होंने जो कुछ किया है, उससे निकलने

की कितनी ही खिड़कियाँ उन्होंने स्वयं ही रख ली हैं। आप वाइसराय महोदय को लौट जाने पर मजबूर कर सकते हैं। वह जगह योग्य आदमी को दी जा सकती है। आप सर माइकेल ओडायर और जनरल डायर दोनों के संबंध में अपने विचार भी बदल सकते हैं। लोगों के परिचित, उनके द्वारा चुने हुए और सब मतों के नेताओं की एक परिषद् बुलवाकर भारतवासियों की इच्छानुसार स्वराज्य प्रदान करने का रास्ता निकालने के लिए सरकार को विवश कर सकते हैं।

परन्तु जब तक आप यह न समझ लें कि प्रत्येक भारतीय सचमुच आपकी बराबरी का और आपका भाई है, तब तक आपसे यह नहीं होगा। मैं आपसे आश्रय की याचना नहीं करता; मैं तो केवल मित्र के नाते एक कठिन प्रश्न का शराफतभरा हल आपको सुझा रहा हूँ। दूसरा रास्ता दमन और कठोरता का तो आपके लिए खुला ही है। मैं आपको चेतावनी देता हूँ कि यह उपाय बेकार साबित होगा। उसका आरंभ तो हो चुका है। सरकार ने पानीपत के दो बहादुर आदमियों को स्वतंत्र मत रखने और प्रकट करने पर कैद किया है। औरों पर लाहौर में मुकदमा चल रहा है। अयोध्या में एक और आदमी कैद हुआ है। तीसरे का फैसला अब होगा। आपको देखना चाहिए कि आपके आसपास क्या हो रहा है। हमारा आंदोलन तो दमन और सख्ती की आशा रखकर ही शुरू हुआ है। मैं आदरपूर्वक आपसे दोनों में से अच्छा रास्ता अपनाने और जिस भारत का आप नमक खा रहे हैं, उसके लोगों का पक्ष लेने का अनुरोध करता हूँ। उसकी आकांक्षाओं को रोकने का प्रयत्न करना इस देश की बेवफाई करने के बराबर है।

'नवजीवन',
३१-१०-'२०

आपका वफादार मित्र,
मोहनदास करमचंद गांधी

शब्दानुक्रम